ISSN 0975-5217
UGC-Care list (Group-I)

भैरवी

(दृश्य एवं प्रदर्शनकारी कला की शोध-पत्रिका)

(वर्ष 2023 अंक 25)

मिथिलांचल संगीत परिषद्
स्नातकोत्तर संगीत एवं नाट्य विभाग
ललित कला संकाय
ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय
कामेश्वरनगर, दरभंगा 846 004

भैरवी (दृश्य एवं प्रदर्शनकारी कला की शोध-पत्रिका)

ISSN 0975-5217

UGC-Care list (Group-I)

वर्ष-2023, अंक : 25

प्रधान सम्पादक

प्रो. (डॉ.) पुष्पम नारायण

प्रकाशक : मिथिलांचल संगीत परिषद्

स्नातकोत्तर संगीत एवं नाट्य विभाग
ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय,
कामेश्वरनगर, दरभंगा 846 004
मो. - 09430063265
ईमेल - npushpamji@gmail.com

मूल्य

इस अंक का मूल्य : 400/- रुपये

व्यक्तियों के लिए :

वार्षिक : 800/- रुपये / त्रैवार्षिक 2400/- रुपये

पंचवार्षिक 4000/- रुपये / आजीवन : 15000/- रुपये

संस्थाओं के लिए :

वार्षिक : 850/- रुपये / त्रैवार्षिक 2500/- रुपये

पंचवार्षिक 4500/- रुपये / आजीवन : 16000/- रुपये

(केवल मनी आर्डर / चेक / बैक ड्राफ्ट से)
(दरभंगा से बाहर के चेक में 40 रुपये अधिक जोड़ें)

''भैरवी'' विश्वविद्यालय अनुदान आयोग नई दिल्ली द्वारा अनुमोदित एवं UGC-Care list (Group-1) में शामिल है। साथ ही यह Peer Reviewed Refereed Visual and Performing Arts Research Journal है।

सर्वाधिकार सुरक्षित
प्रकाशित सामग्री के उपयोग हेतु लेखक, प्रकाशक की अनुमति आवश्यक है।
प्रकाशित रचनाओं के विचार से सम्पादक व प्रकाशक का सहमत होना आवश्यक नहीं।
समस्त विवाद दरभंगा न्यायालय के अन्तर्गत विचारणीय।

मुद्रक : विकास कंप्यूटर एंड प्रिंटर्स, ट्रोनिका सिटी, लोनी, गाजियाबाद-201 102

Patron

Prof. Chaman Lal Verma
Ex. Dean and Head
University Department of Music
Himachal Pradesh University, Shimla

Prof. Pt. Ritwik Sanyal
Top Grade Dhrupad Artist
Ex. Dean, Faculty of Performing Arts
Banaras Hindu University, Varanasi

Prof. Pt. Sahitya Kumar Nahar
Vice-chancellor
Raja Maan Singh Tomar Sangeet Vishwavidyalaya
Gwalior, Madhya Pradesh

Editorial Board

Chief Editor
Prof. Pushpam Narain
Ex. Dean, Faculty of Fine Arts
Head, University Department of Music and Dramatics
Lalit Narayan Mithila University, Darbhanga, Bihar

Editorial/ Advisory Board

1. Prof. K. Shashi Kumar
   Dean, Faculty of Performing Arts
   Banaras Hindu University, Varanasi
2. Prof. Snehashish Janpriya Das
   Head. Department of Music
   Women's College Jag Chowk, Amarawati, Maharashtra
3. Dr. Ashwani Kumar Singh
   Associate Prof, Department of Music
   Faculty of Performing Arts. M.S. University, Baroda, Gujrat
4. Dr. Shobhit Kumar Nahar
   Asst. Prof. Instrumental Music
   Women's College
   Banaras Hindu University, Varanasi

Peer Review Committee

1. Prof. Om Prakash Bharti
   Head, Department of Performing Arts
   Mahatma Gandhi Antarrashtriya Hindi Vishwavidyalaya,
   Wardha, Maharashtra

2. Dr. Rajesh Kelkar
   Dean, Faculty of Performing Arts
   Maharaja Siyaji Rao University, Baroda, Gujrat

3. Prof. Umesh Kumar
   Head, Department of Hindi
   B.M.A Callege Baheri, Bihar

4. Dr. Amar Kant Kuwar
   Head, Department of Hindi
   M.L.S.M College, Darbhanga, Darbhanga, Bihar

5. Dr. Santosh Dattatrayrao Parchure
   Head, Department of Music
   S.P.H. Women's College, Malegaon, Nashik, Maharashtra

6. Dr. Shashank S. Maktedar
   Associate Prof. and Officiating Principal
   Goa College of Music, Panji, Goa

7. Dr. Ved Prakash
   University Department of Music and Dramatics
   Lalit Narayan Mithila University, Darbhanga, Bihar

8. Dr. Ramshankar
   Faculty of Music and Performing Arts
   B.H.U., Varanasi

9. Dr. Pallavi Shailesh Meshram
   Associate Prof. In Applied Arts
   Bharti Vidyapeeth' Collge of Fine Arts, Pune, Maharashtra



जपात्कोटि गुणं ध्यानं ध्यानात् कोटि गुणं लय।
लयात्कोटि गुणं गानं गानात् परतरं नाहि।।

(जप से करोड़ों गुणा प्रभावी ध्यान है, ध्यान से करोड़ गुणा लयात्मकता प्रभावशाली है। लय प्रधान जप से करोड़ गुणा प्रभाव गान का है और साधना के लिए गान अर्थात् संगीत से उत्तम उपाय अन्य कोई नहीं।)



'Music is the bridge of peace and love'

'संगीत दो देशों के बीच शान्ति और प्रेम का सेतु है।'



ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा



संपादक की कलम से ...

मनुष्य को जीवित रहने के लिए कपड़ा, भोजन एवं शरण स्थान, तीन बुनियादी आवश्यताओं की पूर्ति करनी पड़ती है। शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति को इन आवश्यकताओं की पूर्ति करने के योग्य बनाना है। ऐसा होने पर ही वह अपने जीवन रूपी गाड़ी को सरलता से चला सकता है। दूसरे शब्दों में सर्वत्र सुख प्राप्ति की आकांक्षा ने शिक्षा के व्यावसायिक उद्देश्य को जन्म दिया। जीविकोपार्जन के सामर्थ्य को मनुष्य शिक्षा का चरम लक्ष्य समझा जाता है। इसलिए प्रत्येक व्यक्ति को भविष्य में जीविकोपार्जन के लिए तैयार करना उसकी शिक्षा का मुख्य उद्देश्य माना गया है। इस उद्देश्य के समर्थक उस शिक्षा को बेकार मानते हैं जो परोक्ष या अपरोक्ष रूप में व्यक्ति को दैनिक व्यवसाय के लिए तैयार करने में अक्षम है। उनका मानना है कि जीविकोपार्जन को शिक्षा का उद्देश्य मानकर शिक्षा की व्यवस्था की जाए तो लाभ यह होगा कि किसी व्यक्ति को शिक्षा लक्ष्यहीन प्रतीत नहीं होगी। उसकी शिक्षा उसके जीविकोपार्जन के लिए पूर्णत: तैयार कर देगी।

अनेक आलोचकों ने शिक्षा के व्यावसायिक उद्देश्य का विरोध किया है। उन्होंने शिक्षा का यह उद्देश्य अपूर्ण बताया है। उनका मानना है कि भोजन-वस्त्र तक ही जीवन की क्रिया और उसकी सफलता समाप्त नहीं हो जाती। यद्यपि जीविका का प्रश्न मनुष्य के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है, परन्तु यह जीवन का केवल एक अंग है। इस शिक्षा का उद्देश्य जीवन की सफलता की अवहेलना करता है अर्थात् आन्तरिक संसार की क्षुधापूर्ति इस उद्देश्य में सम्मिलित नहीं है मनुष्य को सामाजिक नैतिक तथा बौद्धिक विकास की भी उतनी ही आवश्यकता है। उसे अपने दायित्वों व अभारों का पालन करना होता है, अपने अवकाश-काल का सदुपयोग करने की आवश्यकता होती है। अपने व्यवसाय के अतिरिक्त जिस मनुष्य की अन्य उत्तम कार्यों मे अभिरूचि होती है, जिसका मस्तिष्क अधिक से अधिक ज्ञानार्जन के लिए क्षुधित रहता है, जो जीवन का उचित उपभोग करने में समर्थ होता है, वही वस्तुत: शिक्षित व्यक्ति है।

नैतिकता का ज्ञान होने से व्यक्ति नि:सन्देह अपने समस्त कार्य नैतिक दृष्टिकोण से ही करेगा। उसमें विचार शक्ति तथा कार्य करने की प्रेरणा होगी। नैतिक दृढ़ रहने से उसकी अन्तरात्मा आदर्श के प्रति जाग्रत रहेगी। वह संसार में रहते हुए भी संसार मे लिप्त नहीं होगा। नैतिक नियम एवं नैतिक गुण समय एवं स्थान के अनुसार मनुष्यों के विचार में परिवर्त्तित होते रहते हैं। इसलिए हम देखते है कि नैतिक गुणों का प्रादुर्भाव करने वाला शिक्षा का नैतिक उद्देश्य शिक्षा के सामाजिक उद्देश्य

का विरोधी नहीं है। नैतिक गुण मनुष्य को समाज में रहने योग्य तथा उपयोगी बनाते हैं, जिसके अन्तर्गत साहस, धैर्य, न्याय, क्षमा, कर्तव्यपरायणता, सत्य निष्ठा, स्वतंत्रता प्रेम, जीवन-प्रेम आदि है।

सौन्दर्य अनुभूति के उद्देश्य से भी शिक्षा-के नैतिक उद्देश्य से गहरा सम्बन्ध है। अनुभूति एवं अभिरूचि की उच्चता ही नैतिकता के उपकरण हैं। कला अनुभूति एवं अभिरूचि का परिष्करण करती है, अत: नैतिकता की शिक्षा भी देती है। कला उन आदर्शों का विकास करती है जो नैतिक विकास में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। सौन्दर्य की प्रशंसा करने वाला व्यक्ति असौन्दर्य को जीवन में स्थान नहीं देता। आदर्शवादी भी सत्यं, शिवं, सुन्दरं की खोज करना ही शिक्षा का उद्देश्य मानते हैं। शिक्षा के नैतिक उद्देष्य का तात्पर्य यह है कि एक सूझ-बूझ युक्त चतुर शिक्षक द्वारा नैतिक शिक्षा के महत्व को समझकर स्वयं अपने को तथा अपने छात्रों को सांसारिक मोह मे फंसने से रोकने की चेष्टा करे।

निष्कर्षत: कला एवं सौन्दर्य की शिक्षा व्यक्ति में संवेगों तथा भावनाओं के समुचित विकास में सहायता करता है। संवेगो, एवं भावनाओं के सम्यक् विकास से व्यक्ति के सर्वांगीण विकास में परम सहायक सिद्ध होता है। इनके विकास से वंचित मनुष्य का विकास अधूरा रह जाता है। अत: शिक्षा के सम्पूर्ण विकास के लिए शरीर, बुद्धि, कला एवं सौन्दर्य वृद्धि, कला एवं सौन्दर्य वृत्ति का पूर्ण विकास ही मानवीय पूंजी है। चिन्तन के लिए कई बातें हैं।

अंत में कहना चाहूंगी कि "भैरवी" दृश्य एवं प्रदर्शनकारी कला की शोध पत्रिका का पच्चीसवाँ अंक आप विद्वानों को सौंपते हुए हर्ष भी हो रहा है और भय भी लग रहा है। हर्ष इस बात का है कि देश के जाने-माने संगीतज्ञ, संगीत शास्त्री एवं उत्कृष्ट शोध छात्रों के शोध परक आलेख हम आपको दे पा रहे हैं, खुशी इस बात की है कि सभी संवेदनशील रचनाकारों का अपूर्व सहयोग हमें मिल रहा है। और भय? भय तो मानवीय कमजोरी है, कई-कई बार अपनी साधना से झंकृत कर देनेवाले फनकार भी यह दावा नहीं कर सकते कि वे हमेशा निश्चित होकर मंच पर प्रस्तुत होते हैं। एक तनाव, एक अनाम भय हर प्रस्तुति के पूर्व होना, संवेदनशीलता का या यूँ कहें कि शायद दायित्व बोध का परिचायक है। इसे यूँ भी कह सकते हैं कि यह तनाव, यह भय ही प्रस्तुति को और अधिक सुन्दर और सफल बनाने में मददगार होता है। इसे ऊर्जा प्रदान करने के लिए आपकी प्रतिक्रिया की आवश्यकता है।

प्रो. (डॉ.) पुष्पम नारायण
संपादक
स्नातकोत्तर संगीत एवं नाट्य विभाग
ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय,
कामेश्वरनगर, दरभंगा-846004
मो. 09430063265
ईमेल : *npushpamji@gmail.com*

अनुक्रम

संपादक की कलम से ... 9

1. हिन्दुस्तानी रागों में स्वर प्रयोग एवं प्रकृति के आधार पर अन्त:संबंध — अलंकार महतोलिया 15
2. संगीत शास्त्र शिक्षण में पुरातात्विक अवशेषों का अध्ययन — एलिस गुप्ता 20
3. धर्म और संगीत का पारस्परिक संबंध — अमित कुमार शर्मा 27
4. मानव जीवन में संगीत का महत्त्व — डॉ. अमृता कर्मकार 37
5. अहोबल कृत संगीत पारिजात: एक विहंगम दृष्टि — अंकुर श्रीवास्तव, डॉ. विशाल जैन 42
6. प्राचीन कालीन ग्रंथों में वर्णित तंत्री वाद्यों की उपयोगिता एवं महत्ता : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन — डॉ. रितु सिंह 46
7. अयोध्या की संगीत परम्परा में अवधी लोकगीत — डॉ. रामशंकर, अशोक कुमार 51
8. बिहार में ध्रुपद घराना — रेखा कुमारी, डॉ. किरण सिंह 58
9. बनारस के संगीत नायक पं. दरगाही मिश्र की सांगीतिक परम्परा — कु. तनुश्री कश्यप, प्रो० डॉ. शुचिस्मिता शर्मा 62
10. सांगीतिक कार्यक्रम और मीडिया: कश्मीर में जुबिन मेहता के सांगीतिक कार्यक्रम का विश्लेषणात्मक अध्ययन — डॉ. मनोज कुमार दास, डॉ. संतोष कुमार 68
11. जनजातीय महिलाओं के आर्थिक जीवन पर आधुनिकीकरण का प्रभाव (गढवाल की बुक्सा जनजाति के सन्दर्भ में) — पूजा दरमोड़ा 78
12. ब्रज के प्रमुख लोक वाद्य — प्रीति सिंह 85
13. भारतीय संगीत में वाग्गेयकार की परंपरा — डा. रवि जोशी 94
14. प्राचीन सांगीतिक ग्रन्थों में वर्णित विविध स्वर वाद्य — आलोक कुमार, प्रो. बिरेन्द्र नाथ मिश्र 98

15. उत्तर भारतीय एवं दक्षिण संगीत पद्धति का तुलनात्मक अध्ययन
प्रो. बिरेन्द्र नाथ मिश्र, सतेन्द्र 103

16. तबले की बंदिशों में साहित्यिक तत्त्वान्वेषण डॉ. दीपक त्रिपाठी 109

17. नव राग सृष्टि में रागांग की भूमिका उदिति सरकार 119

18. जसनाथी सम्प्रदाय के लोक संगीत का स्वरूप नेहा शर्मा 123

19. श्रीरामचरित मानस में मानवीयता संगीत लपेटे हुये डॉ॰ सुरेन्द्र कुमार 127

20. संत कबीर की रचनाओं की समकालीन संदर्भ में प्रासंगिकता डॉ. रंजना उपाध्याय 134

21. भारतीय संगीत में अनिबद्ध गान (आलप्ति गान) श्री प्रियांशु घोष 137

22. लोकगीतों की विकासात्मक परंपरा डॉ. रविन्द्र कुमार 143

23. तानपूरे की जवारी के तीन बिन्दु ओशीन घरे 147

24. मध्यप्रदेश के लोक अंचल में प्रचलित कतिपय
लोक वाद्य तथा लोक गीत: एक अध्ययन
आनंद कुमार मिश्रा, डॉ. ज्ञानेश चन्द्र पाण्डेय 150

25. समस्तीपुर की संगीत परम्परा में स्वातंत्र्योत्तर
संगीतकारों का योगदान डॉ. चन्द्रनाथ मिश्र, सुमन सौरभ 156

26. गोड्डा जिला के माध्यमिक विद्यालयों के नवीं कक्षा
के छात्र-छात्राओं के शैक्षणिक तनाव एवं
समायोजन का निष्पत्ति पर प्रभाव: एक अध्ययन जितेंद्र पंडित 167

27. लोक संगीत की अविरल धारा: एक विवेचन डॉ. मधुमिता भट्टाचार्य 171

28. स्तोत्र गान और संगीत डॉ॰ नमिता कुमारी 175

29. प्रवर्तमान सोशीयल मीडिया के सापेक्ष ध्वनिलेखागार
का महत्व (YouTube के विशेष संदर्भ में) प्रणव पंडया
डॉ.अश्विनी कुमार सिंह 178

30. हिंदी सिनेमा तथा शास्त्रीय संगीत : एक अध्ययन डॉ. अमित कुमार दुबे 185

31. डॉ. गंगूबाई हंगल गुरुकुल : गुरु शिष्य परंपरागत आधुनिक संस्थान
प्रियम चतुर्वेदी, डॉ. संतोष पाठक 190

32. 'सत्य साई भजन' श्री सत्य साई बाबा का अद्वितीय योगदान
कौस्तुभ पारे, डॉ. संतोष कुमार पाठक 195

33. Love, Sin, Religion, and Suicide in Graham Greene's *The Heart of the Matter:* A Critical Study Dr. Suraj K. Sawant 200

34. A Study of Dance from the Historical Texts under of the Mughals Prerna Rana 206

35. Food as the Apple of Eye in Jhumpa Lahiri's Writings Ms.S.Poornima, Dr.T.Alagarasan 214

36. The Fraternal twins of the Bengali folk music culture: Baul and Bhawaiya Stavamagna Chakraborty 221

37. Contribution of Ramayana as a cultural icon in the Indian Nationalist Discourse Archna Tanwar, Hemalatha K 236

38. Dramatizing Shakespearean Characters through Verbal and Visual Context of *Tempest* & *Hamlet* Dr. Arvind Kumar, Jyoti 243

39. Similarities between the Theatre Style of Pt. Lakhmi Chand & William Shakespeare Dr. Sandhya Sharma, Dr. Seema Parmar 249

40. An exploration of regional songs of politics and political campaigns: A case study of Bihar Legislative Assembly Elections Dr. Manu Raj Sharma 256

41. Measuring Learning Outcomes of the DIE activity with differently-abled school learners Niyan J. S. Marchon, Libareta Mendonca, Rupal Tanna, Sitam Naik, Mahadev Shinde 263

42. Music & Sports: An Absolute Chemistry Suniti Datta, Balaram Pani, Mamta Sharma, Pawan Kumar 273

43. Effect of Music Therapy on Adolescence Suffering from Depression Purnendu Bains 279

44. Ramkrishnabua Vaze's gayaki: Multiplicity in Khyal vocalism — Dr. Ranjani Ramachandran 287

45. Changing facets of Indian Music — Dr. Monali Masih 294

46. Pandemic-19 Rethinking Tourism Destination Behavior: A Holistic Perspective — Tahmeed Ahmad Badam 298

हिन्दुस्तानी रागों में स्वर प्रयोग एवं प्रकृति के आधार पर अन्तःसंबंध

अलंकार महतोलिया

सारांश

भारत का संगीत समस्त भूमण्डलीय संगीत में अपनी विशेषता लिए हुए है। मनुष्य मन को रस विभोर कर मोक्ष के द्वार तक पहुँचाने वाला संगीत, सागर की गहराई और आकाश की ऊँचाई तक विचरने वाला भारतीय संगीत विश्वभर में अपनी असीम मधुरता, प्रभावशीलता तथा महानता के लिए सर्वविदित है।

भारतीय शास्त्रीय 'संगीत' में 'राग' शब्द का महत्व अनन्य साधारण है। जहाँ स्वर और लय संगीत के प्राण है वहीं राग उसका शरीर है और शास्त्रीय संगीत में ये दोनों ही एक दूसरे के पूरक हैं। मनुष्य के समान ही रागों का अपना अस्तित्व है। प्रत्येक राग की आकृति, प्रकृति, भाव, स्वभाव इत्यादि भिन्न होते हैं। यद्यपि संगीत के सभी राग सात स्वरों, अनेक शुद्ध विकृत रूपों तथा वज्र्य स्वरों पर ही अवलम्बित होते हैं तथापि उनमें प्रयुक्त होने वाले अलंकरण, स्वर संगतियाँ, वादीं, वादी-संवादी, स्वर, स्वरों के अल्पाधिक प्रयोग इत्यादि बातों के कारण यह सभी राग एक दूसरे से निकट अथवा दूर हो जाते हैं। दो निकटवर्ती रागों को किन आधार पर एक दूसरे से पृथक देखा जा सकता है या दो परस्पर विरोधी रागों में भी किस आधार पर सामंजस्य प्रकट हो सकता है, यह बात ध्यान रखनी अत्यन्त आवश्यक है, तभी रागों की तुलना करना या रागों में साम्य भेद रखना आसान हो सकेगा।

मुख्य बिन्दुः *राग, स्वर, थाट, राग वर्गीकरण, अंग।*

विषयवस्तु

राग मूलतः स्वरों की नींव पर खड़ा किया गया एक भव्य महल है, जिस प्रकार एक महल की सुन्दरता उसमें प्रयुक्त की गई सामग्री, कलात्मकता, सुदृढ़ता और भव्यता में है, उसी प्रकार एक राग का सौन्दर्य उसकी स्वर संगतियाँ, चलन, विस्तार क्षमता एवं रंजकता पर निर्भर करता है।

एक राग स्वतंत्र रूप धारण कर अन्य रागों से कैसे अलग दिखाई दे सके, इसी विचार से हमारे प्राचीन संगीताचार्यों ने राग के लक्षणों का वर्णन किया है। भारत में 'राग' से पूर्व 'जाति गायन' की प्रथा थी, अतः ये लक्षण ही आगे चलकर राग लक्षण के रूप में पहचाने जाने लगे। आधुनिक समय में संगीत को वैशिष्ट्यपूर्ण प्रतिष्ठा उपलब्ध करने वाले श्रेष्ठ शास्त्रकार, विद्वान

शोध छात्र : संगीत विभाग, संगीत एवं ललित कला संकाय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली-110007;
alankar.mahtolia@gmail.com; मो. 09811528193

संगीताचार्य पं. विष्णु नारायण भातखंडे जी ने राग के संदर्भ में विशेष ध्यान रखने योग्य कुछ महत्वपूर्ण बातों का उल्लेख भातखंडे संगीत शास्त्र भाग-3 में किया है, जो निम्न प्रकार से हैं-(1) ठाठ (2) जाति (3) अंग (4) वादी-संवादी (5) संगति (6) मिश्रण (7) वर्ज्य स्वर (8) दुर्बल स्वर (9) वक्र स्वर (10) आरोहावरोह (11) पकड़ (12) विश्रान्ति स्थान (13) उठान (14) चलन (15) अंतरे का उठान (16) मिलान (17) प्राचीन ग्रंथोक्त रूप व आधार (18) प्रचलित रूप व आधार।

यद्यपि किसी एक राग का अभ्यास करते समय सभी बातों का ज्ञान होना आवश्यक है, तथापि यदि दो रागों के साम्य भेदों का विचार करना हो तो निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना आवश्यक है जैसे-

दोनों ही रागों के ठाठ, जाति, स्वर स्वरूप, वादी-संवादी, स्वर संगति, न्यास, वर्ज्य स्वर, अल्पत्व, बहुत्व, रागांग चलन तथा राग की प्रकृति।

रागों का वर्गीकरण करते समय भी उपरोक्त बातों को आधार मानकर विचार किया जाता है और रागों की समानताएँ देखते समय राग वर्गीकरण में आने वाले इन घटकों का बहुत उपयोग होता है।

उपरोक्त महत्वपूर्ण बातों का क्रम बनाते समय हम सबसे पहले ठाठ का उल्लेख करते हैं, परंतु किसी भी एक राग को दूसरे राग से अलग करने के लिए या समानता दर्शाने के लिए सबसे उपयुक्त होता है राग के स्वरों को अच्छी तरह से परखना। अर्थात् इसके लिए यह अत्यंत आवश्यक है कि जिन दो अथवा तीन रागों में समानता अथवा भिन्नता देखनी है, वह राग अधिकतर बातों में एक दूसरे के निकटतम हों। रागों का ठाठ निर्धारण उनके स्वरों पर ही निर्भर होता है। प्रचार में भले ही यह कहा जाता है राग की उत्पत्ति थाट से होती है, परंतु वास्तविकता ऐसी नही है।

उत्तर भारतीय संगीत पद्धतियों में जो 10 थाट माने गए हैं, उनके स्वर भी निश्चित है। कोई भी राग जब ठोस स्वरूप धारण कर लेता है, तो उसके स्वरों को देखते हुए उसका थाट निश्चित कर दिया जाता है। राग गेय तथा रंजक होने के कारण यह बात अक्सर देखी जाती है कि उसमें प्रयुक्त स्वर किसी एक थाट के अंतर्गत नहीं आते। ठाठ में वज्र्य स्वर या एक स्वर के दो रूपों का भी उल्लेख नहीं होता। अत: थाट को एक सूत्र समझना उससे अधिकाधिक स्वर साम्य रखने वाली रागरूपी मोती को एक सूत्र में पिरोया जाता है।

विभिन्न रागों को एक सूत्र में बाँधने के लिए जिस तरह थाट एक महत्वपूर्ण घटक है उसी प्रकार रागांग भी एक महत्वपूर्ण तत्व है। वर्तमान समय के अधिकांश विद्वान थाट की अपेक्षा रागांग को अधिक महत्व देते हैं, क्योंकि थाट से केवल राग के स्वरों का ही आभास होता है, परंतु रागांग से राग के चलन, स्वर संगतियाँ प्रकृति इत्यादि कई बातों का बोध होता है। रागांग समझने व याद रखने में थोड़ा क्लिष्ट होने के कारण संगीत की प्रारम्भिक शिक्षा लेने वाले विद्यार्थियों को थाट ही अधिक सुगम लगता है। अत: सामान्य शिक्षण पर थाट पर ही अधिक बल दिया जाता है, परंतु उच्च शिक्षा के लिए रागांग पद्धति ही अधिक प्रयोग होती है।

समप्रकृति अथवा निकटवर्ती रागों में साम्य एवं भेद यदि स्पष्ट रूप से देखना है तो मुख्यत: तीन बातों का ध्यान रखना एवं उसके संदर्भ में विचार करना आवश्यक है-

- थाट के आधार पर रागों में साम्य भेद परखना

- रागांग के आधार पर रागों में साम्य भेद परखना
- स्वर प्रयोग एवं प्रकृति के आधार पर रागों में साम्य भेद परखना

इनमें भी ध्यान रखने योग्य बात यह है कि-

- स्वरों के केवल शुद्ध या विकृत रूप मात्र अवरोहात्मक स्थिति में, सम्पूर्ण जाति के आधार पर थाट के अंतर्गत आते हैं।
- राग की प्रकृति, चलन, स्वर संगति इत्यादि बातें रागांग के अंतर्गत समाविष्ट हो सकती है।
- स्वर रूप के अंतर्गत स्वरों का वादी-संवादीत्व, अल्पत्व-बहुत्व, वर्ज्य स्वर एवं एक स्वर के दो रूप होना इत्यादि बातों का समावेश हो सका है।

उपरोक्त सभी बातों का विचार करने के पश्चात् रागों में साम्य भेद का विचार करने के लिए 'ठाठ' इस आधार पर चर्चा करने की आवश्यकता भी है।

उत्तर भारतीय संगीत में थाटों की संख्या 10 मानी गई है। कल्याण, बिलावल, खमाज, भैरव, पूर्वी, मारवा, काफी, आसावरी, तोड़ी, भैरवी, इन 10 थाटों के स्वर निश्चित हैं, जो सर्वविदित हैं।

थाट के आधार पर रागों में साम्य अथवा भेद देखने पर समस्या यह आती है कि राग में यदि कुछ अतिरिक्त स्वर होते हैं जैसे दोनों मध्यम अथवा दोनों गंधार इत्यादि, तो उन्हें कैसे थाट में रखा जाए। किसी एक राग में दो या अधिक का मिश्रण होने पर भी इसका थाट निश्चित नहीं किया जा सकता। ऐसे रागों को मिलते-जुलते स्वरों के आधार पर ही थाट के अंतर्गत रखा जाता है। थाट के साथ जिन रागों में प्रकृति साम्य भी है, उनको एक दूसरे के साथ परखना आसान हो जाता है। भैरव थाट के अंतर्गत आने वाले रागों में से भैरव, कालिंगड़ा, रामकली यह तीन ही राग प्रकृति साम्य भी रखते हैं। तीनों की प्रकृति गंभीर है। थाट के स्वर वैसे ही प्रयुक्त होने के कारण रागों में इतना साम्य तो स्पष्ट ही दिखाई देता है, परंतु वादी-संवादी स्वरों की भिन्नता, विशिष्ट स्वर संगतियाँ और कुछ स्वर भेदों के कारण (जैसे रामकली में तीव्र मध्यम एवं कोमल निषाद का अतिरिक्त होना इत्यादि) कालिंगड़ा व रामकली, भैरव से भिन्न हो जाता है।

इस प्रकार दरबारी कान्हड़ा तथा अड़ाना दोनों ही आसावरी थाट के अंतर्गत आते हैं। स्वर साम्य की दृष्टि से इन्हें आसावरी थाट से माना गया है तथा आसावरी थाट के प्रमुख आश्रय राग आसावरी से इन दोनों का कोई विशेष साम्य नहीं दिखाई पड़ता। दरबारी कान्हड़ा अंग का प्रमुख राग माना जाता है, जिसके आधार पर कान्हड़ा के अन्य प्रकार भी पहचाने जाते हैं, और वे सभी कान्हड़ा के प्रकार काफी थाट के अंतर्गत आते हैं।

दरबारी कान्हड़ा तथा अड़ाना आसावरी थाट तथा कान्हड़ा अंग के राग हैं। दोनों राग चलन भेद के कारण एक दूसरे से भिन्न हो जाते हैं। जहाँ दरबारी कान्हड़ा पूर्वांगवादी होकर मन्द्र तथा मध्य सप्तक में गम्भीर चलन से चलता है, वहीं अड़ाना उत्तरांगवादी होकर मध्य व तार सप्तक में चलता है। इसी कारण उसकी प्रकृति में गम्भीरता की अपेक्षा चंचलता झलकती है। दोनों रागों में चलन भेद के कारण तथा अड़ाना का निषाद आरोह में शुद्ध निषाद की ओर झुका होने के कारण दोनों ही रागों में समानता होते हुए भिन्नता स्पष्ट दिखाई पड़ती है, इसी प्रकार अन्य कई राग ऐसे हैं जो एक थाट के अंतर्गत आते हुए तथा एक दूसरे से निकटवर्ती होते हुए भी भिन्न रूप दर्शाते हैं।

एक ही रागांग के अंतर्गत आने वाले भिन्न रागों में कल्याण अंग के शुद्ध कल्याण, मारू बिहाग, यमन इत्यादि राग आ सकते हैं, जिनके

आपसी सामंजस्य अधिक नहीं है, परंतु भूपाली तथा शुद्ध कल्याण या केदार, कामोद, हमीर, छायानट इन सभी रागों में कल्याण वाचक लक्षण मिलने के कारण इन्हें कल्याण रागांग के अंतर्गत रखा जाता है। भूपाली और शुद्ध कल्याण में समानता रखने वाला राग देशकार भी हैं, परंतु यह कल्याण थाट या कल्याण रागांग के अंतर्गत नहीं आता। अत: भूपाली से बहुत साम्य रखने वाला राग देशकार थाट के आधार पर भिन्न हो जाता है। इसको बिलावल थाट के अंतर्गत रखा जाता है।

इसी प्रकार मारू बिहाग में बिहाग का आभास होता है, लेकिन बिलावल अंग का राग है। यमन और यमन कल्याण दोनों ही कल्याण थाट के राग हैं, परंतु यमन कल्याण में तीव्र मध्यम के अलावा शुद्ध मध्यम का भी वैशिष्ट्यपूर्ण स्थान होने के कारण वह यमन से भिन्न हो जाता है। एक ही स्वर-रूप के अंतर्गत आने वाले दो निकटतम रागों में भिन्नता देखना विशेष महत्वपूर्ण है, क्योंकि जहाँ स्वर-रूप एक सा होता है, वहाँ प्रकृति थाट इत्यादि बातें समान होने की सम्भावना होती है।

उदाहरण स्वरूप मध्यमाद सारंग तथा मेघ मल्हार दोनों ही रागों के स्वर समान है। 'सा - रे - म - प - नि - सां'। दोनों ही रागों की जाति औडव है। दोनों राग काफी थाट के अंतर्गत आते हैं। दोनों ही रागों में कोई अतिरिक्त स्वर नहीं लगता परंतु मध्यमाद से सारंग अंग का प्राबल्य है। अर्थात् सारंग अंग की स्वर-संगतियों से लेकर, सारंग जैसा खटका, कण स्वर इत्यादि का प्रयोग कर मध्यमाद सारंग राग बना है और इसी प्रकार मल्हार की स्वर संगतियों से युक्त मींड, गमक, आन्दोलन, कण स्वर इत्यादि के प्रयोग से मल्हार अंग स्पष्ट करते हुए स्वरावलि ने मेघमल्हार का रूप ले लिया है।

इसी प्रकार बिहाग और मारू बिहाग दोनों ही रागों में 'नि़ सा ग म प नि सां', यह आरोहात्मक चलन सर्वमान्य है। दोनों ही रागों में मध्यम के अलावा सभी स्वर शुद्ध हैं। परंतु विशेष अंतर भी यह है कि बिहाग में शुद्ध मध्यम प्रबल होकर तीव्र मध्यम का अल्पत्व है, इसी प्रकार मारू बिहाग में शुद्ध मध्यम अल्प होकर तीव्र मध्यम की प्रधानता है, जिस प्रकार बिहाग में तीव्र मध्यम पंचम के साथ 'ध प म' या 'प म ग म ग' ऐसी संगतियों में आता है और अत्यंत शुद्ध मध्यम ही प्रयुक्त होता है। उसी प्रकार 'सा म ग नि ध प' या सा म ग म ग रे सा, इस प्रकार से मारू बिहाग शुद्ध मध्यम दिखाई देता है। अत: तीव्र मध्यम ही प्रधान स्वर है। मारू बिहाग में 'सा ग म प' इस प्रकार भी प्रारम्भ कर सकते हैं।

बिहाग के अवरोह में धैवत-ऋषभ का अल्पतव है और कभी-कभी इन्हें लांघकर या मींड के साथ भी अवरोह किया जा सकता है परंतु मारू बिहाग में आरोह करते समय धैवत-ऋषभ स्वर बहुत ही स्पष्ट और कई बार न्यास के स्वर के रूप में लगते हैं। इसी कारण इन दोनों ही रागों में भिन्नता दिखाई देती है। वैसे कहने को मारू बिहाग, बिहाग का ही प्रकार कहा जाता है।

निष्कर्ष - उपरोक्त उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि रागों में समानता और भिन्नता के कुछ मूलभूत आधार तो है कि, परंतु वह आधार यदि हमारे मन में अत्यधिक स्पष्ट हों तो किसी भी राग को सुनकर यह अंदाज़ा लगाया जा सकता है कि वह राग कौन से रागों से निकटवर्ती होगा अथवा किस रागांग अथवा थाट का होगा, रागों का विशेष विश्लेषणात्मक अध्ययन करने के लिए उपरोक्त बातें अधिक लाभकारी सिद्ध होती है।

एक ही प्रकार के रागों में जैसे कौंस के प्रकार तोड़ी के प्रकार इस प्रकार से साम्य भेदों

का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया जा सकता है। किसी विशिष्ट स्वर-संगति को लेकर, वर्ज्य स्वरों या दो रूपों वाले स्वरों के आधार पर ऋतुओं के आधार पर, समय के आधार पर भी विश्लेषण और साम्य-भेद ढूँढना सहज सम्भव है। आवश्यकता मात्र इस बात की है कि विश्लेषक की जिज्ञासु, प्रवृत्ति एवं आधारभूत तत्वों की स्पष्टता, यही मुख्य बातें हैं जो रागों का विश्लेषण करने और समानता तथा भिन्नता देखने-परखने के लिए नितान्त आवश्यक है।

संदर्भ

1. हिन्दुस्तानी संगीत में राग की उत्पत्ति व विकास, पाठक, डॉ. सुनंदा
2. भातखंडे संगीत शास्त्र, भाग-4, भातखंडे, विष्णु नारायण
3. बृहद्देशी, मतंग
4. संगीत मधुबन, डॉ. राकेश व मधुबाला
5. भारतीय संगीत का इतिहास, सिंह, ठाकुर जयदेव

संगीत शास्त्र शिक्षण में पुरातात्विक अवशेषों का अध्ययन

एलिस गुप्ता

सारांश

मानवीय भावनाओं की सुंदर अभिव्यक्ति का साकार रूप ही कला है। विकास के साथ-साथ मानव की कल्पना प्रकृति को सुंदर रूप देने की चेष्टा करने लगी। उसकी इस चेष्टा को अधिकाधिक दिव्य व सौंदर्यमयी बनाने के लिए कलाओं का जन्म हुआ। इन कलाओं में संगीत एक मात्र कला है, जिसकी कलात्मक अभिव्यक्ति संगीत के अतिरिक्त मूर्तियों, भित्ति शिल्प, चित्रों, सिक्कों के माध्यम से भी हुई है। यह अभिव्यक्ति जहाँ गौरवमयी अतीत और समृद्ध परंपरा को प्रस्तुत करती है, वहीं संगीत शास्त्र के अध्ययन तथा शोध के लिए महत्वपूर्ण सामग्री और आधार भी प्रस्तुत करती है। संगीत शास्त्र को भलीभाँति समझने व इसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि जानने के लिए प्राचीन स्त्रोतों पर निर्भर होना पड़ता है और जब तक विषय का ऐतिहासिक अध्ययन भलीभाँति न किया जाए आगे की संभावनाएं कम हो जाती है। इस संबंध में बहुत सारे प्राचीन व प्रामाणिक स्त्रोतों द्वारा इतिहास को जाना जा सकता है। इनमें से कुछ माध्यम हैं- पुरालेखशास्त्र, भित्तिचित्र, सिक्के, शिल्पकला आदि। प्रस्तुत शोध पत्र में इन माध्यमों का संक्षेप में वर्णन किया गया है साथ ही संगीत शिक्षण में इनकी आवश्यकता, महत्व तथा योगदान पर चर्चा भी की गई है।

संकेत शब्द *- संगीत शिक्षण, इतिहास, पुरातत्व, शास्त्र*

हमारी सभ्यता और समाज के आधार पर भारत की गणना उन देशों में है जहाँ की सांस्कृतिक परम्पराएँ इस सीमा तक प्राचीन हैं कि उनकी कलाओं के उद्भव एवं विकास का इतिहास विस्मृति के अर्थ में तिरोहित हो चुका है। विदेशी जातियों का प्रभाव यहाँ युगों से देखने में आया है जिसकी निजी संस्कृति का प्रभाव भी यहाँ की जीवनधारा में विलीन होता रहा। अत: भारतीय कलाओं की पवित्रता और अक्षुण्ण स्वरूप के विषय में कुछ भी कह पाना असंभव होते हुए इतना तो अवश्य कहा जा सकता है कि विदेशी संसर्गों के कारण विकृति होते हुए भी जो कलाएं इतनी प्रभावशाली, भव्य और आश्चर्यजनक हैं उनका स्वरूप या मौलिक रुप कितना भव्य और सहज रहा होगा, पुरातात्विक स्त्रोतों द्वारा इसका पता लगाया जा सकता है।

प्राचीन चित्रों, शिल्पकलाओं, वास्तु एवं स्थापत्य कलाओं, शिलालेखों, मुद्राओं आदि में संगीत संबंधी अनेक ऐसे विवरण प्राप्त हो जाते हैं जो संगीतशास्त्र के अध्ययन के दिशा निर्देशन में उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं। भारत जैसे विशाल देश में, जहाँ कला की अभिव्यक्ति विभिन्न

पीएच॰डी॰ शोधार्थी : संगीत एवं ललित कला संकाय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली-110007;
Email- alicegupta232@gmail.com; मो. 8881711977

रूपों में होती रही है, ऐसी असंख्य कलाकृतियां उपलब्ध होती हैं, जिनमें गीत, वाद्य एवं नृत्य संबंधी अनेक स्त्रोत मिलते हैं तथा जिनके आधार पर उस काल की गान एवं नृत्य परंपराओं के बारे में लाभकारी तथा रोचक सूचनाएँ प्राप्त हो सकती हैं। इन स्त्रोतों का संक्षिप्त विवरण अग्रलिखित है-

चित्रकला-

भारतीय चित्रकला भाव प्रधान है। आंतरिक भावों की झलक मानव की मुखाकृति पर उभर आती है। चित्रकला एक भाषा है जिसके द्वारा चित्रकार हर्ष, विषाद, करूणा, प्रेम आदि मनोभावों को व्यक्त करता है। लौकिक जीवन, भाव प्रदर्शन और कला पक्ष चित्रकला के महत्वपूर्ण विषय हैं। चित्रकला का प्राण भावाभिव्यक्ति के लिये रंगों का विधान है। चित्रकला विभिन्न रसों की अनुभूति कराने के साथ सौंदर्यानुभूति प्रदान कराती है। संगीत, नृत्यादि के प्रति मानव अपने आरंभिक काल से ही रुचिशील रहा है। इन कलाओं ने मानव को सुकून दिया और उसकी रुचि का न केवल विकास किया बल्कि उसे आकर्षिक भी किया। मानव की अनेक गतिविधियों के नियमन में गीत-संगीत ने अपना योगदान किया है। नृत्योत्सव के प्रति आकर्षण ने उसकी गतिविधियों के प्रारूप में भी अहम भूमिका निभाई है। इसका दिग्दर्शन हमें पुरापाषाणिक प्रस्तर चित्रकला में भी देखने को मिलता है जिनमें न केवल नृत्य समूह उल्लास बल्कि वाद्य वादन आदि के चित्रण भी प्राप्त होते हैं।

प्रागैतिहासिक काल की समीक्षा करते हुए अधिकतर चित्रकला ही मिलती है। इन चित्रों में मानव जीवन के प्रारंभिक जीवन के विकास का सशक्त एवं स्पष्ट दिग्दर्शन है। पाषाण काल के चित्रों में लाल गेरू का प्रयोग सर्वाधिक होता था और पीला, सफेद, गुलाबी, नीला, हरा तथा काला रंग या तो सूखी खड़ियों या फिर लेप के रूप में प्रयोग में लाए जाते थे। इन रंगों को पीसकर गीला करने के प्रमाण शैल ग्रहों में किए गए उत्खनन से प्राप्त हुए हैं।[1] शिलापट्ट पर रेखांकन के लिए संभवत: वन्य पशुओं की खाल अथवा वृक्षों से प्राप्त लकड़ी की कूची का प्रयोग होता था इसलिये देखा जाता है कि गुहा चित्र आज भी बड़े स्पष्ट और उजले रूप में हैं इनको सुरक्षित रहने के कई कारण हैं। जिन शिलापट्टों पर इनकी रचना मिली उनकी सतह छिद्रित है। अत: छिद्रों में रंग भर जाने के कारण ये चित्र स्वत: यथास्थान जम गए। दूसरा रंगों तथा चट्टानों के रसायन का पारस्परिक संयोग भी इनकी सुरक्षा का कारण था। तीसरा वायुमंडल में स्थित चूना पानी एवं नमक के कारण ये चित्रों पर जमता रहा जिसके कारण चूने की पर्त इन चित्रों की सुरक्षा पर्त बन गई।[2] इन चित्रों में युद्ध के दृश्यों की अधिकता है तथापि जीवन की विभिन्न स्थितियों जैसे झोपड़ियों में निवास, नृत्य, गायन, वादन, पशुपालन, पूजा आदि का अंकन भी मिलता है। ये उस समय के एक विशिष्ट चित्र शैली की उदभावना है। ऐसी शैलियां लोक शैलियाँ कही जा सकती हैं।

विंध्यांचल पहाड़ी में अहरौरा के निकट लखुनिया ग्राम है जिसके पास की पहाड़ों की गुफाओं में छतों तथा शिलाखंडों पर प्रागैतिहासिक कालीन चित्रों के नमूने प्राप्त हुए हैं। इनमें नृत्य, युद्ध, घुड़सवारी, हाथी की सवारी के भाव संयुक्त लाल रंग के भित्तिचित्र खुरदरी सतह पर बनाये गये हैं।[3]

संलग्न चित्र में एक आदमी अपने तीर, धनुष तथा कुल्हाड़ी को एक ओर रख तीन महिलाओं और एक लड़के के साथ बीन बजाता सा दिखाया गया है। D.H. Garrden ने इस चित्र को हार्पर या पुरुतंत्री नामक वाद्ययंत्र बजाने वाला और



उसका परिवार माना है। यह चित्र श्रोताओं और प्रस्तुतकर्ता का प्रथमत: प्रमाण दिखाई देता है इसी चित्र में एक नर्तकी को भी हाथ फैलाकर नृत्य करते हुए दिखाया गया है यह चित्र नृत्य का प्रमाण है जिसमें वाद्य वादक मंच से नीचे वादन कर रहा है और दर्शक नर्तक की ओर देखते हुए हाथ उठाकर उसका उत्साहवर्धन करते प्रतीत हो रहे हैं पीछे पड़े हथियार संभवत: इस नृत्य की साथ अन्य रूप दिखाने के उपकरण भी हो सकते हैं। ये गुफाएं दस हजार साल पुरानी हैं जबकि उक्त चित्र पाँच हजार साल से कम पुराना नहीं है।[4]

मूर्तिकला-

मूर्तिकला द्वारा ऐतिहासिक तथ्यों को जानने व इतिहास को जानने में मदद मिलती है। मूर्तियों के निर्माण में नाना प्रकार के द्रव्यों, धातुओं और रत्नों का उपयोग रहा है। भारतीय मूर्तिकला का, संसार की मूर्तिकला के इतिहास में अपना एक स्थान है। मूर्ति कला के साथ संगीत का सम्बंध शाश्वत है। मूर्तियों को देखकर प्राचीन काल के संगीत के विषय में ज्ञान प्राप्त होता है।

शुंग काल में संगीत प्रांतीयता के आधार पर वर्गीकृत हो गया था। देश में अनेक ऐसे नृत्य गृह





एवं नृत्य शालाएँ भी थी जिनमें समय-समय पर संगीत समारोह होते थे। संगीत वाद्यों को बजाते हुए और नाचते हुए अनेक प्रकार की नृत्य मुद्राएँ इसमें प्रदर्शित की गई हैं। प्राचीन काल की अनेक मूर्तियाँ मिलती हैं जिनके द्वारा पता चलता है कि प्राचीन काल में वाद्यवृन्द का भी चलन था, नृत्य की तो अनगिनत मूर्तियां मिलती हैं इनमें से कुछ इस प्रकार हैं-

अप्सराओं का नृत्य करते हुए ये क़रीब 12वीं शताब्दी की है।[5]

यह नर्तकी की मूर्ति मोहन-जोदाड़ो से प्राप्त हुई है, जो कि 3000 से 15000 ई.पू. की मानी जाती है और यह कांस्य की मूर्ति है।[6]

इसके अतिरिक्त ऐसे कई उदाहरण मिलते हैं जिससे यह सिद्ध होता है कि प्राचीन मूर्तिकला में संगीत का महत्वपूर्ण स्थान है। इन दोनों का आपस में घनिष्ठ संबंध है। पुरातात्विक अवशेषों में हमें अन्य बहुत-सी मूर्तियाँ मिलती है जिनमें हमें संगीत का पुट मिलता है। ये मूर्तियां गायन, वादन तथा नृत्य तीनों ही अंगों से संबंधित हैं इसमें तनिक भी संदेह नहीं है कि भारतीय मूर्तिकला अत्यंत विशद एवं धवल है।

शिल्पकला-

पत्थरों को काटकर ही या उस पर ही शिल्पकारी की जाती है, जिसे शिल्प कला कहा जाता है। ये भी प्राचीन इतिहास को जानने के महत्त्वपूर्ण स्रोत हैं। डॉ॰ मुकुंद लाठ ने संगीत का शिल्पकला से संबंध स्थापित करते हुए लिखा है कि "संगीत के अवसरों का अगर हम इतिहास लिखना चाहें तो एक बहुत बड़ा माध्यम है हमारे पास, शिल्प। भारत में ये एक संयोग की बात है कि दूसरी सदी बी॰सी॰ (ईसा पूर्व) से लेकर, साँची से लेकर, लगभग आज तक हमारे पास शिल्प का अनंत भंडार भरा पड़ा है और उसके आधार पर हम संगीत के इतिहास पर एक विशेष प्रकार की दृष्टि डाल सकते हैं।"[7]

शिल्प कलाओं में संगीत एवं नृत्यादि कलाओं का अंकन प्राचीन काल से ही होता आया है, सांची, भरहुत, अमरावती आदि स्थानों पर आदि स्थानों पर प्राप्त शिल्पों में कई ऐसी अनुकृतियाँ मिलती हैं जिनके आधार पर उस काल के प्रचलित वाद्यों के विषय में रोचक सामग्री प्राप्त होती है। इन आकृतियों के आधार पर उस काल के प्रचलित वाद्यों आकार, प्रकार, बनावट, निर्माण सामग्री आदि के विषय में भी



अनुमान लगाया जा सकता है। वाद्यों की वादन क्रिया आदि के विषय में भी महत्वपूर्ण जानकारी मिलती है। स्त्री कलाकारों के द्वारा मृदंग एवं वंशी वादन का अंकन भी कई कलाकृतियों में हुआ है।

कोर्णाक के नाट मंदिर की एक प्रतिमा में एक उन्मत्त या विभोर भाव से गाते हुए किसी दाढ़ी वाले, विकट मुखाकृति पुरुष को दिखाया गया है। मुख पर एक अट्टहास का सा भाव है, हो सकता है मुखौटा हो। एक हाथ में एकतारा (या दोतारा) है, जिसका उपयोग गाने की संगत के लिए किया जा रहा है दूसरे हाथ में खँजरी है।8





कहने का तात्पर्य यह है कि शिल्प कलाओं में विभिन्न वाद्यों का अंकन प्रचुर मात्रा में हुआ है लेकिन उन पर अनेक दृष्टियों से विचार करना आवश्यक है।

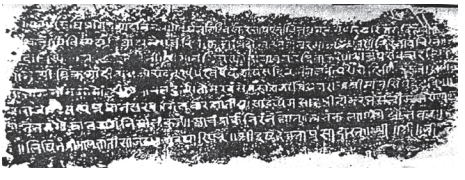
अभिलेख / शिलालेख-

अभिलेख ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। अभिलेखों की उपादेयता इतिहास की संरचना एवं पुनर्रचना में निहित है। इनको अंग्रेजी में Epigraphy के अंतर्गत रखा जाता है, जिसका अर्थ है भवनों पर शिलालेख शास्त्र, फ़रालेख शास्त्र व अभिलेख। इनमें पत्थरों का धातुओं पर हाथ से खोदकर विषय अंकित किए जाते हैं, जिस कारण वे विषय दीर्घकालीन अथवा दीर्घजीवी हो जाते हैं। ये अभिलेख शोधार्थी को शोध प्रक्रिया में सहायक होते हैं। यह पुरालेख शास्त्र अपने उत्कृष्ट रूप में स्थापित होने के कारण कला की ऊँचाई को भी प्रदर्शित करते हैं।

इन प्राचीन अभिलेखों में कला के अध्ययन हेतु बहुविध सामग्री विकीर्ण है लेकिन इसका अध्ययन अस्पष्ट है। अभिलेख से न केवल प्रतिमाओं एवं मंदिरों के निर्माण संबंधी क्रियाकलापों की जानकारी प्राप्त होती है अपितु अनेक प्रतिमाओं के अभिज्ञान के संदर्भ में भी अभिलेख महत्त्वपूर्ण सूचनायें प्रदान करते हैं। अभिलेख अथवा शिलालेख समाज में हुई संगीत कला और नृत्य कला की यथापूर्व स्थिति और गतिविधियों को मूल्यांकन करने और आकार देने में विश्वसनीय स्रोत हैं। भिन्न-भिन्न कालों में, भिन्न-भिन्न राजवंशों में राजाओं व सामंतों, मुखियों द्वारा कलाओं को किस प्रकार संरक्षण मिला व उनका विस्तार किया गया इस बारे में शिलालेख से भी बहुत जानकारी मिलती है।

तिथियों की दृष्टि से अशोक के लेखों की सर्वप्रथम विवेचना प्राप्त होती है।[9] यद्यपि अशोक के लेखों में मुख्य रूप से धर्म नीति का उल्लेख है किन्तु इन अभिलेखों में कला संबंधी अनेक प्रसंग अन्वेषित किए जा सकते हैं। अशोक ने अपने अभिलेखों में "पिठी चिलठितिका होतू अर्थात् चिरस्थितिका भवतु" की बार-बार कामना की है और यही कामना उसके मन में कला लिए भी थी।

मानसिंह का गंगोला ताल का शिलालेख-



प्रस्तुत शिलालेख गंगोलाताल का पहला शिलालेख जो कि राजा मानसिंह के समय का है वि॰सं॰ 1551, वैशाख सुदी 3 (अप्रैल 8, सन् 1494 ईसवीं) मंगलवार का है। ये शिलालेख गंगोताल को निर्मल कराने के पश्चात् उत्तीर्ण कराया गया था। यह शिलालेख मानसिंह के चरित्र, प्रकृति और स्वभाव को समझाने में बहुत सहायक है।[10]

सिक्के-

इतिहास की एक शाखा जो प्राचीन मुहरों एवं सिक्कों का अध्ययन करवाती है, मुद्राशास्त्र या numismatics कहलाती है। भारतीय मुद्रा शास्त्र एक महत्वपूर्ण स्रोत के रूप में सांस्कृतिक जीवन, तत्कालीन आर्थिक, सामाजिक व राजनैतिक दशाओं का ही नहीं वरन हमारी कलाओं संगीत एवं काव्य के विकास और अवस्थाओं की वांग्मय व्याख्या देकर हमें अभिभूत कर देता है। यहाँ विभिन्न कालों में ऐसे अनेक शासक हुए हैं जिनकी साहित्यिक कलापक्षीय अभिरुचियाँ एवं संगीत से अप्रतिम प्रेम उनकी मुद्राओं पर भी अंकित मिलता है।

ये मुद्राएँ स्वयमेव तो मुद्राशास्त्रीय कला का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण हैं ही, साथ-साथ प्राचीन भारतीय कला एवं प्रतिमा शास्त्र के अध्ययन की दृष्टि से भी कम महत्वपूर्ण नहीं है।

भारतीय मुद्रा शास्त्र में सर्वप्रथम गुप्तकालीन सम्राट ही वे पहले भारतीय शासक थे जिन्होंने स्वयं के छविचित्र को वाद्य यंत्र के साथ मुद्राओं पर अंकित करवाने की महत्ती परम्परा की नींव डाली। गुप्त मुद्राओं से तत्कालीन सम्राटों की आखेटप्रियता के साथ उनके संगीत प्रेम पर भी प्रकाश पड़ता है। वैसे तो समुद्रगुप्त ने छः प्रकार की स्वर्ण मुद्राओं का निर्माण करवाया था परंतु उसकी "वीणावादक" प्रकार की मुद्राएँ कला दृष्टि से न केवल उत्कृष्ट व बेजोड़ हैं वरन् उसकी कलाप्रियता को द्योतित करती हैं-

प्रस्तुत सिक्के में समुद्रगुप्त को वीणा बजाते हुए दर्शाया गया है जो कि गुप्तकाल व संगीत के लिए महत्वपूर्ण सिक्का है तथा महत्वपूर्ण स्रोत भी है।[11]

कनिष्क के समय में ताँबे के सिक्कों के पीछे भी शिव को अंकित किया गया है। इसके हाथों में क्रमशः माला, डमरू, त्रिशूल तथा कमंडलु है।[12]

चोल नरेश राजराज ने मुरलीधर छाप ताँबे के सिक्के चलाये थे। इनके अग्रभाग पर कृष्ण को बाँसुरी बजाते हुए दिखाया गया है। इसमें एक ओर चन्द्र की कला तथा तमिल अक्षर 'वि' भी अंकित है।[13]



हैदराबाद के नवाबों ने भी दक्षिण में चाँदी के सिक्के चलाए थे जो दक्षिण भारत के लिए नई बात थी। उस पर शंख की आकृति भी मिलती है।[14] शंख आज भी सुषिर वर्ग का एक महत्वपूर्ण वाद्य है। आज भी पूजा के समय में इसको बजाया जाता है। आज इसे संगीत के प्रमुख वाद्यों में स्थान प्राप्त नहीं किन्तु प्राचीन काल के सिक्कों पर अंकन से ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय वादों में इसका महत्वपूर्ण स्थान था।

प्राचीन भारतीय गौरवशाली परंपराओं में जीवित संगीत कला की उत्कृष्ट एवं विकास के पुख्ता प्रमाण के रूप में ये सिक्के हमारी अनमोल सांस्कृतिक विरासत भी हैं।

उपसंहार-

प्राचीन काल से ही भारत एक आध्यात्मिक व सांस्कृतिक चेतना संपन्न राष्ट्र रहा है। यहाँ के जनमानस में रची बसी कला एवं संगीत के साक्ष्यों से न केवल हमारा प्राचीन साहित्य वरन् पुरातात्विक एवं मौद्रिक साक्ष्य भी भरे पड़े हैं। भारतीय संगीत में चित्रों, मूर्तियों, शिलालेखों, सिक्कों आदि का अपना एक स्थान है व संगीत के इतिहास को जानने के अच्छे स्रोत हैं। साहित्य, संगीत, चित्रकला व मूर्तिकला की प्रगति किसी राष्ट्र की संस्कृति का आधार होता है। सौभाग्य से हमारे देश में संगीत आदि कलाओं का विकास सदियों से होता हुआ नजर आता है, सदियों से हो रहे संगीत के विकास के स्थित्यंतरों को समाज द्वारा स्वीकृति प्रदान की तथा उसके द्वारा आवश्यकतानुसार परिवर्तन भी मूर्तिकला, चित्रकला आदि के रूप में भारत की गुफाओं और मंदिरों में पाये जाते हैं व सुरक्षित हैं जिनमें

से अजंता, एलोरा, औरंगाबाद, मदुरै, तंजौर, उदयगिरी, चिदाम्बरम, तिरुवरूर, ख़ांडगिरी, भुवनेश्वर, कोर्णाक आदि प्रमुख हैं।

इन कलाओं का संगीत शास्त्र शिक्षण में एक महत्वपूर्ण स्थान है। ये सभी कलायें संगीत के ऐतिहासिक पक्ष को जानने में बहुत अधिक सहायक हैं। किसी भी काल की संस्कृति को जानने के लिए उस काल की कलाओं पर निर्भर होना ही पड़ता है। संगीत में समस्या यह आती है कि प्राय: विद्यार्थियों को इन पुरातात्विक स्रोतों का एक पाठ्यक्रम के रूप में अध्ययन नहीं कराया जाता है जिसके कारण संगीत के कई पक्ष अछूते हैं। यदि कोई शोधार्थी इन पर कार्य करना भी चाहे तो उसे प्राचीन अवशेषों, मूर्तियों आदि के चित्र लेने की अनुमति नहीं दी जाती है। शोधार्थी को उसी समय निरीक्षण करके सामग्री संचयन करना होता है। संग्रहालयों में प्राप्त चित्रों के आधार पर ही प्राप्त सूचनाओं के आधार पर निष्कर्ष नहीं दिया जा सकता है। अत: शोधार्थी को कई बार स्वयं भी उन स्थानों पर व्यक्तिगत रूप से जाकर अवलोकन करना होता है जो कि व्यय साध्य और असुविधाजनक होता है। ऐसे में विद्यार्थी इस विषय में अपनी रुचि खो देता है। दूसरा कई बार शिल्पकार को वाद्य की रचना एवं आकार प्रकार का सही ज्ञान नहीं होता जिसके फलस्वरूप उसके द्वारा अंकित वाद्य वास्तविक वाद्य की सही प्रतिकृति नहीं होता जिससे ये समस्या आती है कि वाद्यों को किस सीमा तक प्रामाणिक माना जाये? ऐसे में किसी निष्कर्ष पर पहुँचने से पहले एक से अधिक प्रमाण, एक से अधिक विधाओं में से देखने चाहिए। शिल्प में जो अंकन है उसकी पुष्टि साहित्य से हो, या संगीतशास्त्र से हो या किसी और माध्यम से हो। विद्यार्थियों में इतनी क्षमता होनी चाहिये कि एक से अधिक पहलुओं से किसी बात को देख सके। विद्यार्थियों में वो क्षमता अर्जित कराने के लिए इन कलाओं का आधारभूत अध्ययन अति आवश्यक है। इन कलाओं को पाठ्यक्रम में संलग्न किया जाना चाहिये, कार्यशालाओं का आयोजन किया जाना चाहिए जिसके अंतर्गत इन कलाओं व शिक्षकों के साथ सहकार्यता कर इन विषयों का अध्ययन करवाया जाये, संग्रहालयों व कुछ प्रमुख स्थलों का शैक्षणिक भ्रमण करवाया जाए, जिससे विद्यार्थियों में इन विषयों के प्रति रुचि उत्पन्न हो व इन विषयों का भलीभाँति अवलोकन करने की क्षमता उत्पन्न हो।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. यादव नमिता, पुरातात्विक अवशेषों में संगीत कला का अध्ययन, अध्ययन पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रिब्यूटर्स, नई दिल्ली, 2014, पृ.-8
2. वही
3. वही, पृ.-7
4. स्वर सरिता पत्रिका, नवम्बर, 2012, पृ.-21
5. शर्मा वंदना, भारतीय संगीत में अनुसंधान की समस्यायें, संजय प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010, पृ.-81
6. वही
7. चौधरी सुभद्रा (संपादिका), संगीत में अनुसंधान की समस्यायें और क्षेत्र, कृष्ण ब्रदर्स, अजमेर, 1988, पृ., पृ.-115
8. वही, पृ.-124
9. यादव नमिता, पुरातात्विक अवशेषों में संगीत कला का अध्ययन, अध्ययन पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रिब्यूटर्स, नई दिल्ली, 2014, पृ.-149
10. शर्मा वंदना, भारतीय संगीत में अनुसंधान की समस्यायें, संजय प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010, पृ.-86
11. स्वर सरिता पत्रिका, मई-2015, पृ.-30
12. शर्मा वंदना, भारतीय संगीत में अनुसंधान की समस्यायें, संजय प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010, पृ.-87
13. वही, पृ.-87
14. वही, पृ.-87

धर्म और संगीत का पारस्परिक संबंध

अमित कुमार शर्मा

शोध पत्र सार:

संगीत ललित कलाओं में सर्वोपरि है। यह एक ऐसी अमूर्त सौंदर्य की प्रतिष्ठा कराती हैं, जिसका प्रभाव विश्वव्यापी है। नाद ब्रह्मस्वरूप है। सृष्टि का आरंभ अनाहत नाद से माना जाता है, जो कि ब्रह्मांड व्यापी है। संगीत एक ऐसी दिव्य एवं अलौकिक शक्ति हैं, जिसके द्वारा ईश्वर को प्राप्त किया जा सकता है। संगीत आनंद की अनुभूति हैं एवं धर्म सत्य की उपलब्धि है। संगीत के अलावा ऐसी कोई भी कला नहीं जो हमें ईश्वर के निकटतम ले जाए। धर्म चाहे कोई भी हो, ईश उपासना प्रत्येक धर्म का लक्ष्य है। प्रत्येक धर्म में मंत्रों, वाणियों, हदीसों, प्रवचनों, स्तुतियों में संगीत को स्थान मिला है। सभी धर्मों तथा संत महापुरुषों ने संगीत को परम पवित्र, कल्याणकारी तथा ईश्वर प्राप्ति का मुख्य साधन माना है। वैदिक काल में जहां संगीत को मोक्ष प्राप्ति का साधन माना जाता था, वहीं दूसरी ओर जनरंजन करना भी इसका उद्देश्य था। संगीत अपनी आध्यात्मिकता सहित आज भी मानव को शांति प्रदान करता है।

मुख्य शब्दः- *संस्कृति, कला, संगीत, धर्म, दर्शन, आध्यात्म।*

(सा॰) धर्म: अभिप्राय एवं स्वरूप

धर्म क्या है - इसका स्पष्ट उत्तर देना या इसे विलग कर उसकी व्याख्या करना अत्यन्त ही मुश्किल कार्य है। धर्म एक बहुत ही व्यापक शब्द है। विभिन्न अवस्थाओं में धर्म का अर्थ विभिन्न रूपों में परिवर्तित होता रहता है - पदार्थ मात्र का वह प्राकृतिक तथा मूलगुण, विशेषता या वृत्ति, जो उसमें बराबर स्थायी रूप से विद्यमान रहती हो, जिससे उसकी पहचान होती हो और उससे कभी अलग न की जा सकती हो जैसे - आग का धर्म-जलना और जलाना या जीव का धर्म जन्म लेना और मरना है।[1]

सामाजिक क्षेत्र में नियम, विधि, व्यवहार आदि के आधार पर नियत तथा निश्चित वे सब काम या बातें, जिनका पालन समाज के अस्तित्व या स्थिति के लिये आवश्यक होता है और जो प्राय: सर्वत्र सार्विक, रूप से मान्य होती है जैसे - अहिंसा, दया, न्याय, सत्यता आदि का आवरण मनुष्य मात्र का धर्म है।[2] धर्म वस्तुत: मनुष्य का वह आवरण है जिसका पालन करने से केवल मात्र एक ही मनुष्य का नहीं अपितु समस्त समाज का भी कल्याण सम्भव है। हमारे शास्त्रों में धर्म के चार अंग मुख्य बताये गये हैं - सत्य, तप, पवित्रता और दया। इन चारों का योगफल ही धर्म है।

पूर्व शोधार्थी, यू.जी.सी.नेट, संगीत एवं नृत्य विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय कुरुक्षेत्र, दूरभाष: 099913-00841; e-mail:mudgilart@gmail.com

लौकिक क्षेत्र में वे सब कर्म तथा कर्तव्य, जिनका आवरण या पालन किसी विशिष्ट स्थिति के लिये विरोहित हो। जैसे माता-पिता की सेवा करना पुत्र का धर्म है। पढ़ना-लिखना, यज्ञ आदि करना, ब्राह्मणों का मुख्य धर्म माना जाता है। कर्त्तव्य शब्द से व्यवहृत धर्म का अर्थ उत्तरदायित्व है। जैसे एक मां का धर्म है सन्तान पालन करना। ठीक उसी प्रकार धर्म मनुष्य को उसके उत्तरदायित्वों से अवगत कराता है और विधि के विधान की तरह उसका मार्गदर्शन करता है। हमें अपने नैतिक पथ पर अडिग रहने का संदेश देता है। सभी धर्मों का सिद्धान्त नैतिकता का उपदेश देता है और सभी धर्मो का परमलक्ष्य ईश्वर प्राप्ति है। सही रूप् से लें तो धर्म-जो कोई भी हो, मनुष्य को पथ भ्रष्ट होने से रोकता है व सही मार्ग प्रदर्शन कर ईश्वर तक पहुंचाता है। अन्ततः आध्यात्मिक क्षेत्र में ईश्वर, देवी-देवता, देवदूत, पैगम्बर आदि के प्रति मन में होने वाले विश्वास तथा श्रद्धा के आधार पर स्थित वे कर्त्तव्य, कर्म अथवा धारणाएं, जो भिन्न-भिन्न जातियों और देशों के लोगों में अलग-अलग रूपों में प्रचलित हैं और जो कुछ विशिष्ट प्रकार के आचार-शास्त्र तथा दर्शन शास्त्र पर आश्रित होती है जैसे - ईसाई धर्म, बौद्धधर्म, हिन्दू धर्म आदि।[3]

आचार्य बलदेव उपाध्याय अंग्रेजी शब्द 'religion' और धर्म शब्द में अन्तर मानते हैं। उनके अनुसार - "Religion" का अर्थ "मजहब" से है न कि धर्म से।"[4] "डॉ॰ राधाकृष्णन ने धर्म का religion से अर्थ निकाला। उनके अनुसार धर्म कर्त्तव्य का ही समकक्षी है। समाज ने मानव जीवन में जिन बातों को अनुकरणीय माना है उन्हें ही धर्म की संज्ञा दी है। उन्हीं सिद्धान्तों का पालन हमें अपने दैविक जीवन में और सामाजिक संबंधों के पालन में करना होता है, इसे ही धर्म कहा जाता है।"[5]

महर्षि प्रेमाव्युत भी धर्म की परिभाषा देते हुए कहते हैं - "धर्म से मनुष्य सब तरह की उन्नति कर सकता है। वास्तव में देखा जाये तो धर्म ही समस्त गुणों की खान है। धर्म मनुष्य की जीवन पद्धति है क्योंकि संकट काल में धर्म ही मनुष्य की रक्षा करता है।"[6]

इन सब महापुरुषों की विचारधाराओं से हम स्वतः ही इस निष्कर्ष पर पहुंच जाते हैं कि भारतीय विचारधारा में धर्म का अर्थ कितना व्यापक एवं सर्वोच्च माना गया है। जीवन का कोई ऐसा पहलू नहीं हैं जहां धर्म की धारणा न हो। धर्म की रक्षा करना ही भारतीय परम्परा में मनुष्य का परम कर्त्तव्य माना गया है। वेदों में तो यहां तक कहा गया है कि धर्म के सहारे पर ही साधारणतया ऐसे धर्म या तो किसी विशिष्ट महापुरुष द्वारा परिवर्तित और संस्थापित होते हैं या किसी मुख्य और परम मान्य ग्रंथ पर आश्रित होते हैं, जिसे धर्मग्रंथ कहते हैं। ऐसे ग्रंथों में उल्लिलिखित बातों का पालन, पारलौकिक सुख या स्वर्ग की प्राप्ति के उद्देश्य से उस धर्म के अनुयायियों के लिये आवश्यक या कर्त्तव्य समझा जाता है।

धर्म शब्द संस्कृत की "धृम" धातु से बना है। जिसका अर्थ है - धारण करना या संभालना। अर्थात् जो समस्त ब्रह्माण्ड को धारण करता है वह धर्म है।[7]

"यः धारयते इति स धर्मः"[8]

उक्त पंक्ति से "धारण" करने का ही एकमात्र भाव परिलक्षित होता है -

इसी के समकक्ष धर्म की एक अन्य परिभाषा इस प्रकार से है:-

"धारणाद् धर्म मित्याहु धर्मेण विधृताः प्रजाः
यः स्याद् धारण संयुक्तः सधर्म इति निश्चयः"[9]

अर्थात् धर्म को धारण करना ही धर्म है। धर्म प्रजा को धारण करता है जो धारण की योग्यता रखता है यही धर्म है।

अंग्रेजी भाषा में धर्म को RELIGION कहते हैं। Religion का अर्थ है - A privailing system of faith and duty. Religion शाब्दिक अर्थो में एकता और सामंजस्य का तत्त्व है।

स्वामी रामतीर्थ जी ने Religion शब्द की व्युत्पत्ति और इसका अर्थ इस प्रकार से निकाला है - "Re" का अर्थ है पुन: या पीछे या वापिस और "Ligare" का अर्थ "पीछे बांधना" है। धर्म मनुष्य को पीछे लौटाकर उसके आदि स्त्रोत से बांध देता है।[10] इस शब्द की पुष्टि इस प्रकार से दी जा रही है।[11]

यदि ध्यानपूर्वक देखा जाए तो धर्म का तात्पर्य उस अविदित मन, बुद्धि, वाणी से अनुभव न होने वाले तत्व का साक्षात्कार करना, जहां न जातपात है, न रंगरूप, न मजहब और न मनवाणी, न मत मतान्तर, न सिद्धान्त उपसिद्धान्त, न स्थान और न समय की भिन्नता, न कार्य-कारण परम्परा और न ही लोक परलोक की बातें - जहां पर ये सभी बातें लोप हो जाती हैं। जहां शब्द पहुंच नहीं पाता - उसी का अनुभव और साक्षात्कार करना धर्म है।[12]

निष्कर्षत: उपर्युक्त विवेचन से यह सिद्ध होता है कि भारतीय विचारधारा में धर्म का स्थान सबसे ऊँचा रखा गया है। जीवन का कोई भी पहलू ऐसा नहीं हैं जहां धर्म की धारणा न हो। धर्म की रक्षा करना ही भारतीय परम्परा में मनुष्य का परम कर्त्तव्य माना गया है। धर्म मनुष्य को उसके उत्तरदायित्वों से अवगत कराता है और कानून की किताब की तरह उसका मार्ग दर्शन करता है तथा हमें नैतिक पथ में अडिग रहने का संदेश देता है। जब कभी धर्म की मर्यादा डगमगाती नजर आई, तब-तब भगवान ने स्वयं किसी न किसी रूप में अवतार धारण कर धर्म की डोलती नैया संभाली। इस कथन की पुष्टि हम गीता में भगवान् श्री कृष्ण द्वारा अर्जुन को कहे शब्दों में करेंगे -

"यदा-यदा हि धर्मस्य ग्लानि र्भवति भारत
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।"[13]

अन्तत: धर्म मनुष्य को पथभ्रष्ट होने से बचाता ही नहीं अपितु उसका उचित मार्गदर्शन कर सही मार्ग पर पहुंचाता है।

(२०) संगीत: अभिप्राय एवं स्वरूप

संगीत उस नैसर्गिक और सनातन भाषा का नाम है जिसके माध्यम से समस्त प्राणी वर्ग, समयानुरूप अपने हृदय के गुप्त और अव्यक्त भावों को भाव, और कंठस्वर द्वारा सम श्रेणी के प्राणियों में अनायास व्यक्त व वितरित किया करते हैं। सभी प्राणियों को इस निर्विकार भाषा का बोध जन्म से ही संस्कार के रूप में अनायास प्राप्त है जो सभी प्रकार के मानवीय बंधनों से युक्त होते हुए भी एक महान् आकर्षण-शक्ति को लिये रहता है जिससे इसकी सर्वव्यापकता का अनुभव सभी अनुरागी पग-पग में किया करते हैं। संगीत की उत्पत्ति का आधार नाद या ध्वनि है। नाद के बिना संगीत का अस्तित्व नहीं हैं। इस संदर्भ में निम्नलिखित पंक्तियां ध्यानाकर्षक हैं -

"न नादेन बिना गीतं ना नादेन बिना स्वर:
न नादेन बिना नृतं तस्मान्नादात्मकं जगत्।।"[14]

हमारी अंतर्रात्मा या चेतना का सीधा संबंध उस नाद रूपी ब्रह्म से होना स्वाभाविक ही रहा है क्योंकि आत्मा को परमात्मा का अंश माना गया है। यह नाद ब्रह्म की संगीत का रूप धारण कर हमारे जीवन के विभिन्न पहलुओं को प्रभावित करता है। सम्पूर्ण जगत नादाधीन है इस बात की पुष्टि हम इस प्रकार से कर सकते हैं -

"नकारं प्राणनामानं दकारमलंन विदु:
जात: प्राणाग्नि संयोगात्तेन नादो भिधीयते।।[15]

नकार अर्थात् प्राणवाचक वायुवाचक और दकार अर्थात् अग्निवाचक है, अत: जो वायु और अग्नि के योग से उत्पन्न होता है, उसी को नाद कहते हैं। जगत का समस्त व्यवहार नाद पर आधारित है। नाद का सामान्य अर्थ हैं आवाज। नाद के योग से ही वर्णोच्चार होता है, वर्ण से पद शब्द की सिद्धि होती है, पद से भाषा होती है तथा भाषा के होने से ही जगत के सब व्यवहार चलते हैं। अत: सम्पूर्ण जगत ही नादाधीन है।

संगीत का उद्गम स्थल भी नाद ही है। नाद संगीत में विभिन्न रूप धारण करके संगीत को रमणीयता प्रदान करता है। संगीत में नाद से श्रुति, श्रुति से स्वर तथा स्वरों से रागोत्पत्ति होती है। अत: कहा जा सकता है कि नाद ही संगीत का आधार है।

संगीत शब्द में "सम्" उपसर्ग अर्थात् "सम्यक" का तात्पर्य वादन और नर्तन से है अर्थात् गान को अपरंजित करने के लिये जब उसके वादन और नर्तन का भी प्रयोग होता है। तब संगीत कला अपने आप में ही एक सम्पूर्ण विधा कहलाती है। इस विषय में पं. शारंगदेव संगीत की व्याख्या इस प्रकार से करते हैं -

"गीतं वाद्यं नृत्य च त्रयं संगीतमुच्यते"[16]

यद्यपि विभिन्न विद्वानों ने "संगीत" शब्द को अपने-अपने दृष्टिकोण के अनुसार परिभाषित किया है तथापि सभी परिभाषाएं अर्थसंगत है। संगीत के शाब्दिक अर्थ के संदर्भ में कहा गया है कि "मधुर ध्वनियों या स्वरों का कुछ विशिष्ट नियमों के अनुसार और कुछ विशिष्ट लयों में होने वाले प्रस्फुटन को ही संगीत कहते हैं।" [17]

एक अन्य हिन्दी कोष में संगीत का स्वरूप इस प्रकार लिया गया है-

नृत्य, गीत और वाद्य का समाहार, वह कार्य जिसमें नाचना, गाना और बजाना तीनों हों, प्रत्येक संगीत कहलाता है। नृत्य वाद्यनुग है, वाद्य गीतनुग है अतएव संगीत की ही प्रधानता है।[18]

संगीत के सम्बन्ध में पं. विष्णु नारायण भातखण्डे जी का कथन है - "संगीत समुदायवाचक नाम है। इस नाम से तीनों कलाओं का बोध होता है। ये कलायें गीत, वाद्य और नृत्य हैं। इन तीनों कलाओं में गीत का प्राधान्य है। अत: केवल संगीत नाम ही पुन: लिया गया है।[19]

प्राचीन संगीत ग्रंथों में संगीत को "गान्धर्व" की संज्ञा दी गई हैं। "गांधर्व" का व्यैक्तिक सबन्ध "गंधर्व" से है जिन्हें गायन कला में निपुण माना गया है। भरतकृत नाट्यशास्त्र में "गांधर्व" शब्द का उल्लेख मिलता है। गांधर्व यानि जो वाणी को ग्रहण करें वह गंधर्व है। गांधर्व के अंतर्गत तीन अंग स्वर, ताल और पद का समावेश है, ऐसा नाट्यशास्त्र में उद्धरित है।

"यस्तु तंत्रीकृत प्रोक्तां नानातोद्यसमाश्रवम
गान्धर्वमिति तज्ञेयं स्वर ताल पराश्रयम।"[20]

स्वर के अंतर्गत श्रुति, स्वर, ग्राम, मूर्च्छना, अलंकार तथा गीति आदि का, ताल के अंतर्गत आवाप, निष्काम, विक्षेप, प्रवेशक आदि अंगों का तथा पद के अंतर्गत स्वर, व्यंजन, वर्ण, छन्द आदि का समावेश है।

वैदिक काल में प्रचलित संगीत अर्थात् सामगान हमारे महर्षियों का अराधना-संगीत था। महर्षियों द्वारा ऋग्वेद की कुछ ऋचाओं का सस्वर पाठ किया गया उन्हीं ऋचाओं को अलग कर सामगान की संज्ञा दी गई। आधुनिक भारतीय शास्त्रीय संगीत का प्रादुर्भाव वैदिक कालीन सामगान से माना गया है।

"साम" - शब्द का मूलार्थ गान अर्थात् गेय वस्तु माना गया है। सामगान में वाणी की

निर्दोषता और उसको विभिन्न प्रकार से गाने का विधान आवश्यक था। सामगान में पहले केवल तीन स्वरों उदात्त, अनुदात्त तथा स्वरित का ही प्रयोग होता था। इसका समन्वित रूप् "सामिक" कहलाता था परंतु वैदिक काल में ही सामगान सात स्वरों में होने लगा। इन्हीं तीन स्वरों से सामगान की उत्पत्ति हुई थी -

"उदात्ते निषादगान्धारनुदात्तऋषभोधैवतो
स्वरित प्रभवाह्येते षड्जमध्यमपंचमाः।।"[21]

सामवेद प्रारंभ से लेकर अन्त तक सांगीतिक तत्त्वों से भरा हुआ है। वेद परम्परा में हमारे संगीत की उत्पत्ति सामवेद से चलायी गई हैं।

"सामवेदादिदं गीतं स जग्राह पितामहः।"[22]

चारों वेदों में सामवेद का विशिष्ट स्थान है। "गीता" में श्रीकृष्ण ने यह कहकर कि - "वेदानां सामवेदो स्मि"[23] सामवेद के महत्त्व की पराकाष्ठा को स्पष्ट कर दिया है। अतः वैदिक वाङ्मय में संगीत शास्त्र पक्ष का विकास धीरे-धीरे प्रारंभ हो चुका था। हमारे प्राचीन संगीत मनीषियों ने भारतीय संगीत का अस्तित्व दो रूपों में स्वीकार किया है - 1. मार्गी संगीत 2. देशी संगीत।

मार्गी संगीत आलौकिक कहलाता था। इसका प्रयोग धार्मिक समारोहों में पूर्णतयः धार्मिक विधि विधान से होता था ओर देशी संगीत पूर्णतया लौकिक समारोहों पर आधारित होता था। मार्गी संगीत शैली की गंभीरता एवं संयमता के लिये प्रसिद्ध था, देशी संगीत स्वर, वैचित्र्य एवं चपलता के लिये प्रसिद्ध था।[24]

पं॰ शारंगदेवकृत संगीत रत्नाकर में उद्धृत मार्गी व देशी संगीत की परिभाषायें इस प्रकार से हैं -

"यो मार्गितो विरिन्चा द्यै प्रयुक्तोभरतामिति
देवस्य पुरतः शम्भोर्नियताम्युदयप्रदः"[25]

अर्थात् मार्गी संगीत वह है जिसकी खोज ब्रह्मा आदि देवों ने की और जिसका प्रचार भरतादि मुनियों ने देवताओं के समक्ष किया और जो अभ्युदय निश्चय देने वाला है, गान का दूसरा भेद देशी जिसको परिभाषित इस प्रकार से किया -

"देश-देशे जनानां यदुच्चाहृदयंरजकम्
गीतं च वादनं नृत्य देशी तद्देशी त्याभिधियते।।"[26]

अर्थात् अलग-अलग देशों में लोगों की अभिरूचियों के अनुकूल जो हृदयरंजक गायन, वादन और नृत्य होता है उसे देशी संगीत कहा जाता है या ऐसे भी कह सकते हैं कि देश-विदेश में लोक-रूचियों के अनुसार मन का रंजन करने वाला गीत "देशी" कहलाता है। प्राचीन काल में जब ऋषियों ने सम्भवतः यह अनुभव किया कि परमेश्वर प्राप्ति के अतिरिक्त संगीत में जनमनोरंजन की भी अपूर्व शक्ति है तभी से देशी संगीत का प्रचार हुआ। वह संगीत जिसका उद्देश्य जन-मन-रंजन था, देशी संगीत कहलाया या कह सकते हैं। बृहदेशी में देशी संगीत की उत्पत्ति के बारे में कहा गया है -

"अबलाबालगोपाले क्षितिपालैर्निच्छया
गीयते सानुरागेण स्वदेशे देशी रुच्चयतै।।"[27]

अर्थात् अबला, बालगोपाल तथा राजा रानी अपनी-अपनी ईच्छा से और अपनी-अपनी बोली या शैली में जो अनुराग सहित गाते हैं वही "देशी" संगीत है। अतः जनसाधारण रुचिनुसार अपने मनोरंजन के लिये जिस गायन, वादन एवं नृत्य का प्रयोग करते हैं वह देशी संगीत अर्थात् आधुनिक युग का लोक संगीत है। क्योंकि वर्तमान समय में यह संगीत किसानों, मजदूरों, नाविकों, मछुआरों यानि कि श्रमिक वर्ग का संगीत है।

लोक संगीत ही शास्त्रीय संगीत का परिष्कृत एवं सुद्धत रूप है ऐसा कहना तर्क संगत प्रतीत नहीं होता। शास्त्रीय संगीत और लोक संगीत एक

वृक्ष की दो शाखाएँ हैं, न कि दुमंजिलें मकान की पहली और दूसरी मंजिल। इस संगीत में भावुक हृदय के साथ-साथ मस्तिष्क भी कार्यरत रहता है। शास्त्रीय संगीत का अपना शास्त्र है, अपने नियमोपनियम है, अपनी परम्परा है व उसका शास्त्रीय पक्ष व्यक्तिनिष्ठ होते हुए भी समाज को सौंदर्य एवं रसानुभूति देता रहता है।[28]

भारतीय शास्त्रीय संगीत को उसकी सुविकसित, सुपरिमार्जित अवस्था के कारण विश्व के अन्य देशों के संगीत से श्रेष्ठ माना गया है। क्योंकि भारतीय संगीत द्वारा किसी विशेष भाव की अभिव्यक्ति के लिये विभिन्न स्वर विन्यासों का आश्रय लेकर विभिन्न भावों की रचना की जा सकती है। प्राचीन ग्रंथकारों ने विभिन्न स्वरों के लिये विभिन्न भावों तथा रसों को निश्चित किया है। रागों की राग-परम्परा और राग-रागिणी पद्धति का विधान इसी बात का सूचक है कि राग के स्वरों में इतनी सामर्थ्यता होती है कि किसी विशिष्ट मन:स्थिति को दिखा सके। संगत को आकर्षक रूप देने के लिये अनेक कलात्मकताएं हमारे शास्त्रीय संगीत में समविष्ट की गई है। ये कलात्मक तकनीकें हैं -मींड, मुर्की, गमक, कण, खटका, जमजमा, कृतन आदि। इसके अतिरिक्त विविध प्रकार की तालों का विधान भी भारतीय शास्त्रीय संगीत में मिलता है। कलाकार को निश्चित नियमों, परम्पराओं और सीमाओं को ध्यान में रखते हुये अपनी इच्छानुसार विस्तार करने का पर्याप्त अवसर रहता है।

इस प्रकार गांधर्व संगीत, सामगान, मार्गी-देशी संगीत, देशी संगीत का परिवर्तित रूप लोक संगीत और शास्त्रीय संगीत का संक्षिप्त स्वरूप हमने अपने आलेख में प्रस्तुत करने का सतत् प्रयास किया है।

(गा०) धर्म और संगीत सम्बन्ध

संगीत की दृष्टि में धर्म व्यापक भी है और असीमित भी। इस अदृश्य शक्ति की खोज का एकमात्र साधन ही संगीत है। धर्म ईश्वर से जुड़ा है और संगीत प्रत्येक सामाजिक प्राणी के कण-कण में ईश्वर की तरह बैठा हुआ है। धर्म सत्य की खोज है तो संगीत आनंद की अनुभूति। आनंद ईश्वर का स्वरूप है। संगीत के ईश्वर रूप होने के कारण जो लोग संगीत का अभ्यास करते हैं वे तप, दान, यज्ञ, कर्म, योग आदि के कष्ट न झेलते हुए मोक्ष मार्ग तक पहुंचते हैं। भारतीय मनीषियों ने सदैव ही मुक्तकण्ठ से इस कला का यशोगान किया है क्योंकि ये चार पुरुषार्थ धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति संगीत द्वारा सहज ही हो सकती है।

"वीणावादनतत्वज्ञः श्रुतिजातिविशारदः
तालज्ञश्चाप्रयासेन मोक्षमार्ग प्रयच्छति"[29]

भक्ति मार्ग में, संगीत के साथ भगवद्भजन करने से मन शीघ्र ही ईश्वर के नामरूप में लीन हो जाता है। संगीत समस्त जीव समूह को आनंद का वरदान देकर अपनी ओर खींच लेता है।

"पशुर्वेति शिशुर्वेति वेत्ति गानरंस फणी"[30]

इसी प्रकार एक अन्य उदाहरण में पं. शारंगदेव जी ने संगीत के माहामात्य का वर्णन करते हुये इसे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष आदि प्राप्ति का साधन माना है।

"तस्य गीतस्य माहांत्म्यं के प्रशंसितुमीश्ते
धर्मार्थाकाममोक्षणामिदमेवैकसाधनम्"[31]

अत: हम कह सकते हैं कि संगीत ही ऐसा एक मात्र साधन हैं जिसमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों पुरुषार्थ मिलते हैं। भगवद्भजन से धर्म, राजाओं और प्रभुओं से मिले हुये सम्मान के रूप में अर्थ, अर्थ से काम और ईश्वरप्रसाद के फलस्वरूप मोक्ष की प्राप्ति होती है।

ईश्वर की उपासना करना प्रत्येक धर्म की वृत्ति है और प्रत्येक धर्म ने संगीत को ईश्वराउपासना का सशक्त माध्यम माना है। हमारे देश में विभिन्न भाषाओं के एवं धर्मो के लोग रहते हैं जैसे हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई, पारसी आदि-आदि। इन सब धर्मों में संगीत की प्रधानता एवं महत्त्वता को स्पष्ट देखा जा सकता है। हिन्दू धर्म का सामवेद पूर्णतय: गेय है। इसके मंत्रों का उच्चारण पूर्णतय: संगीतबद्ध है। प्रत्येक धर्म में संगीत इस तरह से समाया हुआ हैं कि धर्म को हम संगीत से कदापि अलग नहीं कर सकते। जैसे मुस्लिम धर्म में नमाज पढ़ने से पूर्व मौला द्वारा दी जाने वाली अजान "अल्ला हो अकबर" एक भक्ति भावना पूर्ण गंभीर आवाज़ है। जो पूर्ण रूप से गेय है। इसके अतिरिक्त सूफी संतों ने भी अपनी उपासना में संगीत को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। सिक्ख धर्म के गुरुद्वारों में जो प्रार्थनाएं की जाती हैं वे भी सांगीतिक हैं। इसी प्रकार ईसाई धर्म में भी गिरजाघरों में की जाने वाली करुणामयी प्रार्थनाएं ईसाई धर्म में संगीत की महत्त्वता को स्पष्ट बताती हैं। अत: ईश्वरोपासना के लिये सबसे ज्यादा सबल और पवित्र साधन संगीत है। प्रत्येक धर्म की धरोहर संगीत है, इसलिये संगीत को हम धर्म से अलग नहीं कर सकते।

भारतीय संगीत का धर्म के साथ संबंध आदिकाल से ही स्थापित हैं। संगीत के आदि विद्वानों ने, शास्त्रवेत्ताओं ने संगीत को नाद वेद की संज्ञा देकर उसकी उत्पत्ति सृष्टि कर्ता ब्रह्मा जी द्वारा बताई है। भारतीय संगीत के तीन अंग गायन, वादन व नृत्य इन तीनों का उद्गम स्थान भी धर्म को ही बताया है। शिव प्रदोष स्त्रोत में लिखा है कि तीन जगत की जननी गौरी को स्वर्ग सिंहासन पर सुशोभित कराकर प्रदोष के समय शिव ने नृत्य करने की इच्छा प्रकट की। इस अवसर पर सब देवता उन्हें घेरकर खड़े हो गये और उनकी स्तुति करने लगे। सरस्वती ने वीणा, इन्द्र ने वेणु, ब्रह्मा ने करताल बजाना प्रारंभ किया। लक्ष्मी जी ने गाना गाया और विष्णु भगवान मृदंग बजाने लगे। इस नृत्यमय संगीतोत्सव को देखने के लिये गन्धर्व, यज्ञ, पतंग, उरग, सिद्ध, साध्य, विधाधर, देवता व अप्सरायें आदि सभी उपस्थित थे।[32]

एक अन्य किवदन्ति के अनुसार पार्वती जी की शयन मुद्रा को देखकर शिवाजी ने उनके अंग प्रत्यंगों के आधार पर "रुद्रवीणा" की रचना की और अपने पांच मुखों से पंच रागों की उत्पत्ति की। तत्पश्चात् छठज्ञ राग पार्वती जी के श्री मुख से उत्पन्न हुआ। शिव ने भैरव, हिण्डोल, मेघ, दीपक और श्री राम बनाये और छठे राग कौशिक की उत्पत्ति पार्वती जी ने की।[33]

विभिन्न धर्मों के आचार्यो ने अपने-अपने दृष्टिकोण के अनुसार संगीत की उत्पत्ति सम्बन्धी सिद्धान्त प्रस्तुत किये हैं। भारतीय ऋषियों ने सृष्टि की उत्पत्ति नाद से मानी है और ब्रह्माण्ड के प्रत्येक चराचर वस्तु में नाद की विशेष भूमिका बतलाई है। भारतीय ऋषियों की ये मान्यता है कि-

"नाद रूपम् स्मृतो ब्रह्मा
नाद रूपो जर्नादन
नाद रूपो खरा शक्ति
नाद रूपों महेश्वरा।"[34]

अर्थात् नाद ही ब्रह्मा, विष्णु और महेश का स्वरूप है।

नाद साध्य भी है और साधन भी। इसीलिये तो भारतीय ऋषि मुनियों ने ईश्वराप्राप्ति के लिए, उसकी उपासना व आराधना के लिये एक मात्र सहारा संगीत का लिया।[35]

मन की एकाग्रता संगीत द्वारा ही सम्भव है। मन एकाग्र होगा तभी हम सच्चिदानन्द को प्राप्त

कर सकेंगे। गोस्वामी तुलसीदास द्वारा उद्धरित पंक्तियां इस प्रकार से है -

"हरिपद प्राति न होय बिन गायं सुने।"[36]

इसी प्रकार कवि रवीन्द्र नाथ ठाकुर ने भी संगीत की पवित्रता को बड़े ही सुन्दर ढंग से व्यक्त किया है - मैं यह जानता हूं कि इसी गान के बल से मैं ईश्वर के सम्मुख बैठने के योग्य होता हूं। प्राण और मन देकर भी मैं जिसके समीप नहीं आ सकता था, गान देकर उसी के चरण छू लेता है।[37] कहने का तात्पर्य यह है कि ईश्वरोपासना के लिये सबसे ज्यादा सबल और पवित्र साधन संगीत ही है। एक अन्य पंक्तियों में भगवान श्रीकृष्ण पद्म पुराण में नारद से कहते हैं -

"नाह वसामि बैकुण्ठे, हृदये न च
मद्भक्ता यत्रागायन्ति तत्रतिष्ठामि नारद।"[38]

अर्थात् हे नारद। न तो मैं बैकुण्ठ में रहता हूं, न योगियों के हृदय में। जहां मेरे भक्त संगीत चर्चा, गायन-वादन चर्चा करते है, मैं वहीं रहता हूं।" हमारे देश में वैदिक युग से ही धार्मिक अनुष्ठानों या यज्ञादि के समय जो भी मंत्रोच्चारण किये जाते थे, वे सब स्वर, लय व ताल बद्ध होते थे। ऋग, यजु: तथा अथर्ववेद में तो गीत, वाद्य और नृत्य का प्रयोग मिलता ही है।

"त्रिवृद्धे शिल्पं नत्यं गीतं वादितामिति"39

साथ ही सामवेद तो पूर्णतया सांगीतिक है। साम शब्द का अर्थ वह गीतिक्रिया है, जो आभ्यन्तर प्रयत्न से उद्भूत स्वरविशेषों की अभिव्यंजिका है। साम शब्द से अभिहित "धुनें" ऋचाओं के आधार से गाई जाने पर "साम" कहलाती हैं - "प्रगीतं मन्त्रवाक्यं सामशब्देनोच्यते"[40] साम का गान ऋग्वेद की ऋचाओं पर आश्रित हैं, क्योंकि गान के लिये साहित्य की आवश्यकता सदैव रही है। उस समय के संगीतज्ञों ने ऋग्वेद में द्वन्द्वमय काव्य को गान के लिये उपयुक्त समझा होगा। ललित एवं छन्दोमय काव्य, जो कि देवताराधन के लिये रचे गये। इस काव्य में संगीत का मजुल समन्वय कर सामगान के रूप में ईश्वराराधना का प्रभावशाली माध्यम माना जाने लगा। इस प्रकार इन्हीं गेय ऋचाओं के परवर्ती संग्रह को "सामवेद" का नाम दिया गया।

"सामशब्दवाच्यस्य गानस्य स्वरूपं ऋगक्षरेषु कुष्टादिभि: सप्तभि: स्वरैरक्षरविकारदिभिश्च निष्पाद्यते"[41]

तात्पर्य यह कि साम, जो कि मौलिक रूप से गान का द्योतक हैं, साहित्य के माध्यम से अभीष्ट विस्तार को प्राप्त होता है। इसी प्रकार रामायण में लव और कुश द्वारा रामायण गाथा ताल और लय से युक्त स्वरों और शब्दों में पिरोये हुये तथा तन्त्री के स्वर, लय और भाषा के व्यंजन से गुम्फित था।[42]

एक अन्य उदाहरण जिसमें शब्द, स्वर, ताल एवं छन्द का अनूठा सामंजस्य है। यह शिवताण्डवस्त्रोतम् है। जिसकी रचना रावण द्वारा शिव की आराधना करते समय हुई -

"जटाटविगल्लजल: प्रवाहि पावितस्थले
गलेऽवलम्बय लम्बितां भजऽ मालिकाम्
ऽमड्ङमड्ङमड्ङमन्निनाद वड्डमर्वयं
चकार चण्डताण्डवम् तनोतुन: शिवशिवम्"[43]

यह शिवताण्डवस्त्रोत इस प्रकार से शब्द स्वर, ताल एवं छंद में एकरूप है कि इसमें संगीत का मीठा आभास होता है।

हिन्द धर्म में जितने भी संस्कार माने जाते हैं वे सभी धर्म ओर संगीत से ओत-प्रोत है। जैसे जन्म, नामकरण, जडु-ला, यज्ञोपवीत, सगाई, विवाह एवं मृत्यु इत्यादि ये सभी संस्कार सांगीतिक हैं। हमारे जितने भी उत्सव, पर्व, व्रत,

त्यौहार हों, सबमें संगीत की प्रधानता देखने को मिलती हैं। जैसे गणगौर, होली, तीज आदि। इस प्रकार मनुष्य ने जन्म लेते ही संगीत की सुमधुर ध्वनि को सुना और मृत्यु होने पर भी "राम नाम सत्य है" कि एक मुख ध्वनि के साथ उसका पंचतत्त्वों से बना हुआ शरीर पुनः पंचतत्त्वों में लीन हो गया।

यह कहना अनुचित न होगा कि संगीत और धर्म का सम्बन्ध चोली और दामन जैसा है। मनुष्य इसकी स्वर लहरियों में खोकर भगवान में पूर्णतः लीन हो जाता है। चाहे मनुष्य कितनी भी परेशानियों में क्यों न घिरा हुआ हो, वह सांगीतिक ध्वनि के शीतल, पावन स्पर्श को पाकर उसके हृदय से कुलषित वेदनाएं क्षण भर में विरोहित हो जाती हैं।

वर्तमान युग में वैदिक संगीत की अपेक्षा भक्ति संगीत अधिक प्रचलित हैं। इसका कारण यह है कि भक्ति संगीत का काव्य भण्डार, सरस एवं सरल है। जिसके द्वारा साधारण से साधारण जनता भी आनन्दानुभूति का आभास कर सकती है। भक्ति काव्य में सत्यम्, शिवम् और सौंदर्य का अद्‌भुत समन्वय देखने को मिलता है। कई सन्त भक्तों ने जिनमें से कुछ के नाम इस प्रकार हैं - वल्लभ, चैतन्य, सूरदास, मीरा, तुलसीदास, पुरंदरदास, त्यागराज, तुकाराम, हरिदास, जयदेव, नानक, विद्यापति इत्यादि ने स्वर और शब्द की चेतन शक्ति से ही भगवान का अनन्य प्रेम उपलब्ध किया तथा जगत को सत्य का संदेश दिया।

अतः संगीत साधना का परम स्वरूप गायन शैलियों में से भजन और कीर्तन ही है। संगीत की अबोध शक्ति के आगे कौन नतमस्तक नहीं होता। यह भी सत्य है कि जहां भगवान के भक्त गायन करते हैं वहीं उसका मन भी रमता है।

उपर्युक्त तथ्यों से यह निष्कर्ष निकलता है कि संगीत ईश्वरप्राप्ति का एक सशक्त माध्यम है। विद्वानों ने संगीत कला को केवल कला ही नहीं अपितु उपासना की पद्धति भी माना है। जैसे कि हम पीछे बता चुके हैं कि संगीत से बढ़कर प्रभु को रिझाने वाली अन्य कोई भी वस्तु इस संसार में नहीं हैं, ये पूर्णतया सत्य प्रतीत होता है। आज भी ईश्वरोपासना में संगीत की महत्ता ज्यों की त्यों बनी हुई हैं। अतः हम यह कह सकते हैं कि संगीत धर्म का पूरक है।

संदर्भ ग्रंथ सूची:

1. संपादक वर्मा, रामचंद्र मानक हिन्दी कोष भाग-तीन, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग (उ॰ प्रदेश) पृ॰ 158
2. वही, पृ॰ 158
3. वही, पृ॰ 158
4. उपाध्याय, आचार्य बलदेव भारतीय धर्म और दर्शन (2000), चैखंभा ऑरिएंटल, दिल्ली, पृ॰ 10
5. राधाकृष्णन, धर्म और समाज, (2019) पेगुंविन बुक्स इंडिया, पृ॰ 124
6. महर्षि प्रेमायुत, स्वधर्म शास्त्रन
7. ज्ञानी, प्रो॰ शिवदत्त भारतीय संस्कृति में धर्म व दर्शन, (1990) भारतीय विद्या भवन, बंबई, पृ॰ 200
8. चतुर्वेदी, मनमोहन दयाल हिन्दू धर्म की रूपरेखा, (1974), स्वधर्म प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ॰ 2
9. महर्षि वेदव्यास, महाभारत, (2000) गीता प्रेस गोरखपुर। शांति पर्व श्लोक 69
10. स्वामी रामतीर्थ, हमारा राष्ट्रीय धर्म, (1978) अरविंद प्रकाशन दिल्ली, पृ॰ 9-11
11. Chambers Twentieth Century Dictionary के अनुसार Religion शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के शब्दों Leligio, Religionis तथा Religiosus से ढूँढ़ी जा सकती है। इसके अतिरिक्त इसकी उत्पत्ति की दो अन्य लैटिन भाषा के शब्दों Relegare तथा Reregere से भी Religion शब्द का अर्थ हैं To Bind अर्थात जोड़ना तथा Relegere शब्द

का अर्थ हैं To read again अर्थात पुन: पाठन करना। पृ. 93
12. स्वामी रामतीर्थ, हमारा राष्ट्रीय धर्म, (1978) अरविंद प्रकाशन दिल्ली, पृ. 11
13. श्रीकृष्ण, श्रीमद्भगवद्गीता, (2000) गीता प्रेस गोरखपुर, श्लोक-7
14. मतंग मुनि, बृहद्देशीय, संपादक बालकृष्ण, (1978) संगीत कार्यालय हाथरस, श्लोक-17, पृ. 2
15. पं. शारंगदेव संगीत रत्नाकर, अनुवादक लक्ष्मीनारायण गर्ग, (2000) संगीत कार्यालय हाथरस। श्लोक-3, पृ. 64
16. वही, श्लोक-21, पृ. 13
17. संपादक वर्मा, रामचंद्र मानक हिन्दी कोष - भाग-5, हिदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग (उत्तर प्रदेश), पृ. 213
18. बसु, नगेन्द्रनाथ हिन्द विश्व कोष (1997), नगेंद्र नाथ वसु और विश्वनाथ वसु, विश्वकोष लाईन, कलकत्ता, पृ. 474
19. पं. भातखण्डे, भातखण्डे संगीत शास्त्र-प्रथम भाग, (1975) संगीत कार्यालय, हाथरस (उत्तर प्रदेश) पृ. 14
20. आचार्य भरत, नाट्यशास्त्र (1972), ऑरिएंटल इंस्टीटयूट बडोदा। अध्याय-28, श्लोक-9, पृ. 400
21. नारद, नारदीय शिक्षा अष्टमीकण्डिका, टीकाकार शोभाकर भट्ट, (1964) पितांबर पीठ संस्कृत परिषद्, दतिया (म. प्र.), पृ. 46
22. शास्त्री, के. वासुदेव संगीत शास्त्र (1958) हिन्दी समिति प्रकाशन शाखा सूचना विभाग, लखनऊ (उ. प्र.) पृ. 3
23. श्रीकृष्ण, श्रीमद्भगवद् गीता, (2000) गीता प्रेस गोरखपुर। अध्याय-10 श्लोक-22, पृ. 300
24. परांजपे, डॉ. शरतचंद्र श्रीधर संगीत बोध, (1972), मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, पृ. 3
25. पं. शारंगदेव, संगीत रत्नाकर, अनुवादक गर्ग, लक्ष्मीनारायण (2000) संगीत कार्यालय, हाथरस। शलेक-22, पृ. 14
26. वही, श्लोक-23, पृ. 14
27. मतंग मुनि, वृहददेशी, (1978) संगीत कार्यालय हाथरस, पृ. 14
28. गोविंद राव राजूरकर, संगीत शास्त्र पराग, (1902), राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, पृ. 15
29. आचार्य याज्ञवल्कय, याज्ञवल्कय स्मृति, (1986), चैखंभा संस्कृत सिरीज ऑफिस, विद्या विलास प्रेस, गोपाल मंदिर, बनारस सिटी, पृ. 10
30. शास्त्री, के. वासदेव संगीत शास्त्र (1958), हिन्दी समिति प्रकाशन शाखा सूचना विभाग, लखनऊ (उ. प्र.), पृ. 2
31. पं. शारंगदेव, संगीत रत्नाकर, लक्ष्मीनारायण गर्ग, (2000) संगीत कार्यालय, हाथरस। श्लोक-30, पृ. 210
32. संत वेद व्यास, शिव महापुराण, (2000), गीताप्रेस गोरखपुर, पृ. 420
33. वही, पृ. 424
34. स्वामी शरण, वैदिक इतिहास, (2021), त्रयंबक प्रकाशन, नेहरू नगर, कानपुर (उ. प्र.) पृ. 23
35. पं. अहोबल, संगीत पारिजात (1972), संगीत कार्यालय हाथरस, पृ. 12
36. तिवारी, रामजी गोस्वामी तुलसीदास (2019), साहित्य अकादमी दिल्ली, पृ. 12
37.
38. पं. अहोबल, संगीत पारिजात, (1972), संगीत कार्यालय, हाथरस, पृ. 11
39. परांजपे, डॉ. शरतचंद्र श्रीधर भारतीय संगीत का इतिहास, (1968) चैखंबा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, पृ. 19
40. उपाध्याय, आचार्य बलदेव संस्कृत वाङ्मय (1945) शारदा मंदिर, वाराणसी, श्लोक-7, पृ. 12
41. परांजपे, डॉ. शरतचंद्र श्रीधर भारतीय संगीत का इतिहास, (1968) चैखंभा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, पृ. 56
42. महर्षि वाल्मीकि, रामायण उत्तरकाण्ड (2000), गीता प्रेस गोरखपुर। श्लोक 4-9, पृ. 94
43. संत वेदव्यास, शिवमहापुराण, (2000), गीता प्रेस गोरखपुर, पृ. 15

मानव जीवन में संगीत का महत्त्व

डॉ. अमृता कर्मकार

मानव जीवन में संगीत शैली एक अभिन्न हिस्सा बन गया है। संगीत मानव समाज की कलात्मक उपलब्धियों और सांगीतिक सांस्कृतिक परम्पराओं का मूत्तिमान प्रतीक है। सौन्दर्यपरक अनुभूति वाला हर व्यक्ति संगीत पसंद करता है। किन्तु मानव जीवन में संगीत की पसंद हर व्यक्ति का अलग-अलग होता है। सामान्य तौर पर कौन-सा व्यक्ति किस प्रकार का संगीत पसंद करता है, यह उसकी उम्र, पृष्ठभूमि और प्रवृति पर निर्भर करती है। जिस तरह से भोजन, किताबों, मित्रों और शौकों के मामले में हर व्यक्ति की पसंद अलग-अलग होती है, उसी प्रकार से संगीत की पसंदगी भी व्यक्ति दर व्यक्ति अलग-अलग होती है। संगीत हमारे व्यक्तित्व के विकास में अत्यंत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। मानव जीवन में संगीत भावनाओं से निपटने में मदद करता है और शक्ति प्रदान करता है। यह हमारे जीवन में सकारात्मक बदलाव लाता है और हमारे शरीर के नियंत्रण की भावना को बढ़ाता है। सिर्फ यही नहीं संगीत के द्वारा हम कई तरह की बीमारियों का भी इलाज कर सकते है और संगीत में इस का संचार कर उसे मानसिक रूप से उन्नत कर उत्कृष्ट एवं जीवन को कलात्मक बना सकते है। इसी तरह मानव जीवन में संगीत का क्या महत्व और उसके योगदान है वो हम इस लेख के द्वारा आगे विस्तारपूर्वक बताएँगे।

शब्दकोष - शिक्षा प्रणाली, अनुभूति, मूर्त्तिमान, नैतिकता, कुटुम्बकम।

भूमिका

संगीत मानव समाज की कलात्मक उपलिब्ध्यों और सांस्कृतिक और सांगीतिक परम्पराओं का मूत्तिमान प्रतीक है। यह आदिमकाल से मानव जीवन के आकस्मिक उल्लास और सुखानभूतियों की ललित अभिव्यक्ति का मधुरतम माध्यम रहा है। शास्त्रीय स्थापना के अनुसार गीतम वाद्यम में तथा नृत्यमत्रय संगीतमुच्चते गायन, वादन तथा नर्तन की त्रिवेणी संगीत ही संगीत है। कला मानव जीवन में एक महत्पपूर्ण स्थान रखता है और संगीत इस क्षेत्र में सबसे आगे चलने वाली कला है। सिर्फ मानव जीवन ही नहीं सम्पूर्ण प्रकृति संगीत से प्रभावित है। संगीत आज हमारी जीवन शैली का अभिन्न हिस्सा बना गया है। सौंदर्यपरक अनुभूति वाला हर व्यक्ति संगीत पंसद करता है। सामान्य तौर पर व्यक्ति किस प्रकार का संगीत पसंद करता है, यह उसकी उम्र, पृष्ठभूमि और उसकी प्रवृति पर निर्भर करता है। जिस प्रकार भोजन, किताबे, फैशन, मित्रों और शौकों के मामले में प्रत्येक व्यक्ति की पसंद अलग-अलग होती है, उसी तरह से संगीत की पसंदगी भी व्यक्ति दर व्यक्ति अलग-अलग होती है।

अतिथि सहायक शिक्षिका : विश्वविद्यालय संगीत एवं नाट्य विभाग, ललित नारायण मिथिला विष्वविद्यालय, दरभंगा-846001

मानव की संगीत के प्रति अनुभूति अत्यंत प्राचीन काल से ही चली आ रही है। पेड़ों की सरसराहट, नाले की प्रवाही ध्वनि, चिड़ियों का चहचहाना, बारिश की बूँदों की आवाज ये सब मानव मन में ताल और लय की अनुभूति को जागृत करता है। संगीत मनुष्य के तनाव को भी कम करता है। जिस तरह से संगीत में दीपक राग को गाने पर दी प्रजवलित हो जाते थे, मेघ मल्हार रागों को गाने के बाद वर्षा का होना और मोहन राग को सुनकर सापों का लहराना यह सिद्ध करता है कि मानव जीवन के लिए संगीत एक संजीवनी बूटी जैसा है। जैसा कि पहले हमने कहा है कि संगीत प्राचीनकाल से मनोरंजन के मुख्य स्त्रोतों में से एक रहा है। पहले के समय में, जब कोई टेलीविजन, इंटरनेट नहीं था। किसी अन्य तरीके से अपने आपको मनोरंजन करने के लिए नहीं था, तो उस समय संगीत ही मानव जीवन का एक मात्र साधन था। इससे उन्हें एक दूसरे से बेहतर जुड़ने से मदद मिलती थी।

महत्त्व

मानव जीवन का हर पहलू हर समय संगीतमय है। सिर्फ हर्ष-उल्लास के समय ही नहीं बल्कि मृत्यु जैसे शोक में भी संगीत का स्थान है। संगीत में काफी शक्ति होती है। यह लोगों के मन में कई तरीके से जगह बनाता है। संगीत बहुत ही शक्तिशाली माध्यम है और सभी तक काफी सकारात्मक संदेश पहुँचाता है। हमें संगीत द्वारा काफी सहायता मिलती है। संगीत हमारे जीवन को और भी अच्छा करने का कार्य कराता है। संगीत की प्रकृति प्रोत्साहन तथा बढ़ावा देने की भी है, जो सभी नकारात्मक विचारों को हटाकर मनुष्य की एकाग्रता की शक्ति को बढ़ाने का कार्य भी करता है। संगीत का महत्व हमारे जीवन में तब और भी बढ़ जाता है तब मनुष्य में नैतिकता, अनुशासन, प्रेम तथा सौहार्द की भावना पैदा करता है। प्लेटो ने कहा है कि "संगीत से व्यक्ति में धर्म की प्रवृति आ जाती है।" यह व्यक्ति कभी भी अन्याय नहीं कर सकता जो कि संगीत की मधुर स्वर लहरियों में बंधा होता है। संगीत मनुष्य में आत्मविश्वास पैदा करता है। संगीत मानव जीवन में स्फूर्ति पैदा करता है। संगीत मनुष्य के जीवन में उल्लास तथा सरसता बनाए रखता है। संगीत ही एक ऐसी कला है जिसके द्वारा विभिन्न स्थानों व लोगों में भावों का एकीकरण संभव होता है। संगीत मानव जीवन की कलात्मक, सांगीर्तिक, सांस्कृतिक परम्पराओं का मूर्तिमान प्रतीक है। संगीत का मानव पर विशेष प्रभाव पड़ता है। संगीत से मानव में सृजन शक्ति और आध्यात्मिक भावना का विकास होता है।

संगीत ईश्वर प्राप्ति, आत्म-साक्षात्कार तथा ईश्वरोपासना का सरलतम तथा प्रभावकारी साधन है। जन्म से लेकर मृत्यु तक सोलह संस्कार, बारह महीनों के पर्व, त्यौहार कोई ऐसा मौका नहीं होता है। संगीत की स्वर लहरी से वंचित हो। संगीत मनुष्य को मानसिक तनाव तथा दुख से भी छुटकारा दिलाता है। यह कलाएँ ऐसी है जहाँ व्यक्ति हर समय हर एक स्थान को न देखकर कही भी इसका उपयोग करता है। चाहे हो गाना या नाचना इसका उपयोग किसी भी स्थान में मनचाहे समय पर गुनगुनाता रहता है। अगर किसी व्यक्ति को गाना न आता हो तो रेडियो, टेप, रिकार्ड प्लेयर ऐसे साधन का भरपूर लाभ उठाते है और वह अपनी मानसिक तनाव या दुख को भूल जाते है। संगीत द्वारा व्यक्ति अपनी भावों की अभिव्यक्ति को दूसरों तक पहुँचाते है और स्वयं आनंदित हो कर दूसरों को भी आनंदित करते है। यह एक ऐसी कला है। जिसके द्वारा विभिन्न स्थानों या लोगों में भावों का एकीकरण संभव होता है। इससे अनुशासन एवं एकता की भावना

बलवती है। समूहगान एवं समूहनृत्य द्वारा एकता व अनशु ाासन सीखा जाता है। संगीत का मानव जीवन पर विशेष प्रभाव पड़ा है। संगीत मानव के पीड़ित हृदय को शांत और संतोष प्रदान करता है। ईश्वर ने मानव को संगीत रूपी आर्शीवाद दके र उसकी पीडा़ को कस लिया है। जिस प्रकार औशधियाँ मानव के रोगों को दूर करके उसके शारीरिक विकास में सहायता प्रदान करती है। योग मानव के शारीरिक और मानसिक विकारों को दूर करता है ठीक उसी तरह संगीत मानव के शारीरिक मानसिक और अस्मिक विकारों का निराकरण करके उसके शरीर के कष्ठों को भाव ज्ञान एवं आध्यात्मिक गुणों से युक्त करके ईश्वर की ओर उन्मुख करता है। जीवन की जटिल समस्याएँ मनुष्य को चिंतित करती रहती है वहाँ दूसरी ओर संगीत मनुष्य की सारी चिंताओं का निराकरण करता रहता है अत: मानव जीवन में संगीत एक उपयोगी तत्व है।

सूफी इनायत खाँ संगीत का महत्व बताते हुए कहते है:- "संगीत कलाओं में सूक्ष्मतम होने के कारण समाज में बैर भावना और मतभेंदो को खत्म कर आत्मा को आत्मा से जोड़ता है।"

पं. भीमसेन जोशी जी के अनुसर:-

"संगीत शिक्षा सभी धर्म समप्रदाय के लोगों में भेदभाव की भावना को दूर कर राष्ट्रीय एकाता स्थापित करने का महत्वपूर्ण उपादान है।"

सामवेद में भगवान ने संगीत शक्ति के ऐसे रहस्य प्रतिपादित किए हुए है जिनको ग्रहण करके मनुष्य अपनी आस्मिक शक्तियों को तुच्छ से महान बना देती है और परमात्मा को प्राप्त करती है। पाईथोगोरस के अनुसार संगीत आत्मा की उन्नति का सर्वश्रेष्ठ साधन है मानव जीवन सदा संगीत से अनुप्राणित होता रहा है। मानव जीवन निम्न प्रकार के उत्थान, पतन, हर्ष-विवाद तथा राग-द्वेष आदि भावो का केन्द्र होता आया है जहाँ एक ओर जीवन की जटिल समस्याएँ मनुष्य को चिन्तित करती रहती है वही दूसरी ओर संगीत मनुष्य की सारी चिंताओं का निराकरण करता रहता है। संगीत के महत्व से आजभी हम भली भांति परिचित है। माँ की लोरी के संगीत में वह जादू है, जहाँ बच्चे का मिठी निंद में सुला देता है, वहाँ उसे दर्द से राहत प्रदान करता है। आज के युग में संगीत की वैज्ञानिकता स्वत: सिद्ध हो चुकी है। संगीत न केवल शारीरिक रोगों से मुक्ति दिलाता है ब्लकि मनुष्य के अकेलेपन को भी दूर करता है और दिन भर की थकान को भी दूर करता है।

सांस्कृतिक विकास

मूल्यों शैलियों और भावनात्मक अभियानों का संसार है। यह हमारे रहने, सोचने के ढ़ंग, कार्यकलापों, कला-साहित्य, धर्म, मनोरंजन एवं आनंद में हमारी अभिव्यक्ति है जो निरंतर प्रगतिशील मानव जीवन प्रकृति और मानव समाज के जिन-जिन असंख्य प्रभावों और संस्कारों से सुसंस्कृत और प्रभावित होता रहता है, उन सबके एक सामूहिक स्वरूप को ही आज हम संस्कृति के नाम से सम्बोधित करते है। संस्कृति से भाव, किसी स्थान, विशेष का खान-पान, विशेष गुण, रीति-रिवाज आदि से लिया जाता है, सांस्कृतिक विकास में संगीत का बहुत योगदान है। प्राय: हम देखते है सांस्कृतिक कार्यक्रमों को शैक्षणिक, धार्मिक एवं सरकारी, गैर-सरकारी संस्थानों द्वारा आयोजित किया जाता है। उसमें एक ही देश के विभिन्न प्रान्तो की संस्कृति विभिन्न होती है। सिर्फ यही नहीं सांस्कृतिक का प्रभाव बचपन से प्रारंभ होकर जीवन पर्यन्त तक रहता है और संस्कृति से सम्पूर्ण व्यक्तित्व प्रभावित होता है। सांस्कृतिक व्यक्ति को मार्ग दर्शन भी करातााा है और उसपर नये लोगों के संर्पक का प्रभाव डालता है। वास्तव

में संस्कृति का संबंध हमारी भावना और आत्मा से है। सांस्कृतिक विकास का संबंध लोक गीत, कविता नृत्य, चित्रकला, स्थापना कला, संगीत कला से प्राप्त है। संस्कृति और कला एक दूसरे के पूरक होने के साथ-साथ मानव जीवन के विकास के सोपान भी कहे जाते है।

ठाकुर जयदेव सिंह के अनुसरः-

"संस्कृति के स्तर का माप उसकी कला द्वारा होती है। कला जिस वस्तु या यद्यपि का बोध खोजती है वह यथार्थ स्वयं हमारा जीवन है। इसलिए हमारा वैयक्तिक और सामाजिक जीवन कलाओं से प्रभावित रहा है।"

संगीत शिक्षा प्रणाली

मानव जीवन में संगीत शिक्षा के बिना कोई भी शिक्षण प्रणाली अधूरी है। सृजनात्मकता व रचनात्मकता के विकास के लिए शिक्षा में संगीत का होना आवश्यक होता है। प्राचीनकाल से ही शिक्षा में साधनों, विषयों को अनिवार्य रूप से सिखाया जाता रहा। अगर हम प्राचीनकाल के संगीत शिक्षा प्रणाली को देखे तो उस काल में संगीत का व्यवस्थित रूप भरतकृत नाट्यशास्त्र में उल्लेखित है। उस काल में प्रबंध का विस्तृत रूप प्राप्त होता था। उस काल में संगीत एवं नाट्य को राजाश्रय प्राप्त था। राज्य की ओर से संस्थाओं का प्रबंध किया गया था, जिसमें गीत, वाद्य, नृत्य, नृत्त वैशिक आदि की शिक्षा दी जाती थी। उसी तरह से अगर हम देखे तो मध्यकालीन इतिहास में मेल पद्धति, राग-रागिनी पद्धति ओर रागांग पद्धति के अन्तर्गत वर्गीकरण को स्पष्ट किया गया था। इस काल में पं. अहोबल, श्रीनिवास एवं हृदय नारायण देव ने वीणा के 36 इंच लंबे तार पर शुद्ध अथवा विकृत स्वरों की स्थापना करके संगीत जगत में अपना महत्पपूर्ण योगदान दिया। आधुनिक युग से भी मानव जीवन से जुड़े बहुत से ऐसे वाद्य का विकास हुआ जिससे श्रुति व्यवस्था भंग हो गई थी। मानव जीवन में संगीत की शिक्षा देना भी एक बहुत बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है। संगीत शिक्षा द्वारा ही मनुष्यों में सद्गुणों का विकास होता है। संगीत शिक्षा द्वारा मानव में विश्वबन्धुत्व, मानवता, प्रेम, आपसी सद्भाव एवं वसुधैव कुटुम्बकम की भावना जागृत होती है। संगीत की शिक्षा का शैक्षिक, सांस्कृतिक, मनोविज्ञानिक तथा आध्यात्मिक महत्व है। संगीत की शिक्षा से अनुशासन तथा परिश्रम व नैतिकता की भावनाओं को पैदा किया जा सकता है। संगीत का संबंध ज्ञानात्मक, क्रियात्मक व भावनात्मक तीनों से परस्पर संतुलन है, किन्तु प्रमुख रूप से भावनात्मक विकास से है। संगीत हमारे जीवन का एक ऐसा माध्यम है जो न केवल मानसिकता को प्रशिक्षित करता है और हमारे मनोभावो को भी प्रशिक्षित करके उन्हें विशुद्ध स्वरूप प्रदान करता है। संगीत से मानव जीवन में सकारात्मक सोच की अवस्था जागृत होती है। जिसके फलस्वरूप उसका व्यक्तिव विकसित होता है। आज वैज्ञानिक भी मान रहे हैं कि संगीत की शिक्षा से मनुष्य के विचारों में भी परिवर्तन हो रहा है। सामूहिक शिक्षण प्रणाली के अन्तर्गत आज संगीत शिक्षा संगीत विद्यालयों, महाविद्यालय व विश्वविद्यालय में संपन्न हो रही है। आज शिक्षा प्रणाली के माध्यम से एक साथ अनेक विद्यार्थी कुशल शिक्षक से संगीत शिक्षा को प्राप्त कर रहे है। ऐसा भी देखा गया या ज्यादातर महाविद्यालय में विद्यारर्थियों को विषयों को चुनने में परेशानी होती है वहाँ संगीत का भी अपना एक बहुत अच्छा स्थान रहता है जिसे विद्यार्थी को बहुत लाभ पहुचँता है।

निष्कर्ष

मानव जीवन में संगीत मानवता का पाठ पढ़ाता है। असभ्य को सभ्यता का और संकीर्ण हृदय को विश्व बंधुत्व का संदेश देता है। इसके अतिरिक्त संगीत शिक्षा द्वारा स्मृति कल्पना और रचना से शिक्षा का विकास होता है तथा विद्यार्थियों में नैतिकता एवं अनुशासन की भावना को भी जागृत करता है। संगीत समीर के शीतल झोंके, हृदय की कलुषता, विकृत वासनाओं संकीर्णता तथा तामसी एवं आसुरी भावनाओं को समूल उच्छेदन कर आत्मा को निश्चल एवं पवित्र बना देते है। अतः सच्चे संगीतज्ञ सदैव निर्मल हृदय और सांसरिक प्रपंचों से दूर होते है। मानव जीवन का चरम लक्ष्य होता है मुक्ति की प्राप्ति। संगीत मोक्ष का सर्वोकृष्ट साधन है। इस प्रकार हम कह सकते है कि संगीत साहित्य के ही समान सुखद और मंगलकारी कला है तथा प्राणी मात्र के सुख-दुःख का साथी, जीवन की अमृत वर्षा निक्षर मोझ प्राप्ति तथा आत्मिक मिलन का मधुरतम एवं पावनतम साधन है। इस प्रकार संगीत मनुष्य के सर्वागींण जीवन को स्पर्श करता है।

संदर्भ

1. संगीत की संस्थागत शिक्षा प्रणाली
2. संगीत दर्शन - जैन विजया लक्ष्मी
3. भैरवी संगीत शोध पत्रिका - अंक 8
4. भैरवी संगीत शोध पत्रिका - अंक 15
5. भैरवी संगीत शोध पत्रिका - अंक 10
6. भैरवी संगीत शोध पत्रिका - अंक 16
7. भैरवी संगीत शोध पत्रिका - अंक 13
8. संगीत विशारद, वसंत

अहोबल कृत संगीत पारिजातः एक विहंगम दृष्टि

अंकुर श्रीवास्तव, डॉ. विशाल जैन

सारांश

पं. अहोबल का नाम भारतीय संगीत के इतिहास में कभी भी भुलाया नहीं जा सकता। पं. अहोबल ही ऐसे प्रथम विद्वान थे जिन्होंने वीणा के तार पर स्वरों का स्थान निश्चित किया। पं. अहोबल का काल खण्ड सत्रहवीं शताबदी के पूर्वार्द्ध में माना जाता है। पं. अहोबल के पिता कृष्ण पं. संस्कृत के प्रकांड विद्वान थे, उन्होंने बाल्यकाल से पं. अहोबल जी को संस्कृत की भी शिक्षा प्रदान की। संगीत पारिजात ग्रंथ उत्तरी एवं दक्षिणी संगीत, पद्धतियों का सबसे अधिक प्रसिद्ध व महत्वपूर्ण ग्रंथ माना जाता है। पं. अहोबल जी उत्तरी एवं दक्षिणी संगीत दोनों में निपुण थे। संगीत पारिजात ग्रंथ के विषय में प्रत्येक संगीत प्रेमी जानना चाहता है, इस शोध प्रपत्र का उद्देश्य विद्यार्थियों, शोधार्थियों व संगीत जिज्ञासुओं को उक्त ग्रंथ की सहायक सामग्री विवरण से लाभप्रद कराना है।

कुंजीशब्द - *स्वर, श्रुति, रस, अलंकार, प्रकरण, गीतियां।*

संगीत पारिजात ग्रंथ उत्तरी अथवा हिन्दुस्तानी संगीत का सबसे अधिक प्रसिद्ध व महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। पण्डित अहोबल दक्षिण के निवासी थे तथा उत्तर भारत में आकर उन्होंने यह ग्रंथ रचा। यह ग्रंथ सत्रहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध 1650 में लिखा गया। Sir W. Ousley जी ने अपनी पुस्तक ''ओरिएण्टल कलेक्शन'' के प्रथम भाग में वर्णित किया है कि संगीत पारिजात का फारसी अनुवाद वासुदेव के पुत्र पण्डित दीनानाथ जी द्वारा 1724 में किया गया था। मंजरीकार जी की पुस्तक ''संगीत पद्धतियों का तुलनात्मक अध्ययन'' में भातखण्डे जी ने वर्णित किया है कि भावभट्ट जी ने अपने ग्रंथ संगीत अनूप विलास में संगीत पारिजात के उद्धरण दिए हैं। संगीत पारिजात का एक और अनुवाद औरंगजेब के समकालीन मिर्जा रौशन द्वारा भी किया गया। संगीत पारिजात में कुल 500 श्लोक वर्णित हैं।

यह ग्रंथ पण्डित अहोबल जी ने विष्णु भगवान के मंगलाचरण से शुरूआत की। इस ग्रंथ में संगीत के दो भेद माने गये प्रथम मार्गी तथा द्वितीय देशी। अहोबल जी मार्गी संगीत के लिए कहते हैं कि - यह स्वयं ब्रह्मा जी ने भरत के लिए गाया, भरत जी ने इसे गृहण किया तत्पश्चात् भरत जी से अप्सराओं, गंधर्वगणों, आदि ने गृहण किया, मार्गी के अन्तर्गत यह भी बताया गया कि भगवान शिव ने भरत को ताण्डव लास्य आदि की शिक्षा प्रदान की। देशी संगीत के लिए कहा गया कि भिन्न-भिन्न देशों के भेद से निर्मित संगीत देशी संगीत है। पण्डित अहोबल के मेलों की संख्या 11240 है, रागों

*एम.पी.ए.(यू.जी.सी.- नेट), संगीत एवं प्रदर्शन कला विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

** शोधार्थी शोध निर्देशक : असिस्टेन्ट प्रोफेसर, संगीत एवं प्रदर्शन कला विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

के विवरण प्रस्तुत करने हेतु उन्होंने 12 मेलों का प्रयोग किया - 1. शुद्धमेल, 2. गौरी, 3. मुखारी, 4. भैरवी, 5. आभीरी, 6. सारंग, 7. मालव, 8. शंकराभरण, 9. बेलावली, 10. नाट्य, 11. श्रीराग, 12. कल्याणी।

पण्डित अहोबल जी का शुद्ध सप्तक वर्तमान काफी के समान था। पण्डित अहोबल ने सर्वप्रथम गणित के आधार पर वीणा के तार की लंबाई पर स्वरों की स्थापना की। पण्डित अहोबल ने स्वर स्थापना के संदर्भ में कहा है - ''स्वर संवादिता, - ज्ञानं स्वरस्थापन कारणम्''।

इस ग्रंथ की रचना संस्कृत में हुयी जिसे पांच अध्यायों में विभक्त किया गया। इन अध्यायों को प्रकरण कहा गया - 1. स्वर प्रकरण, 2. मूर्च्छना प्रकरण, 3. स्वर विस्तार प्रकरण, 4. गमक प्रकरण, 5. समय प्रकरण।

पण्डित अहोबल ने 7 शुद्ध, 22 विकृत जिसमें 14 तीव्र तथा 8 कोमल कुल मिलाकर 29 स्वर माने हैं। षडज स्वर को अग्निदेवता, ऋषभ को ब्रह्मा की उपाधि दी गयी है।

क्र.	श्रुति	शुद्ध स्वर	कोमल स्वर	तीव्र स्वर
1.	तीव्रा			तिव्र निषाद
2.	कुमुद्वति			तीव्रतर निषाद
3.	मंदा			तीव्रतम निषाद
4.	छन्दोवती	षड्ज		
5.	दयावती		पूर्व रे	
6.	रंजनी		कोमल रे	
7.	रक्तिका	ऋषभ	पूर्व ग	
8.	रौद्री		कोमल ग	तीव्र रे
9.	क्रोधा	गंधार		तीव्रतर रे
10.	वज्रिका			तीव्र ग
11.	प्रसारिणी			तीव्रतर ग
12.	प्रीती		मृदु म	तीव्रतम ग
13.	मार्जनी	मध्यम		अति तीव्रतम ग
14.	क्षिति			तीव्र म
15.	रक्ता			तीव्रतर म
16.	संदीपनी		मृदु प	तीव्रतम म
17.	आलापिनी	पंचम		
18.	मंद्ती		पूर्व ध	
19.	रोहिणी		कोमल ध	
20.	रम्या	धैवत	पूर्व नि	
21.	उग्रा		कोमल जि	तीव्र ध
22.	क्षोभिनी	निषाद		तीव्रतर ध
	कुल	**7**	**8**	**14**

स्वर एवं उनके रस -

सा- हास्य, रे-श्रृंगार, ग-हास्य, म-श्रृंगार, प-भयानक, ध-वीभत्स, नि - करूण। तीव्र, तीव्रतर - रौद्र, हास्य, अद्‌भुत।

पण्डित अहोबल जी ने श्रुतियों की जातियों को रसों से जोड़ते हुए वर्णन दिया है जिसमें दीप्ता जाति से - तीव्रा, रौद्र, वज्रिका, उग्रा। आयता जाति से कुमुदवती, क्रोधा, प्रसारिणी, संदीपनी, रोहिणी। करूणा जाति से दयावती, अलापिनी, मंदती। मृदु जाति से मंदा, रक्तिका, प्रीति, क्षिति तथा मध्या जाति से छंदोवती, रंजनी, मार्जनी, रक्ता, रम्या, क्षोभिणी हैं।

श्रुति की जातियां व रस -

1. दीप्ता	वीर, अद्‌भुत, रौद्र
2. आयता	हास्य
3 करूणा	करूण
4 मृदु	श्रृंगार
5 मध्या	वीभत्स, भयानक, हास्य, श्रृंगार

पण्डित अहोबल के अनुसार किसी श्रुति पर आधारित कोई स्वर जब किसी राग में अंश, गृह व न्यास बनता है तब वह राग का वही रस होता है, जो उस श्रुति की जाति का रस था।

पण्डित अहोबल ने रागरागिनी के हनुमत मत को प्रमुख माना है तथा उन्हें विभिन्न नामों से वर्णित किया है - जैसे - हनुमान प्रोक्त, आंजनेयमत, हनुमत, मारूतिमत आदि। पण्डित अहोबल ने हृदय की 22 नाड़ियों से नाद की उत्पत्ति बतायी है। हृदय के ऊपरी भाग में 3 नाड़ियां हैं तथा उनमें तिर्यक 22 नाड़िया हैं। पण्डित अहोबल ने तीन ग्राम (षडज, मध्यम, गंधार) का वर्णन किया है तथा मूर्च्छना को ग्रामाश्रय कहा है। षडज ग्राम की मूर्च्छना का प्रचार प्रसार अधिक है जिसमें 18648 मूर्च्छनाएं वर्णित हैं। 18648 सम्पूर्ण मूर्च्छनाओं का विस्तृत वर्णन संगीत पारिजात के लगभग 100 श्लोकों में किया गया है।

पण्डित अहोबल ने 68 अलंकार माने हैं जिसमें स्थाई वर्ण के 7, आरोही वर्ण के 12, अवरोही वर्ण के 12, संचारी वर्ण के 25, तालाश्रित अलंकार 7 तथा रागाश्रित अलंकार 5 हैं। जिनके नाम निम्नवत हैं: -

अ. स्थायी वर्णाश्रित - 1. प्रसन्नादी, 2. प्रसन्नान्त, 3. प्रसन्नाद्यंत, 4. प्रसन्नमध्य, 5. क्रमरेचित, 6. प्रस्तार, 7. प्रसाद।

ब. आरोही वर्णाश्रित - 1. विस्तीर्ण, 2. निष्कर्ष, 3. बिन्दु, 4. अभ्युचय, 5. हसित, 6. प्रेंखित, 7. आक्षिप्त, 8. संधिप्रच्छादन, 9. उद्धित, 10. उद्धाहित, 11. त्रिवर्ण, 12. पृथ्वीगेणी/वेणी

स. अवरोही वर्णाश्रित - 1. विस्तीर्ण, 2. निष्कर्ष, 3. बिन्दु, 4. अभ्युचय, 5. हसित, 6. प्रेंखित, 7. आक्षिप्त, 8. संधिप्रच्छादन, 9. उद्धित, 10. उद्धाहित, 11. त्रिवर्ण, 12. पृथ्वीगेणी/वेणी

द. संचारी वर्णाश्रित - 1. मंद्रादी, 2. मन्द्रमध्य, 3. मद्रांत, 4. प्रस्तार, 5. प्रसाद, 6. व्यावृत, 7. चलित, 8. परिवर्त, 9. आक्षेप, 10. बिन्दु, 11. उद्धाहित, 12. उर्मि, 13. सम, 14. प्रेंख, 15. निष्कुंजित, 16. श्येन, 17. क्रम, 18. उद्धाटित, 19. रंजित, 20. सन्निवृत, 21. प्रवृत, 22. वेणु, 23. ललितस्वर, 23. हुँकार, 25. ह्वाभान, 26. अवलोकित (उपरोक्त अलंकारों में सम और प्रेन्ख दोनों एक ही होने के कारण उन्हें एक ही माना जायेगा)।

य. तालाश्रित वर्णाश्रित - 1. इन्द्रनील, 2. महावज्र, 3. निर्दोष, 4. सिर, 5. कोकिली, 6. आवर्तक, 7. सदानन्द।

र. रागाश्रित वर्णाश्रित - 1. चक्राकार, 2. जव, 3. शंख, 4. पद्मनिभ, 5. वारिद

ल. अन्य अलंकार - 1. भद्र, 2. नन्द, 3. जित, 4. सोम, 5. ग्रीव, 6. भाल, 7. प्रकाश (उपरोक्त 7 अलंकारों को 68 में नहीं गिना जायेगा)।

पं. अहोबल ने रागों के गायन समय पर प्रकाश डाला। उन्होंने कुछ रागों को सर्वकालिक मान्यता दी है, जैसे मेघ मल्हार, वर्षा ऋतु में किसी भी समय गाया बजाया जा सकता है।

प्रातः काल में - घनाश्री, मालश्री

दिन का द्वितीय प्रहर में - दीपिका राग

दिन का तृतीय प्रहर में - ढक्का राग

दिन का सर्वप्रहर में - सैंधव, मेघ आदि

पं. अहोबल ने 122 रागों के लक्षण भी दिये जिसमें अंश स्वर, गृह स्वर, न्यास आदि उल्लेखित हैं। इसके अतिरिक्त 5 गीतियों का वर्णन किया है- 1. शुद्धा - वक्र स्वर युक्त, 2. भिन्ना - सूक्ष्म स्वर, मधुर गमक से, 3. गौरी - मंद्र मध्य तार तीनों सप्तकों से, 4. बेसरा - द्रुतलय युक्त, 5. साधरणी - चारों गीतियों से निर्मित।

संगीत पारिजात ग्रथ संगीत का एक महत्वपूर्ण ग्रंथ है जिसमें स्वर, मूर्च्छना, 20 गमक, समय, रस, जाति, उद्ग्राहक तान आदि का विस्तृत वर्णन किया गया है। इसके अतिरिक्त तारों की लम्बाई के आधार पर स्वरों का लक्षण, विभिन्न रागों का विवरण, आधुनिक काल के कुछ प्रमुख वाद्यों जैसे (तानपुरा) का प्रथम उद्धरण तथा देशी तालों की पटाक्षर सहित विवरण हमें इसी ग्रंथ से प्राप्त होता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. संगीतांजली: ओमकार नाथ ठाकुर।
2. संगीत चिन्तामणि - आचार्य बृहस्पति।
3. भातखण्डे संगीत शास्त्र भाग-1 - पण्डित भातखण्डे जी।
4. संगीत पद्धतियों का तुलनात्मक अध्ययन - पं. भातखण्डे जी।
5. Hindustani Music : Ashok Ranade
6. भारतीय संगीत एक ऐतिहासिक विश्लेषण - प्रो0 स्वतंत्र शर्मा।

प्राचीन कालीन ग्रंथों में वर्णित तंत्री वाद्यों की उपयोगिता एवं महत्ता : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ. रितु सिंह

सारांश

ऐतिहासिक दृष्टि से भारतीय संगीत का सूत्रबद्ध ऐतिहासिक प्रमाण सर्वप्रथम वेदों में परिलक्षित होता है। वेदों में सामवेद संगीत का वेद माना गया है। वास्तव में सामवेद, मुख्यतया ऋग्वेद के ऐसे मन्त्रों का संकलन है जो गेय है। इस प्रकार यज्ञादि कार्य के आरम्भ में सामगान की प्रथा ही आगे चलकर संगीतशास्त्र की जन्मदात्री बनी है। वैदिक साहित्य में सर्वप्रथम 'बाण' नामक तन्त्री वाद्य का वर्णन प्राप्त होता है। ऋग्वेद में अन्य वाद्यों के साथ बाण, गर्गर, गोधा, कर्करि, क्षोण, आघाटि आदि वाद्यों का वर्णन भी मिलता है, जो कि विद्वानों के अनुसार तंत्री वाद्य हैं। ऋग्वेद में वर्णित वाद्यों के अतिरिक्त यजुर्वेद और अथर्ववेद में घाटलिका (अपघाटलिका), काण्ड वीणा, पिच्छोला (पिछोरा), स्तम्बल वीणा, ताल्लुक वीणा, अलाबु वीणा और कपिशीर्ष्णी वीणा का उल्लेख मिलता है। सामवेद के 'जैमिनीय ब्राह्मण' में पूर्वोक्त वर्णित वाद्यों के अतिरिक्त ऐषीकी और काश्यपी वीणा का भी उल्लेख मिलता है। इससे स्पष्ट है कि वैदिक काल में तन्त्री वाद्यों का विशेष प्रचलन था। अतएव ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर भारतीय ग्रन्थों में वर्णित तन्त्री वाद्यों का अध्ययन नितान्त आवश्यक है, जिससे कि हम तन्त्री वाद्यों के विकास, उनके विविध प्रयोग, समयानुसार रूपान्तर, उनकी वादन विधि, धारण विधि तथा तत्कालीन समय में उनकी उपयोगिता एवं महत्ता आदि सिद्धान्तों को भली-भाँति समझ सके।

मुख्य बिन्दु - *वैदिक वाङ्मय, रामायण, महाभारत, बौद्ध ग्रन्थ, जैन ग्रन्थ, तन्त्री वाद्य*

वैदिक वाङ्मय में वर्णित तन्त्री वाद्य -

भारत की गौरवमयी संस्कृति का प्रथम दिग्दर्शन हमें वैदिक युग में ही देखने को मिलता है। वैदिक युग भारत के सांस्कृतिक इतिहास में प्राचीनतम युग माना जाता है। वैदिक युग से अभिप्राय उस सुदीर्घ कालखण्ड से है, जिसमें चारों वेदों तथा उसके विविध अंगों का विस्तार हुआ है। वैदिक साहित्य में ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद के अलावा इनकी व्याख्या करने वालो 'ब्राह्मण' 'आरण्यक' 'उपनिषद्' आदि ग्रन्थ तथा तत्कालीन रीति-रिवाजों पर प्रकाश डालने वालो सूत्र ग्रन्थों का समावेश होता है। वेदों को विश्व का आदि वाङ्मय मानते हैं। अत: तन्त्री वाद्यों के विषय में भी सूत्रबद्ध ऐतिहासिक प्रमाण हमें सर्वप्रथम वैदिक वाङ्मय से ही प्राप्त होते हैं।

ऋग्वेद को प्राचीनतम वेद माना जाता है। ऋग्वेद में तन्त्री वाद्यों को प्रमुख स्थान प्राप्त

असिस्टेन्ट प्रोफेसर - सितार कमला आर्य कन्या पी.जी.कालेज, मीरजापुर

था। प्रात: काल पर मंगल वाद्य के रुप में वीणा आदि वाद्यों का वादन किया जाता था। उदाहरण स्वरूप ऋग्वेद में 'आघाटि' नामक तन्त्री वाद्य का उल्लेख 10/146/2 में प्राप्त होता है- 'आघाटिभिरिव धावयन्नरण्यनिर्महीयते'। सायण ने 'आघाटि' के लिए अन्य पर्याय 'घाटलिका' तथा 'काण्डवीणा' बताया है। ऋग्वेद में 'बाण' नामक तन्त्री वाद्य की गम्भीर ध्वनि का उल्लेख प्राप्त होता है। है। ऋग्वेद में अन्य वाद्यों के साथ बाण, गर्गर, गोधा, कर्करि, क्षोण, आघाटि आदि वाद्यों का वर्णन भी मिलता है, जो कि विद्वानों के अनुसार तंत्री वाद्य हैं। शततन्त्री 'बाण' के सम्बन्ध में 'तैत्तिरीय संहिता'' में निम्न उल्लेख पाया जाता है-

''बाण:शततन्तुर्भवति शतायु: पुरूष: शतेन्द्रिय आयुष्येवेन्द्रिये प्रतितिष्ठन्ति।''

ऋग्वेद के 'ऐतरेय आरण्यक' में दैवी तथा मानुषी वीणा का सुन्दर सामंजस्य स्थापित करते हुए कहा गया है ''वीणा के शीर्ष से अभिप्राय तुम्ब फल से है, काष्ठ खोह उसका उदर है जो कि ध्वनि में गुंजन उत्पन्न करता है, वीणा की जिह्वा उसकी वादन क्रिया है, वीणा की अनेक तन्त्रियाँ उसकी अगुँलिया है और स्वर उसकी वाणी हैं, वीणा से उद्भूत। शरीर वीणा में जैसे धमनियाँ है, वैसे ही दारवी वीणा में अनेक तंत्रियाँ है। मानव शरीर की भाँति वीणा भी चर्माच्छादित की जाती है।''

संगीत की दृष्टि से 'सामवेद' का अपना विशेष महत्व है। वास्तव में 'सामवेद' मुख्यतया ऋग्वेद के ऐसे मन्त्रों का संकलन है, जो गेय है और यही गेय ऋचाएँ 'सामगान' कहलायी।

सामगान को वीणादि वाद्यों के साथ गाया जाता था। वैदिक काल में वीणा वाद्य के अनेक नाम प्रचलित थे। जैसे गात्र वीणा, कात्यायनी, रावणी, घोषवती, काण्ड वीणा, कर्करि, बाण आदि। तत्कालीन समय में वीणा के अनेक प्रकार प्रचलित थे, जैसे- गज से बजने वाली वीणा, पिनाकीतेत्तर के दण्ड से बजायी जाने वाली वीणा तथा अंगुलियों एवं कर्मिका (मिजराब) आदि से बजाये जाने वाली वीणा इत्यादि। इस काल में वीणा की महत्ता तथा व्यापकता इतनी बढ़ चुकी थी कि 'ऐतरेयआरण्यक' में वीणा को शरीर की रचनानुसार ही कल्पित किया गया जिसे देवी वीणा कहा गया है।

वाल्मीकि कृत 'रामायण' में वर्णित तन्त्री वाद्य -

महर्षि वाल्मीकि द्वारा रचित 'रामायण'' भारत का प्राचीन सांस्कृतिक महाकाव्य माना जाता है। इस काल की महानगरी श्री राम की अयोध्या, वानर राज सुग्रीव की किष्किन्धा और राक्षस राज रावण की लंका वीणा वादन से सदा अनुनादित होती रहती थी। वीणा का उस समय अत्यधिक प्रचार था। रामायण में वीणा का जगह-जगह वर्णन मिलता है। रामायण में विपंची जैसी प्राचीन वीणाओं एवं शुद्ध सप्त जातियों का वर्णन प्राप्त होता है जिससे यह सिद्ध होता है कि चार षड्ज ग्रामिक एवं तीन मध्यम जातियों से वाल्मीकि परिचित थे। विपंची वीणा का वर्णन एक स्थान पर उन्होंने इस प्रकार से किया है-

''विपंची परिगृहयान्या नियता नृत्यशालिनी। निद्रावशमनुप्राप्ता सहकान्तेव भामिनी।।''

इस प्रकार वीणा तत्कालीन समय का लोकप्रिय वाद्य रहा है। अत: रामायण में वीणा, विपंची तथा वल्लकी आदि वीणाओं का उल्लेख महर्षि वाल्मीकि ने किया है।

महाभारत में वर्णित तन्त्री वाद्य -

वीणा वाद्य का महत्व एवं प्रयोजन धार्मिक तथा लौकिक दोनों ही अवसरों पर महाभारत में हमें देखने को मिलता है। व्यास ने बारम्बार वीणा अथवा तन्त्री वाद्य का उल्लेख किया है, जो इस ओर संकेत करता है कि उस समय वाद्यों में तन्त्री वाद्य प्रमुख थी।

इस युग में तत्, वितत्, घन तथा सुषिर वाद्यों के विविध प्रकार का उल्लेख मिलता है, किन्तु तन्त्री वाद्यों का सर्वाधिक लोकप्रिय स्थान रहा है। इसके अनेकों उदाहरण देखने को मिलते थे। यथा -

मधुरेणैव गीतेन वीणाशब्देन चैव ह।
प्रबोध्यमानो बुबुधे स्तुतिभिर्मगंलैस्तथा।।

यज्ञादि समारोहों पर गायन के साथ सदैव वीणा वादन किया जाता रहा है। वीणा एवं वल्लकी दोनों का उल्लेख महाभारत में प्राप्त होता है।

''वीणानां बल्लकीनां च नू पुराणां च शिंजितै।''

इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि वीणा तथा वल्लकी दोनों स्वतन्त्र एवं भिन्न तन्त्री वाद्य थे। महाभारत में वीणा के प्रचुर एवं गौरवपूर्ण उल्लेख से स्पष्ट है कि तत्कालीन समय में तन्त्री वाद्य सर्वाधिक लोकप्रिय वाद्य रहा है।

बौद्ध ग्रन्थों में वर्णित तन्त्री वाद्य -

भारत की सांस्कृतिक गतिविधि के परिज्ञान के लिए बौद्ध साहित्य का परिशीलन नितान्त आवश्यक है। वैदिक ऋचाओं की भाँति बौद्ध सूत्रों को भी सुस्वर में पढ़ा जाता था। बुद्धचरित में अन्त:पुर में महती वीणा, मृदंग, पणव, तूर्य, वेणु आदि वाद्यों का वादन मनोरंजन हेतु किया जाता था ऐसा उल्लेख मिलता है। बौद्ध ग्रन्थों में वाद्यों के लिए प्राय: 'तुरीयानि' शब्द मिलता है। वैदिक काल के जैसी धनुर्वीणा अर्थात धनुष के आकार की वीणा का उल्लेख जातकों में मिलता है। इस युग में वीणा की तन्त्री और गान के स्वरों में मधुर सामंजस्य रहता था। यथा

''तन्तिस्सरेण गीतस्सरम् गीतरसरेण तन्तिस्सरम् अनतिक्कमिधा मधुरेण सुरेण गायि''

जैन ग्रन्थों में वर्णित तन्त्री वाद्य -

वेद, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् के समान जैन वाङ्मय में भी संगीत के सिद्धान्त उपलब्ध होते हैं। जैनियों के साहित्य ठाणांगसूत्र, रायापसेणीय तथा कल्पसूत्र में संगीत विषयक प्रचुर सामग्री मिलती है। इस युग में वीणा वाद्य का विशेष उल्लेख मिलता है। इस युग में अनेक अच्छे-अच्छे वीणा वादक भी हुए। मलयगिरी ने अपनी टीका में जिन वाद्यों का उल्लेख किया कच्छ अथवा कच्छपी, चित्त वीणा अथवा चित्र वीणा इत्यादि।

संस्कृत नाटकों एवं ग्रन्थों में वर्णित तन्त्री वाद्य -

वैदिक साहित्य, महाभारत और रामायण ग्रन्थों के अतिरिक्त संस्कृत नाटकों में भी तन्त्री वाद्यों से सम्बन्धित विषयों का अनेक स्थानों पर उल्लेख किया गया हैं, विशेषकर महाकवि कालिदास एवं महाकवि भास के नाटकों में। कालिदास के नाटकों का आरम्भ ही वृंदवादन से हुआ करता था। कालिदास के ग्रन्थों में वीणा सम्बन्धी उल्लेख यत्र-तत्र दिखाई देते हैं। वीणा वादन के विभिन्न पक्षों का वर्णन उनके संगीत विषयक सूक्ष्म ज्ञान को उद्घाटित करता है। वीणा वादन से सम्बन्धित जानकारी के लिए मेघदूत का निम्न श्लोक द्रष्टव्य है-

उत्संगे वा मलिनवसने सौन्य! निक्षिव्य वीणां,
मदगोत्रंङ्क विरचितपदं गेययुद्गातुकामा।
तन्त्रीमाद्रां नयनसलिलैः सारयित्वा कथचिदं।
भूयोभूयः स्वयमपि कृतां मूर्च्छनां विस्मरन्ती।।

उपरोक्त श्लोक से उक्त वीणा का जो स्वरूप सामने आता है उससे यह स्पष्ट होता है कि वीणा में पर्दे नहीं थे तथा किसी पट्टिका पर तन्त्री कसी होती थी। आज भी कुछ तन्त्री वाद्यों में नए राग के वादन के लिए तन्त्री को पुनः सारणा या उस मेल में मिलाना होता है। वीणा को उत्संग में रखकर बजाने का संकेत है। अश्रु से गीली हो जाने के कारण तन्त्री बार-बार विस्वर हो जाती है। वह पुनः सारणा द्वारा वादन योग्य होती है जो कि कवि के संगीत विषयक सूक्ष्म ज्ञान की ओर संकेत करता है। गीली हो जाने पर विस्वर (बेसुरा) हो जाना तन्त्री में जिस पर अश्रुओं की या अन्य प्रकार की तन्त्री की ओर संकेत करता है।

भास के नाटकों में वर्णित तन्त्री वाद्य -

भास का उल्लेख कालिदास ने प्राचीन एवं प्रौढ़ नाटककार के रूप में किया है। भास की अन्यान्य कृतियों में संगीत विषयक उल्लेख यत्र-तत्र पाए जाते है। संगीत कला के लिए 'गन्धर्व' शब्द का प्रयोग भास की कृति में पाया जाता है। नारद गान्धर्व वेद के प्रवर्तक है, स्पष्ट उल्लेख भास के नाटकों में उपलब्ध है-

वैतालिकायाः सकाशे वीणां शिक्षितुं नारदीयां गतासीत्।

भास के नाटकों में वाद्य के लिए 'अतोद्य, शब्द का प्रयोग हुआ है। वीणा का गौरव-गान चारूदत्त नाटक के निम्न श्लोक में हुआ है-

उत्कण्ठितस्य हृदयानुगता सखीव
संकीर्णदोषरहिता विषयेषु गोष्ठी।
क्रीडारसेषु मदनव्यसनेषु कान्ता
स्त्रीणां तु कान्तरतिविघ्नकारी सपत्नी।।

अर्थात 'वीणा' सोत्कण्ठ पुरूषों के लिए हृदय सहचरी सखी के समान है तथा विषय-लालसा का निर्दोष रूप है, मदनोचित कामकेलि में कान्ता के सदृश है तथा स्त्रियों के लिए रतिविघ्नकारी सपत्नी के समान है। वीणा वादन न केवल मनुष्यों को आकृष्ट करने वाला है बल्कि मन्त्र विद्या के समान मत्तमातंगों को भी वशीभूत करता है। कोण से बजायी जाने वाली

घोषवती नामक वीणा का उल्लेख भास ने इस प्रकार किया है-

हस्तेन स्त्रस्यकोण्ोन कृतमाकाशवादितम्।।

इस प्रकार संस्कृत नाटककारों ने भी अपने नाटको में तन्त्री वाद्यों को तरह-तरह की उपमाओं से सजाकर प्रस्तुत किया है। जिससे कि स्पष्ट होता है कि तन्त्री वाद्य का सुदृढ़ वर्चस्व हमेशा से रहा है।

नाट्यशास्त्र में वर्णित तन्त्री वाद्य

प्राचीन काल का संगीत विषयक सर्वाधिक महत्वपूर्ण ग्रन्थ भरत मुनि द्वारा रचित 'नाट्यशास्त्र' है। भरत का 'नाट्यशास्त्र' भारतीय साहित्य तथा संगीत का बृहद कोष है तथा दोनों के सम्बन्ध में प्राचीन एवं सप्रामाणिक सामग्री प्रस्तुत करता है। भरत ने नाट्य के लिए जो उपयुक्त संगीत था उस पर विस्तार पूर्वक विचार किया है और साथ ही साथ संगीत के मूलभूत सिद्धान्तों पर भी प्रकाश डाला है। इसी अनुक्रम में अट्ठाईसवें अध्याय से छत्तीसवें अध्याय तक संगीत का निरूपण किया है जिसके अध्ययन से भारतीय संगीत की मौलिक रूपरेखा भली भाँति स्पष्ट हो जाती है।

भरत ने 'नाट्यशास्त्र' के अट्ठाईसवें अध्याय के प्रथम श्लोक में ही अतोद्य (चतुर्विध वाद्य)

का विधिवत उल्लेख किया है। उन्तीसवें अध्याय में 'ततातोद्य विद्यानम्' के अन्तर्गत जातियों का रसानुकूल प्रयोग स्वर-वर्ण अलंकार, विभिन्न प्रकार की वीणाओं की वादन-विधि का विस्तृत उल्लेख किया है। नाट्यशास्त्र में विभिन्न वीणाओं की चर्चा है, जैसे- चित्र, विपंची, कच्छपी, मत्तकोकिला एवं घोषा इत्यादि। चित्र एवं विपंची वीणा को प्रमुख माना है तथा कच्छपी तथा घोषा को उनकी अंगभूत वीणा माना है। भरत की मुख्य वीणा 'मत्तकोकिला' वीणा थी। उसका वादक 'वैणिक' कहलाता था।

बृहद्देशी में वर्णित तंत्री वाद्य -

मतंग कृत 'बृहद्देशी' ग्रन्थ में तत्कालीन समय में प्रचलित अनेक वीणाओं का उल्लेख मिलता है, जैसे-परिवादिनी, विपंची, वल्लकी, घोषवती इत्यादि। अनेक संगीताचार्यों के अनुसार 'मतंगष् ने ही किन्नरी वीणा का अविष्कार किया। वीणा पर परदे लगाने की योजना सर्वप्रथम मतंग ने ही की। कुछ विद्वानों का यह मानना है कि सर्वप्रथम मंतग मुनि ने ही चित्र वीणा के नाम का उल्लेख किया है। बृहद्देशी में चल वीणा और श्रुति वीणा का भी उल्लेख है।

नारद कृत संगीत मकरन्द में वर्णित तन्त्री वाद्य -

'संगीत मकरन्द' नारद का सबसे प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में 19 वीणाओं की चर्चा की गई है जिसमें कच्छपी, कुब्जिका, चित्र, ब्राह्मी, रौद्री, कूर्मी, रावणी, सरस्वती, किन्नरी, सैन्ध्री और घोषका ये प्रमुख वीणाएँ हैं।

निष्कर्ष - प्राचीन कालीन अनेक तन्त्री वाद्यों का वर्णन तत्कालीन संगीत ग्रन्थों में प्राप्त होता है। वैदिक काल से आरम्भ हुई तन्त्री वाद्यों की सनातन परम्परा आज भी उतनी ही प्रचलित है जितनी की प्राचीन काल में थी। तन्त्री वाद्यों का विकास न केवल उत्तर भारत में बल्कि दक्षिण भारत में भी समान रूप से हुआ। प्राचीन काल से वर्तमान काल तक तन्त्री वाद्यों के रूपों में बहुत परिवर्तन आयें। प्राचीन काल में समस्त तन्त्री वाद्यों को ''वीणा'' शब्द से सम्बोधित किया जाता था, इनके साथ कुछ नए रूपों का भी प्रादुर्भाव हआ। उपरोक्त विवरण के आधार पर यह प्रमाणिकता के साथ कहा जा सकता है कि तन्त्री वाद्यों का स्थान एवं महत्व अन्य वाद्यों की अपेक्षा प्राचीन काल में भी सर्वोपरि रहा है तथा इनका स्वरूप चाहे जिस प्रकार का रहा हो इसमें सन्देह नहीं है कि यह प्रारम्भ से ही समस्त चर अचर को सम्मोहित करने में सक्षम रहे हैं तथा भारतीय संगीत के गौरव को सदा से बढ़ाते रहे हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची:

1. भट्नागर, डॉ. रजनी, 'सितार वादन की शैलिया', कनिष्क पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, (2006), पृ. 57
2. मिश्र, डॉ. लालमणि, 'भारतीय संगीत वाद्य', भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, (1973), पृ. 26
3. डॉ. विद्याविलास, 'वाद्य-प्रकाश' (पाण्डुलिपि), तत् वाद्य- अध्याय, श्लोक 35
4. महाडिक, डॉ. प्रकाश, 'भारतीय संगीत के तन्त्री वाद्य', मध्य प्रदेश, हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, (1994), पृ. 28
5. सिंह, डॉ. संगीता सिंह, 'उत्तर भारतीय संगीत में तन्त्री वाद्यों का स्थान एवं उपयोगिता', कनिष्क पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, (2009), पृ. 45
6. श्रीवास्तव, डॉ. धर्मावती, 'प्राचीन भारत में संगीत', भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी, (1967), पृ. 30

अयोध्या की संगीत परम्परा में अवधी लोकगीत

डॉ. रामशंकर*, अशोक कुमार**

सार

भारतीय संस्कृति की प्राचीनतम केन्द्र अयोध्या माना जाता है। इससे हम सहज अनुमान लगा सकते हैं कि कला के रूप में संगीत को सामाजिक प्रतिष्ठा भी सर्वप्रथम इसी धरती पर मिली होगी। गायन, वादन तथा नर्तन तीनों के समाहार को संगीत के नाम से जाना जाता है। महर्षि वाल्मीकि का कहना है कि अयोध्या का कोना-कोना निरन्तर वेद ध्वनि तथा संगीत के कोमल-तीव्र स्वरों से निरन्तर गुंजरित होता रहता था। उस पुरी में बहुत सी ऐसी नाटक मण्डलियाँ थी, जिनमें केवल स्त्रियाँ ही नृत्य एवं अभिनय करती थी। नगर में ताल जीवी (संगीत में निपुण तथा उसी से जीविका अर्जित करने वाले) पुरुषों तथा नर्तकियाँ सुन्दर वेश-भूषा की भी कमी नही थी।

लोकगीतों की चर्चा अगर न की जाय तो गायन की परम्परा पूर्ण नहीं हो सकती। अवध क्षेत्र का सर्वाधिक प्रसिद्ध लोकगीत है देवीगीत, सोहर चैती, विरहा, होरी, फाग, कजरी, आल्हा आदि अन्य लोकप्रिय लोकगीत है। रामकथा पर आधारित अवध के सोहर बड़े ही मार्मिक है। गाँव में इनकी परम्परा स्त्रियों में सुरक्षित है। राम जन्मोत्सव के अवसर पर विशेष रूप से इन्हें गली-गली में सुना जा सकता है।

अयोध्या के यादव वर्ग में बिरहा के कई अच्छे गायक कलाकार है। बिरहा भी रामकथा पर आधारित हैं। विवाह गीत और अवध की नारी यहाँ तो अब कभी-कभी मन्दिरों में ही सुनने को मिलती है, नगर में इसकी परम्परा अब लुप्त प्राय हो गयी है।

सूचक शब्द- *समाहार, प्राचीनतम, गुंजरित, अभिनय।*

भूमिका:-

आज की अयोध्या की भौगोलिक विस्तार भी बहुत संकुचित है, इसके लिए 'अवध' शब्द के साथ जुड़े भौगोलिक विस्तार को भी अगर हम ध्यान में रखे तो कह सकते है। इस काल की संगीत धारा को पुष्ट करने का कार्य एक तरफ तो भक्तिधारा ने किया, दूसरी तरफ मुस्लिम फनकारों ने। इसी काल में प्राचीन तथा फारसी तर्ज़ों का संगम हुआ। इस दुहरी कलम से संगीत के क्षेत्र में नये-नये रूप-रंग के गुलों की सृष्टि हुई। महाकवि तुलसी के प्रभाव से दक्षिण में जन्मी भक्तिधारा जब अयोध्या पहुँची तो उसके पास ही इष्टोपासना का ललित आधार भक्ति मूलक संगीत भी यहाँ पहुँचा। सर्वप्रथम कौन महापुरुष इसे अयोध्या लाये यह बताना तो बहुत कठिन क्या असम्भव है। लेकिन उस प्रवाह को हम आज भी

*शोध निर्देशक, गायन विभाग, संगीत एवं मंचकला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

**शोध छात्र, गायन विभाग, संगीत एवं मंचकला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

देख सकते हैं। लेकिन प्रकृति भिन्नता के कारण दोनो की विकास दिशाएँ शुरू में अलग-अलग थी। एक दरबार की शोभा थी, दूसरी मन्दिरों की साधना। लेकिन दरबारों की समाप्ति के बाद दोनों रस एक धार हो गयी।

अवध शब्द अयोध्या का ही विकसित रूप हैं अवध को प्राचीन कोसल का आधुनिक नाम कहा जा सकता है। भारतीय इतिहास कोश में इसकी व्याख्या इस प्रकार की गयी-

''यह इलाहाबाद के उत्तर-पश्चिम में है। इस राज्य से होकर सरयू नदी बहती है, जो गंगा में मिल जाती है-रामायण के अनुसार रामचन्द्र जी के पिता राजा दशरथ कोशल के राजा थे, और अयोध्या उनकी राजधानी थी ऐतिहासिक काल में कोसल उत्तरी भारत में सोलह महाजनपदों (राज्यों) में से था। और उसकी राजधानी श्रावस्ती थी।

यह निश्चित रूप से ज्ञात नहीं है कि कब सारा कोशल राज्य अयोध्या के नाम से विख्यात हो गया। उसका आधुनिक अवध नाम अयोध्या का ही विकृत रूप है। बौद्ध काल में इसे साकेत नाम से जाना जाता था।

अवध प्रान्त को बनाने में मुगल बादशाह अकबर का बहुत बड़ा हाथ था अकबर के शासन काल में ही अयोध्या परिक्षेत्र के लिए अवध शब्द का प्रयोग किया गया-

''अकबर ने अपने शासन की एक ईकाई के रूप में अवध प्रान्त को जन्म दिया जिसका राज्यपाल सूबेदार कहलाता था और अयोध्या नगर का भी सरकारी नाम अवध हो गया।''

भौगोलिक सीमाएँ:-

अवध की सीमा उत्तर में हिमालय पूर्व में बिहार दक्षिण में इलाहाबाद के मणिकपुर सरकार और पश्चिम में कन्नौज सरकार तक थी। अवध पंच हवेली अर्थात् पाँच जनपदों अवध (फैजाबाद), गोरखपुर, बहराइच, लखनऊ व खैराबाद में बटा था। वर्तमान अवध की भौगोलिक सीमाओं में तो विशेष अन्तर नहीं आया, पर प्रशासनिक फेर बदल के कारण इसकी स्थिति पहले से कुछ भिन्न हो गयी। इस प्रकार अब अवध के 12 जनपदों की स्थिति इस प्रकार है- (1) सीतापुर, (2) खीरी, (3) हरदोई, (4) उन्नाव, (5) रायबरेली, (6) प्रतापगढ़, (7) सुल्तानपुर, (8) बहराइच, (9) गोण्डा, (10) बाराबंकी, (11) लखनऊ, (12) फैजाबाद

स्वतन्त्र भारत में यह समूचा प्रान्त उत्तर प्रदेश में समाविष्ठ है और इसकी राजधानी लखनऊ है।

विभिन्न अवधी लोकगीतों के नाम:-

अयोध्या में अवधी लोकगीत पारम्परिक विभिन्न शैलियों के नाम इस प्रकार है- गर्भाधान संस्कार, सरिया, पालना, गीत, अवधी, छठी, संस्कार गीत, बन्ना गीत, देवी गीत, मण्डप गीत, सुहाग गीत, मंगल गान, धार्मिक लोकगीत, देवताओं के गीत, सावन गीत, बारहमासा, बसंत ऋतु के गीत, चक्की गीत, चरखा गीत, श्रम गीत, बिरहा, धोबियों के गीत, निर्गुनिया, कहारों के गीत, केवटों के गीत, नृत्य गीत, लोक नृत्य, परिहास गीत, पनिहारिन गीत, क्रीडा गीत, बालिकाओं के गीत आदि।

श्री रामनरेश त्रिपाठी जो कि लोकगीतों के गहन अध्येता हैं और स्थान-स्थान पर स्वयं भ्रमण कर उन्होंने ग्राम्य गीतों को जिस प्रकार समझा है और प्रस्तुत किया है वह विलक्षण है। उनके अनुसार ''ग्राम्य गीत प्रकृति'' के उद्गार हैं। उनमें अलंकार नहीं केवल रस है, छन्द नहीं केवल लय है।''

देवेन्द्र सत्यार्थी जी का कहना है कि ''लोकगीत किसी संस्कृति के मुँह बोलते चित्र हैं।''

सच तो यह है कि लोकगीत निश्छल मानव हृदय की अभिव्यक्ति है। जहाँ भावों को व्यक्त करने के लिए वाणी को खूबसूरत रूप से लयात्मक बनाने का भी प्रयास है। किसी किस्म की विद्धता या शास्त्रीयता यहाँ आधार नहीं है, जो कुछ है वह है भावों की निश्छल अभिव्यक्ति। प्राय: लोकगीतों में सामूहिकता एवं लोकरंजन का भाव भी निहित है।

अवधी लोकगीतों में प्राचीन परम्परा पीढ़ी दर पीढ़ी लोकमानस से सम्बन्ध स्थापित करते हुए वर्तमान समय तक आ पहुँची है। यहाँ लोकगीत जनजीवन की व्यापकता से जुड़े है। सामान्य जनों के बीच है और जिस प्रकार सहज संवाद की भाषा है, वैसी ही स्थिति लोकगीतों में है।

सत्य तो यह है कि लोकगीतों की मांगलिकता एक क्षण का रूमानी अहसास नहीं है, यह सम्पूर्ण जीवन के सुख-दुख, कर्म, उल्लास, व्यथा-कथा सभी की अभिव्यक्ति की पहचान है। मांझी-गीत, पसिया गीत और चमड़ा गांठने वालों के बहुत से गीत उनकी कठिनाइयों को अध्यात्म की ऊँचाइयों तक पहुँचाने में समर्थ हो सके हैं।

अवधी या अवध की अधिकांश जनता धार्मिक निष्ठा व धार्मिक संस्कार वाली है। प्राय: सभी मांगलिक पावन अवसरों पर देवी गीत गाये जाते है। इस गीत को गाते समय मनौतियाँ मानते है।

देवी गीत का उदाहरण-

आवौ हे देवी मैया बेठो मारे अंगना,
देबै सतरंगिया बिछाय रे,
तोहेर सरन मै जग रोपेऊँ,
तोहरी कृपा से पूरन होए रे।।
आवौ भवानी हो बेठो मोरे अंगना,
देबै सतरंगिया बिछाय रे।
घियु गुड़ केरे मैया होमिया करद्बै,
घुमवाँ उठे अकास रे।।
न मोरे नोनवा, न मोरे तेलवा,
ना मोरे हरदी की गाँठ रे।
मटिया कै चुल्हना संवरई न जानी,
कस जगि पूरन होय रे।।
हम देबै नोनवा, हम देबै तेलवा,
हम देबै हरदी की गाँठ रे।
मटिया के चुल्हवा संवारि हम देवै,
तोरा जगि पूरन होय रे।।

सोहर शब्द की उत्पत्ति संस्कृत के सूतिकागृह और प्राकृत सुइहर से हुई है। इसे सोहिला भी कहते है। सोहिला शब्द का उल्लेख गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी किया है और अपनी काव्यकृति गीतावली में रामचंद्र के जन्म के शुभ अवसर पर नारी कण्ठों से सोहिला गान का दृश्य सा प्रस्तुत किया है। उन्होंने सोहर छंद के रामलला नैहछू काव्य की रचना की है।

सरिया की भाँति सोहर भी अवधांचल का एक प्रसिद्ध व प्रमुख लोकगीत है। इसे शिशु के जन्मोपरांत गाया जाता है। इसे स्त्रियाँ समवेत स्वरों में गाती है। इसमें संतान के जन्म के उछाह का मनमोहन वर्णन रहता है। भाषा में आँचलिक परिवर्तनों के होते हुए भी मूलभाव सदैव एक ही प्राप्त होता है- आनंद और उल्लास का भाव। मांगलिक अवसर पर गाये जाने के कारण इन गीतों को मंगल गीत भी कहा जाता है। इसमें उमंग, उल्लास और उत्साह देखते ही बनता है। सोहर गीत का उदाहरण इस प्रकार से देख सकते है-

सोहरगीत

बाजत अवध बधौया, दशरथ घर सोहर हो
ऐ हो जन्में हैं दीन दयाल,
दुनहु कुल तारन हो
काहे के छूरा नार छीनौ,
काहे रे नहवायहु हो
ए हो काहे पीताम्बर अंग पोछयों,
कहाँ रे पऊढायहु हो
सोने के छूरा नार छीनौ,
गंगा जल नहावायहु हो
ऐ हो पियरो पीताम्बर अंग पोछयों,
सूपेह पऊढायहु हो
राम के माथे के लटुरिया,
बहुत नीक लोगै हो
ए हो माने,
कँवल केरे फूल त भँवरा बिराजै हो
राम के नैनो का कजरवा,
बहुत नीक लागै हो
ए हो दीया है बुझा सुहागिन,
पलटी उंगरिण नाहि डोरे हो।

बधावा गीत-

सामान ननद अपने भतीजे के लिए लाती है उसे बधावा कहा जाता है, किन्तु नवजात शिशु के जन्म अवसर पर नाना के घर से आने वाले सामान को भी बधावा कहा जाता है। अत: इससे सम्बन्धित जो गीत गाये जाते है, उन्हें बधावा गीत कहते है। 'पुत्र जन्म' के अवसर पर गाये जाने वाले गीत बधावा कहलाते है, जितने भी अवध क्षेत्रों में जनपद आते है उन सभी में बधावा गीत गाये जाते है इसकी निश्चित शैली नहीं है। एक बधावा गीत में देखिए बहन भाई के घर बधावा लेकर आती है।

बधावा गीत

बिरन घर बहिन बधावा लायीं।
सो मोरी भउजी ज्वालौ चन्दन किवारी कि तुम्हरे आजु न नदिया आयी
सो मौरी ननदी पहिले यू तो बताओं भतिजवा की खातिर का लहकें आइऊँ
बिरन.....।
सो मोरी भउजी हुँसली कड़ा लाइऊँ जरी का कुर्ता टोपी लाइऊँ
सो मोरी ननदी खिरकी से तुम दइ देओ भीतर अइहो, मगिहैं, रे विदा
बिरन.....।
सो मोरी ननदी ससुर कमाई तुम लै गइऊँ भतिजवा ने केडि न कमाई
सो मोरी भउजी अइसै बैल नहीं बैलो कहाँ गई मौरे बिरन की कमाई
बिरन.....।

रोपनी गीत:-

धान रोपते समय जो गीत गाए जाते हैं उन्हें रोपनी गीत कहते हैं। इन गीतों में भी अभावों की अटूट श्रृंखला है। पर कहीं-कहीं मौसम और परिस्थिति का उल्लास भी गीतों में फूट पड़ता है। श्रम के हेतु आह्वान प्राणों में हर्ष और उत्साह का संचार करता है। रिमझिम फुहारों में मिल-जुल कर धान रोपने का अपना विशेष आनंद है- एक उदाहरण-

रिमझिम बरसत पनियाँ, आवा चली,
धान रौपे धनिया।
लहरत बा तलवा म पनियाँ,
आवा चली धान रोपै धनिया।
सोने की थरिया में ज्योंना परोसै,
पिया काँ जेवावै आई धनिया।
झँझरे गेंडुआ म गंगा जलपनियाँ,
पिया काँ घुटावै आई धनिया।

लौगां इलाइची के बीरा जोरावै,
पिया काँ कुँचावै आई धनिया।
धान रोपि कै जब घर आयों
नाच्यों गायों खुसी मनायें।।
भरि जइहैं कोठिका ए धनियाँ,
आवा चली धान रोपै धनिया।

(रिमझिम पानी बरस रहा है प्रिये! आओ चले धान रोप आयें। तालाब में पानी लहरा रहा है। सोने की थाली में प्रिया ने भोजन परोसा। प्रिय को भोजन करने खेत में पहुँची, झँझर गेडुवे में जल लेकर पान पिलाने पहुँची, लौंग-इलायची का पान बीरा बनाया और अपने प्रिय को पान कुँचाने पहुँची। धान रोपकर जब दंपति घर आए तो नाच गाकर प्रसन्नता व्यक्त की, इस आशा से कि सभी कोठिले धान से भर जाएँगे।)

वर्षा ऋतु सम्बन्धी गीत-

वर्षा ऋतु के महीनों में कजली, सावन तथा झूला गीत आदि गाये जाते है। वर्षा ऋतु में काले-काले बादल, हरी भरी प्रकृति के प्रांगण में मस्ती का जो वातावरण निर्मित करते हैं, वर्षा ऋतु में गाये जाने वाले गीतों का विभाजन निम्नलिखित वर्गों में किया जा सकता है-

(क) सावन के गीत, (ख) झूलों के गीत, (ग) कजली, (घ) बारहमासा, (ङ) छमासा (च) चौमासा

(क) सावन के गीत:- सावन के गीत सावन मास में गाये जाते हैं। इन गीतों का वर्ण्य विषय प्रेम होता है। इनके श्रृंगार से संयोग तथा वियोग पक्षों की सुन्दर झाँकी प्रस्तुत की जाती है। सावन में ब्याही लड़कियाँ अपने मायके आती है फिर रक्षा बन्धन का त्यौहार करके अपनी ससुराल चली जाती है। यहाँ एक सावन गीत में इस बात को पुष्टि भी मिलती है। गीत में साले बहनोई की वार्ता में बहने मिलती है। गीत में साले बहनोई की वार्ता में बहने का बहन को भेजना अस्वीकार करने की चर्चा की गई है। एक उदाहरण-

सार बहनोइया जेवन बइठे,
सुनऊ जीजा इक बात जी।
चारि दिना अब गुड़िया के
बहिनी विदा कई देऊ जी।।
घर ही मा सारे वटरा मंगइबे,
घर ही मा रेसम डोर जी।
घर ही मा सोर बदिनी, झुलखे,
बहिनी बिदा नहीं होय जी।।

मायके में सभी लड़कियाँ आपस में एकत्र होकर आपस में अपने दु:ख, सुख की कथा व्यथा गीतों के माध्यम से झूलें पर पैगों के साथ मधुर लय में गाती है।

अवध में वटवृक्ष बरगद बाबा की पूजा की जाती है वट वृक्ष की पूजा ज्येष्ठ की अमावस्या को वटसावित्री व्रत में की जाती है। सौभाग्यवती स्त्रियाँ प्रत्येक परिक्रमा में सौभाग्य की कामना करती है। एक उदाहरण देखें-

''बरगद बाबा कै फेरी लगावौं।

पहिले फेरा में मागौं, माँगी के सेन्हुरा, दूसरे में चूर्र, भीर बाँह, बाबा तिसरे में माँगौ, लाली चुनरिया, चैथे में बिछिया पाँव, बाबा पाँचवें में माँगौं, गोदी कै बलकन, दूधन पूतन जुड़ावै, बाबा छठवें में बाढ़ै नइहर सासुर, सतयें में माँगौं सोहाग, बाबा।''

(बरगद बाबा की फेरी लगाऊँ। पहली में लाल चूनर, चैथे में पाँवों, के बिछुए, पाँचवें में गोदी का बालक, दूध-पूत से सुखी रहने की कामना, छठे में मायका-ससुराल की समृद्धि, सातवें में सौभाग्य माँगा)। वटसावित्री व्रत में सावित्री की कथा कही जाती है।

जन्म से मरण तक का साथी बास:-

बाँस जन्म से लेकर अंतिम यात्रा तक मुनष्य का साथी है। विवाह की वेदी पर चारों कोनों में चार बाँस गाड़े जाते हैं और वेदी के बीच भी। बाँस की टहनी, लचीली होती है जो आवश्यकतानुसार झुककर तरह-तरह के आकारों में ढल सकती है। यह टहनी वर-कन्या के अनुकूलन की क्षमता की प्रति शुभकामना देती है कि नयी परिस्थितियों में, नये परिवारों में, नये जीवन में तुम्हें मेरी तरह बनना चाहिए। बाँस हर संस्कार का एक महत्वपूर्ण अंग है। बाँस वंश का प्रतीक है, जो पोर-पोर बढ़ता है। हर पोर या गाँठ की पोर का विकास देती है।

मेरा विश्वास है कि आज की अयोध्या नगरी का रूप निर्माण तुलसी के मानस की पंक्तियों से ही हो सका है। प्राचीन अयोध्या कहाँ खो गयी, पता नहीं। उसे न तो पौराणिक पण्डित गण ही खोज पा रहे हैं न आधुनिक विज्ञानवादी पुरातत्वज्ञ ही। प्राचीन अयोध्या के विवरणों से आज की अयोध्या का कहीं कोई ताल-मेल ही नहीं बैठता। दोनों में दिन-रात्रि का अन्तर देखकर ही सम्भवत: किसी कवि ने यह कल्पना की होगी कि अयोध्या स्वर्ग चली गयी। महाकवि तुलसी दास के प्रभाव से आज की अयोध्या के रूपकाय और धर्मकाय का पुनर्निर्माण सम्भव हुआ। आज की अयोध्या का भौगोलिक विस्तार को भी अगर हम ध्यान में रखे तो कह सकते है इसी काल में प्राचीन भारतीय तथा फारसी तर्ज़ों का संगम हुआ। इस दुहरी कलम से संगीत के क्षेत्र में नये-नये रूप-रंग के गुलों की सृष्टि हुई। महाकवि तुलसी के प्रभाव से दक्षिण में जन्मी भक्तिधारा जब अयोध्या पहुँची तो उसके पास ही इष्टोपासना का ललित आधार भक्तिमूल संगीत भी वहाँ पहुँचा। लेकिन, उस प्रवाह को हम आज भी देख सकते है। मुस्लिम शासकों की सुबाई राजधानी होने के कारण मुस्लिम संगीतकारों ने भी अपनी साधना से यहाँ के संगीत संसार को नया आयाम दिया। दोनों ने एक दूसरे तक प्रभावित किया, लेकिन प्रकृति भिन्नता के कारण दोनो की विकास-दिशाएँ शुरू में अलग-अलग थीं।

निष्कर्ष:-

इस प्रकार निष्कर्ष में यह कहा जा सकता है कि आज की अयोध्या की संगीत में पारम्परिक लोकगीतों का प्रचार-प्रसार हुआ तो है। लेकिन अगर सरकार द्वारा भजन व अवधी कलाकारों को वित्तीय सहायता मिलती तो हमारा अवध का भी संगीत विकसित होता। कभी इसका प्रचार-प्रसार बढ़ा तो कभी घटा। मध्यम काल में मुस्लिम शासकों की वजह से संगीत का विकास कम हो पाया। अयोध्या में बहुत से संत गुरु प्राचीन से ही अपनी कला को उजागर किया है। निष्कर्ष में मेरा विश्वास या मानना यह है कि आज की अयोध्या नगरी का रूप निर्माण तुलसी के मानस की पंक्तियों से ही हो सका है। निष्कर्ष के बारे में कहा जाये तो अवध में अवधी भाषा के लोकगीत गाये जाते है यानी क्षेत्रीय भाषाओं में ही गीत होते है। संस्कार गीत, ऋतुगीत, खेती के गीत, प्रकृति के गीत अयोध्या में लोकधुनों में ही गीत गाने की परम्परा रही है। लेकिन ऐसा नहीं लोकगीतों में जब से फिल्म संगीत आया तब से परिवर्तन होने लगे है। इस प्रकार निष्कर्ष का सारांश यही है कि लोकगीतों से ही शास्त्रीय संगीत, भजन सभी निकले है।

संदर्भ ग्रंथ सूची:-

1. अयोध्या की संगीत परम्परा, मिश्र, यतीन्द्र पृ0 39
2. अवध के लोकसंगीत एवं उनका शिल्प सौन्दर्य, श्रीवास्तव, डॉ0 मधुरलता पृ0 2

3. अवध के लोकगीत एवं उनका शिल्प सौन्दर्य, श्रीवास्तव, डॉ0 मधुरलता पृ0 9
4. अवधी लोक धरोहर, श्रीवास्तव डॉ0 अनामिका पृ0 2
5. अवधी लोक धरोहर, श्रीवास्तव डॉ0 अनामिका पृ0 3
6. लोक परम्परा अवधी के पारम्परिक लोकगीतों का संकलन, कुमार, केवल पृ0 2 व 3
7. लोक परम्परा, अवधी के लोकगीतों का संकलन, कुमार, केवल पृ0 4
8. अवध के लोकगीत एवं उनका शिल्प सौन्दर्य, श्रीवास्तव डॉ0 मधुरलता पृ0 43
9. अवधी लोकगीत विरासत, सिंह, डॉ0 विद्या विंदु पृ0 89
10. अवध के लोकगीत एवं उनका शिल्प सौन्दर्य, श्रीवास्तव, डॉ0 मधुरलता पृ0 130
11. अवधी लोक साहित्य में प्रकृति पूजा, सिंह, डॉ0 विद्या विंदु पृ0 47
12. अयोध्या की संगीत परम्परा,मिश्र, यतीन्द्र पृ0 39

बिहार में ध्रुपद घराना

रेखा कुमारी*, डॉ० किरण सिंह**

भूमिका -

संगीत के क्षेत्र में बिहार की अपनी समृद्ध परम्परा रही है। इन समृद्ध परम्पराओं में ध्रुपद गायन बिहार में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है। ध्रुपद गायन के तीन घराने बिहार में मुख्य रुप से अपनी पहचान बनाई है -

1. बेतिया घराना
2. दरभंगा घराना
3. डुमराव घराना

1. बेतिया घराना - कहा जाता है कि सैनिक ब्रजसेन की सेनाओं से प्रसन्न होकर मुगल बादशाह शाहजहाँ ने बेतिया नामक स्थान जो बिहार में है, ब्रजसेन को जमींदारी ईनाम के नाम पर दे दिया, तभी से इस परिवार को एक मान्यता प्राप्त हुई, और वो लोग जमींदार कहलाये।

बेतिया घराने के प्रथम राजा उग्रसेन थे, इनका कार्यकाल 1627 से 1659 तक था। इनके मात्र एक पुत्र राजेंद्र सिंह थे वे बड़े ही गुणी थे, और ध्रुपद प्रेमी थे। उनके दरबार में गायन-वादन निरंतर चलते रहता था। उस समय की सबसे बड़ी खासियत यह थी कि ध्रुपद धमार ही केवल गाये जाते थे, ख्याल का प्रचार उस समय नहीं था।

मुगल दरबार के पतन के पश्चात घरानेदार गवैये देशी रियासतों में आश्रय पाने लगे। कुरुक्षेत्र के निकटवर्ती ग्राम अमलोक के दो संगीतकार चमारी मल्लिक(गायक) और कंगाली मल्लिक (बीनकार) का दिल्ली दरबार में आना-जाना होता था, पर दरबार में किन्हीं कारणों से इन दोनों को सम्मान नहीं मिला। मुगल दरबार के इन महफिलों में बेतिया-नरेश गजसिंह (1659-1694) भी अक्सर आते रहते थे।

गजसिंह विशेषकर ध्रुपद प्रेमी थे, और अपने दरबार के लिए अच्छे ध्रुपदियों की तलाश में रहते थे। उन्होंने इन दोनों मल्लिकों को बेतिया लाकर अपना दरबारी संगीतज्ञ नियुक्त किया और कहा जाता है कि बेतिया घराने का श्रीगणेश यहीं से होता है। बाद में इनके पुत्र दिलीप सिंह हुए, इनके आगे जो पुत्र हुए वो थे ध्रुव नारायण सिंह इन पीढ़ी दर पीढ़ी ने ही ध्रुपद परम्परा को आगे बढ़ाया और अपना बहुत योगदान दिया।

राजा ध्रुवनारायण सिंह के कुछ समय शासन करने के बाद उन्होंने अपनी गद्दी अपने भांजे युगल किशोर सिंह को सौप दी। युगल किशोर सिंह भी ध्रुपद के कलाकार थे। इनके आने से ध्रुपद परम्परा का और ज्यादा विकास हुआ। इनके दरबारी गायक में मुकुन्द मल्लिक, जुगलराज, भरथी मल्लिक, दु:खी मल्लिक, गोपाल मल्लिक आदि उच्च कोटि के कलाकार नियुक्त थे। मुकुन्द मल्लिक के वंशज थे दु:खी मल्लिक और भरथी

शोधार्थी : स्नातकोत्तर संगीत विभाग, तिलकामाँझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर
प्रोफेसर : स्नातकोत्तर संगीत विभाग, तिलकामाँझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

मल्लिक ये दोनों खंडारवाणी के सिद्ध गायक थे। इसी परम्परा के गोपाल मल्लिक, बच्चा मल्लिक तथा उमा मल्लिक थे।

युगलकिशोर के पुत्र राजावीर किशोर सिंह ने भी संगीत को संरक्षण दिया। इनके दरबार में पांडेमल्लिक और गुरु मल्लिक थे। उस समय दूर प्रांतो से भी ध्रुपदिये तथा पखावजियों का आगमन होने लगा। अनुमानत: सन् 1781-90 ई० में बनारस के पंडित शिवदयाल जी नेपाल से बेतिया आए। शिवदयाल जी ने नेपाल के दरबारी गायक रहीमसेन तथा करीमसेन से बहुत कष्ट उठाकर ध्रुपद की शिक्षा प्राप्त की थी। इस परम्परा को आगे बढ़ाने में इन लोगों का नाम कभी भुलाया नहीं जा सकता है, क्योंकि इन सभी ध्रुपदियों का ध्रुपद को आगे बढ़ाने में बड़ा योगदान रहा।

उस समय के कलाकार पंडित जयशंकर मिश्र को लगभग 2000 से ज्यादा ध्रुपद कंठस्थ थे। इस तरह के दिग्गज ध्रुपदिये कलाकार बेतिया दरबार की शोभा बढ़ाते थे। बेतिया घराने के अन्य गायक महंथ मिश्र मल्लिक, राजकिशोर मल्लिक इन सभी कलाकारों का बड़ा ही योगदान रहा और इस परम्परा को आगे बढ़ाया।

बेतिया घराने की ध्रुवपद गायकी की विशेषताओं को गुणियों ने इस प्रकार रेखांकित किया –

1. संक्षिप्त आलाप
2. बंदिश का गान (ताल में)
3. सम्पूर्ण गान में लय में कोई बदलाव नहीं, अर्थात् प्रारंभ, मध्य और अंत में लय का एक जैसा बर्ताव।
4. बोलबाँट वर्जित।
5. ख्याल की तरह विस्तार वर्जित।
6. बंदिश या रचना में हेराफेरी किए बिना रागानुकूल गायन।

बेतिया घराने की गायकी में मींड की प्रधानता अधिक रही है। आवाज का क्रम ना टूटे इसपे भी विशेष ध्यान दिया जाता है। गमक और कण का प्रयोग होता था, भक्ति प्रधान पद होता था। ध्रुपद जब गाये जाते थे, उनके साहित्य शुरु से अंत तक रहता था, और उनके स्वरों का जो लगाव था इन दो बातों का खास तौर पर ध्यान दी जाती थी। यही सब विशेषताएँ ही बेतिया घराने को बेतिया घराना बनाते थे, जो सब घरानों से अलग रहता था।

2. दरभंगा घराना - दरभंगा घराने की ध्रुपद गायन शैली दुनिया भर में प्रसिद्ध है। यहाँ का अमता घराना विश्व में अपनी ख्याति प्राप्त कर चुका है। इस घराने की 12वीं-13वीं पीढ़ी के कलाकारों ने देश-दुनिया में अपना परचम लहराया है।

यह घराना राजस्थान से ताल्लुक रखता है, इसके संस्थापक पंडित राधा-कृष्ण और पंडित कर्ता राम मल्लिक ने भूपत खाँ से ध्रुपद गायन सीखा। भूपत खाँ लखनऊ के नवाब सिराजुद्दौला के दरबारी गायक थे। इन्हें तानसेन का उत्तराधिकारी माना जाता है। 18वीं शताब्दी में भूपत खाँ के अनुरोध पर मल्लिक बंधुओं ने लखनऊ के दरबार में ध्रुपद गायन किया। संयोगवश उस समय दरबार में दरभंगा महाराज माधव सिंह (1785–1805) भी उपस्थित थे। वो मल्लिक बंधुओं का गायन सुनकर बहुत प्रभावित हुए, तथा उन्हें दरभंगा आने का आमंत्रण दिया। जब मल्लिक बंधु दरभंगा पहुँचे उस समय वहाँ महाअकाल पड़ा हुआ था। अत: दरबार में मल्लिक बंधुओं ने मेघ राग गाकर तीन घंटे तक लागातार बारिश करवाया। इसे प्रसन्न होकर दरभंगा महाराज ने मल्लिक बंधुओं को दरबारी

गायक नियुक्त करते हुए, अमता ग्राम के साथ 1100 एकड़ जमीन पुरस्कार स्वरुप दिया।

दरभंगा घराने के मल्लिक ध्रुपदिये ने क्षितिपाल मल्लिक, रामचतुर मल्लिक एवं सियाराम तिवारी अत्यंत ही प्रभावशाली गायक हुए हैं। रामचतुर मल्लिक (1905–1990 ई.) का जन्म अमता ग्राम में हुआ। रामचतुर जी को सुदूर यूरोपीय देशों में भी ख्याति मिली। वर्तमान समय के ध्रुपद गायकों में उनका स्थान सर्वश्रेष्ठ है। उनकी लोहा डागर घराने के गायक तक मानते हैं। उनके पास ध्रुपद की पुरानी बंदिशों का खजाना था। उनकी आवाज दमदार पर माधुर्यपूर्ण तथा पाटदार थी। ध्रुपद की पुरानी परम्परा के अनुकूल बंदिश के चारों तुकों के रख-रखाव, राग की शुद्धता तथा लय की उन्नत सूझ-बूझ के साथ उनका गायन भावानुकूल हुआ करता था। वर्तमान यानी 20वीं सदी में उस्ताद फैयाज खाँ के बाद रामचतुर मल्लिक ही चारों पट के कुशल गायक हुए। उन्हें केंद्रीय संगीत नाटक अकादमी आवार्ड तथा 'पद्मश्री' की मानद उपाधि से नवाजा जा चुका है। खैरागढ़ संगीत विश्वविद्यालय द्वारा मल्लिक जी को 'डाक्टरेट' की उपाधि से सम्मानित किया गया।

दरभंगा घराने के अन्य गुणियों में महावीर मल्लिक, यदुवीर मल्लिक तथा विदुर मल्लिक ने ध्रुपद के क्षेत्र में अपना कीर्त्तिमान स्थापित किया। मल्लिक घराना वर्तमान में बहेड़ी प्रखंड की नारायण दोहट पंचायत स्थित अमता गाँव में स्थापित हुआ।

वर्ष 2017 में इस घराने की 12वीं पीढ़ी के पंडित रामचतुर मल्लिक ने बेटे डॉ. समित मल्लिक के साथ लंदन के दरबार उत्सव में ध्रुपद गायन प्रस्तुत कर अपनी ख्याति पायी है। इससे पहले भी इस घराने के दरबार उत्सव के अलावा अमेरिका, जर्मनी, फ्रांस आदि देशों में ध्रुपद गायन कर चुके हैं। इस घरानों ने 6 सिद्ध रागों के लिए प्रसिद्धि पायी है। ये राग है – मेघ मल्हार, हिंडोल, राग भैरव, रागश्री, राग दीपक तथा राग मालकोंश।

इस घराने ने अब तक कई नामचीन कलाकार दिए हैं। पंडित रामचतुर मल्लिक ने अपने पिता पंडित विदुर मल्लिक के नाम से लहेरिया सराय में ध्रुपद संगीत गुरुकुल की स्थापना की है। यहाँ दो दर्जन शिष्य प्रशिक्षण ले रहे हैं। डॉ. समित मल्लिक बताते हैं कि ध्रुपद गायन सीखने वालों को नि:शुल्क प्रशिक्षण दे रहे हैं, ताकि दरभंगा घराने की परम्परा का पोषण होता रहे।

लॉकडाउन के दौरान भी यह घराना सोशल मीडिया पर काफी सक्रिय एवं लोकप्रिय रहा। मुक्त गायन की सुविधा ने दरभंगा घरानों की लोकप्रियता को शिखर पर पहुँचा रहे हैं।

3. डुमराँव घराना - रोहतास जिला का धनगाई गाँव कई सदियों से गायकों की जन्मभूमि रही है। यहाँ संगीत परम्परा के प्रवर्तक पंडित ज्ञान दुबे हुए। पंडित धनारंग दुबे का जन्म 1819 ई० में हुआ। इनके पिता तिलक दुबे थे। ये सांगीतिक परम्परा के श्रेष्ठतम व्याख्याता हुए। इन्होंने संगीत का प्रशिक्षण अपने चाचा मनिक चंद और अनुपचंद से प्राप्त की। अनुपचंद संगीत के साथ ही उच्च कोटि के विद्वान थे। अत: संगीत और साहित्य धनारंग जी को विरासत में प्राप्त हुआ। ये बहुमुखी प्रतिभा के स्वामी थे। इन्होंने शास्त्रीय संगीत की सिद्धि पायी तथा भावपूर्ण पदों की रचना भी की है। इन्होंने डुमरांव राज्य के दरबारी गायक के रुप में भी प्रतिष्ठा पाई है। अपने आश्रयदाता डुमरांव नरेश महेश्वर बख्श सिंह बहादुर के आग्रह पर 'कृष्णायन' नामक ग्रंथ का प्रणयन किया। जिसका प्रकाशन उनके मृत्यु के पश्चात इनके भ्रातृ पुत्र तथा शिष्य पंडित बच्चू दुबे ने प्रकाशित कराया।

पंडित धनारंग ने ध्रुपद, धमार, चतुरंग, तराना, होरी, झूला आदि सैकड़ों रचनाएँ की। उनकी ये रचनाएँ संगीत और साहित्य की अनूठे धरोहर है।

संदर्भ ग्रंथ सूची –

(1) सिंह, गजेंद्र नारायण – बिहार की संगीत परम्परा, शारदा प्रकाशन, पटना
(2) बृहस्पति, कैलाशचंद्रदेव आचार्य – ध्रुपद और उसका विकास, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना
(3) शर्मा अनीता - प्राचीन सांगीतिक परम्परायें एवं ध्रुपद शैली संजय प्रकाशन, दिल्ली
(4) श्रीवास्तव, प्रो० हरिश्चंद्र- संगीत निबंध संग्रह संगीत सदन प्रकाशक, इलाहाबाद
(5) नारायण, डॉ० पुष्पम– संगीत शोध पत्रिका, ललितनारायणमिथिला विश्वविद्यालय, कामेश्वर नगर दरभंगा

बनारस के संगीत नायक पं. दरगाही मिश्र की सांगीतिक परम्परा

कु० तनुश्री कश्यप, प्रो० डॉ० शुचिस्मिता शर्मा

भगवान शिव के त्रिशूल पर स्थापित बनारस अपने भीतर न जाने कितने असंख्य मोती और मणि समाये हुए है। माँ गंगा की बहती निर्मल धारा के समान यहाँ ज्ञान का प्रवाह निरंतर प्रवाहित होता रहा है। भारत के कई दार्शनिक, कवि, लेखक, संगीतज्ञ वाराणसी में रहे हैं। संगीत की समस्त विधाएँ यहाँ पल्लवित और पुष्पित होती रही हैं। पं॰ रामसहाय मिश्र जिनसे बनारस के तबले के घराना का विधिवत आरंभ माना जाता है उन्हीं के पंज प्यारे और पाँच प्यादों के नाम से विख्यात मस्तराम पं॰ रामशरण मिश्र भी हुए। उन्हीं के यशस्वी पुत्र संगीत नायक पं॰ दरगाही मिश्र तबला, गायन एवं सितार के प्रकांड पंडित हुए और इनकी वंश परंपरा में खलीफा पं॰ बिक्कू महाराज, तबला शिरोमणि पं॰ गामा महाराज, स्वर सम्राट पं॰ श्री चंद मिश्र, पं॰ विजय शंकर मिश्र जैसे मूर्धन्य कलाकार हुए। पं॰ दरगाही मिश्र की सुघड़ परंपरा में पं॰ सियाजी मिश्र विदुषी सिद्धेश्वरी देवी, विदुषी गिरिजा देवी, पं॰ समता प्रसाद गुदाई महाराज, जैसे कई विशिष्ट कलाकार हुए जिन्होंने अपने ज्ञान और प्रदर्शन से आने वाली पीढ़ी का मार्ग सुदृढ़ किया। पं॰ दरगाही मिश्र का तीनों विधाओं गायन, वादन तथा शास्त्र पर पूर्णाधिकार स्थापित था। प्रस्तुत लेख में उनकी वंश परंपरा एवं शिष्य परंपरा को सारगर्भित रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया।

भारत एक धर्म-प्रधान देश है। भारतीय विचारधारा सदा से आदर्श की भाव-भूमि पर प्रवाहित होती रही है तथा उसका प्रयोजन लोक-कल्याण रहा है। इसके कण-कण में राम, कृष्ण, नानक, बुद्ध, महावीर, मनु, भरत मुनि आदि की आत्मा समाई हुई है। इन महान् ऋषि मुनियों ने भारतीय संस्कृति को अपनी साधना, प्रतिभा, सृजनात्मक विचारों तथा निष्ठा से समृद्धशाली बनाया है। चाहे वह अध्यात्म का क्षेत्र हो या चिकित्सा का या फिर संगीत का। इन सभी विधाओं का प्रारम्भ वैदिक युग से ही माना गया है। इन विधाओं को गुरुजनों का आशीर्वाद तथा दिशा निर्देशन तभी से प्राप्त होता रहा है। भारत को छोड़कर कोई भी देश ऐसा नहीं है जहाँ के समस्त देवी-देवता गायन, वादन, और नर्तन की किसी न किसी विधा में पारंगत हों। वैदिक संगीत से लेकर लोक संगीत तक की परंपराओं में जितना

*शोधकत्री : सह० प्रो० नंदलाल बोस सुभारती ललित कला संकाय, सुभारती विश्वविद्यालय taanushree.kashyap@gmail.com, मो. 7015654162

**शोध निदेशिका : संगीत एवं नृत्य विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, professorshcuchismita111@gmail.com, मो. 9813437399

विकास, परिवर्तन और परिवर्द्धन भारत में हुआ है, उतना अन्यत्र कहीं भी देखने में नहीं आता।

वाराणसी का मूल नगर काशी था। काशी नगर की स्थापना भगवान शिव ने लगभग 5000 वर्ष पूर्व की थी। यह धरती से अलग भगवान शिव के त्रिशूल पर बसी है जिस कारण यह आज एक महत्त्वपूर्ण, धार्मिक, सांस्कृतिक और सांगीतिक स्थल है। स्कन्द पुराण, रामायण, महाभारत एवं प्राचीनतम ऋग्वेद सहित कई अन्य हिन्दू धर्म ग्रन्थों में इसका उल्लेख मिलता है। यहाँ की संस्कृति का गंगा नदी एवं इसके धार्मिक महत्व से अटूट रिश्ता है। यह शहर सहस्त्रों वर्षों से भारत का, विशेषकर उत्तर भारत का सांस्कृतिक, सांगीतिक एवं धार्मिक केन्द्र रहा है। भारत के कई दार्शनिक, कवि, लेखक, संगीतज्ञ वाराणसी में रहे हैं, जिनमें कबीर, वल्लभाचार्य, रविदास, स्वामी रामानंद, त्रैलंग, महाशय शिवानन्द, गोस्वामी तुलसीदास, ग़ालिब, मुंशी प्रेमचंद, जयशंकर प्रसाद, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पंडित रविशंकर, गिरिजा देवी, पंडित हरिप्रसाद चौरसिया एवं उस्ताद बिस्मिल्लाह खाँ और पं. राजन साजन मिश्र जैसे न जाने कितने ही दिग्गज कलाकारों ने भगवान शिव की इस नगरी को अपनी साधना स्थली बनाया।

गोस्वामी तुलसीदास जी ने हिन्दू धर्म का परमपूज्य ग्रंथ 'रामचरितमानस' यहीं लिखा और गौतमबुद्ध ने अपना प्रथम प्रवचन वाराणसी के ही सारनाथ में दिया था। वाराणसी को प्राय: 'मंदिरों का शहर', भारत की धार्मिक, सांस्कृतिक, सांगीतिक राजधानी, भगवान शिव की नगरी, 'दीपों का शहर' ज्ञान नगरी, महाशमशान, आनन्दवन आदि विशेषणों से सम्बोधित किया जाता है।

''हिन्दुस्तानी भारतीय शास्त्रीय संगीत तथा 'बनारस घराना' वाराणसी में ही जन्मा एवं विकसित हुआ है। तबला के 'बनारस घराने' की नीवं पंडित रामसहाय जी ने रखी लेकिन बनारस में संगीत का आरम्भ यदि माने तो पंडित रामसहाय मिश्र जी से पूर्व हो चुका था। रामसहाय जी के पूर्वज भी गायन, वादन तथा नृत्य तीनों ही कलाओं में पारंगत थे। स्वामी हरिदास जी के गुरु राधा वल्लभ सम्प्रदाय के श्री श्री श्री 1008 हितहरिवंश जी स्वामी के कई शिष्य बनारस के प्रमुख कलाकारों के रुप में आये।

बनारस का नाम सुनते ही वहां की संस्कृति और संगीत की परिपक्वता अनायास ही स्मरण हो जाती हैं। संगीत की समस्त विधाएँ यहाँ पल्लवित और पुष्पित होती रही हैं। तबला घराने के विधिवत आरम्भ की बात करें तो सन् 1797 ई. में जन्में पं. रामसहाय मिश्रा जी से इसे माना गया है। पं. रामसहाय ने तबला की अपनी आरम्भिक शिक्षा अपने पिता पं. प्रकाश मिश्रा और चाचा प्रभाष मिश्र से प्राप्त की थी।

पं. रामसहाय सर्वश्रेष्ठ और अद्वितीय तबला वादक थे। बाद में उन्होंने लखदऊ घराने के खलीफा उ. मोदू खाँ जी से भी इसकी शिक्षा ग्रहण की। पं. रामसहाय ने पूरे बनारस में से केवल 5 लोगों को अपना शिष्यत्व देना स्वीकार किया। ''पंज प्यारे और पाँच प्यादों के नाम से विख्यात इन 5 कालजयी शिष्यों में मस्तराम पं. रामशरण मिश्र, पं. प्रताप महाराज, पं. बैजूजी, पं. भगत और पं. यदुनन्दन थे। इसके अलावा अपने छोटे भाई पं० जानकी सहाय भैरव सहाय को भी तबले की उच्च शिक्षा प्रदान की।

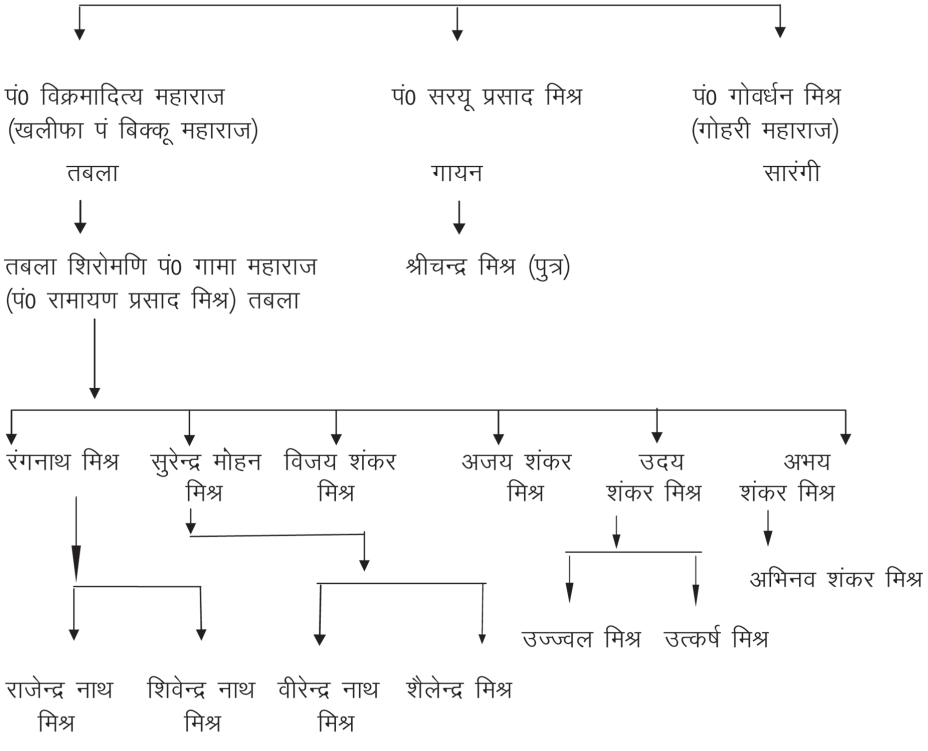
मस्तराम पं. रामशरण मिश्र की वंश एवं शिष्य परम्परा में इनके यशस्वी पुत्र संगीत नायक पं. दरगाही मिश्र (जन्म 1840-निधन 1926) तबला, गायन एवं सितार के प्रकाण्ड पंडित हुए। उनके शिष्यों में अनेक गायक- गायिकाऐं, वीणा, सितार, सारंगी एवं तबला के विद्वान हुए।

वंश परम्परा

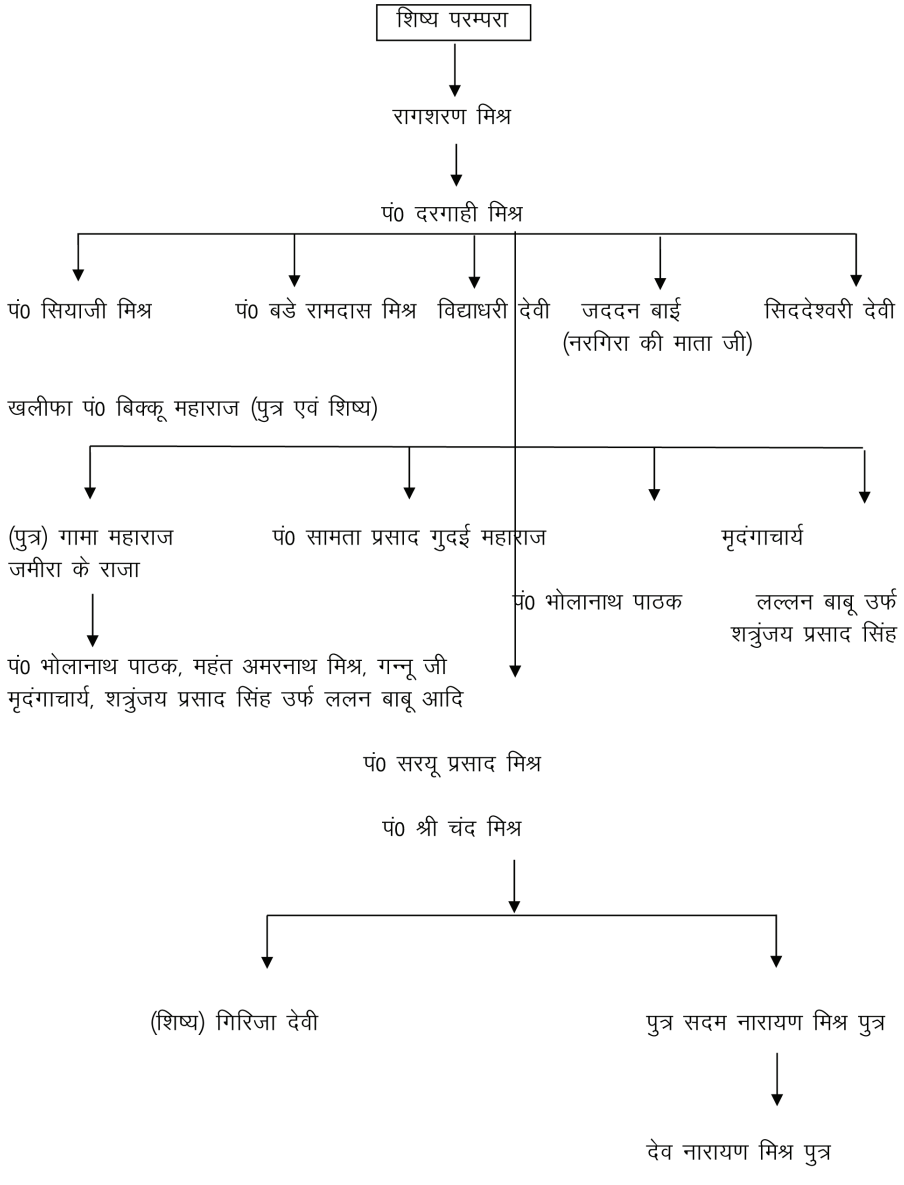
मस्तराम पं0 रामशरण मिश्र

पुत्र

संगीत नायक पं0 दरगाही मिश्र (गायन, तबला, सितार,सारंगी)



पं0 विजयशंकर मिश्र, अंतर्नाद : सुर और साज़, पं0 दरगाही मिश्र, पृष्ठ–396



पं0 विजयशंकर मिश्र, अंतर्नाद : सुर और साज़, पं0 दरगाही मिश्र, पृष्ठ–396

अजमेर के ख्वाजा के आशीर्वाद और मन्नत प्राप्ति से प्राप्त हुये पुत्र का नाम 'दरगाही मिश्र' रखा गया। इन्होंने संगीत की आरम्भिक शिक्षा (तबला) आपने पूजनीय पिता पं. रामशरण मिश्र जी से प्राप्त की। गायन की शिक्षा आपने पं. शिवसहाय जी (शिव-पशुपति में से एक) से प्राप्त की। काशी के थिऐटर में भी आपने काफी समय तक संगीत निर्देशक के रुप में काम किया। आपने सन् 1906 ई. में 'काशी संगीत समाज' नामक उत्तर प्रदेश के प्रथम संगीत विद्यालय की स्थापना भी की। इसी विद्यालय में आपने 'चतुर' पंडित भातखण्डे जी एवं संगीतर्षि पं. विष्णु दिगम्बर पलुस्कर को सि तार पर श्रुतियों का क्रियात्मक प्रयोग करके दिखाया था। आप ही के सुझाव पर भातखण्डे जी ने संगीत शिक्षा के विद्यालायीन स्वरुप को आरम्भ किया।

आपकी प्रसिद्ध शिष्य-परम्परा में आपके तीनों पुत्र पं. विक्रमादित्य मिश्र उर्फ खलीफा पं. बिक्कू महाराज, पं. गोवर्धन मिश्र उर्फ गौहरी महाराज तथा पं. सरयू प्रसाद मिश्र के अलावा पौत्र 'तबला-शिरोमणि' पं. गामा महाराज एवं 'स्वर-सम्राट' पं. श्री चन्द्र मिश्र सहित शिष्यों में पं. सिया जी महाराज, पं. बड़े रामदास जी, विद्याधरी देवी, जद्धन बाई, मुंशी राम जी, कोकाजी, कसेरुजी, ओमियों भटट्ाचार्य, सन्तू बाबू वं नन्द किशोर मिश्र उर्फ नप्पू महाराज आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इनकी प्रशिष्य परम्परा में सिद्धेश्वरी देवी, कमलेश्वरी देवी, काशी देवी, पं सामता प्रसाद उर्फ गुदई महाराज, मन्नू जी मृदंगाचार्य, पं. भोलानाथ पाठक एवं विदुषी गिरिजा देवी आदि के नाम प्रमुख हैं।

पं. दरगाही मिश्र जी तबला, गायन, सितार एवं सारंगी के विद्वान हुये। गाने में शुद्धता और परिपक्वता का गुण आपने अपने गुरु पं. शिवसहाय जी से हूबहू ग्रहण किया। उनके चरणों में रहकर आपने रागों और तालों की जानकारी, उसमें प्रयुक्त होने वाली तकनीक के प्रयोगों को सीखा। हर कलाकार की कला उसके अपने व्यक्तित्व का आईना होती है। कोई शास्त्र में प्रवीण होता है और उसकी शुद्धता का पालन करता है, तो कोई गायन की बारीकियों में निपुण होता है, तो कोई टुकड़ा-वादन में बेजोड़ होता है, तो कोई बाँट और रेला में और कोई गत-पुर्द में, कोई नृत्य संगति में बेजोड़ होता है, तो कोई तन्त्र वाद्य में अपना विशिष्ट स्थान रखता है, किन्तु पं. दरगाही मिश्र जी का तीनों विधाओं गायन, वादन तथा शास्त्र पर पूर्णाधिकार स्थापित था। तीनों सांगीतिक कलाओं के एक साथ रहने के कारण प्रत्येक क्षेत्र में इस घराने ने भारतीय संगीत-जगत् को राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के सुयोग्य कलाकार प्रदान किये हैं। इसीलिए इन्हें 'संगीत-नायक' की उपाधि से विभूषित किया गया था। यह उपाधि सिर्फ मिली थी क्योंकि यह सम्मान मात्र उन कलाकारों को मिलता था जिन्हें संगीत की सभी विधाओं की पूर्ण जानकारी होती थी तथा जो उत्तम कलाकार होने के साथ-साथ वाग्गेयकार भी होते थे।

इनके घराने की विशेषताओं में वादन में शुद्धता, कर्णप्रियता और मोहकता की विशिष्टता रही है इसमें खुलापन, जोरदारी और गाम्भीर्य भी है लेकिन साथ ही सुकुमारता और माधुर्य भी है। जहां एक और कठिन चक्रदार परनों के वादन के लिये यहां के कलाकारों की ख्याति है तो दूसरी और लम्बी लड़ी की खुशनुमा प्रस्तुति के लिए भी।

बनारस घराने में त्रिवेणी धारायें गायन, वादन तथा नृत्य, तीनों प्रवाहित हुई। बनारस घराने के गायन में साहित्य पर अत्याधिक बल दिया जाता है। बनारस घराने में ध्रुवपद, धमार, ख्याल, ठुमरी, कजरी, चैती और भजन आदि के साथ-2 संस्कृत

श्लोक, छन्द, प्रबन्ध, कौल-कलवाना, त्रिवट, चतुरंग, गुल, बैत, नक्श, रुबाई, धरु सब गाया जाता है। भगवान शिव की भूमि होने के कारण उनकी आराधना एवं प्रसन्नता के लिये ध्रुपद गाया जाता है।

स्वरों की मर्मस्पर्शी अवतारणा, शब्दों की भावपूर्ण प्रस्तुति, गमक, खटके, मुर्कियां, मींड़, सपाट और कण स्वरों का सन्तुलित प्रयोग तथा तीन सप्तकों तक स्वच्छन्द स्वर विचरण और सम की विशिष्टता बनारस घराने की प्रमुख विशेषतायें हैं। 'पदम्-विभूषण' गिरिजा देवी, सिद्धेश्वरी देवी जैसे अनेकों नाम प्रसिद्ध हैं।

हिन्दुस्तानी संगीत में सदैव से ही गुरुओं का वर्चस्व रहा है। गुरु-शिष्य परम्परा के अन्तर्गत अनेकों कलाकार संगीत जगत ने हर विधा में समाज को प्रदान किये हैं। कुछ के विषय में हमें भरपूर जानकारी मिलती है किन्तु कुछ गुरु रुपी कलाकार इतिहास के पन्नों में सो गए हैं या यूं कहें कि वह अल्पत्व स्थिति में हैं। शिक्षण संस्थान में संगीत विषय को आरम्भ करने का सुझाव देने वाले ऐसे 'संगीत नायक' के महत्वपूर्ण योगदानों का वर्णन प्राय: किसी भी संगीत पुस्तक में उल्लसित नहीं है। उनकी चारित्रिक विशेषताएँ, वंशावली, शिष्य परम्परा, संगीत जगत के प्रति पीढ़ी-दर-पीढ़ी उनका योगदान इस शोध प्रबन्ध में प्रस्तुत किया जायेगा।

अध्ययन की विधि:- यह अध्ययन मुख्य रुप से सर्वेक्षणात्मक, साक्षात्कार एवं प्रयोगात्मक विधि द्वारा किया जायेगा।

अध्ययन के स्त्रोत:- शोध का अध्ययन कार्य उपलब्ध पुस्तकों, पुस्तकालयों, पत्र-पत्रिकाओं, टेप, आडियो-रिर्काडिंग, नेट, विभिन्न संगोष्ठियों, कलाकारों के साक्षात्कारों, प्रश्नावली विधि तथा गुरुजनों की सहायता तथा आर्शीवाद से संपन्न किया जायेगा।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

इस संदर्भ में शोधार्थी ने अपने विषय से सम्बन्धित शोध प्रबन्धों, पत्र-पत्रिकाओं, पुस्तकों नैट-इंटरनैट से प्राप्त साहित्य का अध्ययन किया जिसके अन्तर्गत परम्पराओं से सम्बन्धित शोध कार्य हमें देखने को मिलता है जिसमें बनारस घराने के कलाकारों, साहित्यकारों की पारिवारिक पृष्ठ-भूमि, व्यक्तित्व, शिष्य-प्रशिष्य परम्परा देखने को मिलती है किन्तु किसी भी संग्रह में इस सुदृढ़ तथा वैभवशाली ऐतिहासिक परम्परा का उल्लेख नहीं मिलता।

पुस्तकें

1. मिश्र पं. विजयशंकर - अंर्तनाद: सुर और साज़, कनिष्क पब्लिर्शस, डिस्ट्रीब्यूटर्स नई दिल्ली
2. मिश्र पं. विजयशंकर - संगीत के इन्द्रधनुषी, शिलालेख, कनिष्क पब्लिशर्स नई दिल्ली
3. संगना - संगीत नाटक अकादमी (त्रैमासिक पत्रिका) अंक - 32-33 नई दिल्ली
4. Art Fragrance पत्रिका - विवेकानन्द सुभारती विश्वविद्यालय मेरठ - अंक जनवरी-जून 2021
5. छायानट: त्रैमासिक पत्रिका - विदुषी गिरिजा देवी विशेषांक प्रकाशक - उ. प्र. संगीत नाटक अकादमी
6. तबला पुराण - मिश्र पं. विजय शंकर - कनिष्क पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स नई दिल्ली
7. संगीत के इन्द्रधनुषी शिलालेख - मिश्र पं. विजय शंकर कनिष्क पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स नई दिल्ली
8. निबन्ध संगीत - गर्ग डॉ. लक्ष्मी नारायण संगीत - संगीत कार्यालय हाथरस - अप्रैल - 2021

परिशिष्ट:

1. पं. दरगाही मिश्र तथा उनके वंशजों द्वारा रचित बंदिशों एवं गतों की तालिका
2. साक्षात्कार
3. पारिवारिक चित्र

सांगीतिक कार्यक्रम और मीडिया: कश्मीर में ज़ुबिन मेहता के सांगीतिक कार्यक्रम का विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ० मनोज कुमार दास*, डॉ० संतोष कुमार**

शोध सार

मीडिया घटनाओं के सैद्धांतिक विवरण को आधार लेते हुए, इस लेख में संगीतकार ज़ुबिन मेहता के बहु प्रचारित कंसर्ट के बारे में विस्तृत अध्ययन कर यहाँ पर प्रस्तुत किया गया है, जो की सितंबर २०१३ में कश्मीर के भारतीय क्षेत्र में आयोजित किया गया था, और इस कार्यक्रम का सीधा प्रसारण टेलीविज़न द्वारा गया था। विशेष रूप से टेलीविजन द्वारा आयोजित इस कार्यक्रम को आधिकारिक तौर पर "एहसास-ए-कश्मीर" नाम दिया गया था किन्तु कश्मीर घाटी के लोगों ने इस कंसर्ट का काफी विरोध किया था। इस सांगीतिक कार्यक्रम के संदर्भ और सामग्री दोनों का विश्लेषण करते हुए यह लेख यह बताता है कि इस सांगीतिक कार्यक्रम को एक अनुष्ठानिक मीडिया प्रसंग के रूप में मानना चाहिए। यह केस स्टडी (मामले का अध्ययन) इस तथ्य पर प्रकाश डालती है कि मीडिया की प्रक्रिया समाज के लिए "मरहम लगाने वाले" के रूप में कार्य करने के अलावा समाज का ध्रुवीकरण और उसको विभाजित करने का कार्य भी कर सकती हैं। चूंकि इस कार्यक्रम को उपग्रह टेलीविजन स्टेशनों ने यूरोप सहित विश्व के ५० या उससे अधिक देशों में इस कार्यक्रम का सजीव प्रदर्शन किया था, इसलिए अध्ययन का मुख्य ध्यान संगीत कार्यक्रम और इसके तत्काल परिवेश का टेलीविजन कवरेज को रखा गया है। लेखकद्वय, इस शोध लेख के माध्यम से भारत में संगीत से जुड़े टेलीविजन अध्ययन के एक आशाजनक किन्तु ज्यादातर उपेक्षित क्षेत्र के रूप में मीडिया की घटनाओं पर अकादमिक ध्यान देने के लिए अपने विचारों को व्यक्त किया है।

बीज शब्द: *टेलीविजन मीडिया, अनुष्ठान, नृविज्ञान, संगीत कार्यक्रम, संगीत*

विषय प्रवेश:

भारत में बहुत ही कम ऐसे दुर्लभ मामले हैं जिसमें सरकार का किसी निजी सांस्कृतिक कार्यक्रम के आयोजन में और उसे वैध बनाने में एक प्रमुख प्रेरक के रूप में भूमिका देखा गया है। ज़ुबिन मेहता का संगीत कार्यक्रम एक और दुर्लभ लेकिन महत्वपूर्ण घटना थी जो की ७ सितंबर, २०१३ को भारत के जम्मू और कश्मीर राज्य की राजधानी श्रीनगर में आयोजित की गयी। सरकार प्रायोजित इस कार्यक्रम ने होने से पहले ही तीव्र सार्वजनिक रुचि और विवाद पैदा किया, क्योंकि इसे देश के भीतर ही नहीं बल्कि दुनिया भर के ५० से अधिक विभिन्न देशों में सरकार द्वारा संचालित टेलीविजन नेटवर्क पर सजीव प्रसारित किया जाना

*एसिस्टेंट प्रोफेसर, संगीत विभाग, सिक्किम विश्वविद्यालय, ईमेल- mkdas@cus.ac.in

**एसिस्टेंट प्रोफेसर, संगीत विभाग, सिक्किम विश्वविद्यालय, ईमेल- skumar01@cus.ac.in

था। जैसा कि मिस वर्ल्ड प्रतियोगिता (१९९५) के मामले में पहले भी हुआ था। सरकार ने प्रसारण कार्यक्रम को एक महत्वपूर्ण जनसंपर्क प्रयास के रूप में भी मंचित किया, इसलिए यह अवसर ध्यान देने योग्य है।

भारतीय राज्य जम्मू और कश्मीर के एक हिस्से को कश्मीर के रूप में जाना जाता है, जिसने ६० से अधिक वर्षों तक भारतीय सरकार के साथ नागरिक और सशस्त्र संघर्ष का अनुभव किया है। इसी कारण यह उप महाद्वीप के सबसे परेशान और संघर्ष प्रभावित क्षेत्रों में से एक बन गया है। इस क्षेत्र पर पाकिस्तान के दावे और संयुक्त राष्ट्र जनमत संग्रह के उसके अनुरोध से क्षेत्र में विवाद और भी बदतर हो गया है। भारत ने बार-बार अपने कानूनी दावे को दोहराते हुए, पाकिस्तान के इस दावे एवं मंशा को खारिज करता आ रहा है। क्योंकि भारत कश्मीर को देश का "अभिन्न अंग" मानता है, और इसे अपने सांस्कृतिक पहचान से जोड़कर देखता है। श्रीनगर में ज़ुबिन मेहता म्यूजिकल कॉन्सर्ट का सावधानीपूर्वक नियोजित मंचन इस बात का एक दिलचस्प उदाहरण है कि कैसे राज्य और संघीय सरकार दोनों ने दुनिया भर में एक राजनीतिक संदेश देने के लिए एक निजी अवसर का किस प्रकार उपयोग किया। यह लेख "मीडिया घटना" के सैद्धांतिक दृष्टिकोण से इस महत्वपूर्ण अवसर की जांच करता है, कि इसे जनता की "आंतरिक" इच्छाओं के न होने के बावजूद इस कार्यक्रम में "बाहरी" जनसंपर्क अभ्यास को कैसे नियोजित किया गया था। इसमें इस बारे में भी बताया गया है कि कैसे सरकार और निजी मीडिया ने इस कार्य को सफल बनाने के लिए मिलकर काम किया। यह मीडिया की सहयोगी भूमिका पर भी चर्चा करता है। अंत में निबंध मीडिया, संस्कृति और राजनीति के बीच जटिल संबंधों की बेहतर सराहना करने के साधन के रूप में देश में ऐसी सांगीतिक मीडिया घटनाओं की ओर विद्वानों का ध्यान केंद्रित करने की आवश्यकता पर विचार रखता है।

पूर्व साहित्य की समीक्षा

अमेरिका में "ग्रेट पैनिक" पर पहला शोध ३० अक्तूबर, १९३८ को सी.बी.एस. रेडियो के कार्यक्रम "मर्करी थिएटर ऑफ द ईयर" के प्रसारण द्वारा लाया गया था, जो एच.जी. वेल्स. के साइंस फिक्सन "क्लासिक वॉर ऑफ द वर्ल्ड्स" का नाटकीय रूप था। अकादमिक पटल पर मीडिया के भूमिका के अध्ययन की शुरुआत डैनियल डयन और एलिहू काट्ज़ के काम से शुरू होता , जो १९७० और १९८० के दशक में शुरू हुआ और १९९२ में उनके आलेख के अग्रणी प्रकाशन के रूप में समाप्त हुआ। यह घटना अकादमिक पटल पर उभरने वाली मीडिया घटना पर हो रहे विचार के लिए काफी हद तक अग्रणी मानी जा सकती है। उन्होंने इस विषय को डिसीप्लिन में सबसे आगे लाया। टेलीविजन प्रोग्रामिंग में, उन्होंने इसे एक अलग शैली के रूप में पहचान की जिसमें कई विशेषताएं थी। ये घटनाएं कभी-कभी होती हैं और जिन्हें उन्होंने "मीडिया इवेंट्स" कहा है। छुट्टियों के समान सभी चैनल घटना को कवर करने के लिए अपने शेड्यूल को पुनर्व्यवस्थित करते हैं। घटनाओं को सजीव और वास्तविक समय में प्रसारित किया जाता है, और उन्हें मीडिया के बाहर व्यवस्थित किया जाता है, जो केवल कार्यक्रम के प्रसार के लिए एक वाहक के रूप में कार्य करता है। इस तरह के कार्यक्रम टेलीविजन को ध्यान में रखते हुए पहले से तैयार किए जाते हैं और स्थापना से संबद्ध सार्वजनिक संगठनों द्वारा गंभीरता और सम्मान पूर्व नियोजन के साथ प्रस्तुत किए

जाते हैं। जब मीडिया इवेंट की बात आती है, तो टेलीविजन शायद ही कभी टिप्पणी के साथ हस्तक्षेप करता है और शायद ही कभी आलोचना के साथ; विज्ञापन ज्यादातर हटा दिया जाता है, और टेलीविजन अपने आयोजकों द्वारा कार्यक्रम की परिभाषा को बरकरार रखता है और अवसर के प्रतीकों के महत्व की व्याख्या करता है। ये अंतर्राष्ट्रीय टेलीविजन समारोह एक बड़े पैमाने पर दर्शकों को "उत्तेजित" करते हैं, और दर्शक अकेले के बजाय समूहों में स्क्रीन के सामने इकट्ठा होकर इस अवसर का "आनंद" लेते हैं। ये गतिविधियाँ समाजों को एकजुट करती हैं और समुदाय और उसके स्थापित अधिकारियों (डयन और काट्ज़, १९९२) के लिए एक प्रतिबद्धता को प्रेरित करती हैं। संक्षेप में, भाषा विज्ञान से प्रेरित डयन और काट्ज़ (१९९२) ने घटनाओं के संग्रह को तीन श्रेणियों में वर्गीकृत किया: वाक्यात्मक (दैनिक जीवन के प्रवाह को बाधित करना), शब्दात्मक (पवित्र मामलों के साथ श्रद्धापूर्वक व्यवहार करना), और व्यवहार परक (बहुत बड़े दर्शक समूह को रोमांचित करना जो उन्हें आनंदित होकर देखते हैं), यानी एकीकृत करने की अनुष्ठानिक शक्ति। पूर्वोक्त विद्वानों ने तर्क दिया है कि डयन और काट्ज़ ने पहली बार मीडिया की घटनाओं पर अपने सिद्धांत का प्रस्ताव दिया था कि इसकी परिभाषा को व्यापक बनाने और संशोधन के साथ लागू करने के लिए इसे फिर से देखने की आवश्यकता है, हालांकि संशोधन के साथ, क्योंकि आधुनिक वैश्विक युग में मीडिया की घटनाओं में नाटकीय परिवर्तन हुए हैं। उदाहरण के लिए, काट्ज़ एंड लिएब्स (२०१०) ने मीडिया की घटनाओं को केवल "शमन" प्रभाव और "शांति" के साथ तुलना करने के बजाय मीडिया घटनाओं के दायरे में आपदाओं, आतंक और युद्ध जैसी विघटनकारी घटनाओं को शामिल करने की आवश्यकता के लिए बात राखी। जुर्गन विल्के (२०१०) ने यह भी कहा कि १७५५ का लिस्बन भूकंप एक मीडिया घटना थी, जिसमें समाचार पत्र कवरेज और खबर फैलने की गति को ध्यान में रखा गया था। यहाँ डैनियल डयन (२०१०) की अपनी समीक्षा और उनके प्रारंभिक मीडिया कार्यक्रम सिद्धांत के संशोधन पर विचार करना उपयोगी है। उनका कहना है कि आधुनिक समाज के सभी तीन स्तरों में पर्याप्त परिवर्तन आया है। शब्दार्थ स्तर पर, असहमति अब मध्यस्थता द्वारा हल नहीं की जाती है, बल्कि "शत्रुता, विभाजन और अस्थिरता का पोषण करती है और विवाद को बनाए रखती है। वाक्यात्मक स्तर पर, अभिनेताओं के बीच प्रतिस्पर्धा एक घटना पर विशेष ध्यान केंद्रित करना असंभव बना देती ह, जिससे समाचार और मीडिया घटनाओं को अब एक मध्यवर्ती क्षेत्र के उद्भव के लिए अलग नहीं किया जा सकता है जिसे उन्होंने मीडिया इवेंट' कहा था। व्यावहारिक स्तर पर, डयन अब कहते हैं कि निंदक और अविश्वास हटाने के बजाय बढ़ावा दिया जाता है जैसा कि 90 के दशक से पहले मीडिया की घटनाओं के मामले में था। बीजिंग ओलंपिक के मामले के अध्ययन से उदाहरण देते हुए, डयन प्रदर्शित करते है कि कैसे विभिन्न प्रतिस्पर्धी समूह आधुनिक मीडिया की घटनाओं से विभिन्न रुचियां प्राप्त करते हैं। ऐसी विशेष मीडिया प्रोग्रामिंग से जुड़ी गतिविधियाँ अनुष्ठानिक हैं। रोनाल्ड एल .ग्रिम्स (२०११) के अनुसार अनुष्ठानिकता खुले तौर पर धार्मिक हो सकते हैं या अन्य सांस्कृतिक गुणों को अनिवार्य करते हुए धर्म को दरकिनार कर सकते हैं और तदनुसार, पद्धति की उपलब्ध परिभाषाओं को मोटे तौर पर इन दो समूहों में वर्गीकृत किया जा सकता है। स्टैनली जे. ताम्बियाह (१९८१)

ने इस पद्धति को 'प्रतीकात्मक संचार' के रूप में वर्णित किया है और शब्दों और कृत्यों का एक क्रमबद्ध श्रेणी है, जिसे अकसर कई मीडिया में दिखाया जाता है। तांबियाह के समान ही, रोबी डेविस फ्लॉयड (१९९२) ने पद्धतियों को एक 'सांस्कृतिक विश्वास या मूल्य के क्रम दोहराव और प्रतीकात्मक अधिनियम के रूप में परिभाषित किया है, जिसका प्राथमिक कार्य व्यक्ति की विश्वास प्रणाली को समाज के साथ संरेखित करना है।

भारत में मीडिया की घटनाओं और मीडिया अनुष्ठानिकता के दृष्टिकोण से, टेलीविजन अध्ययनों पर बहुत अधिक शोध नहीं हुआ है। ऐसा ही एक असामान्य अध्ययन नॉर्बर्ट विल्डरमुथ (२०१०) द्वारा १९९६ में बैंगलोर से सरकार द्वारा प्रसारित विवादास्पद मिस वर्ल्ड पेजेंट का अध्ययन है। हालांकि दर्शकों के पढ़ने पर ध्यान नहीं देने के तथ्य से इसे सीमित कर दिया गया है। ८ सितंबर, २०१३ को जम्मू और कश्मीर की राजधानी श्रीनगर में आयोजित जुबिन मेहता म्यूजिकल कॉन्सर्ट (जेड.एम.एम. सी .के रूप में संदर्भित किया जाता है) न केवल इसलिए विद्वानों का ध्यान आकर्षित करता है क्योंकि इसने कश्मीरी नागरिकों और नागरिक अधिकार कार्यकर्ताओं के विरोध को जन्म दिया और बहुत विवाद को आकर्षित किया, बल्कि इसलिए भी कि सैटेलाइट टेलीविजन ने ५० देशों में इसे सजीव प्रसारित करके इस कार्यक्रम को एक मेगाइवेंट में बदल दिया, जबकि स्थानीय रूप से एक बड़ी भीड़ द्वारा इसका विरोध किया जा रहा था।

संगीत कार्यक्रम और प्रसंग

आधुनिक भारत में सबसे अच्छी तरह से प्रचारित सांस्कृतिक कार्यक्रमों में से एक जुबिन मेहता का संगीत प्रदर्शन था। एक प्रमुख राष्ट्रीय टेलीविजन समाचार संपादक ने अपने कार्यक्रम विशेष पर एक प्रारंभिक टिप्पणी में घटना को वर्णित करते हुए इसे स्थानीय एवं अन्तराष्ट्रीय दोनों ही रूप से 'शुद्ध जादू के क्षण' के रूप में, मनोरम, मंत्रमुग्ध करने वाला बताया। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर श्रीनगर के शालीमार गार्डन में सात सितंबर २०१३ को एक घंटे से कुछ अधिक समय तक चले इस कार्यक्रम का कुछ राष्ट्रीय उपग्रह समाचार नेटवर्कों के साथ-साथ सरकार द्वारा संचालित दूरदर्शन और ऑल इंडिया रेडियो ने सीधा प्रसारण किया था। एक टेलीविजन प्रसारण लगभग ५० विभिन्न देशों में देखा गया था। यह पूरी तरह से स्पष्ट है कि इस कार्यक्रम का उद्देश्य एक निजी संगीत प्रदर्शन था क्योंकि इसकी उत्पत्ति अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रसिद्ध भारतीय मूल के संगीतकार उस्ताद जुबिन मेहता और भारत में जर्मन राजदूत मिशेल स्टेनर के बीच एक निजी बातचीत से जुड़ी है। मेहता ने न तो भारत सरकार और न ही जम्मू-कश्मीर सरकार से संपर्क किया था और न ही सरकार ने कश्मीर में इस तरह के संगीत कार्यक्रम के लिए उस्ताद से संपर्क किया था; इसके बजाय, मेहता ने जर्मन राजदूत को अपनी रुचि से अवगत कराया था। जम्मू और कश्मीर सरकार की बाद की सक्रिय भागीदारी को राज्य सरकार में सत्ताधिन पार्टी द्वारा "भव्य" राजनीतिक बयान देने के अवसर के संभावित लाभ को महसूस करने के रूप में व्याख्या किया जा सकता है: लोकप्रिय धारणा के विपरीत, कश्मीर शांतिपूर्ण है, या कम से कम शांतिपूर्ण होने की क्षमता है, क्योंकि कश्मीरी आंतरिक रूप से शांतिप्रिय हैं। और यह संगीत के प्रति उनके प्यार में परिलक्षित होता है। किन्तु इस घटना के मंचन से कई विरोध और संघर्ष भड़क उठे।

अलगाव वादियों और नागरिक समाज समूहों ने उस दिन श्रीनगर में बंद का आह्वान किया और कार्यक्रम की मेजबानी का विरोध किया। पूरे शहर में बड़े पैमाने पर कार्यक्रम विरोधी प्रदर्शन हुए। सरकार के विपक्षी खेमों के राजनेताओं ने इसे दुनिया को गुमराह करने और अंतरराष्ट्रीय समुदाय को कठोर वास्तविकताओं और अत्याचारों से विचलित करने के प्रयास के रूप में देखा, जिन्हें कश्मीरियों को हर दिन सहना पड़ता है।

कई स्थानीय नागरिक समाज संगठनों ने भारत के साथ जर्मन दूतावास के संबंधों पर सवाल उठाए हैं, और सरकार के कई लोगों का मानना है कि यह सरकार के मानवाधिकारों के उल्लंघन में भागीदार है। एक दावा यह भी किया गया था कि वास्तव में सरकार की किसी "निजी पार्टी" ने कार्यक्रम आयोजित किया था। कुछ चरमपंथी समूहों ने विदेशी मेहमानों को नुकसान पहुंचाने की धमकी भी दी और वादा किया कि वे कार्यक्रम को बाधित करेंगे। सरकार ने बड़े आयोजन की सफलता पर कोई कसर नहीं छोड़ी। घटनास्थल के पास और पीछे की पहाड़ियों में घरों के आसपास शार्प शूटर तैनात किए गए और पुलिस और सुरक्षाबलों को पूरे शहर में 'अतिरिक्त हाई अलर्ट' पर रखा गया और घटना के कारण संवेदनशील इलाकों में अतिरिक्त बलों की तैनाती की गई थी। आयोजन स्थल शालीमार गार्डन इलाके को स्थानीय आबादी से पूरी तरह से सील कर दिया गया और इसे सेना और अर्धसैनिक बलों ने अपने कब्जे में ले लिया। कार्यक्रम के दौरान पूरे दिन सुरक्षा बलों के हेलीकॉप्टर कार्यक्रम स्थल के ऊपर मंडराते रहे।

एक अन्य कार्यक्रम जिसे नागरिक समाज संगठनों के एक समूह द्वारा आयोजित किया गया था और इसका नाम रखा गया था 'हकीकत-ए-कश्मीर'। इस कार्यक्रम का आयोजन भारतीय सैन्य कब्जे से कश्मीर की आजादी के लिए शहीद हुए स्थानीय लोगों के याद में किये गए थे , और साथ ही विश्व समुदाय का ध्यान खिंचने के लिये कि कश्मीर में सब ठीक नहीं है जैसा कि जेड.एम.एम.सी . केमाध्यम से दर्शाया गया था। इस कार्यक्रम में पुलिस अर्धसैनिक और सेना के जवानों के हाथों मारे गए कश्मीर क्षेत्र के आतंकवादियों और नागरिकों के चित्रों का प्रदर्शन किया गया। कश्मीर के लोगों के दर्द को उजागर करने वाले गीतों, कविताओं और भाषणों ने कार्यक्रम को खास बनाया शहर के शेर-ए-कश्मीर पार्क में आयोजित इस कार्यक्रम में कश्मीर क्षेत्र के आतंकवादियों और नागरिकों की तस्वीरें थीं। आम लोगों ने सैकड़ों की संख्या में भाग लिया और राज्य सरकार द्वारा घटना को बाधित करने का कोई प्रयास नहीं किया गया, हालांकि १४४ धारा लागू की गयी थी।

समानांतर घटना के जेड.एम.एम.सी. तक पहुंच अत्यधिक प्रतिबंधित थी। आमंत्रितों में पाकिस्तान और चीन सहित भारत में विभिन्न देशों के राजदूत शामिल थे (जो बिल्कुल शामिल नहीं हुए)। देश के विभिन्न क्षेत्रों की प्रख्यात हस्तियों को साक्षि बनने के लिए आमंत्रित किया गया, जिसमे बड़े बड़े नौकरशाह, राज नाईक, इत्यादि भी डी=शामिल थे। जर्मन दूतावास द्वारा २७०० मेहमानों को बहुत ही सावधानी पूर्वक चुना गया था। कार्यक्रम स्थल पर जो भी लोग नहीं पहुच सकते थे उनके लिए टेलीविज़न द्वारा संभव बनाया गया था, ताकि कार्यक्रम को देस और विदेशों में भी आसानी से देखा जा सके।

संगीत समारोह और अनुष्ठान:

जेड.एम.एम.सी . के मंचन को ६ सितंबर, २०१३ को शाम की खबर और अगले दिन सुबह की

खबर के रूप में ऑल इंडिया रेडियो (AIR) और दूरदर्शन के राष्ट्रीय नेटवर्क पर अच्छी तरह से प्रचारित किया गया था। सरकार द्वारा संचालित आकाशवाणी और दूरदर्शन दोनों ने और कुछ निजी राष्ट्रीय उपग्रह टेलीविजन समाचार चैनलों ने भी ७ सितंबर को संगीत समारोह का सीधा प्रसारण किया। कार्यक्रम के दिन, ऑल इंडिया रेडियो ने अपने शाम के समाचार बुलेटिन में संगीत कार्यक्रम की उपलब्धि को एक शीर्षक कहानी के रूप में चिह्नित किया और यहाँ तक कि संगीत समारोह से एक ध्वनि बाइट भी चलाया; आकाशवाणी समाचार पर ऐसे साउंड बाइट बजाना कोई सामान्य प्रथा नहीं थी।

राष्ट्रीय और कश्मीर दोनों के अखबारों ने कार्यक्रम से कुछ दिन पहले और इसके समापन के बाद तक कई तरह की कहानियां प्रकाशित कीं। सभी मीडिया आउटलेट्स ने विभिन्न विषयों पर ध्यान केंद्रित किया, घटना से पहले शहर में सुरक्षा उपायों को मजबूत करने से लेकर औसत व्यक्ति के लिए इससे होने वाली कठिनाइयों से कथित खतरों तक। कस्बे में प्रदर्शनकारियों द्वारा घटना के खिलाफ विरोध किया गया और एक समानांतर कार्यक्रम के मंचन को व्यापक रूप से अंजाम दिया गया। सरकार के मुख्यमंत्री के बारे में खबरें प्रसारित की गईं, जो एक असामान्य घटना थी, जो सुरक्षा व्यवस्था का आकलन करने के लिए कार्यक्रम के स्थान पर भाग ले रही थीं। मुख्यमंत्री को टेलीविजन समाचारों पर कार्यक्रम स्थल पर कैमरों से बात करते हुए देखा गया कि वह इस मामले को कितनी गंभीरता से ले रहे हैं। यह पहली बार था जब बहुत ही "महत्वपूर्ण" लेकिन विवादास्पद सांस्कृतिक कार्यक्रम हो रहा था, और परिणामस्वरूप, मीडिया का समग्र स्वर उत्साह और अनिश्चितता में एकरूप होकर बोल रहा था। वैसे कार्यक्रम के मंचन से पहले ही इस बारे में संदेह किया जा रहा था कि क्या यह घटना वास्तव में हो सकती है या नहीं और क्या यह शांति के अग्रदूत के रूप में अपनी बहुप्रचारित भूमिका को पूरा कर पाएग। घटना से पहले और बाद में, टेलीविजन चैनलों पर विभिन्न राजनीतिक संगठनों के प्रतिनिधियों के साथ स्टूडियो में बहस और पैनल चर्चा प्रसारित किया गया। एक राष्ट्रीय टेलीविजन समाचार चैनल एन.डी.टी.वी. ने घटना के एक दिन बाद ज़ुबिन मेहता और जर्मन राजदूत के साथ एक साक्षात्कार को भी प्रसारित किया।

जेड.एम.एम.सी. के उद्घाटन भाग के साथ-साथ पूरा कार्यक्रम, जो एक घंटे से थोड़ा अधिक समय तक चला, दोनों सूचनात्मक थे। केवल सरकार के युवा मुख्यमंत्री उमर अब्दुल्ला, जिन्होंने संगीत कार्यक्रम के लिए स्वागत भाषण में स्वीकार किया कि यह कार्यक्रम एक खतरनाक प्रस्ताव था। अब्दुल्ला ने स्पष्ट रूप से अनिश्चित और खतरनाक माहौल को व्यक्त किया जिसमें यह घटना हो रही थी और साथ ही बाधाओं का सामना करने के अपने दृढ़ संकल्प को यह कहते हुए व्यक्त किया कि "... अगर मुझे फिर से जोखिम का सामना करना पड़ा,... मैं करूंगा" और "मैं शो को सफल बनाने के लिए सब कुछ करूंगा"। आतंकवाद की छाया में संगीत कार्यक्रम चल रहा था, और फिर भी कैमरे के लेंस ने कार्यक्रम स्थल पर एक भी सुरक्षाकर्मी झलक को नहीं दिखाया। यह स्थिति कश्मीर को शांत दिखाने के केंद्रीय स्क्रिप्ट को हरा सकती थी। जैसे ही कैमरा एक चेहरे से दूसरे चेहरे की ओर बढ़ रहा था, "आकर्षक" संगीत में तल्लीन कुलीन दर्शकों के करीबी दृश्य और महिलाओं को शालीनता से मुसकुराते हुए और संगीत के लिए सिर हिलाते हुए उदारतापूर्वक प्रदर्शित किया गया था। कैमरे मंच और दर्शकों के बीच

वैकल्पिक रूप से घूमते थे क्योंकि उन दोनों के माध्यम से दुनिया को "राजनीतिक" बयान देने की जरूरत थी की हम सब एक दूसरे के बिना अधूरे है। युवा अनुभवी कश्मीरी संतूर वादक ने ज्यूरिख के बवेरियन स्टेट ऑर्केस्ट्रा के साथ कश्मीरी संगीतकारों और वाद्ययंत्रों को संयोजित रूप से मंच पर प्रदर्शित किया, जिसमे उन्होंने १५ वादकों के अपने बैंड के साथ सात मिनट की रचना को प्रस्तुत किया। बाकी संगीत ज्यूरिख के ऑर्केस्ट्रा द्वारा जुबिन मेहता द्वारा आयोजित किया गया था। दिलचस्प बात यह है कि बजाया गया पहला गीत बेथोवेन की एक रचना से लिया गया था जो फ्रांसीसी क्रांति के मद्देनजर लिखा गया था और स्वतंत्रता और न्याय के बारे में है। दूरदर्शन ने किसी भी तरह से अपने दर्शकों को शेर-ए-कश्मीर पार्क में होने वाली काउंटर कंसर्ट को नहीं दिखाया , लेकिन निजी उपग्रह समाचार नेटवर्क ने जेड.एम.एम.सी . कोसजीवदिखने के बावजूद अलग-अलग स्क्रीन में नियमित अंतराल पर समानांतर संगीत कार्यक्रम के रिकॉर्ड किए गए फुटेज को चलाने की पूरी कोशिश कर रहे थे। ये एक साथ घटना का एकमात्र विवरण था जो हेडलाइंस टुडे जैसे निजी राष्ट्रीय समाचार नेटवर्क पर प्रसारित किया गया था ; इनमें "दो संगीत कार्यक्रमों की कहानी,", "घाटी में अलग-अलग धुनें" और "आतंक छाया में संगीत कार्यक्रम" जैसे प्रदर्शन / ग्राफिक्स शामिल थे।। जब जेड.एम.एम.सी. का प्रसारण हो रहा था, उस समय देश में कम से कम दो अन्य प्रमुख समाचार प्रमुखता से महत्वपूर्ण हो रहे थे और इन सभी का सीधा प्रसारण किया जा रहा था। इनमें से प्रत्येक सजीव कवरेज की सापेक्ष स्थिति को समझना और टेलीविजन द्वारा उनके उपचार को मीडिया द्वारा जेड.एम.एम.सी . को दिए गए वेटेज की सराहना करना महत्वपूर्ण था। पहला नरेंद्र मोदी का सार्वजनिक भाषण था, जिन्हें उन्ही एक या दो दिन में भाजपा के प्रधानमंत्री पद के उम्मीदवार के रूप में नामित किया जाना तय था। जेड.एम.एम.सी . शुरू होने तक निजी उपग्रह समाचार चैनल इसका सीधा प्रसारण कर रहे थे और दृश्य श्रीनगर में स्थानांतरित हो गया। सरकार द्वारा संचालित चैनल होने के नाते दूरदर्शन ने मोदी के भाषण को कवर नहीं किया। जेड.एम.एम. सी . के अंत में, कुछ उपग्रह समाचार चैनलों ने अपने प्रसारण को प्रधान मंत्री मनमोहन सिंह की G-20 शिखर सम्मेलन से लौटने पर उनकी प्रेस कॉन्फ्रेंस में स्थानांतरित कर दिया। इन चैनलों ने प्रेस ब्रीफिंग का सीधा प्रसारण किया, खासकर जब से उन्होंने अपनी हवाई यात्रा के दौरान पहली बार यह कहा था कि राहुल गांधी प्रधानमंत्री पद के लिए आदर्श विकल्प है। गौरतलब है कि सरकारी स्वामित्व वाली दूरदर्शन ने जेड. एम.एम.सी . के प्रसारण को बिना कैमरा बदले निर्बाध रूप से जारी रखा गया , यहां तक कि उन्होंने तात्कालिक प्रधानमंत्री की ब्रीफिंग को भी नहीं कवर किया गया। श्रीनगर का यह कार्यक्रम लोक सेवा प्रसारक के लिए ज्यादा महत्वपूर्ण था। यह सावधानीपूर्वक नियोजित किया गया था और इसे किसी तरीके से अंत तक प्रसारित होते देना चाहिए था। यह स्पष्ट था कि जेड.एम.एम.सी. को गुणात्मक रूप से एक महत्वपूर्ण अनुष्ठानिक या अनुष्ठानिक कार्यक्रम के रूप में अलग माना गया था, अन्य दो कार्यक्रमों - नरेंद्र मोदी के संबोधन और प्रधान मंत्री के बाइट्स – सामान्य समाचार घटनाओं के रूप में देखा गया था।। इस प्रकार, जबकि अन्य कार्यक्रम स्वयं मीडिया द्वारा पूर्व-नियोजित होते थे, जेड.एम.एम.सी . के लिए मीडिया कवरेज की योजना वास्तव में बाहरी लोगों द्वारा निर्धारित किया गया था और पहले से अच्छी तरह से विज्ञापित की गई थी।

जिसके बारे में मीडिया ने कोई अग्रिम घोषणा नहीं की थी और मीडिया द्वारा इसका प्रचार भी नहीं किया गया था।

विचार-विमर्श:

डयन खुद अपने मूल विचार पर पुनर्विचार करते समय मीडिया घटनाओं की अवधारणा में बदलाव को ध्यान में रखने की आवश्यकता को स्वीकार करते हैं। ऐसी घटनाएं संस्कृतियों को विभाजित कर सकती हैं और समाजों को एकजुट करने और वैध प्राधिकरण के प्रति निष्ठा को पुनर्जीवित करने के बजाय तथाकथित प्राधिकरण की वैधता पर संदेह डाल सकती हैं। जेड.एम.एम. सी . इस बात का एक सटीक उदाहरण था कि कश्मीरी समाज को कुलीन वर्ग और जनता के बीच विभाजित करके राजनीतिक विवाद कैसे पैदा किया जाए। प्रसारण के व्यापक वितरण, अनुष्ठानिक, नियोजित, जानबूझकर कार्रवाई, और अन्य विशेषताओं के बीच गंभीर प्रतीकात्मक ओवरटोन, इंगित करते हैं कि जेडएमएमसी निर्विवाद रूप से उच्च स्तर के अनुष्ठान के साथ एक महत्वपूर्ण घटना थी (ग्रिम्स, २०११)। यह एक बार होने वाली अनूठी घटना के साथ-साथ दोहराव वाली घटना भी थी। यह एक बार की घटना थी क्योंकि ऐसी कोई घटना ऐतिहासिक रूप से नहीं हुई थी- -कम से कम कश्मीर में तो नहीं हुई थी। वास्तव में आयोजकों की मंशा संगीत का उपयोग से कश्मीर में घावों को भरने की थी, जैसा कि अगले दिन ज़ुबिन मेहता के घटना के अपने आकलन से देखा जा सकता है।

घटना से पहले और बाद में मीडिया में एक महत्वपूर्ण सवाल यह था: यदि संगीत में एक सार्वभौमिक संदेश है, तो संगीत कार्यक्रम सभी के लिए खुला क्यों नहीं था? उस दिन श्रीनगर में लाल चौक की हिंसा, पुलवामा में ग्रेनेड हमला जिसमें नागरिक और पुलिसकर्मी मारे गए थे, और उस दिन शोपियां में सड़कों पर सैकड़ों लोगों के विरोध ने अभिजात। इन सभी घटनाओं को मीडिया द्वारा व्यापक रूप से कवर किया गया था। ये घटनाएँ सड़क पर आदमी के दैनिक जीवन की परेशानियों और शालीमार बाग की घटना में दर्शकों के जीवन और जीवन शैली के बहुत विपरीत संघर्षों का संकेत देती थीं। प्रदर्शनकारियों द्वारा आयोजित समानांतर संगीत कार्यक्रम ने इस विभाजन को और बढ़ा दिया, हालांकि मीडिया का नजर इस पर बहुत सटीक रूप से नहीं पड़ा क्योंकि मीडिया की घटनाएं सामान्य रूप से यथास्थिति विरोधी होने का जोखिम नहीं उठा सकती थी।

दुनिया को कठोर वास्तविकता को छिपाकर कश्मीर का एक "पौराणिक" संस्करण दिखाया गया, जिसने घटना का विरोध और तेज कर दिया। हालांकि, डयन की एक मीडिया घटना (२०१०) की अद्यतन परिभाषा इस भूमिका को ध्यान में रखती है। वहां के सरकारी टेलीविजन कैमरों ने सावधानी बरती कि ऐसा न लगे कि कार्यक्रम कड़ी सुरक्षा के बीच हो रहा है। वास्तव में, दिन के कार्यक्रम के दौरान लंबे दृश्यों को नहीं दिखाया गया था क्योंकि कैमरे सावधानीपूर्वक सशस्त्र पुलिस या सुरक्षा कर्मचारियों के एक भी दृश्य को प्रदर्शित करने से बच रहे थे। यदि मीडिया और विशेष रूप से टेलीविजन ने, कार्यक्रम के सफलतापूर्वक संपन्न होने के बाद, इसके वास्तविक मंचन से पहले विवाद और विरोध प्रदर्शनों पर ध्यान केंद्रित किया था और उन्होंने भी, इस तथ्य की पुष्टि की कि आयोजकों और सरकार ने काफी अच्छे तरीके से इस प्रोग्राम को हैंडल किया। वास्तव में, यह निहित था कि बुराई पर अच्छाई की जीत हुई थी और जनता के लिए राहत महसूस करने के लिए

पर्याप्त आधार थे। उदाहरण के लिए, एनडीटीवी द्वारा ८ सितम्बर २०१३ को (घटना के एक दिन बाद) को श्रीनगर के ताज होटल की खुली छत से जुबिन मेहता और जर्मन राजदूत के विशेष प्रसारण का प्रभाव प्रतीकात्मक रूप से इस विचार को पुनर्जीवित करने का है कि "कश्मीर सुरक्षित है" या "सामान्य स्थिति में वापस आ गया है। वरना खुले में आसमान के नीचे इंटरव्यू कैसे हो सकता था ? यहां, पत्रकार एक "धर्माध्यक्ष" की क्षमता से अधिक कार्य कर रहा था या, जैसा कि किच (२०००) ने कहा था, " उपचार करने वाला आध्यात्मिक नेता," जो दो विरोधी ताकतों के बीच मध्यस्थता स्थापित करता है।

जेड.एम.एम.सी . कश्मीर की जनता और विशिष्ट ताकतों के बीच एक संघर्ष था जिसमें सरकार और उसके अंग शामिल थे। हालाँकि इस घटना का सामना करने वाली अनिश्चितताओं को देखते हुए कौन जीतेगा यह एक अंतर्निहित प्रश्न था, चूंकि यह एक एकल मीडिया कार्यक्रम था, इसलिए यह निर्धारित करना भी एक विजय ही था। इसे अधिक उचित रूप से विजय के रूप में वर्गीकृत किया गया था क्योंकि आयोजकों के लक्ष्यों में से एक भविष्य में शांति और सद्भाव को बढ़ावा देना था। अंतरराष्ट्रीय समुदाय को ध्यान में रखते हुए, भारत के विदेश मंत्री सलमान खुर्शीद के सुप्रचारित बयान को कम से कम ऑल इंडिया रेडियो और दूरदर्शन पर, सरकार के स्वामित्व वाले मीडिया चैनलों पर- और सूचना और प्रसारण मंत्री द्वारा भी मीडिया इवेंट को एक राजनीतिक प्रयास के रूप में देखा जा सकता है। विशेष रूप से, टेलीविजन पर कार्यक्रम के सजीव प्रसारण ने प्रस्तुति को बाधित नहीं किया। घटना और दर्शकों के बीच मध्यस्थता करने के लिए कैमरा, वॉयसओवर, संपादकीय टिप्पणी या पत्रकारों के लिए कोई कार्य मौजूद नहीं था।

निष्कर्ष:

यह लेख उत्पादन और प्रतिनिधित्व स्तर पर क्रियाकलापों के विश्लेषण पर आधारित है। लेखक ने टेलीविजन पर घटना को वास्तविक समय में देखा और टेलीविजन और ब्रॉडशीट दोनों पर घटना से पहले और बाद की खबरों का अनुसरण किया। लेख में उपभोग करने वाले क्रियाकलापों की परीक्षा से नृवंशविज्ञान संबंधी जानकारी सुमियाला, २०१३ द्वारा दिया गया तर्क कि "रोजमर्रा के मीडिया की अनुष्ठानिकता" खपत के सिद्धांत का मूल्यांकन किया गया है। भारत में काफी संख्या में महत्वपूर्ण सांगीतिक मीडिया कार्यक्रम हुए हैं जो मुख्य रूप से टेलीविजन द्वारा और उसके आसपास निर्मित किए गए हैं,- मीडिया विद्वानों द्वारा बड़े पैमाने प्रचारित किये गए हैं। गणतंत्र दिवस समारोह, खेल के आयोजन, साथ ही इंडियन आइडल और टेलीविज़न पर शादी जैसे २००९ में राखी का स्वयंवर इत्यादि घटनाएं भी गंभीर अकादमिक एवं विद्वतापूर्ण अध्ययन का अनुभव कराती है। "भूटान की राजकीय शादी (२०११)" अन्य सांस्कृतिक समारोहों में से एक बहुचर्चित एवं दुर्लभ कार्यक्रम जिसमें एक देश में हो रही सांस्कृतिक घटना का दूसरे देश में बहुत रुचि से देखा गया हो। इस कार्यक्रम को भारत के पूर्वोत्तर के राज्य सिक्किम में सभी वर्ग के लोगों द्वारा बहुत ही रूचि पूर्वक देखा गया। हेप और कैनरी (२०१०) और कैनरी (२००५) के अनुसार, वर्तमान मीडिया घटनाओं का अध्ययन एक वैश्वीकृत मीडिया संस्कृति में "शक्ति प्रक्रियाओं" को समझने के लिए महत्वपूर्ण है। राष्ट्र में इस तरह के विशिष्ट टेलीविजन प्रोग्रामिंग के कम खोजे गए क्षेत्र पर ध्यान देने से, देश में मीडिया शिक्षाविदों को मीडिया अध्ययन के कई अंत:

विषय क्षेत्रों में अनुसंधान के दायरे को बढ़ाकर डिसीप्लिन को लाभ होगा, विशेष रूप से टेलीविजन अध्ययन में।

सन्दर्भ:

कान्टरील, एच. (१९४०). द इन्वेसन फ्रॉम मार्स : अ स्टडी इन द साइकोलॉजी ऑफ़ पैनिक . प्रिंसिटन : प्रिंसिटन यू निवर्सिटी प्रेस

कोउल्डरी, एन . (२००५). मिडिया रिचुअलस : बियोंड फंग्सनालिस्म इन रोथेनबूहलर एंड एम् कोमन (सम्पा.), मिडिया एंथ्रोपोलॉजी (पे. ५९-६९). थाउजेंड ओक्स / लन्दन / नई दिल्ली : सेज

डयन, डी., एंड केटज,इ. (१९९२). मीडिया इवेंट्स. दसजीवब्राडकास्टिंग ऑफ़ हिस्ट्री. केमब्रीज मए: हावर्ड यूनिवर्सिटी प्रेडायनस

डयन, डी.(२०१०). बियॉन्ड मीडिया इवेंट्: डिसएनचेनमेंट, डीरेलमेंट, डिसरपसन. इन एन. कोउल्डरी, ऐ. हेप एंड ऐफ. क्रोज (सम्पा.), मीडिया इवेंट्स इन अ ग्लोबल ऐज, (पे. २३-३१). लन्दन एंड न्यू यॉर्क: रॉउटलेज

डेविस – फ्लोयड, आर. (१९९२). बर्थ एज एन अमेरिकन रीईट ऑफ़ पैस्सज. बर्कले: यूनिवर्सिटी ऑफ़ कैलिफ़ोर्निया प्रेस

डेफ्लिउर, एम्.एल. एंड डेनिस, ई . ई . (१९९१). अंडरस्टैंडिंग मासकम्युनिकेशन . दिल्ली : गोयल साब .

दुर्खेईम, ई. (१९९५), द एलिमेंटरी फॉर्म्स ऑफ़ रिलिजिअस लाइफ . (के. फील्ड्स, ट्रांस). न्यूयार्क/ टोरंटो/ लन्दन/ सिडनी/टोक्यो/ सिंगापुर : डी फ्री प्रेस (ओरिजिनल वर्क पब्लिश्ड, १९१२).

गीडडेंस, ए. (१९९०). द कोन्सिक्वुएन्स ऑफ़ मॉडर्निटी. कैंब्रिज: पोलिटी प्रेस

ग्रिम्स , आर.एल. (२०११)). रिचुअल, मीडिया एंड कनफ्लिक्ट: एन इंट्रोडक्शन. इन आर.एल. ग्रिम्स , यू. हस्केन, यू. सिमोनएंड ई. वेंब्रूक्स (सम्पा.), रिचुअल मीडिया एंड कनफ्लिक्ट (पेज. ३-३३). न्यूयॉर्क: ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.

हेप्प. ए., एंड कोउल्डरी, एन. (२०१०). इंट्रोडक्शन: मीडिया इवेंट्स इन ग्लोबालाइज्ड मीडियाकल्चर्स. इन एन. कोउल्डरी, ए. हेप्प एंड एफ. क्रोज (सम्पा.), मीडिया इवेंट्स इन अ ग्लोबल एज (पेज. १-२०). लंदन एंड न्यू यॉर्क : राऊटलेज

ह्घेश, एस. (२००२). पोलिसिंग साइलेंट फिल्म एगजीबिसन साऊथ इंडिया . इन आर. वासुदेवन. (सम्पा.), मेकिंग मीनिंग इन इंडियन सिनेमा (पेज ३९-६४). न्यू दिल्ली : ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.

काट्ज़, ई. एंड लिएब्स, टी. (२०१०). "नौ मोर पीस!" हाव डिजास्टर , टेरर एंड वार हेव अपस्टेंड मीडिया इवेंट्स . इन एन. कोउल्डरी, ए. हेप्प एंड एफ. क्रोज (सम्पा.), मीडिया इवेंट्स इन अ ग्लोबल एज (पेज. ३२-४२). लंदन एंड न्यू यॉर्क : राऊटलेज

कीच, सी. (२०००). 'अ न्यूज़ ऑफ़ फीलिंग एज वेल एज फैक्ट: मौर्निंग एंड मेमोरियल इन अमेरिकन न्यूज़ मैगजीनस . जर्नलिज्म १(२), १७१-१९५.

रोथेनबुहलार, ई.डब्लू. (२००६). कम्युनिकेशन एज रिचुअल . इन जी. जे. शेफ़र्ड, जे. संत. जॉन, एंड टी. स्ट्रिफास

(सम्पा.), कम्युनिकेशन एज .... स्टेंस ओं थ्योरी (पेज १३-२१), थाउजेंड ओकस, सी.ए.: सेज

सिल्वरस्टोन, आर. (१९९९). टेलीविज़न एंड एवरीडे लाइफ . लन्दन एंड न्यू यॉर्क : राऊटलेज

सुमिआला, जे. (२०१३). मीडियाएंड रिचुअल : डेथ, कम्युनिटी एंड एवरीडे लाइफ. लन्दन एंड न्यू यॉर्क : राऊटलेज

तम्बिआह, एस. जे. (१९८१). अ परफोर्मेटिव अप्रोच टू रिचुअल. प्रोसेडीन्स ऑफ़ ब्रिटिश अकेडमी , ६५ (१९७९), ११३-१६९.

विल्के, जे. (२०१०). हिस्टोरिकल पर्सपेक्टिव ओन मीडिया इवेंट्स : अ कोम्परिसन ऑफ़ द लिस्बन अर्थक्वेक इन १७५५ एंड द सुनामी केटास्टोफे इन २००४. इन मीडिया इवेंट्स इन अ ग्लोबल एज (पेज ४५-६०). लंदन एंड न्यू यॉर्क : राऊटलेज

विल्डरमुथ, एन. (२०१०). मीडिया इवेंट्स एंड जेंडर्द आइडेंटिटीस इन साऊथ एशिया : मिस वर्ल्ड गोइंग "देशी". इन मीडिया इवेंट्स इन अ ग्लोबल एज (पेज ४५-६०). लंदन एंड न्यू यॉर्क : राऊटलेज

जनजातीय महिलाओं के आर्थिक जीवन पर आधुनिकीकरण का प्रभाव (गढवाल की बुक्सा जनजाति के सन्दर्भ में)

पूजा दरमोड़ा

शोध सारांश

स्वभाव से सामाजिक प्राणी होने के नाते मनुष्य को अपने जीवन के अनेक क्षेत्रों से सम्बन्धित विविध प्रकार की क्रियाओं का संपादन करना पडता है। जिसमें आर्थिक क्रिया विशेष रूप से महत्वपूर्ण मानी जाती है। आर्थिक क्रियाशीलता मनुष्य की उन सभी क्रियाओं में से महत्वपूर्ण है, जिससे वह अपना शारीरिक जीवन व अस्तित्व बनाये रखता है। वर्तमान परिवेश मे आधुनिकता का मानव जीवन से प्रत्यक्ष सम्बन्ध है। समय के बदलते चक्र के साथ ही मनुष्य ने अपनी आवश्यकताओं में भी बदलाव किया है। यही बदलाव धीरे-धीरे आधुनिकता के रूप में उभर कर सामने आया है। जहां तक जनजातियों में आधुनिकता का प्रश्न है, वह स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् ही प्रारम्भ हो गया था। स्वतन्त्रता के पश्चात् देश में तीव्र गति से सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक परिवर्तन हुये। लोगों में जागरूकता बढी, शिक्षा के स्तर में बढोत्तरी हुई। आधुनिकीकरण का प्रभाव समाज के हर क्षेत्र पर पड़ा। जनजातीय समाज भी आधुनिकीकरण के प्रभाव से अछूता नहीं रहा। प्रस्तुत शोध पत्र गढवाल की बुक्सा जनजाति की महिलाओं पर आधुनिकीकरण के प्रभाव पर केन्द्रित है।

मुख्य शब्द- *आधुनिकीकरण, जनजाति, बुक्सा, परिवेश, प्रौद्योगिकी*

प्रस्तावना

वर्तमान में ऐसा कोई समाज नहीं है जिस के निर्माता उसे आधुनिक बनाने का प्रयास ना कर रहे हो। आधुनिकीकरण की अवधारणा नवीन नहीं है, इनसाइक्लोपीडिया ऑफ सोशल साइंसेज में लिखा है कि आधुनिकीकरण हाल ही में विकसित कोई नवीन अवधारणा नहीं है, बल्कि यह तो सामाजिक परिवर्तन की पुरानी प्रक्रियाओं के लिए नवीन शब्द है। जहां कम विकसित देश उन विशेषताओं को अपनाते हैं, जो कि अच्छे विकसित देशों के लिए सामान्य हैं। आधुनिकीकरण की अवधारणा मूलत: अंग्रेजी के आधुनिक शब्द से ही बनी है। आधुनिक का आशय है - गत्यात्मकता और गत्यात्मकता का आशय है, परंपरावादी विचारों, मान्यताओं, आदर्शों आदि को छोड़कर नवीन विचारों, मूल्यों, समानता, प्रजातांत्रिक, वैज्ञानिक, स्वतंत्रता वादी आदि आधुनिक मूल्यों को आत्मसात करना।

पता - 97 इंदिरा गांधी मार्ग प्रीत विहार निरंजनपुर पो.ओ माजरा देहरादून, ई-मेल- poojadarmora75@gmail.com

इस प्रकार हम देखते हैं कि आधुनिकीकरण की प्रक्रिया विश्व संस्कृति का प्रसार है, जो उन्नत प्रविधि, शिक्षा, विज्ञान, जीवन के बारे में विवेकपूर्ण दृष्टिकोण, सामाजिक संबंधों के बारे में अलौकिक विचारधारा, जन संबंधों के लिए न्याय की भावना के आधार पर, जिसका संबंध एक प्रकार के आधुनिक जीवन के लिए विकल्प के चयन एवं इच्छाओं को समझने से है। आधुनिकीकरण वर्तमान समय में समस्त क्षेत्रों में व्यापक रूप से जोर पकड़ता जा रहा है इसके क्रमिक विकास का सामाजिक, धार्मिक,राजनीतिक संस्थाओं पर व्यापक प्रभाव पड़ा है जिसने परंपरागत स्वरूप में परिवर्तन ला दिया है।[1]

भारत में आधुनिकीकरण की नींव ब्रिटिश शासन काल में पड़ी, जिससे यहां के परंपरागत मूल्य जो कि लंबे समय से चले आ रहे थे आधुनिकीकरण से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके। इसी प्रक्रिया में भारत के उत्तराखंड राज्य का गढ़वाल क्षेत्र भी अछूता नहीं रहा और यहां की जनजातियां भोटिया,जौनसारी व बुक्सा भी आधुनिकीकरण का हिस्सा बनी।

आधुनिकता के इस दौर मे ऐसा कोई क्षेत्र नहीं है जहां महिलाओं ने अपनी भूमिका सिद्ध न की हो। चाहे वह तकनीकी व प्रौद्योगिकी का क्षेत्र हो या व्यावसायिक, सांस्कृतिक या राजनीतिक का क्षेत्र हो, शिक्षा, सामाजिक कार्य, डॉक्टरी इन प्रमुख व्यवसायों में महिलाओं का अनुपात अन्य क्षेत्रों की अपेक्षा अधिक है। महिलाओं ने नगण्यता की स्थिति से स्वयं को निकालकर वर्तमान स्थिति तक पहुंचाया है। आधुनिक युग में अनेक परिवर्तन हुये हैं, जिसके चलते सामाजिक व आर्थिक जीवन में अनेक परिवर्तन देखने को मिल रहे है, और परिवर्तन का यह स्वरूप निरन्तर रूप से विश्व स्तर पर आज भी विद्यमान है। इसी परिवर्तन को अभिव्यक्त करने के लिए समाजशास्त्रियों ने आधुनिकीकरण जैसी अवधारणा का प्रतिपादन किया है। जिसके बहुत से आयाम हैं -जैंसे व्यक्ति, समूह एवं समाज के रूप में। आधुनिकता का सम्बन्ध एक विशेष तरीके के अनुभव व एक विशेष प्रकार की संस्कृति से है। जिसके अन्तर्गत सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक गठबन्ध होता है, जो इसे एक अलग पहचान देता है, आधुनिकीकरण का समावेश मुख्यत: खान-पान, रहन-सहन, वेशभूषा सभी में देखा जा सकता है किन्तु आधुनिकीकरण एक प्रकार से औद्योगिक अर्थव्यवस्था का आईना है, जिसे आधुनिकता कहते हैं।वर्तमान में आधुनिकता की व्याख्या इण्टरनेट व प्रौद्योगिकी, मोबाइल फोन, रेस्टोरेण्ट के सन्दर्भ में भी की जाने लगी है।

शोध प्रविधि - प्रस्तुत शोध पत्र पर तैयार करके वैज्ञानिक विधियों का प्रयोग किया गया है, जिसके अन्तर्गत उद्देश्यपूर्ण निदर्शन अवलोकन पद्धति, साक्षात्कार अनुसूची पद्धति के माध्यम से अध्ययन किया गया है। अवलोकन द्वारा शोध क्षेत्र से विषय का अध्ययन किया गया है। साक्षात्कार अनुसूची के माध्यम से चयनित महिलाओं से यह जानने का प्रयास किया गया है कि, आधुनिकीकरण के माध्यम से ग्रामीण समाज पर क्या-क्या परिवर्तन देखने को मिले हैं या किन-किन क्षेत्रों पर इसका प्रभाव पडा है। उद्देश्यपूर्ण निदर्शन विधि के माध्यम से 60 उत्तरदाताओं का चयन किया गया। प्राप्त आंकडों को वर्गीकृत कर विश्लेषित किया गया है। इसके साथ ही उन सभी इकाइयों का अध्ययन किया गया है, जो आधुनिकीकरण से प्रभावित हुई हैं।

शोध क्षेत्र का संक्षिप्त विवरण:-प्रस्तुत शोध पत्र में चयनित अध्ययन क्षेत्र गढवाल की बुक्सा जनजाति है। बुक्सा जनजाति गढवाल

क्षेत्र के देहरादून जिले में सहसपुर, डोईवाला, व विकासनगर, हरिद्वार के लालढांग व पौडी गढवाल के दुगड्डा क्षेत्र में छोटी-छोटी ग्रामीण बस्तियों में निवास करती है। बुक्साओं की आम धारणा है कि वे राजस्थान के किसी राजपूत राजा के वंशज थे तथा राजघराने की किसी रानी से उनके वंश की उत्पत्ति हुई थी। बुक्साओं के कथनानुसार उन्हें मुगलों के भय से राजस्थान को छोड़कर तराई पहुंचना पड़ा था। बुक्सा महिलाओं की मान्यता है कि वे राजपूताने की रानियों के वंशज हैं और वे स्वयं को उच्च पंवार राजपूत वंश का मानती हैं। जो मुस्लिम आक्रमण के समय राजपूताने, धारा नगरी अथवा दक्षिण की ओर मध्य प्रदेश से भागकर तराई के वनों में आकर छुप गई थीं। इस प्रकार बुक्सा जनजाति स्वयं को राजपूतों का वंशज मानती है।2 देहरादून के बोक्साओं को 'मेहरा' के नाम से भी पुकारा जाता है, तथा वे स्वयं को 'कुशावंशीय राजपूत' बतलाते हैं।3 बुक्सा जनजाति की जनसंख्या 2011 के जनगणना के अनुसार, गढवाल क्षेत्र में 22700 है जिसमें 11,979 पुरूष और 10,717 महिलाओं की संख्या है।[4]

गढ़वाल क्षेत्र की बुक्सा जनजाति प्राकृतिक संसाधनों की दृष्टि से सम्पन्न है, यहां महिला श्रम का भी अभाव नहीं है, किन्तु संशाधनों के सही क्रियान्वयन के अभाव में आर्थिक विसंगतियां विद्यमान रहती हैं। महिलाओं का एक बहुत बडा वर्ग वन आधारित क्रियाओं पर अश्रित हैं। इस आधुनिक समय मे व्यवसायीकरण की तेजी में महिलायें परम्परागत कुटीर उद्योगों व स्वयं सहायता समूह से जुड़ रही है। किन्तु सरकारी योजनओं के तहत संचालित लघु कुटीर उद्योगों के लाभ से वह स्वयं को वंचित मानती है, जिसका कारण वह अपना निरक्षर होना बताती है।

आर्थिक महत्ता का यह समय महिलाओं को आर्थिक रूप से अपनी ओर आकर्षित कर रहा है। महिलाओं में आज भी उनके परम्परागत उद्योगों को लेकर जिज्ञासा विद्यमान है, परम्परागत व्यवसायों का भी आधुनिकीकरण का चलते कायांतरण हो चुका है, जिससे उत्पादों की गुणवत्ता भी बढ़ गई है, और उनके मूल्यों में भी वृद्धि हुई। अपेक्षाकृत यदि हम बुक्सा समाज की महिलाओं की बात करें तो, यह गढवाल क्षेत्र की अन्य जनजातीय महिलाओं से कमतर स्थिति में है, किन्तु यदि बुक्सा समाज की निरक्षर महिलाओं का आंकलन करें तो यह स्पष्ट देखने को मिलता है कि इस स्थिति पर जीवन निर्वाह करने वाली महिला में भी आधुनिकता का प्रभाव स्पष्ट प्रतीत होता है। इनमें भी फैशन, पहनाव, रहन-सहन आदि पर काफी भिन्नता देखने को मिल रही है। आधुनिकीकरण ने प्रत्येक जनजातीय समुदाय को भिन्न-भिन्न तरीके से प्रभावित किया है, इसी क्रम में गढ़वाल की बुक्सा जनजाति की बात की जाए तो इस समुदाय में आधुनिकीकरण सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक आदि क्षेत्रों में देखने को मिलता है। इस जनजातीय समुदाय की महिलाओं के आर्थिक जीवन को आधुनिकीकरण ने किस प्रकार प्रभावित किया है इसका विश्लेषण प्रस्तुत शोध पत्र में किया गया है तथा जिसे निम्न बिंदुओं के आधार पर समझा जा सकता है -

शैक्षिक क्षेत्र में पर प्रभाव:-शिक्षा एक ऐंसा माध्यम है जिससे मनुष्य का सर्वांगीण विकास सम्भव होता है, वर्तमान में शिक्षा सभी सामाजिक प्राणियों की आवश्यकता बन गई है, जनजातियां आज शिक्षा के प्रभाव से उन्नि्त के मार्ग पर अग्रसर है, किन्तु उन्नि्त की इस दौड़ में बुक्सा जनजाति आज भी बहुत पीछे हैं। क्षेत्रीय भ्रमण के बुक्सा महिलाओं से लिए गये साक्षात्कारों के आधार पर यह कहा जा सकता है,कि यहां महिलायें आज भी शिक्षा के प्रति उदासीन है,

60 उत्तरदाताओं में से 40 महिलाओं की राय शिक्षा के प्रति उदासीन है। बाकी 30 महिलायें 18-22 वर्ष की छात्रा है, जो शिक्षा ले रही है। शासन स्तर पर जो शिक्षा के प्रति प्रचार-प्रसार किया जा रहा है, उसका यहां की महिलाओं पर खास फर्क नहीं पडा है।[5] निम्नलिखित तालिका इस बात को स्पष्ट करती है -

तालिका क्रम

क्र.	शिक्षा के प्रति जागरूकता	संख्या	प्रतिशत
01	हाँ	20	33.3
02	नहीं	40	66.6
	योग	60	100

आर्थिकी के क्षेत्र में प्रभाव-

बुक्साओं का जीवन कृषि व्यवस्था पर आधारित है। कृषि के सहायक पेशे के रूप में यह पशुपालन भी करते हैं। इसके साथ ही जानवरों का शिकार, लकड़ी काटकर बेचना, चटाई, डलिया (टोकरी) बनाना, खाट-चारपाई का निर्माण, रेशम कीट पालन करना अन्य इनके द्वितीयक पेशे हैं,जिन्हें करने में महिलाएं मुख्य भूमिका निभाती हैं।6 शिक्षित बुक्सा महिलाएं राजकीय तथा गैर सरकारी सेवाओं में भी कार्यरत है।इनके द्वारा किए जाने वाले आर्थिक क्रियाकलाप निम्नलिखित हैं -

1. कृषि कार्य-

बुक्सा जनजाति की मूल आर्थिक गतिविधि कृषि थी। परंतु वर्तमान में ग्राम सर्वेक्षण में यह बात उभर कर आती रही कि नशे की आदत के कारण गैर जनजाति समुदाय द्वारा इनसे जमीन का सौदा कर लिया जाता है। कुछ गैर जनजातीय समुदाय निरक्षर बुक्साओं का फायदा उठाकर उनकी जमीन पर कब्जा कर लेते हैं, जिसका परिणाम यह है कि यह बुक्सा समुदाय अपनी जमीन पर कृषि मजदूर के रूप में कार्य कर रहे हैं। कुछ ही बुक्सा परिवार ऐसे हैं जो भूमि के स्वामी हैं। कृषि का का कार्य प्राय: स्त्री व पुरुष दोनों ही करते हैं महिलाएं हल नहीं चलाती हैं, लेकिन बुवाई और निराई-गुड़ाई में उनकी प्रधानता है।7

2. पशुपालन -

बुक्सा जनजाति कृषि के सहायक पेशे के रूप में पशुपालन करती है। यह पशुओं में गाय भैंस पालते हैं जिनकी देखभाल महिलाओं द्वारा ही की जाती है। इन जानवरों के लिए घास लाना, दूध दुहना आदि कार्य महिलाएं ही करती हैं।8

3. रेशम कीट पालन -

बुक्सा जनजाति क्षेत्र में रेशम कीट पालन विभाग द्वारा रेशम कीट पालन योजना चलाई गई है इस योजना का आरंभ बुक्सा ग्रामों में तृतीय पंचवर्षीय योजना से किया गया था।[9] देहरादून जिले के ग्राम माजरी ग्रांट, बक्सर वाला, डोईवाला, शाहपुर तितरपुर, अथोवाला में निवास करने वाली बुक्सा जनजाति के परिवारों में रेशम कीट पालन किया जाता है। इसके अंतर्गत महिलाएं ही शहतूत के पत्ते लाती हैं तथा रेशम कीटों की साफ-सफाई आदि महिलाएं ही करती हैं। रेशम कीटों द्वारा निर्मित रेशम को रेशम विभाग में जमा किया जाता है। प्रति किलोग्राम के अनुसार रेशम की कीमत तय होती है, जिससे बुक्सा महिलाओं को आय प्राप्त होती है।[10]

4. परंपरागत कुटीर उद्योग-

मंदरा चटाई बनाना- बुक्सा जनजाति के ग्राम उद्योग में मंदिरा बनाना प्रमुख कुटीर उद्योग है। इस कार्य को महिलाएं ही करती हैं। मंदरा यहां सर्दियों में बनाया जाता हौ जिसको कि यह लोग धान की पराली से बनाते हैं जो कि इन्हें ठंड से

बचाता है। बुक्सा सन को चारपाई की चैड़ाई के बराबर चैड़ा ही बनाते हैं। वर्तमान में शोध सर्वेक्षण से निकलकर आया कि भोटो देवी, ग्राम तीपरपुर, देहरादून इस कार्य को करती हैं तथा चटाईयों को बाजारों में बेचती भी हैं जिससे इन्हें आय प्राप्त होती है।[11]

टोकरी बनाना- बुक्सा स्त्रियां टोकरी बनाने का कार्य भी करती हैं। टोकरी बनाने हेतु शहतूत की पतली-पतली डंडियों तथा घास को उपयोग में लाया जाता है। इन टोकरियों को बाजारों में सब्जी के लिए बेचा जाता है। इनका प्रयोग यह स्वयं अपने लिए भी करते हैं।[12]

बान बनाना- बुक्साओं का यह प्रमुख कुटीर उद्योग है। बुक्सा अपने खेतों में सन की खेती भी करते हैं, जिसके रेशे से पशुओं को बांधने के लिए रस्सियां, चारपाई बुनने हेतु बान तैयार किया जाता है। इसे भी महिलाओं द्वारा ही किया जाता है तथा स्थानीय बाजारों में बेचा जाता है।[13]

गुफलें बनाना- बुक्सा महिलाएं गाय, भैंस के गोबर से गुफलें बनाती हैं। ये आकार में रोटी की तरह होते हैं, जिन्हें कच्चे गोबर से बना कर सुखा दिया जाता है। बाद में इनका प्रयोग आग जलाने हेतु किया जाता है। कुछ महिलाएं इन्हें बेच कर अपनी आजीविका भी चलाती हैं।[14]

बुक्सा जनजाति की महिलाओं का वर्तमान व्यावसायिक विवरण निम्नलिखित तालिका में दिया गया है—

तालिका क्र. सं. 02

क्र.	व्यवसाय	संख्या	प्रतिशत
01	पारंपरिक	40	66.6
02	सरकारी	05	8.3
03	गैर-सरकारी	15	25
	कुल	60	100

स्रोत; शोध सर्वेक्षण

तालिका के अनुसार 66.6 प्रतिशत् महिलायें आज भी अपने पारम्परिक व्यवसायों का अपनायें हुये हैं, जिसमें डालिया बनाना, टोकरी, रेशमकीट, खाट-चारपाई का निर्माण करना वही 85 प्रतिशत् महिलायें सरकारी सेवा तथा 85 प्रतिशत् महिलायें गैर-सरकारी पदों पर कार्यरत है।

तालिका क्रं. सं. 03

क्र.	आय के साधन	संख्या	प्रतिशत
01	मजदूरी	10	16.6
02	कृषि कार्य	25	41.6
03	कताई/बुनाई/व्यापार	15	25
04	राजकीय सेवा	05	8.3
05	गैर-सरकारी	05	8.3
	योग	60	100

स्रोत; शोध सर्वेक्षण

उपरोक्त तालिका से यह ज्ञात होता है, कि वर्तमान में 25 प्रतिशत् महिलायें सरकारी सेवा 9 5 प्रतिशत् महिलायें गैर-सरकारी सेवाओं में अपनी सेवा प्रदान कर रही है, 10 प्रतिशत् महिलायें मजदूरी, 25 प्रतिशत् महिलायें कृषि कार्य कर रही है। 15 प्रतिशत् कताई/बुनाई कर अपनी वस्तुओं को बाजारों में बेचती है, जिससे वह अपने परिवार की आर्थिक कमी को पूरा करके तथा प्राप्त आय से परिवार को आर्थिक सहायता प्रदान करती है।

महिलाओं की मासिक आय पर आधारित विवरण:- महिलाओं की स्थिति को ऊपर उठाने में उसके द्वारा अर्जित आय का महत्वपूर्ण स्थान होता है। बुक्सा महिलायें पारम्परिक व्यवसाय एवं पशुपालन से आय अर्जित करती है। बुक्सा महिलाओं की मासिक आय का विवरण निम्न तालिका में दिया गया है -

तालिका क्र.सं. 4

क्र.	मासिक आय वर्ग	संख्या	प्रतिशत
01	500-3000	38	63.33
02	3001-5500	22	36.66
03	5501 से ऊपर	00	0
	कुल 60	100	

स्रोत; शोध सर्वेक्षण

उपरोक्त तालिका से यह स्पष्ट होता है कि अध्ययनरत महिलाओं में वर्तमान समय की 633 प्रतिशत् महिलायें 500 से 3000 की आय वर्ग की है, तथा 22 प्रतिशत् महिलायें 3001-5500 के आय वर्ग के भीतर आती है। वर्तमान समय में महिलाओं की आय बढी है, किन्तु बढती हुई मंहगाई को देखते हुये उनकी आय बहुत कम तथा गरीबी और निर्धनता उसी स्तर की है। महिलाओं की आय कम होने तथा आवश्यकताओं के बढ जाने से बचत में कमी देखने को मिलती है। जो भी बचत हो पाती है, उसके लिए महिलाओं को काफी मुश्किलों का सामना करना पड़ता है। जिस कारण उन्हें अन्य लोगों से समय-समय पर ऋण भी लेना पडता है।

महिलाओं की बचत का विवरण निम्नलिखित है-

तालिका क्रं. सं. 5

क्र.	बचत का विवरण	संख्या	प्रतिशत
01	बचत करती है	48	80
02	बचत नहीं करती है।	12	20
	योग	60	100

स्रोत; शोध सर्वेक्षण

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि वर्तमान में 80 प्रतिशत् महिलायें बचत करती है तथा 20 प्रतिशत् महिलायें बचत नहीं करती है।

निष्कर्षः-

वर्तमान समय में महिलाओं में आर्थिक, सामाजिक, व राजनैतिक चेतना को लेकर वृद्धि हुई है। वह आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनना चाहती है, उनमें आत्मविश्वास बढेगा और वह प्रगति की ओर अग्रसर होंगी। उपरोक्त आधार पर यह निष्कर्ष निकाला गया है कि आधुनिकता के इस युग में आज भी बुक्सा महिआयें शिक्षा के प्रति सजग नहीं हुई है। वे स्वयं को घर की चारदिवारी तक स्वयं ही सीमित रखना चाहती है। मात्र 20 प्रतिशत महिलाओं ने शिक्षा के प्रति रूचि दिखायी है। बुक्सा महिलायें आज भी कृषि-पशुपालन, बढाई-बुनाई, तक सिमट कर रह गई हैं, सरकारी व गैर सरकारी स्थानों पर उनकी उपस्थिति ना के बराबर है। अज्ञानता के कारण आज भी यहां की महिलायें सरकार द्वारा चलाई गई छात्रवृत्ति योजना, इंदिरा आवास योजना से अनभिज्ञ हैं। महिलाओं को समाज की धुरी माना जाता है, परिवर्तन के इस दौर में बुक्सा महिलाओं का मानना है कि आधुनिकीकरण के फलस्वरूप भी इनकी स्थिति में कोई खास बदलाव नहीं आया है, उत्तरदाता यह मानती हैं कि आधुनीकिकरणै के फलस्वरूप भले ही खान-पान, परिधानों में परिवर्तन आया हो किन्तु उनकी आर्थिक स्थिति में अधिक परिवर्तन नहीं आया है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

01. खालीकुज्ज़मा, (2011), मुस्लिम महिलाओं में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया का समाजशास्त्रीय अध्ययन, शोध प्रबंध, वी.बी.एस. पूर्वांचल विश्वविद्यालय, पृष्ठ सं. 1।

02. रावत, अजय,(1996), तराई के वन और वनवासी, नैनीताल, पृष्ठ सं. 73,171-173।
03. टम्टा, अंकिता, आजादी के बाद उत्तराखण्ड की जनजाति महिलाओं का समग्र इतिहास, पृष्ठ सं. 15।
04. Source Ministry of Tribal Affairs
05. क्षेत्रीय भ्रमण, गांव तीपरपुर, देहरादून, 2022।
06. क्षेत्रीय भ्रमण, ग्राम भंगलाना, देहरादून, 2022।
07. पूर्वोक्त, पाण्डेय, सुभाष, (2007), पृष्ठ सं. 186।
08. साक्षात्कार,ममता देवी, उम्र 45 वर्ष, ग्राम माजरी ग्रांट।
09. पाण्डेय, सुभाष, (2007), उत्तराखण्ड़ की बोक्सा जनजाति: सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक परिवर्तन के परिप्रेक्ष्य में एक ऐतिहासिक अध्ययन, अप्रकाशित शोध प्रबंध, हेमवती नन्दन बहुगुणा गढ़वाल विश्वविद्यालय, पृष्ठ सं. 186।
10. साक्षात्कार, रश्मि, उम्र 18वर्ष, ग्राम बक्सरवाला (डोईवाला)।
11. साक्षात्कार, भोटो देवी, उम्र 82 वर्ष, गा्रम तीपरपुर।
12. साक्षात्कार, रीना देवी, उम्र 25 वर्ष ग्राम शाहपुर/ कल्याणपुर।
13. साक्षात्कार, वीरवती देवी, उम्र 46 वर्ष, गा्रम आथोवाला।
14. वही।

ब्रज के प्रमुख लोक वाद्य

प्रीति सिंह

सारांशिका

ब्रज उत्तर प्रदेश में यमुना नदी के आस-पास का बसा हुआ क्षेत्र है जहाँ नटनागर भगवान श्री कृष्ण ने जन्म लेकर इसे भारत ही नहीं अपितु पूरे विश्व में एक अलग पहचान दिलाई। ब्रज एक गौरवशाली संस्कृति का देश है। भक्ति और संगीत यहाँ के कण-कण में बसा हुआ है।यहाँ लोक संगीत की परम्परा बहुत विस्तृत है। मनुष्य के जन्म से लेकर मृत्यु तक के सभी संस्कारों के गीत यहाँ गाये जाते हैं। कोई भी त्योहार, उत्सव तथा धार्मिक पर्व यहाँ लोकगीतों के बिना पूरे नहीं होते। ब्रज में गाये जाने वाले इन लोकगीतों की मधुर धुनों के कारण ही यहाँ मनाये जाने वाले हर उत्सव, हर त्योहार में एक अलग आनन्द और स्फूर्ति पैदा होती है, जिसके कारण ही लोग कोसो दूर से इन उत्सवों एवं त्योहारों का हिस्सा बनने और इन्हें महसूस करने चले आते हैं। ब्रज के लोक संगीत में वाद्यों का विशेष महत्व है। यहाँ कुछ वाद्यों को उत्सवों एवं त्योहारों पर परम्परागत रूप से बजाया जाता है। यहाँ प्रचलित लोकगीत की शैलियों में भी भिन्न-भिन्न वाद्यों का प्रयोग किया जाता है, जिसका विवरण इस शोध पत्र में आगे विस्तार पूर्वक किया गया है।

बीज शब्द - *ब्रज, संगीत, लोक, वाद्य*

शोध पत्र की प्रविधि-

प्रस्तुत शोध पत्र को पूरा करने हेतु विभिन्न पुस्तकों का अध्ययन किया गया। विषय से सम्बन्धित विशेषज्ञों से साक्षात्कार कर जानकारी एकत्रित की और स्वयं विषय से सम्बन्धित क्षेत्र में जाकर कार्य किया। प्रस्तुत शोध पत्र को ऐतिहासिक, विवेचनात्मक तथा विश्लेषणात्मक पद्धतियों को प्रयोग में लाकर लिखा गया है।

शोध पत्र का उद्देश्य-

प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य ब्रज के सुसमृद्ध लोक संगीत की परम्परा में प्रचलित वाद्यों से सभी को अवगत कराना है।

भूमिका-

ब्रज उत्तर प्रदेश में यमुना नदी के आस-पास का बसा हुआ क्षेत्र है जहाँ नटनागर भगवान श्री कृष्ण ने जन्म लेकर इसे भारत ही नहीं अपितु पूरे विश्व में एक अलग पहचान दिलाई। ब्रज एक गौरवशाली संस्कृति का देश हैं। भक्ति और संगीत यहाँ के कण-कण में बसा हुआ है। ब्रज में संगीत की परंपरा बहुत प्राचीन और समृद्धशाली है। यहाँ का प्रत्येक निवासी अपने आराध्य की भक्ति के लिए संगीत का आश्रय लेता है। ब्रज में शास्त्रीय संगीत और लोक संगीत का अनूठा संगम देखने को मिलता है। यहाँ लोक संगीत की परम्परा बहुत विस्तृत है। मनुष्य के जन्म से

शोध छात्रा : वाद्य विभाग, संगीत एवं मंच कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, मो0 नं0- 9532120904, ई-मेल: singpreeti2707@gmail.com

लेकर मृत्यु तक के सभी संस्कारों के गीत यहाँ गाये जाते हैं। कोई भी त्यौहार, उत्सव तथा धार्मिक पर्व यहाँ लोकगीतों के बिना पूरे नहीं होते। ब्रज में गाये जाने वाले इन लोकगीतों की मधुर धुनों के कारण ही यहाँ मनाये जाने वाले हर उत्सव, हर त्योहार में एक अलग आनन्द और स्फूर्ति पैदा होती है, जिसके कारण ही लोग कोसों दूर से इन उत्सवों एवं त्यौहारों का हिस्सा बनने और इन्हें महसूस करने चले आते हैं। ब्रज में उत्सवों के अवसर पर गाये जाने वाले कुछ गीत शैलियाँ इस प्रकार हैं- रसिया, लांगुरिया, होली आदि। ब्रज में बहुत से ऋतु गीत भी प्रचलित हैं जिन्हें मौसम के अनुकूल समय-समय पर गाया जाता है, जैसे सावन गीत, बारहमासी, झूलना आदि। इसके अतिरिक्त भी ब्रज में बहुत गायन शैलियाँ प्रचलित हैं, जैसे- ढोला, राँझा, जिकड़ी, लावनी, तान गायकी, सपरी आदि। ब्रज में बहुत सी पारम्परिक नृत्य शैलियॉ भी प्रचलित हैं, जैसे - रास नृत्य, चारकुला नृत्य, मयूर नृत्य, दीपक नृत्य आदि।

उपर्युक्त सभी गायन एवं वादन शैलियों में समुचित वाद्यों का प्रयोग कर इन्हें और भी मनमोहक बना दिया जाता है। ब्रज के लोक संगीत में वाद्यों का विशेष महत्व है। यहाँ कुछ वाद्यों को उत्सवों एवं त्यौहार पर परम्परागत रूप से बजाया जाता है। यहाँ प्रचलित लोकगीत की शैलियों में भी भिन्न-भिन्न वाद्यों का प्रयोग किया जाता है।

वाद्य -

सामान्य रूप से देखा जाए तो वाद्य कोई ऐसा यंत्र या वस्तु है जिससे मनुष्य अपने शारीरिक अंगो के प्रयोग से अथवा श्रम से ध्वनि उत्पन्न करे और वह ध्वनि संगीतोपयोगी हो। डॉ. दीपिका वालिया ने वाद्य को कुछ इस प्रकार परिभाषित किया है- ''वाद्य का नाम केवल उसी पदार्थ को दिया जा सकता है, जोकि मानव के हाथों या श्रम द्वारा बनाया जाता हो और जो संगीतात्मक ध्वनि उत्पन्न करने में पूरी तरह से समर्थ होता है।''

डॉ. लालमणि मिश्र जी ने लोक संगीत में वाद्यों के महत्व को दर्शाते हुए लिखा है-लोक संगीत की दो धारायें हैं। एक धुन की तथा दूसरी उसके वाद्यों की। लोक संगीत में वाद्यों का महत्व शास्त्रीय संगीत की अपेक्षा बहुत अधिक होता है। विशेष रूप से ताल-वाद्यों का, जिनके अन्तर्गत घन तथा अवनद्ध वर्गों के वाद्य आते हैं। चाहे लोकगीत हो अथवा लोकनृत्य, वाद्यों की आवश्यकता दोनों के लिए समान होती है। लोकगीतों एवं लोकनृत्यों में प्राण डालने वाले वाद्य ही होते हैं जिनके बिना उक्त दोनों निष्प्राण प्रतीत होते हैं।

वाद्यों का वर्गीकरण-

वाद्यों को चार भागों में वर्गीकृत किया गया है। प. शारंगदेव ने इसे अपने ग्रन्थ में निम्नलिखित श्लोक के माध्यम से कुछ में इस प्रकार बताया है-

''तत् ततं सुषिरं चावनद्धं घनमिति स्मृतम्।
चतुर्था तत्र पूर्वाभ्यां श्रुत्यादिद्धारतो भवेत्।।4।।

अर्थात् वाद्य तत्, सुषिर, अवनद्ध और घन इस तरह चार प्रकार से जाना गया है।''

इन चतुर्विध वाद्यों के लक्षणों को पं. शारंगदेव जी ने निम्नलिखित श्लोकों में बहुत ही स्पष्ट रुप से बताया है-

वाद्यतन्त्री ततं वाद्यं सुषिरं सुषिरंमतम्।।5।।
चमविनद्धवदनमवनद्धं तु वाद्यते।
घनो मूर्तिः साभिघाताद् वाद्यते यत्र तद् घनम्।।6।।

इन कारिकाओं में बहुत संक्षेप में चतुर्विध वाद्यों के सामान्य लक्षण उनमें ध्वनि-उत्पत्ति के माध्यम द्वारा कहे गए हैं। फैलाई हुई तंत्री पर

आघात से स्वरोत्पत्ति वाला वाद्य तत् है। सुषिर का अर्थ हैं भीतर से खोखला इसलिए भीतर छिद्र वाली यानी खोखली नली में पूरित वायु पर आघात से स्वरोत्पादन वाला वाद्य सुषिर है। मुँह पर मढ़े हुए चमड़े पर आघात से ध्वनि उत्पन्न होने से अवनद्ध वाद्य और दो ठोस पिण्डों को परस्पर टकरा कर ध्वनि की उत्पत्ति वाला वाद्य घन है।

ब्रज में प्रचलित तत् वाद्य

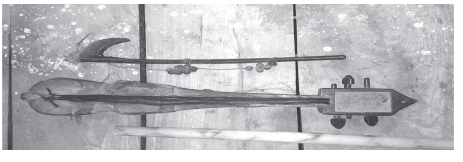
सारंगी -



सारंगी ब्रज का एक प्रचलित लोक वाद्य है। सारंगी को ब्रज के उत्सव एवं त्योहारों में गायी जाने वाली प्रचलित लोकधुनों के साथ तथा ब्रज के मंदिरों में होने वाले सामाज गायन के साथ भी बजाया जाता है परन्तु वर्तमान समय में ब्रज के लोक संगीत में इसका प्रचलन अपेक्षाकृत कम हुआ है और अब ज्यादातर सारंगी मंचीय कार्यक्रमों में ही देखा जा रहा है। सारंगी को रास में प्रमुखता से प्रयोग किया जाता था परन्तु अब यह केवल कुछ रास मण्डिलयों तक सीमित होकर रह गयी है।

रास में सारंगी की वर्तमान स्थिति को बताते हुए श्रीराम नारायण अग्रवाल जी ने अपने पुस्तक 'ब्रज का रास रंगमंच' में बताया है, ''रास में पहले प्राय: दो सारंगी एक साथ बजायी जाती थी जिन्हें समाज के दोनों छोरों पर लेकर दो समाजी बैठा करते थें, परन्तु अब धीरे-धीरे रास में अच्छे सारंगी वादकों का अभाव होता जा रहा है और उनका स्थान हारमोनियम बाजा लेता जा रहा है। आजकल कई मण्डलियों में से तो सारंगी बिल्कुल उठ ही गया है और कुछ मण्डलियों में वह केवल दिखावे के लिए ही हाथ में ली जाती है। अब ऐसी केवल दो-एक मण्डलियाँ ही शेष हैं जिनमें सारंगी को रास में प्रमुखता प्राप्त है।''

चिक्कारा-



ब्रज के लोक संगीत में चिक्कारा मुख्यत: ढोला गायन शैली के साथ संगति करने के लिए प्रयोग में लाया जाता है। ढोला गायन शैली वर्तमान समय में लगभग विलुप्त हो चुकी है और इस विलुप्त होती गायन शैली के साथ अब यह वाद्य भी विलुप्ति के कगार पर है। वर्तमान समय में ब्रज में सामान्यत: इसका प्रचलन नहीं मिलता। यह वाद्य दिखने में सारंगी के समान होता है परन्तु आकार में सारंगी से काफी छोटा होता है।

ब्रज में प्रचलित अवनद्य वाद्य

बम्ब-



बम्ब ब्रज का प्राचीन एवं प्रचलित लोक वाद्य है। ब्रज में इस वाद्य को पारंपरिक रुप से विशेष अवसरों पर ही प्रयोग किया जाता है। यह वाद्य ब्रज में मुख्यत: होली के अवसर पर बजाया जाता है। ब्रज के द्वारकाधीश मंदिर में होली के अवसर पर इस वाद्य का वादन प्रति वर्ष पारंपरिक रूप से किया जाता है। मंदिर मे गाये जाने वाले रसिया तथा फाग गीतों के साथ यह वाद्य बजाया जाता है इसके अतिरिक्त ब्रज में प्रचलित चारकुला नृत्य के साथ भी यह वाद्य पारंपरिक रुप से बजाया जाता है।

श्री चुन्नीलाल शेष जी ने बम्ब वाद्य का जो उल्लेख किया है उसके अनुसार, ''ब्रज में बड़े नगाड़े को भी, जो चैपाइयों के साथ होली पर निकलता है, 'डफ' कहते हैं। यह एक चार पहियों की गाड़ी पर लदा रहता है तथा खींच कर किसी भी स्थान पर ले जाया जा सकता है। इस पर दो-तीन व्यक्ति नगाड़े की लकड़ियों को लेकर पीटते हैं। इससे ढम-ढम का शब्द निकलता है। दक्षिण में इसे महा नगाड़ा कहते हैं।

नक्कारा-



नक्कारा ब्रज का बहुत ही प्राचीन तथा लोकप्रिय वाद्य है। ब्रज के इस प्राचीन वाद्य की लोकप्रियता वर्तमान में भी बरकरार है। यह वाद्य ब्रज संस्कृति में प्रचलित लगभग सभी लोकविधाओं के साथ बजाया जाता है। ब्रज की नौटंकी विधा में नक्कारा एक प्रमुख वाद्य के रुप में प्रयोग किया जाता है। ब्रज के गोकुल गॉव में जन्माष्टमी के दूसरे दिन नन्दोत्सव के अवसर पर शहनाई के साथ नक्कारे का वादन परम्परागत रुप से किया जाता है, ब्रज की इस प्रचीन परम्परा को आज भी उसी उत्साह के साथ निभाया जाता है। जब शहनाई के साथ नक्कारे का वादन किया जाता है तो उसे 'नौबत' बजना भी कहते हैं। सूरदास ने दानलीला प्रकरण में राजदरबार में नौबत बजने का वर्णन किया है, जिसमें गोपियाँ कृष्ण से कहती हैं-

जो तुम्हीं हौ सबके राजा।

×××××

बेनु बिसान स्त्रंग क्यों बाजे, बाजे नौबत बाजा''।

दुंदुभि प्रचीन समय का प्रचलित लोक वाद्य है और जिस भी ग्रन्थ में विद्वानों ने दुंदुभि का उल्लेख किया है उसे देखकर यह कहा जा सकता है कि दुंदुभि ही नक्कारा वाद्य का प्राचीनतम रुप है। प्राचीन समय में भी नक्कारे को मांगलिक वाद्य की संज्ञा प्राप्त थी। 'श्री चुन्नीलाल शेष' जी ने दुंदुभि के अवसरानुकूल प्रयोग को बताते हुए लिखा है, ''दुंदुभि आनंदोत्सवों, विवाहादि के समय तथा देवमंदिरों में बजाई जाती है। सूरदास जी के निम्नलिखित पद में देवताओं द्वारा कृष्ण जन्म के समय दुंदुभि बजाने का उल्लेख है-

''आनन्दे आनन्द बढ़यौ अति
देवनिदिवि दुंदुभि बजाई,
सुनि मथुरा प्रकटे जादवपति।''

ढोलक-



वर्तमान समय में ढ़ोलक एक प्रचलित लोक वाद्य है और इसे ब्रज के लोक संगीत में भी प्रचुरता से प्रयोग किया जाता है। ब्रज के हर घर में किसी भी उत्सव तथा मंगल पर्व पर गाये जाने वाले संस्कार सम्बन्धित गीतों के साथ घर की महिलाएँ ढोलक अवश्य बजाती हैं। ब्रज के लगभग सभी लोक विधाओं के साथ ढोलक बजायी जाती है। ढोलक ब्रज की नौटंकी लोक-विधा का एक प्रमुख वाद्य है। यह ब्रज के मंदिरों में होने वाले भजन-कीर्तन तथा यहॉ कही जाने वाली भागवत् कथाओं में भी आवश्यक रुप से बजती है।

डफ-



डफ ब्रज का प्राचीन एवं पारम्परिक लोक वाद्य है। ब्रज में डफ होली के प्रतिकात्मक वाद्य के रुप में जाना जाता है, ऐसा कहा जाता है कि यदि डफ मंदिरों में सुनाई देने लगे तो समझ जाना चाहिए कि होली का उत्सव आरम्भ हो गया है। ब्रज में हर आकार के डफ बजाये जाते हैं। इनका आकार लगभग डेढ से लेकर चार फुट व्यास तक हो सकता है। अष्टछाप के कवियों ने भी अपने बहुत से पदों में डफ वाद्य का उल्लेख किया है-

''बाजत डफ मृदंग बॉसुरी किन्नरी सुर कोमल री''

चंग-



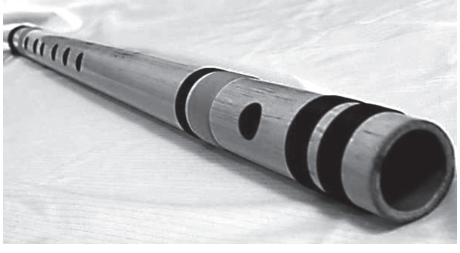
यह वाद्य ब्रज की लोक गायन विधा 'लावनी' (ख्याल गायन) के साथ बजाया जाता है। चंग ब्रज में होली के उत्सव पर भी बजता है। डॉ0 लालमणि मिश्र जी ने चंग के स्वरुप के विषय में बताते हुए लिखा है- ''उत्तर प्रदशे् में लोकगीत के स्तर का ख्याल गानेवालों का यह प्रसिद्ध वाद्य चक्राकार स्थूल चमड़े से मढ़ा हुआ होता है। इसका व्यास 18 से 22 अंगुल तक का होता है, घेरा चार अंगुल चैड़ी लकड़ी से बनाया जाता है, जिसमें एक ओर खाल मढ़ी होती है।''

ब्रज के अष्टछाप कवियों ने भी अपने पदों में चंग वाद्य का उल्लेख किया है-

'बाजत बीना, मृदंग, बॉसुरी, उपंग,चंग,
मदन भेरि डफ झांझ झालरी मंजीर।।''
(कृष्णदास)

ब्रज में प्रचलित सुषिर वाद्य

बाँसुरी-



यह ब्रज का अति प्राचीन और लोकप्रिय वाद्य है। इस वाद्य को प्रचलित करने का श्रेय वंशीधर भगवान श्री कृष्ण को जाता है जिन्होने इसे अपने अधरों पर रखकर इस वाद्य को अमरत्व प्रदान कर दिया। ब्रज के विभिन्न उत्सव, त्यौहार एवं धार्मिक पर्वों के अवसर पर बॉसुरी बजायी जाती है। ब्रज के बहुत से मन्दिरों में होने वाले समाज गायन में भी बाँसुरी का विशेष महत्व है। ब्रज में गायी जाने वाली लोकसंगीत की धुनों और बहुत से लोक विधाओं के साथ भी बॉसुरी का प्रयोग किया जाता है।

ब्रज की रास परंपरा में बॉसुरी की स्थिति को बताते हुए 'श्री रामनारायण अग्रवाल' जी लिखतें हैं, ''सुषिर वाद्य के रूप में जो वाद्य सबसे प्राचीन कहा जा सकता है और जिसका रास और रास के संस्थापक कृष्ण से सर्वाधिक घनिष्ठ सम्बन्ध है वह बाँसुरी है, परन्तु दुर्भाग्य से रास में वाद्य के रूप में फेंट में दिखावे के लिए ही खुंसी रहती है। रासलीला में जब कृष्ण के बाँसुरी वादन की आवश्यकता होती है। तो उसे ओष्ठों से लगाकर कृष्ण केवल बाँसुरी वादन का अभिनटन भर कर देते हैं। श्री कृष्ण का स्वरूप बनने वाले बालक प्राय: बाँसुरी वादन नहीं जानतें, कुछ स्वरूप ही उसे थोड़ी बहुत बजाना जानते हैं।''

हारमोनियम -



यह वाद्य ब्रज की लोकविधा का एक प्रचलित और लोकप्रिय वाद्य है। हारमोनियम का प्रयोग ब्रज की लगभग सभी लोकविधाओं के साथ संगत के लिए किया जाता है। नौटंकी विधा में हारमोनियम एक प्रमुख वाद्य के रुप में प्रयोग किया जाता है। यहॉ घरों में मनाये जाने वाले धार्मिक उत्सवों एवं मंगल पर्वों पर गाये जाने वाले संस्कार गीतों के साथ भी यह वाद्य कभी-कभी बजाया जाता है। उत्सव और त्यौहार के अवसर पर मंदिरों में आयोजित होने वाले समाज गायन में भी हारमोनियम का विशेष महत्व देखा गया है। ब्रज के मंदिरों में प्रतिदिन होने वाले अष्टायाम सेवा में भी हारमोनियम बजायी जाती है। यहॉ आयोजित होने वाली प्रत्येक धार्मिक कथाओं में भी हारमोनियम अवश्य बजती है।

शहनाई-

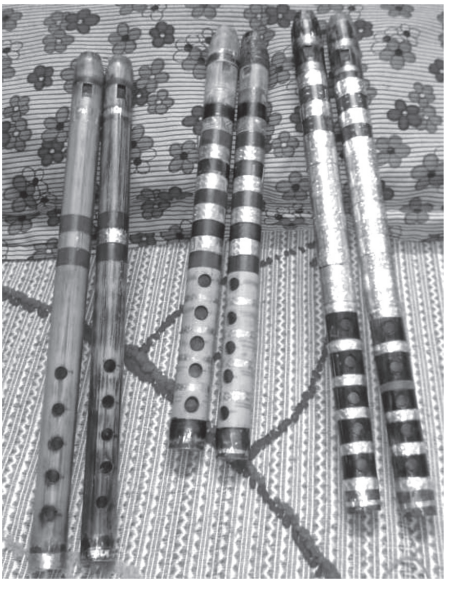


शहनाई को मंगल वाद्य की संज्ञा प्राप्त है। यह ब्रज में मंगल उत्सवों और शुभ अवसरों पर बजाया जाता है। ब्रज के शहनाई वादक अनीश अहमद जी ब्रज में शहनाई वादन की परम्परा को बताते हुए कहते हैं, ब्रज के गोकुल गॉव में जन्माष्टमी के दूसरे दिन नन्दोत्सव के अवसर पर हर वर्ष पारम्परिक रूप से बधाई गायन किया जाता है ब्रज में यह बहुत बड़ा उत्सव होता है जिसमें उनका परिवार लगभग सवा सौ साल से शहनाई वादन की परम्परा को निभा रहा है। बधाई गायन के इस शुभ असवर पर शहनाई वाद्य सहित अन्य वाद्यों जैसे नक्कारा, ढोलक, हारमोनियम, झाँझ, मंजीरा आदि वाद्यों का वादन भी किया जाता है।

ब्रज के अष्टछाप कवियों ने भी अपने बहुत से पदों में शहनाई का उल्लेख किया है-

ढोल, निसान दुंदुभि बाजत मदनभेरि आनक सहनाई।।

अलगोजा-



अलगोजा ब्रज का प्राचीन वाद्य है। ब्रज की कुछ लोक विधाओं के साथ संगति के लिए इसे प्रयोग किया जाता है और रासलीला जैसी लोक विधा के साथ भी इसे बजाया जाता था परन्तु वर्तमान समय में ब्रज के लोकसंगीत से यह लगभग लुप्त हो चुका है और ब्रज में साधारणत: इसे मंचो पर ही देखा जा सकता है।

ब्रज में प्रचलित घन वाद्य

ताल अथवा ताल -



ताल ब्रज का प्रचलित लोक वाद्य है। अष्टछाप कवियों ने अपने पदों में इस वाद्य का उल्लेख 'ताल' नाम से किया है और ब्रज में इसे 'ताल' नाम से भी जाना जाता है। यह वाद्य मुख्य रुप से ब्रज के 'तान गायकी' में प्रयोग किया जाता है, यह 'तान गायकी' ब्रज के चतुर्वेदी समुदाय के लोगों द्वारा गायी जाती है। ब्रज के अष्टछाप कवियों ने भी इस वाद्य का उल्लेख अपने बहुत से पदों में किया हैं-

''ताल मृदंग मुरज डफ बाजे'' (चतुर्भुजदास)
''बाजत ताल मृदंग झाँझ डफ मुरली मुरज उपंग।''

झाँझ-



झाँझ ब्रज में मुख्यत: भक्ति संगीत के साथ संगति के लिए प्रयोग किया जाता है। ब्रज के मंदिरों में होने वाले अष्टयाम सेवा में भी झाँझ बजायी जाती है। ब्रज में विशेष त्यौहारों एवं मंगल पर्वों पर समाज गायन आयोजित किए जाते हैं जिसमें झाँझ एक प्रमुख वाद्य होता है। ब्रज के हवेली संगीत में झांझ का विशेष महत्व होता है। झाँझ की झनकार पर गाये जाने वाले भक्ति संगीत के पद मन को छू लेने वाले होते हैं। अष्टछाप में इसका उल्लेख महोत्सवी प्रसंगों में बहुतायत से हुआ है।

ताल मृदंग झांझ बजावत बाँसुरी रसारी।''

मंजीरा -



ब्रज के मंदिरों में भजन एवं किर्तन के लिए मंजीरे का प्रयोग किया जाता है। किसी भी त्यौहार, उत्सव एवं मंगल पर्वों पर यह वाद्य ब्रज के मंदिरों सहित ब्रज के लगभग सभी घरों में भी बजाया जाता है। ब्रज के लोक विधाओं में भी इसकी संगति अन्य वाद्यों के साथ की जाती है। मंजीरा दिखने में झांझ जैसा होता है परन्तु आकार में छोटा होता है।

करताल, कठताल अथवा खड्ताल-

यह ब्रज का प्राचीन और लोकप्रिय वाद्य है। खड्ताल ब्रज में, उत्सव, धार्मिक समारोहों एवं



मंगलादि अवसरों पर बजाया जाता है। यह ब्रज में भजन एवं भक्ति संगीत के साथ भी प्रयोग किया जाता है। ब्रज में होली जैसे उत्सवों पर रसिया एवं होली गायन में अन्य वाद्यों के साथ इस वाद्य का प्रयोग भी किया जाता है। अष्टछाप कवियों ने भी करताल वाद्य का उल्लेख अपने बहुत से पदों में किया है-

कंसताल करताल बजावत सृंग मधुर मुखचंग।''

बेला-



बेला ब्रज के त्योहारों एवं धार्मिक उत्सवों के अवसर पर बजाया जाता है। ब्रज के मंदिरों में होली के अवसर पर फाग और रसिया गायन के साथ बेला वाद्य भी बजाया जाता है। नरसिंह उत्सव जैसे धार्मिक पर्वों पर भी यह वाद्य ढोल, ताशा आदि वाद्यों के साथ बजाया जाता है। बेला से निकलने वाली आवाज मंदिरों में बजने वाले घण्टे से काफी मिलती-जुलती होती है। बेला भी एक मंगल सूचक वाद्य है जिसे भगवान के जन्म के समय भी बजाया जाता है।

मदिलरा-

यह एक मिट्टी का घड़ा होता है जिसके ऊपर कांसे की थाली को उल्टा रखकर बजाया जाता है, इसे ब्रज में मदिलरा कहा जाता है। यह भी एक मंगल सूचक वाद्य है, जिसे पुत्र जन्म के समय बजाया जाता था परन्तु वर्तमान समय में इसका प्रचलन कम हो गया है और यह कुछ धार्मिक उत्सवों में ही बजते हुए देखा जा सकता है। डॉ. अंजू शर्मा जी ने होली के उत्सव पर भी मदिलरा के प्रयोग की बात कही है। डॉ. लालमणि मिश्र जी मदिलरा के विषय में बताते हुए लिखते हैं, ''ब्रज में पुत्र जन्म के समय मदिलरा बजाये जाने की विशेष प्रथा रही है। अतएव मदिलरा की ध्वनि सुनते ही सबको मालूम हो जाता था कि किसी के घर पुत्र जन्म हुआ है।''

अष्टछाप के कवियों ने भी इस वाद्य का उल्लेख अपने बहुत से पदों में किया हैं, यथा-

''गिडगिडतां थितां थितां दि मदिलरा बाजै।''

उपसंहार-

उपर्युक्त सभी वाद्य ब्रज के लोकसंगीत में विशेष स्थान रखते हैं। इन वाद्यों के बिना यहाँ मनाया जाने वाला हर उत्सव हर पर्व अधूरा है। यहाँ गाये जाने वाले लोकगीतों में पायी जाने वाली मधुरता, सौन्दर्य और रस इन वाद्यों के बिना संभव नहीं है। वर्तमान समय में ब्रज के बहुत से लोक वाद्य विलुप्त होने की कगार पर हैं जिनका संरक्षण और संवर्धन एक विशेष कार्य है जिसे यहाँ के लोक कलाकारों के कार्यों को जीविका के क्षेत्र से जोड़कर ही किया जा सकता है ऐसा ब्रज के गुणीजनों का मानना है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सितार के सरोकार, पृ. 7
2. भारतीय संगीत वाद्य, मिश्र, डॉ. लालमणि पृ. 358
3. संगीत रत्नाकर, चौधरी, सुभद्रा पृ. 249
4. वही, पृ. 249-250
5. ब्रज का रास रंगमंच, पृ. 262
6. अष्टछाप के वाद्ययंत्र, पृ. 42,43
7. वही
8. अष्टछाप के वाद्य यंत्र, शेष, श्री चुन्नीलाल पृ. 37
9. अष्टछाप संगीत: एक विश्लेषण, शर्मा, डॉ. नीरा पृ. 216
10. भारतीय संगीत वाद्य, पृ. 150
11. वही
12. ब्रज का रास रंगमंच, पृ. 263
13. अष्टछाप संगीत: एक विश्लेषण, पृ. 233
14. अष्टछाप के वाद्ययंत्र, शेष, श्री चुन्नीलाल पृ. 46
15. अष्टछाप के वाद्ययंत्र, शेष, श्री चुन्नीलाल पृ. 46
16. अष्टछाप संगीत: एक विश्लेषण, पृ. 225
17. अष्टछाप संगीत: एक विश्लेषण, शर्मा, डॉ. नीरा पृ. 223
18. भारतीय संगीत वाद्य, मिश्र, डॉ. लालमणि पृ. 40
19. ब्रज संस्कृति में संगीत, शर्मा, अंजू पृ. 215

भारतीय संगीत में वाग्गेयकार की परंपरा

डा. रवि जोशी (सहायक प्राध्यापक)

सारांश

साहित्य, दर्शन, भाषा-शास्त्र में वाक् व अर्थ के अंतर सम्बन्ध को लेकर विचार-विमर्श प्राचीन काल से ही चला आ रहा है। ऐसे ही वैदिक ऋषियों ने 'नाद' तथा नाद से उत्पन्न 'वाक' व 'गेय' तत्वों को लेकर चिंतन की परम्परा प्रारम्भ की थी। भारतीय आभिजात्य (शास्त्रीय) संगीत का मूलाधार 'नाद' है। इसमें 'वाक' व 'गेय' इन दोनों तत्वों का समावेश होता है। परन्तु, संगीत के 'अमूर्त' रूप को सुरक्षित रखते हुए उसमें 'वाक्-तत्व' की कितनी भूमिका होनी चाहिए यह एक चिंतन का विषय है। इस शोध पत्र में इसी प्रश्न को लेकर शास्त्रीय संगीत की विभिन्न विधाओं के सन्दर्भ में वाक् व गेय तत्व अर्थात काव्य और संगीत के अंतर्संबंध के अनुपात पर ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में विश्लेषणात्मक विवेचन करने का प्रयास किया गया है।

शब्द और स्वर के संश्लेषण की सुदीर्घ विकास यात्रा भारतीय संगीत के प्राचीन, मध्यकालीन, व अर्वाचीन इन तीनों काल खण्डों को आवृत करती है। परिणामत: सांगीतिक निबद्ध रचनाकर्म के क्रमश: बदलते स्वरुप का विश्लेषण इन तीन कालखंडों के वर्गीकरण को दृष्टि में रख कर किया गया है। निस्संदेह यह वर्गीकरण इस बात को ध्यान में रखकर किया गया है कि किसी काल विशेष में पिछले काल का विकसित रूप मौजूद होता है और अगले काल का बीज भी।

मुख्य बिंदु: *शास्त्रीय संगीत, नाद, वाग्गेयकार,स्वर, निबद्ध, भारतीय संस्कृति, वैदिक काल, प्रबंध शैली*

वाक् व गेय तत्त्व: प्रारंभ से ही भारतीय-संस्कृति का चरम लक्ष्य तथा मूल तत्त्व रहा है - समस्त चराचर सृष्टि में व्याप्तपरम-तत्व का गहन साधना के द्वारा आत्म-साक्षात्कार। परिणामत: "प्राचीन कला के महत्तमस्वरुप का सिद्धांत....एक और ही प्रकार का है। उसका सबसे उच्च कार्य है... अंतरात्मा की दृष्टि के सम्मुख परम आत्मा, अनंत.....के कुछ अंश को प्रकट करना"।

आत्मानुसंधान के इस 'सबसे उच्चकार्य' के क्रियान्वयन में नाद-छंदमय शब्द /स्वर -वाक् गेय तत्त्व की महत्वपूर्ण भूमिका का ज्ञान ऋषि चेतना में वेद काल से ही प्रकट हो चुका था। "इन दृष्टाओं के अनुसार आदि-नाद 'ओउम' ही शब्द-ब्रह्म, स्वर-ब्रह्म का आदि-तत्त्व है"। अर्थात वाक् व गेय इन दोनो तत्वों का मूल स्रोत एक ही है।

उक्त वैदिक-चिंतन के शब्द 'वाग्गेयकार' की व्याख्या करें तो इसमें प्रयुक्त दो शब्द 'वाक्' और 'गेय' का अर्थ की व्यापकता अवं गहराई का ज्ञान होता है क्यों कि वेदों के अनुसार

संगीत विभाग डी.एस.बी.परिसर, कुमाऊँ विश्वविद्यालय नैनीताल उत्तराखंड 263002
ईमेल: ravijoshimusic@gmail-com, मोबाईल नम्बर- 9927332773

'वाक'-"वह सृजनात्मिका शक्ति है जो ऊर्जा व वस्तु-जगत के सत्व के रूप में कार्यरत रहती है"। 'वाक्' कहाँ स्थित है? इस प्रश्न के उत्तर में वैदिक ऋषि कहते हैं कि, "वाक् उच्चतम लोक में स्थित है तथा 'वाक्' ही आदिसत्य है। " शब्द व स्वर दोनों वाकशक्ति के इसी सूक्ष्म रूप को अभिव्यक्त करते हैं।

वाग्गेयकार : 'वाग्गेयकार' शब्द का अर्थ है वाक् व गेय इन दोनों तत्वों के संयोजन के द्वारा सांगीतिक रचनाओं का कर्ता। आधुनिक शब्दावली में कहें तो 'बंदिशकार' अथवा composer वैसे काव्य और संगीत की इस एकरूपता का इतिहास अत्यंत प्राचीन है। सामवेद के 'साम' का एक अर्थ है 'गान'--" The other meaning of the word 'Sam' is simply a song." तथा ".... 'साम' का अपना कोई पाठ text नहीं है। वह (साम) ऋक पर आधारित है। संगीत शास्त्र की शब्दावली में हम कह सकते हैं की 'साम' ने गीत के शब्द अथवा 'मातु' ऋग्वेद से उधार लिए हैं, परन्तु 'धातु' अथवा स्वर-संयोजन उसका अपना है।" वैदिक ऋषियों के अनुसार" 'ऋक' वाक् है तथा 'साम'(स्वर) प्राण हैं।"

वेद कालीन यही ऋषि कवि-गायक परवर्ती वाग्गेय्याकारों के पूर्व-पुरुष हैं। सामगान' से प्रस्फुटित संगीत की धारा चैथी शताब्दी ईस्वी तक आते-आते पद्धतिबद्ध 'शास्त्रीय-संगीत' का रूप धारण करने लगी थी। उस काल में भी 'वाक्' व 'गेय' को लेकर चिंतन जारी था। 'वाक्' अर्थात वाणी-जो वर्णन करती है, तथा 'गेयत्व' अर्थात स्वर, इन दोनों के एकाकार होने से उत्पन्न प्रभाव को लेकर भारत मुनि (चैथी शताब्दी ई.) का कथन है:

यानी वाक्यैस्तु न ब्रुयात्तानि गीतैरुदाहरेत्
गीतैरेव हि वाक्यार्थैर्: रसपाको बलाश्रय:।।

अर्थात: "जिन्हें बातों के द्वारा प्रकट न किया जा सके उन्हें गीत के द्वारा प्रस्तुत करना चाहिए।क्योंकि गाए गए गीतों के द्वारा उद्दिष्ट वाक्यार्थ में रक्ति एवं रस की परिपक्वता आ जाती है।"

इसी तरह मतंग (आठवीं शताब्दी) ने 'तत: सर्वच वाङमयम्' कहकर नाद की महत्ता दर्शाई है। मतंग के समय में ही भरतमुनि के द्वारा उल्लेखित 'जातियों' के स्थान पर 'राग' का प्रचलन हो चुका था। उनके द्वारा रचित शास्त्र ग्रंथ 'वृहद्देशी' में एक अध्याय 'प्रबंध' गायन शैली पर भी है। जिसमे 'प्रबंध' के उनचास प्रकारों का वर्णन है। अर्थात राग, ताल, लय-छंद, काव्य युक्त सांगीतिक रचना को आधार बनाकर शास्त्रीय गायन प्रस्तुत करने की परंपरा, मतंग के समय में ही प्रारंभ हो गई थी।

परन्तु प्रबंध रचनाओं के रचयिता 'वाग्गेयकार' का विस्तार से विवरण शारंगदेवकृत ग्रंथ 'संगीतरत्नाकर' (13वीं शताब्दी) में प्राप्त होता है। भरत मुनि तथा मतंग मुनि की तरह शारंग देव वेदोक्त आध्यात्मिक परंपरा से अलग होते प्रतीत होते हैं। उनका स्पष्ट कथन है कि "उनका संगीत सिद्धांत, लक्ष्य तथा लक्षण के सामंजस्य पर आधारित है।" अर्थात वे शुद्ध रूप से शास्त्रबद्ध संगीत के आचार्य थे, आध्यात्मिक चिन्तन नहीं। अस्तु, 'नाद', 'वाक्, इत्यादि शब्दों को लेकर सूक्ष्म चिंतन न करके इन दोनों शब्दों से मिलकर बने शब्द 'वाग्गेयकार' की तत्कालीन लक्षणों के आधार पर परिभाषा की है।

इस परिभाषा के अनुसार 'वाग्गेयकार' का शाब्दिक अर्थ है: शब्द व् स्वरों के सम्यक मेल के द्वारा सांगीतिक निबद्ध रचना का रचयिता।

"वाचं च गेयं च कुरुते यह सहवग्गेय्कारक:"

परन्तु शारंगदेव के समय में संगीत की गहराई व उसके गाम्भीर्य पर अत्यंत ध्यान दिया जाता

था। इसलिए शब्द व स्वर की विशेषताओं का विवरण उन्होंने इस प्रकार दिया है -

"नादेन व्यंज्यते वर्णः पदम् वर्णात पदाद्वचः।
व्चसा व्यवहारोऽम् नादाधीनमतो जगत"।।

अर्थात नाद से वर्ण, वर्ण से पद, पद से वाक्य और वाक्य से भाषा की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार 'वाक्' और 'गेय' दोनों तत्वों का मूलाधार है "नाद"।

इस आधार पर निष्कर्ष निकलता है कि सांगीतिक विधाएं केवल काव्य और संगीत का स्थूल एकीकरण ही नहीं, बल्कि काव्य तत्व एवं स्वर तत्व का सूक्ष्मता से एकाकार होकर सर्वथा नए रूप में प्रकट होना है। इस नए रूप में स्वर-लय-राग-ताल के योग से सांगीतिक रचनाओं का सृजन होता है। परन्तु, शारंगदेव के समय में नाट्यशास्त्र की परंपरा के अनुसार संगीत व साहित्य अर्थात स्वर व शब्द का अनुपात लगभग सामान था। उस समय प्रचलित प्रबंध शैली का आकार दीर्घ हुआ करता था। यह चार धातु अथवा चार खण्डों में गाया जाता था। इन चार धातुओं का नाम था उद्ग्रह, मेलापक, ध्रुव और आभोग तथा इसकी विषय-वस्तु (content) के अंतर्गत देवताओं का वर्णन तथा गुणगान तथा नाटकों की सहायक कला के नाते इसमें पात्र वर्णन, सन्दर्भ, नायक के नाम, गुण इत्यादि के वर्णन के अतिरिक्त मंगल-वाक्यों का भी समावेश किया जाता था। इनको 'अंग' कहा जाता था। इनको संगीत शास्त्र में क्रमशः स्वर, बिरुद, पद, तेनक, पाट और ताल की संज्ञा दी गई थी।

इससे सिद्ध होता है की तेरहवीं शताब्दी में संगीत की सार्थकता स्वर सौन्दर्य के साथ ही शाब्दिक अर्थ वत्ता पर आधारित थी। तत्कालीन संस्कृति में कलाएं सामूहिक रूप में मनाए जाते धार्मिक अनुष्ठान अथवा सामाजिक उत्सवों का भाग हुआ करती थीं।

साहित्य और संगीत के इस सामानुपात की अनिवार्यता के कारण शारंदेव के अनुसार एक कुशल 'वाग्गेयकार' वही है जिनमे निम्नलिखित लक्षण हों :

वाङ्मातुरुच्यते गेयं धातुरित्यभिधीयते।
वाचं गेयं च कुरुते यः स वग्गेयाकारकः।।१।।
शब्दानुशासनज्ञानमभिधानप्रवीणता।
छंदः प्रभेदवेदित्वमलंकारेषु कौशलम।।२।।
रसभावपरिज्ञानंदेशस्थितिषु चातुरी।
अशेषभाषाविज्ञानं कलाशास्त्रेषु कौशलम।।३।।
तुर्यत्रितयचातुर्युं हृद्यशारीरशालिता।
लयतालकलाज्ञानं विवेकोऽनेककाकुषु।।४।।
प्रभूतप्रतिमोदभामाक्त्वं सुभगगेयता।
देशिरागेष्वभिज्ञत्वं वाक्पटुत्वं सभाजये।।५।।
रागद्वेषपरित्यागः सार्द्रत्वमुचितज्ञता।
अनुच्छिष्टोक्तिनिर्बधो नूत्नधातुविनिर्मितिः।।६।।
परचित्तपरिज्ञानंप्रबंधेषुप्रगल्भता।
द्रुतगीतविनिर्माणं पदांतरविदग्धता।।७।।
त्रिस्थानगमकप्रौढिर्विविधालप्तिनैपुणम्।
अवधानंगुणैरेवभिर्वरोवग्गेयकारकः।।८।।

उपरोक्त आठ लक्षणों का अगर विश्लेषण करें तो तत्कालीन बंदिशों में साहित्य के महत्त्व की प्रतीति होती है। उदाहरणार्थ, दूसरा लक्षण- जिसके अनुसार एक सफल वाग्गेयकार वह है जो व्याकरण शास्त्र का ज्ञाता, शब्द-ज्ञाता, छंद ज्ञाता तथा साहित्य शास्त्र में बताए गए उपमादिक अलंकारों का ज्ञाता है। और तीसरा लक्षण- 'जिसे श्रृंगार आदि रसों और विभावादिक भावों का उत्तमज्ञान है।और जो भिन्न-भिन्न देशों के रीति-रिवाजों तथा उनकी भाषाओं की जानकारी रखते हुए कला शास्त्र में प्रवीण है'।

इसके अतिरिक्त भी विस्तार से जिन आवश्यक गुणों का शारंगदेव के द्वारा वर्णन किया गया है उससे यही निष्कर्ष निकलता है की प्रबंध गायन शैली के रचयिता अथवा 'वाग्गेयकार'

शास्त्र के द्वारा निर्णीत मानकों व क्षणों के घेरे में बंधे रचना-विशेषज्ञ थे, कवि-गायक नहीं।

इन्हीं कारणों से क्रमश: प्रबंध गायन शैली बोझिल व दुरूह होती गई और उसकी लोकप्रियता घटती गई। कालानुक्रम से प्रबंध शैली से ही 'ध्रुवपद' शैली विकसित हुई हो ऐसा प्रतीत होता है। ध्रुवपदों की रचना संस्कृत के बदले मध्यकालीन हिंदी, मध्यदेशीय, ग्वालियरी, अथवा ब्रज भाषा आदि लोक्भोग्य भाषाओँ में होने लगी।

और जैसा कि नियम है कोई भी कला-विधा जब शास्त्र के शुष्कसिद्धांतों के कठोर बंधनों में बंध जाती है तो नया मार्ग खोजती है। शास्त्रबद्ध प्रबंध-शैली भी 15वीं शताब्दी तक आते-आते दुरूह एवं निष्प्राण होकर संगीत की मूलधारा से अलग-थलग होने लगी थी। फलस्वरूप प्रबंध की संरचना (structure) का ही सरल व सुबोध संस्करण, ध्रुवपद-शैली, प्रचार में आ गई। साथ ही इसके रचनाकार-'वाग्गेयकार' के लिए भी शास्त्रोक्त परिभाषा के दायरे के अन्दर रहकर ही रचना करने की अनिवार्यता भी समाप्त हो गई। तत्कालीन राजा मानसिंह, तथा अकबर के दरबार के ध्रुवपद-वाग्गेयकार बैजू, बक्शू, तानसेन आदि श्रेष्ठ संगीतज्ञ थे, साहित्य-शास्त्र के विद्वान नहीं। परन्तु, फिर भी ध्रुवपद शैली में स्वर सौंदर्य की अपेक्षा काव्य तत्व का महत्त्व कुछ अधिक ही था, इसके भी स्थायी, अंतरा, संचारी तथा आभोग ये चार-खण्ड थे तथा साहित्यिक इतिहास की दृष्टि से वह 'भक्तिकाल' था। परिणामत: ध्रुवपद रचना का प्रमुख विषय था विष्णु के अवतारों का वर्णन। ऐसे ही निश्चित नियमों व सिद्धांतों के बंधनों के कारण ध्रुवपद शैली भी प्रचार में कम होने लगी और इसके साथ ही एक नयी गायन शैली के उद्भव के लिए मार्ग खुल गया, जिसे 'खयाल' की संज्ञा दी गई।

खयाल शैली के उद्भव के साथ ही तेरहवीं शताब्दी में वर्णित वाग्गेयकार की परिभाषा पूरी तरह परिवर्तित हो गई क्योंकि खयाल शैली में 'वाक्' का रूप सूक्ष्म हो जाता है और 'गेय' तत्व के अनेक रूपों का महत्त्व बढ़ जाताहै। इसका अर्थ है शब्द के साधारण अर्थ की अपेक्षा उसकी ध्वनि की सांगीतिकता का प्रबल होना और इसीलिए खयाल शैली में शुद्ध सांगीतिक सौन्दर्य के विविध रूपों के दर्शन होते हैं। संगीत कला में आए इस क्रांतिकारी परिवर्तन के कारक तत्वों में तत्कालीन राजनितिक, सामाजिक परिस्थितियों की तो भूमिका थी ही परन्तु इसके साथ ही व्यक्तिगत प्रतिभा का योगदान भी कम नहीं था। परिणामत: खयाल शैली की ऐतिहासिक प्रष्ठभूमि के विश्लेषण के साथ ही इस शैली के प्रवर्तक व इसे स्थापित करने वाले बहुमुखी प्रतिभाशाली वाग्गेयकारों के विषय में जानना भी आवश्यक है, क्योंकि किसी भी कला का इतिहास कलाकार ही रचता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. अरविंद श्री, भारतीय संस्कृति के आधार, श्री अरविन्द सोसायटी पोंडिचेरी 1968
2. गर्ग लक्ष्मी नारायण क्रमिक पुस्तक मालिका , भाग 4 संगीत कार्यालय हाथरस
3. परांजपे डा.शरतचंद्र भारतीय संगीत का इतिहास, चैखम्बा विद्याभवन वाराणसी 20104.
4. Muni Bharat, The Natyashashtra, Asaitic Society of Bengal Park Street Calcutta 1951
5. Olson Carl Indian Philosophers and Postmodern Thinkers 2002
6. Srivastava Indurama Dhrupad Motilal Banarasidas 1980
   पत्रिका: संगीत, संगीत कार्यालय हाथरस

प्राचीन सांगीतिक ग्रन्थों में वर्णित विविध स्वर वाद्य

आलोक कुमार* प्रो. बिरेन्द्र नाथ मिश्र**

शोध सार

भारतीय संस्कृति एक चिन्तनशील संस्कृति है। विविध विषयों पर हमारे पूर्वजों ने अपना चिन्तन प्रस्तुत किया है जो अमूल्य सम्पदा हमारे पास विविध ग्रन्थों के रूप में विद्यमान है। शोध एवं खोज कि भी परम्परा इस संस्कृति का अभिन्न अंग है। जब हम चर्चा संगीत विषय कि करते हैं तो हम पाते हैं कि प्रथम लिखित संहिता वेद से वर्तमान काल तक संगीत कि सामग्री प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। विविध विद्वानों ने संगीत के सन्दर्भ में अपना गूढ़ चिंतन हमारे समक्ष प्रस्तुत किया है। इन विविध प्राच्य ग्रन्थों के अध्ययन के दौरान संगीत विषय के उल्लेख में स्वर वाद्यों का विस्तृत उल्लेख प्राप्त होता है। ग्रन्थों में वर्णित स्वर वाद्यों से अनुमान किया जा सकता है कि तत्कालीन समय में स्वर वाद्यों को प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त था। प्रस्तुत शोधपत्र में विविध ग्रन्थों में वर्णित स्वर वाद्यों कि संक्षिप्त चर्चा कि गयी है।

सूचक शब्दः- *स्वर वाद्य, सांगीतिक ग्रन्थ, वीणा, लम्बाई, रन्ध्र, छिद्र*

शोध प्रविधि

प्रस्तुत शोध पत्र के लेखन हेतु तथ्य सामग्री के संकलन हेतु विविध पुस्तकों एवं पत्र-पत्रिकाओं का सहयोग लिया गया है।

शोध उद्देश्यः-

प्रस्तुत शोध पत्र के लेखन का मुख्य उद्देश्य प्राचीन सांगीतिक ग्रन्थों में वर्णित विविध स्वर वाद्यों के सन्दर्भ में ज्ञान अर्जित करना है।

शोध विषयः-

सदैव से ही संगीत मनुष्य की मूल प्रवृत्ति रहा है। मानव अपनी सभ्यता के आरंभ काल से ही संगीत से जुड़ा रहा है। प्रागैतिहासिक काल के अध्ययन से भी इस तथ्य की पुष्टि होती है। प्राप्य प्राचीनतम तथ्यों से संगीत तथा मानव के मध्य एक लगाव दृष्टव्य है। प्रथम लिखित ग्रन्थ वेद से भी संगीत का विधिवत वर्णन प्राप्त होता है। वैदिक ग्रन्थों के लेखन के बाद अनेक ग्रन्थें प्रकाश में आयीं। इन में भी संगीत तथा इसके अवयवों का वर्णन प्राप्त होता है। इन विविध ग्रन्थों के अध्ययन तथा वर्तमान काल के संगीत को समझने के बाद अनुभव किया जा सकता है कि समय तथा श्रोताओं के रूचि के अनुसार संगीत में अनेक परिवर्तन हुए हैं, अनेकों बार संगीत ने अपने स्वरूप में बदलाव किया तथा प्रत्येक काल में संगीत मानव के लिए ग्राह्य बना रहा। संगीत के बदलते स्वरूप के साथ

*शोधार्थी, वाद्य विभाग, संगीत एवं मंच कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

**आचार्य (सितार), वाद्य विभाग, संगीत एवं मंच कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

संगीत में प्रचलित वाद्यों में भी अंतर देखा जा सकता है। कालान्तर में संगीत के विविध वाद्यों का उद्‌भव, उनका उत्थान एवं उनका स्वरूप परिवर्तन (काल परिवर्तन के सन्दर्भ में) अथवा प्रचलन से बाहर होना देखा जा सकता है। वर्तमान प्रचलित सांगीतिक वाद्यों के पाश्र्व में इन पुरातन वाद्यों का स्वरूप अवस्थित है। वर्तमान प्रचलित वाद्यों को समझने के लिए आवश्यक है कि प्राचीन ग्रन्थों में वर्णित विविध वाद्य यंत्रों को समझा जाय।

प्रस्तुत शोध पत्र में मुख्यत: स्वर वाद्यों की चर्चा प्रस्तावित है। सुषिर तथा तंत्रीय वाद्य को स्वर वाद्य की श्रेणी में रखा जाता है। सुषिर वाद्य उन वाद्यों को सम्बोधित किया जाता है जिनमें स्वरोच्चार वायु की माध्यम से होता है तथा तत्रीय वाद्य की श्रेणी में वे वाद्य आते हैं जिनमें स्वरोच्चार का आधार तंत्रियाँ होती हैं। प्राचीन ग्रन्थों में वर्णित स्वर वाद्यों की चर्चा अग्रलिखित है -

तंत्रीय वाद्य

चित्रा वीणा:-

चित्रा वीणा के संदर्भ में पंडित शारंगदेव जी ने संगीत रत्नाकर के छठवें अध्याय में लिखा है "तन्त्रीभि: सप्तभिश्चित्रा" इस वाक्यांश से यह अनुमानित किया जा सकता है कि चित्रा वीणा में सात तंत्रियाँ थीं। इसके अतिरिक्त आचार्य भरत ने भी चित्रा वीणा में सात तंत्रियाँ मानी हैं तथा इस वाद्य को अंगुली से बजाया जाना स्वीकार किया है। भरत भाष्य नामक ग्रन्थ के ग्रन्थकार नान्यदेव जी मतगं ऋषि को चित्रा वीणा का कुशल वादक मानते हैं। नान्यदेव जी मानते हैं कि चित्रा वीणा के वादन में हस्तसिद्ध होने के कारण ही मतंग मुनिको "चैत्रिक" नाम से ख्याति प्राप्त हुई। इस वीणा के तारों को मिलाने की विधि के सन्दर्भ में किसी ग्रन्थ में कुछ विशेष उल्लेख प्राप्त नहीं होता है।

विपंची वीणा:-

विपंची वीणा में नौ तारों का होना अनुमानित है। भरत मत के अनुसार अभिनव गुप्त ने स्पष्ट किया है कि विपंची वीणा का वादन कोण से होता था जबकि पंडित शारंगदेव ने इसका वादन कोण तथा अँगुलियों से होना बताया है। डॉ. लालमणि मिश्र जी के अनुसार यदि विपंची वीणा को अंगुली से बजाया जाता होगा तो उसका स्वरूप आज के स्वरमंडल के समान ही होगा। "विपंची वीणा में नौ तंत्रियों पर षडज ग्राम कि मूल मुर्छनाए क्रमश: षडज, ऋषभ, गंधार, अंतर गंधार, मध्यम, पंचम, धैवत, निषाद तथा काकली निषाद अवस्थित होते थे।" अर्थात् विपंची वीणा में सात शुद्ध स्वर तथा दो विकृत स्वर (अंतर गंधार तथा काकली निषाद) के लिए नौ तारों कि व्यवस्था थी। इस वीणा के आकृति के संदर्भ में कोई वर्णन प्राप्त नहीं होता है।

एकतंत्रीय वीणा:-

पंडित शारंगदेव जी ने एकतत्रंीय वीणा का वर्णन स्वर वीणा विभाग के अंतर्गत करते हैं। पंडित शारंग दवे जी ने वीणा पर विस्तृत अध्ययन के लिए वीणाओं को दो भाग में वर्गीकृत किया है; स्वर वीणा तथा श्रुति वीणा। शारंगदेव जी के अनुसार एकतंत्रीय वीणा इतना मंगलकारक है कि इसके स्पर्श तथा दर्शन मात्र से ही सभी प्रकार के सुख तथा मोक्ष कि प्राप्ति होती है। इस वीणा के स्पर्श तथा दर्शन से ब्रह्म हत्या के पाप से मुक्ति पाया जा सकता है। सुधाकलश तथा सोमेश्वर ने भी एकतंत्रीय वीणा से मोक्ष प्राप्ति के कथन को स्वीकार किया है। कुछ विद्वानों कि मान्यता है कि भरत द्वारा उल्लिखित घोषा

नाम कि वीणा भी एकतंत्रीय वीणा थी। आचार्य वृहस्पति के अनुसार "ब्रह्म वीणा के अन्य नाम घोषा, घोषक, घोष्पवती तथा एकतंत्रीय है।"[1] एकतंत्रीय वीणा में सारिकाएँ नहीं होती थीं अत: इससे सूक्ष्म से सूक्ष्म ध्वनियों का उत्सर्जन सम्भाव्य था। नान्यदेव जी एकतंत्रीय वीणा के संदर्भ में लिखते हैं-

"श्रुत्येऽ थ स्वरा मूच्छास्ताना नानाविधास्तथा।
एक तन्त्रीक वीणायां सर्वमेतत्प्रतिष्ठितम्।
समुदायोऽस्ति नान्यत्र मतङ्गोऽप्याह तत्तथा।
ण्ण्ण्एक तन्त्रयां स्वयमेवास्ति सरस्वतीति।"

अर्थात् श्रुति, स्वर, तान तथा मूर्छना आदि सभी एकतंत्रीय वीणा में सहज उपस्थित रहते हैं। एकतंत्रीय वीणा के अतिरिक्त अन्य किसी वाद्य में उक्त अवयवों का ऐसा संयोग उपस्थित नहीं है इसी कारण मतंग मुनि का मत है कि एकतंत्रीय वीणा में स्वयं सरस्वती का निवास है।

भरत के उत्तरवर्ती काल में एकतंत्रीय वीणा का प्रचलन अधिक रहा है। इस वाद्य के लिए खैर के वृक्ष कि लकड़ी उपयुक्त मानी जाती है। शारंगदेव जी ने एकतंत्रीय वीणा के लिए खैर की उस लकड़ी को उपयुक्त माना है जो दोष रहित, कोमल तथा वर्तुलाकार हो। इसके दंड कि लम्बाई तीन हाथ स्वीकार कि गयी है।

आलापिनी वीणा:-

विविध ग्रन्थकारों ने आलापिनी वीणा का विस्तृत वर्णन किया है। पंडित शारंगदेव जी ने आलापिनी वीणा के स्वरूप के सन्दर्भ में कहते हैं आलापिनी वीणा का दंड नौ मुट्ठी का हो, दंड कि गोलाई दो अंगुल कि हो। दंड गोल तथा चिकना होना चाहिए। आलापिनी वीणा में एक तुम्बा के लगे होने का उल्लेख मिलता है। किन्तु पंडित लाल मणि मिश्र जी का मत है "आलापिनी वीणा में तुम्बा ऊपर तथा नीचे दोनों ओर लगा होता है अर्थात आलापिनी वीणा में दो तुम्बा लगा होता है। ऊपर तथा नीचे के हाथी के दांत से बनी नाभि से दो-दो मुट्ठी छोड़कर तुम्बे लगे होते हैं।"[3] पंडित शारंगदेव जी ने आलापिनी वीणा के तंत्रियों के संदर्भ में कहा कि इसकी तंत्रियाँ भेंड अथवा बकरी कि आंत से बनी होनी चाहिए। इस वीणा के वादन हेतु पंडित शारंगदेव जी तथा सोमेश्वर जी एक मत से कहते हैं कि इस वाद्य का इस प्रकार रखा जाय कि इसका तुम्बा वक्ष स्थल के निकट रहे। बाएं हाथ से इसके दंड को पकड़ा जाय तथा दाहिने हाथ कि दो अँगुलियों (अनामिका तथा मध्यमा) से वादन किया जाय। इसके तुम्बे कि व्यवस्था को समझने के लिए माना जा सकता है कि सितार का नीचे का तुम्बा हटा दिया जाय तथा ऊपर कि और तुम्बा लगा दें। अनुमानत: यही स्वरूप अलापिनी वीणा का रहा होगा।

किन्नरी वीणा:-

किन्नरी वीणा के आविष्कर्ता के रूप में मतगं मुनि प्रतिष्ठित हैं। मतगं मुनि द्वारा सृजित किन्नरी वीणा को पर्दे वाला प्रथम तंत्रीय वाद्य होने का गौरव प्राप्त है। संगीत रत्नाकर में पंडित शारंगदेव जी ने किन्नरी वीणा के दो भेद बताते हैं - प्रथम लघ्वी वीणा तथा दुसरा बृहती किन्नरी वीणा। लघ्वी वीणा के संदर्भ में कहा गया है कि इस वीणा कि लम्बाई तीन बितस्ति तथा पांच अंगुल के बराबर होती है। इस के दंड को चिकना बनाने के लिए जले वस्त्र में स्याही मिला कर बनाई गयी लुगदी से रगड़ने का निर्देश है। "शारंगदेव जी ने इस लघ्वी किन्नरी वीणा में ककुभ को किलक से युक्त करने का निर्देश दिया है।"[4] यह ककुभ बीच में कछुए कि भाँती उभार होना चाहिए। इसके साथ ही बृहती वीणा 50 अंगुल

लम्बी तथा 6 अंगुल चैड़ी होनी चाहिए। इस वीणा में लगी हुई ककुभ 6 अंगुल लम्बी तथा चार अंगुल चैड़ी होनी चाहिए। अनेक ग्रन्थकारों ने इस वीणा के स्वरूप तथा वादन विधि का विषद वर्णन किया है। विविध ग्रन्थकारों ने किन्नरी वीणा के विविध स्वरूप जैसे देशी किन्नरी, मध्यमा किन्नरी आदि का वर्णन किया है।

इसी प्रकार ग्रन्थकारों ने तंत्रीय वाद्यों कि विस्तृत व्याख्या कि है। कुछ वीणाओं का संक्षिप्त वर्णन किया गया। प्राचीन ग्रन्थों का अवलोकन करने पर हम और भी अन्य तंत्रीय वाद्यों जैसे - निशंक वीणा, मत्तकोकिला आदि कि चर्चा पाते हैं।

सुषिर वाद्य

वंश:-

सुषिर वाद्यों के वर्णन के समय पंडित शारंगदेव जी ने सर्वप्रथम वंश नाम के वाद्य का वर्णन किया। पंडित शारंगदेव जी वंश वाद्य का वर्णन करे हुए कहते हैं कि खैर कि लकड़ी, चंदन कि लकड़ी, हाथी के दांत, लाल चंदन, कांस्य, लौह, सोना अथवा चांदी से वंश वाद्य कि निर्मिती होती है। छोटी अंगुली के परिमाण के समतुल्य इस वाद्य में छिद्र बनाये जाते हैं।

दो, तीन अथवा चार अंगुल कि दुरी पर छिद्र किये जाते हैं। पंडित शारंगदेव जी कहते हैं कि मुख रंध्र से एक अंगुल कि दुरी पर तार रंध्र होता है। इसके पश्चात् आधी-आधी अंगुली कि दुरी पर सात छिद्र बने होते हैं। इन छिद्रों को अंगुली से बंद कर के तथा मुख से इस वाद्य में वायु का प्रवाह कर के स्वर उत्पन्न किया जाता है। शारंगदेव जी ने वंश वाद्य के अनेक भेद बताया है।

पाव:-

पाव एक लोक वाद्य के रूप में उल्लिखित है। यह वेणु का ही एक रूप है। यह वाद्य नौ अंगुल लंबा होता है। पंडित अहोबल ने पाव को छिद्र वाला अंगूठे के समान वाली मुरली कहा है। इस वाद्य में छ: छिद्र कि व्यवस्था होती थी। इन छ: छिद्रों में से एक छिद्र फूंक के लिए तथा शेष पांच छिद्र स्वर निकास के लिए होता है। इसके मुख वाले भाग पर जस्ता कि परत चढाया जाता है।

पाविका:-

पाविका वाद्य के संदर्भ में उल्लेख मिलता है कि यह वाद्य बारह अंगुल लंबा होता है। इसकी मोटाई एक अंगूठे जितनी होती है। कनिष्ठ अंगुली के समान रंध्र फूंकने के लिए बना होता है तथा स्वर के निकास वाले रन्ध्र इस फूंक वाले रन्ध्र से थोड़ा छोटा होता है। फूंकने वाले रन्ध्र के साथ कुल 6 रंध्रों कि व्यवस्था इस वाद्य में होती है। इस वाद्य को पंडित शारंगदेव जी ने पाविका कहा जबकि सोमेश्वर ने इसे पावी नाम दिया।

मधुकरी:-

श्रृंग अथवा कहला से बनी हुई 28 अंगुल लम्बे वाद्य को मधुकरी अभिहित किया गया।

इसके मुखरंध्र के आकार के सन्दर्भ में ग्रन्थकार बताते हैं कि यह तुबरी के बीज के समान होना चाहिए। इस मुख रन्ध्र से चार अंगुल कि दुरी पर सात अन्य रंध्रों कि व्यवस्था स्वीकार्य है। स्वर माधुर्य के लिए इसके मुख रन्ध्र में ताम्बे कि नली लगाया जाना चाहिए। इस नली के ऊपर मुख रंध्र के अंदर ही हाथी का दांत रखा जाना चाहिए। सोमेश्वर ने इस वाद्य को महुर नाम से वर्णित किया है।

ग्रन्थकारों ने उक्त वाद्यों के अतिरिक्त अनेक सुषिर वाद्यों जैसे काहला, चुक्का, श्रृंग, शंख आदि का वर्णन किया है।

शोध निष्कर्ष:-

उक्त शोध पत्र के लेखनोपरांत निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि संगीत कि प्राचीनकालीन परम्परा में स्वर वाद्यों कि विशेष भूमिका थी। स्वर वाद्यों का विकास इस और संकेत करता है कि संगीत रसिकों कि रूचि स्वर वाद्यों में थी। ग्रन्थकारों ने भी स्वर वाद्यों में विशेष रूचि का प्रदर्शन किया है। प्राचीन काल कि और दृष्टिपात करने पर देखा जा सकता है कि अधिकतर सांगीतिक कार्यक्रमों में स्वर वाद्यों कि उपस्थिति को स्वीकार किया गया है। आचार्य भरत ने भी समूह गायन जिसे कुतप नाम से उल्लिखित किया है, के वर्गीकरण में स्वर वाद्यों कि सशक्त उपस्थिति को स्वीकार किया है। अत: कहा जा सकता है कि स्वर वाद्य अपने अस्तित्व काल से ही संगीत रसिकों तथा संगीतज्ञों कि रूचि में अग्रगण्य रहा है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची:-

1. आचार्य कैलाश चन्द्रदेव वृहस्पति, भरत का संगीत सिद्धांत, भार्गव भूषण प्रेस गाय घाट वाराणसी, 1959, पृष्ठ 48
2. नान्यदवे भ. को., पृष्ठ 89 उद्घृत भारतीय सगंीत शास्त्रों में वाद्यो ं का चितं न, डॉ. अंजना भार्गव, कनिष्क पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्युटर्स, 2002, पृष्ठ 90
3. मिश्र, डॉ. लाल मणि भारतीय संगीत वाद्य, भारतीय ज्ञान पीठ, 2005, पृष्ठ 31
4. भार्गव, डॉ. अंजना भारतीय संगीत शास्त्रों में वाद्यों का चिंतन, कनिष्क पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्युटर्स, 2002, पृष्ठ 101

उत्तर भारतीय एवं दक्षिण संगीत पद्धति का तुलनात्मक अध्ययन

प्रो. बिरेन्द्र नाथ मिश्र*, सतेन्द्र**

भारत में दो संगीत पद्धितयाँ प्रचार में रही है- जिसे हिन्दुस्तानी (उत्तर भारतीय) संगीत पद्धति और कर्नाटकी (दक्षिण भारतीय) संगीत पद्धति कहा जाता है। प्राचीन विद्वान संगीतज्ञों के अनुसार इन दोनों संगीत पद्धतियों को एक पेड़ की दो शाखाओं के रूप में माना जाता है। उत्तर भारत में तानसेन, अमीर खुसरो, स्वामी हरिदास आदि संगीतज्ञों, गुरुओं एवं गोस्वामी तुलसीदास जैसे रचयिता ने जिस प्रकार भक्ति संगीत व शास्त्रीय संगीत को जन-जन तक पहुँचाने का महान कार्य किया है, उसी प्रकार दक्षिण भारत में भी अनेको विद्वान हुये जिसमें भक्त प्रवर पुरून्दरविट्ठलदास, भद्रांचल, रामदास तथा श्री स्वातितिरूनाल आदि रचनाकार व गायकों और साधकों ने संगीत को भगवत्पद प्राप्त करने के प्रमुख साधन के रूप में प्रतिपादन करके उसे शास्त्रीय रूप प्रदान किया।

ऐतिहासिक और सांस्कृतिक उथल-पुथल के बीच विद्वानों और संगीतज्ञों के द्वारा जिस निष्ठा से दक्षिण भारतीय संगीत की रक्षा हुई है, उत्तर भारतीय संगीत में हम उस निष्ठा का अभाव पाते है। दक्षिणी संगीत के संगीतज्ञ सदैव ही संगीत के प्रति प्रयत्नशील रहे ताकि उनकी कला व परम्परा का ह्रास्व न हो सके और न ही उसके मुख्य तत्व समाप्त हो, लेकिन इसके ठीक विपरीत उत्तर भारतीय संगीत पर समय के साथ-साथ विभिन्न संगीत धाराओं व संगीत शैलियों का प्रभाव पड़ा और उन शैलियों से मिलकर भारतीय संगीत ने एक नवीन व नया रूप धारण किया।

''संगीत रत्नाकर'' (13वीं शताब्दी) के काल तक पूरे भारत में एक पद्धति प्रचलित रही और इस काल के बाद भारतीय संगीत का हिन्दुस्तानी और कर्नाटक संगीत इन दो पद्धतियों में विभाजन हो गया। इसी समय उत्तर भारतीय (हिन्दुस्तानी) संगीत पर मुसलमानों का प्रभाव पड़ा जो उस समय देश में शासन कर रहे थे और मुसलमानों के आगमन से हुए प्रभाव के कारण ही यहाँ की कला, संस्कृति एवं संगीत की प्रगति में नये-नये परिवर्तन हुए क्योंकि इस समय मुगलों का शासन था और मुगल दरबारों में संस्कृति के लिए कोई स्थान नहीं था। इन्हीं सब कारणों से संगीत पर प्रभाव पड़ा और यहाँ की बन्दिशें अन्य भाषाओं में बनने लगी और प्राचीन समय के 'रूपकल्पित' की जगह फारसी के ख्याल ने ले ली थी।

भारतीय संगीत का विदेशी संगीत से सम्पर्क होने के कारण इस काल को संक्रमण काल भी

शोध निर्देशक, वाद्य विभाग, संगीत एवं मंच कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी-221005

शोध छात्र, वाद्य विभाग, संगीत एवं मंच कला संकाल, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी-221005

कहा गया है। विद्वानों के अनुसार इसी युग में भारत का परिचय ईरानी राग, वाद्य और शास्त्र से हुआ। भारत में विदेशी शासन के आक्रमणों के कारण यहाँ के अनेकों कलाकार, संगीतज्ञ व विद्वान उत्तर भारत से पलायन कर दक्षिणी भारत में जा बसे ताकि इनकी निर्दयता के कारण उनके प्राणों के साथ-साथ उनके अनेको ग्रन्थ, उनकी कला व संस्कृति की रक्षा हो सके।

12वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक मुसलमानों ने दिल्ली पर अपना कब्जा कर अपने इस्लाम धर्म का खूब प्रचार-प्रसार किया और कई लोगों को बलपूर्वक व डरा-धमका कर मुसलमान बनाया गया ताकि उनके धर्म का और अधिक प्रचार-प्रसार हो सके और इस समय धीरे-धीरे मुगल साम्राज्य का विकास होता रहा और साथ-साथ सभी कलाओं को राजाश्रय भी प्राप्त होता गया। इन्हीं सब कारणों से उत्तर भारत के अधिकतर संगीतज्ञ व विद्वान दक्षिणी भारत चले गये क्योंकि दक्षिण भारत में ऊँची-ऊँची पहाड़ियाँ, नदियाँ, समुद्रों आदि से घिरा हुआ था और इस जगह पर युद्ध करना सम्भव नहीं था। विद्वानों के मतानुसार पं0 शारंगदेव के पूर्वज भी दक्षिण भारत में आकर बस गये थे और यही आकर पं0 शारंगदेव ने संगीत रत्नाकर नामक ग्रन्थ की रचना की जिसे संगीत जगत का आधार ग्रन्थ भी माना जाता है।

दक्षिण में 17वीं शताब्दी के समय तक प्रबन्धों का प्रचलन था। उसके बाद धीरे-धीरे प्रबन्धों का अस्तित्व समाप्त होता चला गया और धार्मिक क्षेत्र में कीर्तन की रचना का प्रारम्भ हुआ और ऐसा कहा जा सकता है कि बाद में इन्हीं कीर्तनों ने प्रबन्धों की जगह ले ली।

उत्तर भारतीय व दक्षिण भारतीय संगीत की समानता व विभिन्नता-

1. ये दोनों संगीत पद्धति 1300 ई0 के बाद अलग-अलग विभाजित हुई।
2. इन दोनों पद्धतियों में एक सप्तक के (सा) से लेकर तार सप्तक के (सां) तक शुद्ध और विकृत स्वर मिलाकर कुल 12 स्वर माने गये है।
3. दोनों पद्धतियों में थाट राग के सिद्धान्त को अपनाया गया।
4. दोनों पद्धतियों में सम्पूर्ण, षाडव, औडव मिलाकर राग की कुल 9 जातियाँ मानी गई।
5. आलाप गायन 'आकार' द्वारा तथा 'नेतेरीना' नोम्-तोम् आदि शब्दों का प्रयोग करके इन दोनों पद्धतियों में गाया जाता है।
6. शास्त्रीय संगीत व सुगम संगीत इन दोनों पद्धतियों में ही प्रचलित है।

हिन्दुस्तानी एवं कर्नाटक स्वर सप्तक की तुलना-

उत्तर भारतीय और दक्षिण भारतीय संगीत में एक सप्तक के कुल 12 स्वरों का प्रयोग किया जाता है, लेकिन इन 12 स्वरों के होने के बावजूद इनके स्वरों के नामों में कुछ अन्तर दिखाई देता है। जैसे यदि हम उत्तर भारत के कोमल 'ग' तथा शुद्ध (ध) को ले तो दक्षिण भारत में इन स्वरों के नाम कोमल 'ग' के स्थान पर साधारण 'ग' या (षटश्रुति रे) होगा और शुद्ध 'ध' के स्थान पर शुद्ध 'नि' या (चतुःश्रुति ध) होगा इस प्रकार कुछ स्वरों के दो-दो रूप कर्नाटक संगीत में पाये जाते हैं। इसके अलावा स्वरों में एक अन्तर और पाया जाता है कि दक्षिण संगीत में कोई स्वर कोमल नहीं होता यानि सभी स्वर अपने शुद्ध स्थान से नीचे की और विकृत नहीं हाते हैं क्योंकि दक्षिण संगीत में शुद्ध स्वर की अवस्था सबसे नीचे होती हैं परन्तु हिन्दुस्तानी संगीत में रे, ग, ध, नि स्वर शुद्ध व कोमल दोनों होते है और मध्यम भी शुद्ध व तीव्र दोनों होते

हैं। इन स्वरों को चल स्वर भी कहा जाता है और शेष (सा) और (प) को अचल स्वर कहा जाता है। उत्तर और दक्षिण संगीत के स्वरों की तुलना एक तालिका के द्वारा समझाया गया है जो इस प्रकार है-

हिन्दुस्तानी स्वर	**कर्नाटकी स्वर**
सा	सा
कोमल रे	शुद्ध रे
शुद्ध रे	शुद्ध ग या (पंचश्रुति रे)
कोमल ग	साधारण ग या (षट्श्रुति रे)
शुद्ध ग	अंतर ग
शुद्ध म	शुद्ध म
तीव्र मे	प्रति म
प	प
कोमल ध	शुद्ध ध
शुद्ध ध	शुद्ध नि (पंचश्रुति ध)
कोमल नि	कौशिक नि (षट्श्रुति ध)
शुद्ध नि	काकली नी

हिन्दुस्तानी व कर्नाटक थाटों के नाम-

हिन्दुस्तानी व कर्नाटक में थाट (मेल) माने गये है जो पं0 वेङ्कटमखी ने 72 मेलों को माना है। भातखण्डे जी ने वेङकटमखी के 72 मेलों में से 10 मेलों को स्वीकार किया और उन्हें थाट नाम दिया गया। मेल व थाट एक-दूसरे के पर्यायवाची शब्द हैं। हिन्दुस्तानी व कर्नाटक थाटों के नाम नीचे दिये गये है-

उत्तर भारतीय पद्धति के थाट	**दक्षिण भारतीय पद्धति के मेल**
1. कल्याण	1. मेच कल्याणी
2. बिलाबल	2. धीरशंकराभरण
3. खमाज	3. हरिकाम्भोजी
4. पूर्वी	4. कामवर्धिनी
5. मारवा	5. गमन प्रिय
6. भैरव	6. मायामालवगौणम्
7. काफी	7. खरहर प्रिया
8. आसावरी	8. नटभैरव
9. भैरवी	9. हनुमत तोड़ी
10. तोड़ी	10. शुभ पंतुवराली

उत्तरी और दक्षिणी संगीत पद्धति के कुछ रागों का स्वरूप-

इन दोनों संगीत पद्धतियों में कई राग ऐसे है, जिनके नाम बिल्कुल समान है, लेकिन उनके स्वर स्वरूप भिन्न है। उदा0 - सोहनी, श्री, हिन्डोल ये राग ऐसे है जो दोनों पद्धति में समान है परन्तु स्वरों को देखा जाये तो ये एक-दूसरे से भिन्न है। इसी प्रकार कुछ राग ऐसे है जो नामों से अलग-अलग हैं लेकिन स्वर व चलन की दृष्टि से देखे तो समान है। उदा0 जैसे- उत्तरी संगीत के दुर्गा मालकौंस, भूपाली, दक्षिण संगीत के शुद्ध सावेरी, हिन्डोलम्, और मोहनम के समान है।

हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति	**कर्नाटक संगीत पद्धति**
1. मालकौंस	1. हिन्डोलम्
आरोह- नि सा ग म ध नि सां	अवरोह- सां नि ध म ग म ग सा
आरोह- सा म ग म ध नि सां	अवरोह- सां नि ध म ग सा सा
2. भूपाली	2. मोहनम्
आरोह- सा रे ग प ध सां	आरोह- सा रे सां प ध ग

उत्तर भारतीय और दक्षिण भारतीय इन दोनों ही संगीत में वर्तमान में उपलब्ध संगीत शैली इस प्रकार है-

उत्तर भारतीय संगीत	**दक्षिण भारतीय संगीत**
अलंकार	अलंकारम्
लक्षण गीत	लक्षण गीतम्
सरगम	स्वर जाति
आलाप	आलापनम्

द्रुत ख्याल	दुरत कलाकृति
मध्यलय ख्याल	मध्यलय कलाकृति

उत्तर भारतीय और कर्नाटक संगीत एक भण्डार से निसृत होते हुये तथा समान सिद्धान्तों व कई बातों में समान होते हुये भी उत्तर भारतीय कलाकार कर्नाटकी संगीत कार्यक्रम को पूर्णत: अरूचिकर मानते है।

उत्तर भारतीय और दक्षिण संगीत की ताल पद्धति:-

17वीं शताब्दी के प्रथम चरण के समय संगीत जगत की दोनों संगीत पद्धति के तालों में बहुत अन्तर आया, और इस कारण से उत्तरी संगीत पद्धति से अलग दक्षिण ताल पद्धति का जन्म हुआ। इसका पूर्ण उल्लेख चतुर्दण्डी प्रकाशिका और संगीत पारिजात में किया गया है। प्राचीन काल में ताल का जो आधार था उसमें हाथों द्वारा की जाने वाली क्रियाओं को सशब्दादि क्रियायें कहते थे और ताल देने की आघात हीन क्रियाओं को निशब्दादि क्रियायें कहते थे परन्तु वर्तमान समय में दोनों ही संगीत पद्धतियों में सशब्द और निशब्द ये दोनों क्रियायें समाप्त हो गई है और इनका स्थान वर्तमान में 'घातम्' और 'विसर्जित' ने ले लिया है। घातम् ताली में हाथ से एक ताल देकर बाकी की बची मात्राएँ उँगलियों से गिनना था और विसर्जितम खाली में हाथ से खाली दिखाना- ये क्रियायें थी।

उत्तर भारत में वर्तमान समय में सभी ताल के ठेके निश्चित किये गये है, जबकि कर्नाटक संगीत में उत्तर की तरह ढीके के ना होने पर ताल का ज्ञान असंभव तो नहीं माना जाता लेकिन अभ्यास के लिए तालों के कुछ बोल है। जिसमें कुछ बोलों में तत्, दित, तों, न आदि प्रमुख हैं।

कर्नाटक ताल पद्धति में अंगों के माध्यम से ताल का स्वरूप दिखाया जाता है। इसमें उत्तर पद्धति के समान किसी भी ताल के ठेके के बोल निश्चित नहीं होते है। जिसे उत्तर पद्धति में विभाग कहते है और दक्षिण में वह अंग कहलाते है। आधुनिक कर्नाटक तालों में अंगो का प्रयोग होता है, कर्नाटक पद्धति के मुख्य चार सिद्धान्त हैं-

1. काल प्रमाण
2. अंग
3. जाति
4. विसर्जितम

इसी प्रकार उत्तर (हिन्दुस्तानी संगीत) ताल पद्धति का निर्माण चार तत्वों के आधार पर होता है-

1. मात्रा
2. विभाग
3. ताली, खाली
4. जाति

उत्तर भारतीय संगीत	दक्षिण भारतीय संगीत
1. उत्तर भारत में प्रत्येक ताल के बोल निश्चित होते है।	1. दक्षिण पद्धति में तालों की संख्या तथा तालों के बोल ठेका निश्चित नहीं है।
2. उत्तर भारत में ताल के विभाग का प्रारम्भ ताली व खाली दोनों प्रकार से किया जाता है। इसमें ताली व खाली के नियम निश्चित नहीं होते है।	2. दक्षिण संगीत में ताल के अंग विभाग में पहली मात्रा पर ताली होती है और तीन अंगों की पद्धति के कारण विभागों में निश्चित नियम होते है।
3. उत्तरी संगीत में ताल में खाली का प्रयोग किया जाता है, यह विभाग की मात्रा पर होता है।	3. दक्षिणी ताल में विभाग के स्थान पर विसर्जितम होता है, यह बीच की मात्राओं पर दिखाया जाता है, लेकिन विभाग की पहली मात्रा पर नहीं होता है।

4. उत्तर भारतीय संगीत में तालों पर कोई नियम नहीं होता और परिवर्तन के कारण ताले बदलती नहीं है।	4. दक्षिण संगीत में ताले जाति के अनुसार बदलती रहती है और इसमें निश्चित नियमों का पालन करना पड़ता है।

उत्तर भारतीय तालों को दक्षिण पद्धति में लिखने की विधि-

उत्तर भारतीय तालों को कर्नाटक पद्धति में लिखने के लिए सबसे पहले दक्षिण भारत की तालों के खाली वाले विभाग को ठीक उसके आगे वाले विभाग में जोड़ देगे। उदा. यदि झपताल की ले तो झपताल में 10 मात्रा व 4 विभाग होते है इसको कर्नाटक पद्धति के अनुसार लिखने के लिए झपताल के खाले वाले विभाग को उसके आगे वाले विभाग को उसके आगे वाले विभाग में जोड़ देंगे तो उसका दूसरा विभाग 5 मात्रा का हो जायेगा और विभाग 3 हो जायेंगे। एक और विधि के अनुसार यदि झपताल के 4 विभाग में कोई परिवर्तन न करके बल्कि उसके खाली वाले विभाग पर (+) का चिह्न लगा दे तो वह इस प्रकार हो जायेगा-

उदा. - चतस्त्र जाति में झपताल- 0 ŏ + ŏ

चतस्त्र जाति में एकताल - 0 0+0 0+0 0

दक्षिण तालों को उत्तर भारतीय पद्धति में लिखने की विधि-

किसी भी कर्नाटक ताल को उत्तर संगीत पद्धति में लिखने के लिए सबसे पहले उस ताल की संख्या व विभाग को लिखना होगा यदि चतस्त्र व तिस्त्र जाति का मठ ताल को लेने पर मठ ताल के तीन विभाग होते है 101 अर्थात् 424 = 10 मात्रा होगी।

तिस्त्र जाति में - 323 = 8 मात्रा होगी।

चतस्त्र जाति का मठताल-

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
×				2		3			

विस्त्र जाति का मठताल-

1	2	3	4	5	6	7	8
×			2		3		

इसी प्रकार से अन्य तालों को भी लिखा जा सकता है।

वैसे देखा जायें तो यह विषय बहुत ही व्यापक है और संगीत को सागर की उपमा दी जाती है। जैसे सागर अथाह हैं वैसे ही संगीत भी अथाह हैं। इसी अथाह संगीत में हिन्दुस्तानी और दक्षिण संगीत पद्धति के उपयोगी घटक को स्पष्ट रूप से तुलनात्मक अध्ययन करने का प्रयास किया गया है।

उत्तर भारतीय और कर्नाटक संगीत पद्धति इन दोनों का अपना एक महत्वपूर्ण स्थान है। दोनों ही पद्धतियाँ अपने-अपने विशेष गुणों के कारण संगीत में सर्वोच्च स्थान रखती हैं। दोनों ही पद्धति में कुछ समानतायें व विभिन्नतायें पायी जाती हैं चाहें वह रागों से लेकर हो या फिर स्वर हो गायन शैली या ताले हो, सभी में। उत्तर भारतीय संगीत स्वर प्रधान है और कर्नाटक संगीत लय अथवा ताल प्रधान हैं। यह कहा जा सकता है कि हिन्दुस्तानी और कर्नाटक संगीत का विकास मूलत: भिन्न-भिन्न सिद्धान्तों के आधार पर हुआ है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. संगीत रत्नावली, यमन, अशोक कुमार पृ. 545
2. भारतीय संगीत एक ऐतिहासिक विश्लेषण, शर्मा, डॉ. स्वतन्त्र पृ. 286
3. भारतीय संगीत एक ऐतिहासिक विश्लेषण, शर्मा, डॉ. स्वतन्त्र पृ. 287

4. भारतीय संगीत एक ऐतिहासिक विश्लेषण, शर्मा, डॉ. स्वतन्त्र पृ. 287
5. भारतीय संगीत एक ऐतिहासिक विश्लेषण, शर्मा, डॉ. स्वतन्त्र पृ. 288
6. संगीत मांगल्य, कपूर, प्रो. मंगला पृ. 114
7. भारतीय संगीत एक ऐतिहासिक विश्लेषण, शर्मा, डॉ. स्वतन्त्र पृ. 288
8. भारतीय संगीत एक ऐतिहासिक विश्लेषण, शर्मा, डॉ. स्वतन्त्र पृ. 290
9. भारतीय संगीत एक ऐतिहासिक विश्लेषण, शर्मा, डॉ0 स्वतन्त्र पृ0 292
10. संगीत स्वरिता, द्विवेदी, डॉ0 रमाकान्त पृ0 394
11. राग परिचय, भाग-3, श्रीवास्तव, प्रो0 हरिश्चन्द्र पृ0 188

तबले की बंदिशों में साहित्यिक तत्त्वान्वेषण

डॉ. दीपक त्रिपाठी

सारांश

तबला वाद्य आज के सांगीतिक परिवेश में बहुप्रचलित वाद्य है। संगीत की किसी भी विधा चाहे शास्त्रीय संगीत, सुगम संगीत, वाद्य संगीत तथा नृत्य, नाट्य आदि सभी में इस वाद्य का संगत के रूप में बहुतायत से प्रयोग होता है और अपने स्वतंत्र वादन की विशिष्टता से इस वाद्य का संगीत में सम्मानित स्थान है।

मानव की विकसित संस्कृति के उल्लेख का माध्यम प्राचीनकाल से ही उसका साहित्यिक गौरव रहा है। जिस प्रकार हमारे सनातन धर्म की सम्पूर्ण कृतियाँ वेदों, उपवेदों, उपनिषदों, पुराणों आदि में निहित हैं। उसी प्रकार संगीत भी एक शाश्वत् प्रमाण है जो अपनी तीनों (गीत, वाद्य एवं नृत्य) विधाओं का विशाल क्षेत्र फैलाकर मानव संस्कृति का अभिन्न अंग बना है। जिसमें साहित्य अन्योन्याश्रित रूप में समाहित है।

तबला एक अवनद्ध वाद्य है। संगत की दृष्टि से सर्वाधिक उपयुक्त होने के कारण यह अधिक प्रचलित है। इसकी अपनी एक अलग भाषा है जो मानवी भाषा से एकदम भिन्न है जिसके फलस्वरूप तबला वाद्य का अपना एक अलग साहित्य निर्धारित हुआ, जो पेशकार, कायदा, परन, टुकड़ा, मुखड़ा, मोहरा आदि है। ये सभी बंदिशें विभिन्न साहित्यिक तत्वों के सहयोग द्वारा ही अपनी उत्कृष्टता का परिचय देती हैं। किसी भी साहित्य की सुघड़ता उसमें प्रयुक्त होने वाले साहित्यिक तत्वों की बुनावट पर ही निर्भर होती है। संस्कृत, हिन्दी या अंग्रेजी अर्थात् कोई भी भाषा हो वह सदैव साहित्यिक तत्वों के आभूषणों से ही अलंकृत होकर अपनी कीर्ति स्थापित करती है।

साहित्यिक तत्वों का तबला वादन की बंदिशों में आंशिक रूप से समायोजन होता है, जैसे- पेशकार विलंबित लय में प्रस्तुत की गई एक कविता होती है इसमें अनुप्रास अलंकार और तुक दोनों का इस्तेमाल सबसे ज्यादा होता है। इन दोनो के कलात्मक प्रयोग से ही काव्यानुभूति की प्रतीति श्रोताओं को बार-बार होती है। तत्सम स्वर प्रधान शब्दों का भी इस्तेमाल किया जाता है। इसी कारण इन रचनाओं से रसिक श्रोताओं को उच्च स्तर का आनंद प्राप्त होता है। ये तत्व तो स्थूल दृष्टि का परिणाम है यदि रचना पर सूक्ष्म दृष्टिपात करें तो संभव है कि और भी तात्विक विश्लेषण प्राप्त हो।

***प्रविधि (Methodology) -** प्रस्तुत शोधपत्र को तैयार करने में वर्णनात्मक विधि (Descriptive Method) का प्रयोग किया गया, साथ ही मौखिक स्रोत के प्रथमिक आँकड़े, एवं द्वितीयक आंकड़े पुस्तकें पत्र-पत्रिकाओं, शोधलेखों आदि से एकत्र किये गये हैं।*

उद्देश्य- तबला आज सर्वाधिक लोकप्रिय वाद्य होने के साथ-साथ शिक्षा के क्षेत्र में भी शोध के नये आयाम दे रहा है। इस शोधपत्र के माध्यम से तबला वादन में उत्पन्न होने वाली रसोत्पत्ति के विभिन्न करण-कारणों का उद्घाटन करना है। बहुत से कलाकार इस ओर बहुत ही सूक्ष्म दृष्टि रखकर काम करते हैं, किंतु विद्यार्थियों को इसके उत्स का ज्ञान बहुत बाद में हो पाता है कई बार हो भी नहीं पाता। अत: इस शोधपत्र के माध्यम से शिक्षार्थियों में यह अलख जगाने का प्रयास किया जा रहा है कि साहित्यिक तत्वों का स्थूल ज्ञान भी उन्हे किस प्रकार कलाकारिता की श्रेष्ठता की ओर उन्मुख करता है।

***मुख्य शब्द:** तबला वादन, शैली, साहित्यिक तत्व, बंदिशें।*

असिस्टेंट प्रोफसर (संगीत विभाग), साहू जैन कॉलेज, नजीबाबाद, Email ID- deep.naadbramha333@gmail.com

बनारस तबले का एक समृद्धशाली घराना है जो अपनी एक विशिष्टता रखता है। बंदिशों का निकास, बंदिशों का रचनात्मक स्तर एवं उनका प्रभावशाली प्रदर्शन उनकी उत्कृष्टता का परिचय देता है। बनारस साहित्य और संगीत का प्रधान क्षेत्र रहा है अत: यहाँ के संगीत में साहित्य का अधिकाधिक एवं प्रभावपूर्ण प्रयोग हमेशा से रहा है चाहे वह गायन विधा हो या वादन अथवा नृत्य। तबला वादन में प्रयुक्त बंदिशों में भी यहाँ के समर्थवान कलाकारों ने साहित्यिक तत्वों जैसे चिंतन प्रधान दृष्टिबोध, बिम्ब विधान, शिल्प विधन, रस, छन्द, अलंकार, भाषा, शब्द, काव्य प्रयोजन, सौन्दर्यबोध, नाद सौन्दर्य, वर्ण मैत्री, प्रयोगधर्मिता आदि का उचित प्रयोग कर अपनी शैली को विशिष्ट बनाया। यहाँ की वादन शैली में स्तुति परन का प्रचलन जोरों से रहा है। जो सम्पूर्ण साहित्यपरक रचना होती है। उसमें साहित्यिक तत्वों का उचित दृष्टिबोध श्रोताओं को अनायास ही आकर्षित करता है।

हिन्दी साहित्य के साहित्यिक तत्वों का विश्लेषण करते हुए जिन लक्षणों को सर्वमान्य ठहराया गया वे इस प्रकार हैं।

क) वाक्यं रसात्मकं काव्यं।

ख) रमणीयार्थ प्रतिपदक: शब्द: काव्यम्।

ग) अदेषो सगुणौ सालंकारौ च शब्दार्थौ काव्यम्।

घ) Poetry is the art of uniting pleasure with truth by calling imagination of the help of reason.

ड़) Poetry is the art of expressing in melodious words, thoughts which are the creations of imagination and feeling.

च) काव्य, कल्पना और अनुभूति से गृहीत सत्य की रमणीय शब्दों में अभिव्यक्ति है।

छ) शब्द अर्थ अथवा दोनों की रमणीयता से युक्त वाक्य रचना काव्य है।

प्रथम तीन परिभाषाओं पर विचार करने से वाक्य या शब्द, अर्थ, रमणीयता, रसात्मकता, गुण, अलंकार ये काव्य के तत्व प्रकट होते हैं। इनमें रस, गुण और अलंकार रमणीयता के ही विभिन्न साधनों के रूप हैं। चौथी परिभाषा में कल्पना, चारूत्व और अभिव्यक्ति ये निकलते है। पाँचवीं से कल्पना, युक्ति, सत्य, आनन्द और कला का अभिज्ञान निकलता है। शब्द अर्थ, सत्य, आनन्द, रमणीयता, कल्पना, विचार, अनुभूति, अभिव्यक्ति, कला, रस, गुण, अलंकार आदि में सभी बातें आ जाती है। इन बातों का परीक्षण करें तो हम पाते हैं कि शब्द, अर्थ, अभिव्यक्ति ये तीनों भाषा के तत्व है। रस, आनन्द, अनुभूति, रमणीयता आदि भाव तत्व के अन्तर्गत हैं, रमणीयता, कला अभिव्यक्ति-कौशल आदि कल्पना तत्व से सम्बन्ध रखते हैं, इन सबकों संगठित करके कलात्मक, संगीतात्मक अभिव्यक्ति के रूप में प्रस्तुत करना बुद्धि और विचारतत्व का कार्य है, परन्तु इन सबमें व्याप्त रहता है सत्य। ऐसी दशा में हमें यह स्वीकार करना होगा कि काव्य में सत्य की ही अभिव्यक्ति होती है असत्य के लिए कोई जगह नहीं है। सत्य की अभिव्यक्ति करके ही काव्य अपना अस्तित्व बनाये रख सकता है। सत्य के कारण ही काव्य का अस्तित्व है और उसको ग्रहण करने की प्रेरणा हमें मिलती है। अत: हम निर्विवाद यह कह सकते हैं कि काव्य की आत्मा है सत्य।

संगीत में ध्वनि, कल्पना और अभिव्यक्ति तीनों तत्वों का समावेश होता, परन्तु वादन कला में कल्पना तत्व भी भूमिका अदा करता है। अत: ''वाक्यं रसात्मक काव्यम्' यहाँ अपने पूर्ण अर्थ की प्रासंगिकता को पूर्णतया अक्षुण्ण बनाये हुए। जब तक काव्य में तत्वों का अभाव रहेगा उसे

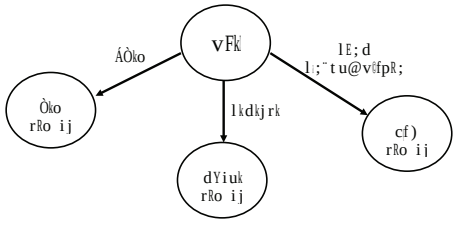
काव्य की संज्ञा से नहीं जाना जायेगा। यहाँ हम यह कह सकते हैं कि कोई भी रचना होगी, परन्तु उसमें कोई न कोई साहित्यिक तत्व अवश्य होगा। अत: तत्वहीन रचना का भाव निरर्थकता की अनुभूति कराता है। कुलपति मिश्र ने अपने 'तत्वरहस्य' में उल्लिखित किया है-

दोषरहित अरु गुन सहित कछुक अल्प अलंकार।
सबद अरथ सो कथित है ताको करो विचार।।

आगे मिश्र जी ने स्पष्ट किया कि कविता में कोई न कोई तत्व अवश्य होगा और साथ ही एक से अधिक तत्वों का समावेश होगा। अत: काव्य में अलंकार का होना स्वाभाविक हो जाता है परन्तु इसके साथ अपवाद शब्द भी जुड़ा है इससे यह भी कहा जा सकता है कि तत्व के साथ अलंकार की अनिवार्यता है युक्ति संगत प्रतीत नहीं होती। काव्य का असली तत्व है सत्य और इसी तत्व के कारण काव्य का अस्तित्व है। सत्य का यह वास्तविक रूप काव्य की आत्मा है। सत्य का समग्ररूप ही सौन्दर्य है। अत: कवि की सत्य की अभिव्यक्ति सुन्दर होती है। इसी तथ्य की अनुभूति करके ही अंग्रेजी प्रसिद्ध कवि कीट्स ने लिखा है-' 'Beauty is truth, turth beauty, That is all'' अर्थात् सौन्दर्य सत्य है और सत्य सौन्दर्य है। सत्य अपने स्वभाव से ही शिव या मंगलरूप होता है, अत: काव्य या सत्य जो सुन्दर है वह शिव भी है। इसी युक्ति से काव्य सत्यं, शिवम्, सुन्दरम् के रूप में कहा जाता है। यह सत्य वैज्ञानिक या दार्शनिक सत्य से भिन्न हो सकता है क्योंकि यह सारमात्र नहीं साकार होता है। अपने सांगोपांग रूप में वह अपने समस्त क्रियाकलाप गतिशीलता के साथ हमारे सामने आता है। एक वैज्ञानिक अपने कल्पना तत्व के माध्यम से फूल नहीं वरन् अपने द्रुम की टहनी में हरी कटावदार संजीव पत्तियों के बीच मलयानिल की झकोर पर झूमता और इठलाता हुआ प्राणियों के नेत्रों को मनोहारी प्रतीत होता है। यहाँ इस वैज्ञानिक के भाव में भाव तत्व और कल्पना तत्व दोनों समाहित है। इसी प्रकार जब संगीत की मधुर ध्वनि उठती है तो सारे श्रोता झूमने लगते हैं तो इसमें अभिव्यक्ति तत्व एवं अनुभूति तत्व दोनों का समावेश सम है। कलात्मक अभिव्यक्ति के रूप में किया गया प्रस्तुतीकरण बुद्धि और विचार तत्व का कार्य है।

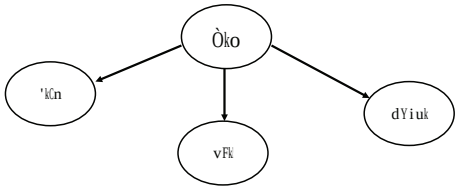
अर्थ के द्योतक के अतिरिक्त काव्य (पद के अर्थों में) में विशेष रूप में शब्द तत्व की विशेषता विद्यमान देखने को मिलती है। शब्द चयन से निर्मित पद की एक विशेष गति और प्रवाह संगीतमयता तत्सम्बन्धी लय-ताल आदि सब शब्द तत्व के विविध रूप हैं। शब्द की सामान्यतया दो गति होती प्रथम साधारण और द्वितीय नर्तन। अत: भाव और अर्थ के अतिरिक्त शब्द की गति और यमक का काव्य में महत्वपूर्ण स्थान होता है।

शब्द के साथ-साथ अर्थ तत्व काव्य प्रयोजन में घनिष्ठता के साथ ग्राह्य है। अर्थ, शब्द की प्रधान शक्ति है। अर्थ का सम्यक संयोजन अथवा औचित्य बुद्धि तत्व पर, अर्थ की साकारता कल्पना तत्व पर और अर्थ का प्रभाव भाव तत्व पर निर्भर करता है।



इसी प्रकार भाव तत्व सबसे अधिक प्रभाव उत्पन्न करने वाला होता है। ''भाव कवि की कल्पना का प्रेरक है, छन्द के स्वरूप का विधायक एवं शब्द प्रवाह के उत्स को खोलने

वाला है।'' जो लोग काव्य का प्रधान स्वरूप गीत के रूप में देखते हैं। वे वास्तव में काव्य के भाव तत्व की प्रमुखता व्यापकता को स्वीकार करते हैं। ''भाव काव्य का बड़ा व्यापक तत्व है। भाव को साकार रूप देने वाले शब्द, अर्थ और कल्पना हैं। यह काव्य का प्रकृत रूप है। भाव संगीतात्मकता का भी प्रेरक है।''



निराकार वस्तुओं और भावों को आकार देना, घटना की पृष्ठभूमि प्रस्तुत करना, तथ्य को चित्रमय बनाना, बिम्बयोजना, हृदयंगम किये हुए तथ्यों और भावों की सजीव अभिव्यक्ति कल्पना के सहारे से ही सम्भव होती है। काव्य के अन्तर्गत सत्य का दृश्यों, पाचों घटनाओं आदि का वर्णन सब कल्पना के सहारे होता है। अत: इस कार्य के लिए कल्पना तत्व का प्रधान महत्व हैं। इसके अलावा भी काव्य में प्रयुक्त होने वोले अन्यान्य तत्व हैं।

जिस प्रकार आत्मा को साकार शरीर का रूप देने वाले पाँच तत्व ही है उसी प्रकार शब्द, अर्थ, भाव, कल्पना और बुद्धि साहित्य के तत्व हैं इसके आगे और भी उपतत्व हैं यथा रस, छन्द, अलंकार, सौन्दर्य विधान, बिम्ब, कल्पना, प्रतीक, गद्य, पद्य, यति आदि। हिन्दी साहित्य में तत्वों की व्यापकता का हम अनुभव अन्य प्रकार भी करते हैं। हिन्दी में तत्वों की व्यापक अपील है। किसी भी देश जाति अथवा युग का साहित्य समस्त मानवता को प्रभावित करने की शक्ति रखता है, अत: देश राष्ट्र, जाति, वर्ग की संकीर्ण भावनाओं की परिधि से बाहर विश्वव्यापी मानवता की भावना के विकास के लिए साहित्य का कार्य महत्वपूर्ण है। चाहे वह किसी भी भाषा का साहित्य हो। शासक का सम्मान अपने देश में ही अधिक होता पर साहित्यकार के सम्मान की सीमा नहीं है। कोई भी किसी भी भाषा का साहित्य हो वह समस्त मानवता की सम्पत्ति है।

संगीत एवं साहित्य को सहोदर ही मानना चाहिए क्योंकि दोनों ध्वनि तत्व से उद्भूत हुए हैं। विविध ललित कलाओं में संगीत एवं साहित्य दोनों का उच्च स्थान माना गया है तथा दोनों का उपकरण 'वाक्' ही है। दोनों की सृष्टि 'वाक्' प्रयोग से होती है तथा ध्वनि द्वारा ही दोनों में भावनायें सम्प्रेषित होती हैं।

हमारे शास्त्रों में 'वाक्' दो प्रकार का माना गया है। एक वर्णात्मक वाक् (ककासदि अक्षर) तथा दूसरा नादात्मक 'वाक्'। साहित्य वर्णात्मक वागाश्रित है जबकि संगीत नादात्मक वागाश्रित है। संगीत एवं साहित्य का तुलनात्मक भाव को उद्धृत करते हुए श्यामसुन्दर ने हिन्दी साहित्य का इतिहास नामक किताब में लिखा है ''संगीत कला की यदि परिभाषा दी जाय तो यही होगी कि संगीत एक ऐसी ललितकला है जिसमें स्वर एवं लय द्वारा मन के गूढ़तम भाव व्यक्त किये जाते हैं। जबकि साहित्य में भाषा द्वारा अर्थात् शब्द एवं उनके अर्थ द्वारा विचारों का भावनाओं का तथा परिस्थितियों का चित्रण किया जाता है। दोनों एक-दूसरे की पूरक हैं। तत्व साहित्य की आत्मा है क्योंकि बिना आत्मा के शरीर की कल्पना नहीं की जा सकती।''

समस्त सृष्टि 'नाद' ब्रह्म से उद्भूत है। समस्त जगत का व्यवहार भी नादात्मक है। आकाश तत्व से नाद, नाद से वर्ण, वर्ण से शब्द, शब्द से वाक्य, वाक्य से भाषा तथा भाषा से साहित्य यह विकासक्रम मान्य है। उसी प्रकार आकाशतत्व से नाद, नाद से स्वर, स्वर से वर्ण, वर्ग से स्थाय, स्थाय से राग, एवं राग से संगीत

ये विकासक्रम स्वीकार्य है। वाणी तथा भाषा से जगत का नित्य का व्यवहार चलता है। भाषा से ही विचारों का आदान-प्रदान होता है। इस प्रकार जीवन के दैनिक व्यवहार में भी भाषा एवं संगीत दोनों की उपयोगिता निर्विवाद है स्वयं सिद्ध है।

व्याकरणशास्त्र में भाषा के अ आ इ ई उ ऊ आदि को स्वर कहा गया है। संगीत में भी सांगीतिक नाद (सा रे ग म आदि) को स्वर और तबले के स्वर शब्द (धा धिं धिं ता तिं गे (धो) है। व्याकरण में 'स्वर' की व्याख्या 'स्वयंराजते' इति स्वर कहकर की गई है। स्वरों के उच्चारण में किसी अन्य ध्वनि की सहायता आवश्यक नहीं है।

संगीत में स्वर की व्याख्या ''स्वत: रंजयति इति स्वर:'' इस प्रकार की गई है अर्थात् सांगीतिक स्वर ऐसी अनुरणनात्मक ध्वनि है जो अपने आप बिना किसी सहायता के श्रोत्रचित्र का रंजन कर सकती है। सांगीतिक स्वर में श्रुति मधुर अनुरणन आवश्यक है। अभिनव गुप्त के अनुसार 'शब्द' तीन कार्य करना है (1) रंजन, (2) वचन और व्यंजन। शब्द का यह तीसरा व्यंजना का कार्य अनेक विद्वानों द्वारा विस्तार से चर्चित है। आठवीं शताब्दी में आनन्दवर्धन द्वारा लिखित 'ध्वन्यालोक' में तथा प्राचीन आचार्यों में पाणिनी ने भी व्यंजन की विस्तृत व्याख्या की है। 'व्यंजना' क्या है? शब्द के वाच्यार्थ के पश्चात् तथा वाच्यार्थ के उपरान्त व्यक्ति अपने संस्कार संवेदनशीलता, अपनी बुद्धिमत्ता तथा स्थल काल के संदर्भ जो-जो अर्थ समझता है वही 'व्यंजना' है। व्यंजना में वाच्यार्थ के उपरान्त कोई निश्चित अर्थ नहीं होता। हर व्यक्ति अपनी समझ के अनुसार अर्थ घटित करता है। व्यंजना व्यक्तिगत प्रतिभापरक मानी गयी है। साहित्य में व्यंजना को समझने के लिए संगीत का ही सहारा लिया गया है। पाणिनी ने घंटाध्वनि का उदाहरण देते हुए घण्टे पर पड़ने वाली चोट की ध्वनि को वाच्यार्थ समान तथा बाद में देर तक होने वाले अनुरणन को व्यंजना समान कहा है। प्रथम चोट तो हर कोई सुन सकता है-अर्थात् शब्द का वाच्यार्थ तो सबकी समझ में आ सकता है किन्तु कितनी दूर तक व्यक्ति घंटा ध्वनि, कितने अर्थ सन्दर्भ वह अनुभूत कर सकता है, वह व्यक्ति की प्रतिभा पर निर्भर करता है। व्यंजना पाठक या श्रोता की सहृदयता, संवेदनशीलता पर आधारित होती है।

अभिनवगुप्त ने ध्वनि या शब्द के जो तीन कार्य बताये हैं जैसे रंजन, वचन तथा व्यंजन उसमें संगीत में शब्द (ध्वनि) के दो प्रमुख कार्य सम्पन्न होते हैं रंजन तथा व्यंजन। संगीत के स्वर की परिभाषा में ही सांगीतिक स्वर में रंजन की शक्ति होना अनिवार्य माना गया है। अत: संगीत में रंजन का गुण तो निहित ही है। संगीत में व्यंजना कैसे होती है? किसी राग या ताल, धुन को सुनकर मिलने वाला तात्कालिक कर्णानन्द रंजन है तथा बाद में उस राग या ताल, धुन की भावमूर्ति का बनाना या पूर्ण सुनकर जो भावोद्रेक संवेदनशील श्रोता के मन में होता है वही व्यंजना है।

साहित्य की अभिव्यक्ति भाषा पर आधारित है। साथ ही नित्यप्रति के व्यवहार विचारों के आदान-प्रदान आदि के लिए अनिवार्यता स्वयं सिद्ध है। किन्तु साहित्य जिस भाषा में तैयार होता है, उसी भाषा के जानने वाले उसका पूरा आनन्द उठा पाते हैं। इसके विपरीत संगीत को विश्वभाषा कहा गया है। संगीत का आनन्द लेने के लिए देशकाल का बन्धन विशेष बाधक नहीं होता। किसी भी मनुष्य या प्राणीमात्र पर संगीत का प्रभाव पड़ सकता है यह सर्वविदित है जैसे कृष्ण की वंशी के साथ गायों का प्रत्याकर्षण सपेरे की बीन के साथ नागों का प्रत्याकर्षण सर्वमान्य और सर्वग्राह्य है। अब चिकित्सा क्षेत्र में भी संगीत थेरेपी का प्रचलन बहुतायत देखने

को मिल रहा है। इस प्रकार साहित्य और संगीत किसी सीमा तक परस्पर आश्रित है। अब हम हिन्दी साहित्य के उन तत्वों का विशद विवेचन करने का सम्यक प्रयास करेंगे जिनका सम्बन्ध संगीत में अपेक्षित है।

तबलावादक एक सौन्दर्यकारक तथा सुरवर्धक कला है। तबले की भाषा की नादानुकरण-ध्वन्यानुकरण तत्वों से निर्मित हुई है यह निर्विवाद सत्य है। भाषा 'भाष'' धातु से बना है। मानवी भाषा निर्मित तत्वों का सीमित अध्ययन करने के बाद तबले के वर्णाक्षरों तथा शब्दों का वर्गीकरण कैसे किया जाता है, अध्ययन करेंगे।

तबले के वर्णाक्षरों का वर्गीकरण

(अ) स्वरमय अक्षर शब्द	**व्यंजन अक्षर-शब्द**
धा, धीं (धीन)	ति, तिट, तिरकिट
ता, तीं (तीन)	ति तिट तिरकिट
गे, गी, धीन	त्रक कत कत्
गेन (गीन), धागेन	धिरधिर
(ब) स्वरमय अन्त्य पद	**स्वर प्रधान तथा व्यंजन-प्रधान शब्द**
(क) धीनागीना धागेधी	(ड) धातिर-धातिरकिट
नागेना	धातिधागेन
धीनधीनागेना धाधादीना	धाति घिनातिट धात्रक

उपरोक्त वर्गीकरण का सैद्धान्तिक स्पष्टीकरण इस प्रकार है-

1. संघटक 'अ' के स्वरमय अक्षरों और स्वरमय शब्दों के तबले पर बायें पर गूँजयुक्त ध्वनियों की अपेक्षा रहती है।
2. संघटक 'ब' के व्यंजन अक्षर-शब्द (अक्षर-समूह)-इन नादों में ध्वनि की गूँज पूर्णतया अनुपस्थित रहती है।
3. संघटक 'क' के स्वरमय अन्त्यपदी शब्द या सहायक स्वरमय क्रियापद धीनागीना, धागेधीनागीना, धाधाधीना ये शब्द भी स्वरमय हैं किन्तु वे अधिकतर पेशकार और कायदे की रचना के अन्त में आते हैं और इन शब्दों से रचना का अर्थपूर्ण समापन हो जाता है। यदि यह माना जाता कि पेशकर अथवा कायदा सूत्र रूप में आबद्ध पद्यमय विचार, वाक्य हैं तो ये शब्द उस वाक्य के क्रियापद के रूप में काम करते हैं यथा-

'धातिट धातिट धाधातिट धातिट धातिट'

विज्ञजनों को यह कायदा अपूर्ण प्रतीत होगा किन्तु अन्तिम 'धातिट धातिट' के स्थान पर 'धागे धीना गीना' का प्रयोग किया जाय और वह वैसा ही बजाया भी जाय। तभी यह प्रतीत होगा कि यह रचना पूर्ण है। शायद इसी परिपे्रक्ष्य में स्वरमय अन्त्यपदी शब्दों को अलग शब्द वर्ग माना गया है। अन्त्यपद में प्रयोग किए जाने वाले पदबन्ध रचना को आधार प्रदान करते हैं। यह पदबन्ध विस्तारक्षम रचनाओं में खाली-भरी की ओर भी इंगित करते हैं जिससे बंदिश का चक्र एक तुकबन्ध काव्य की तरह चलता है कायदे, बाँट, सरीखी रचनाओं के अन्त्यपद स्वर प्रधान होते हैं। यहाँ पर यह ध्यान देने योग्य बात है कि स्वर प्रधान/व्यंजन प्रधान अन्त्यपदबन्ध होने से अमुक बंदिश को गति पर भी उचित प्रभाव पड़ता है इसीलिए कायदों या बाँट में स्वर प्रधान पदबन्ध होने से वह एक गति तक ही सुन्दर और स्पष्ट सुनाई देते हैं अपेक्षाकृत रेला और लग्गी-लड़ी या रौ में व्यंजन प्रधान अन्त्यपदों के प्रयोग से वह काफी तैयारी के साथ भी प्रस्तुत किए जाते हैं।

स्वर प्रधान तथा व्यंजन प्रधान शब्द-धातिर, धातिधागेन, धाधातिट, धातिरकिट, धात्रक, घिनातिट, घिड़नग, धाति आदि इन शब्द बंधों

में स्वराक्षर तथा व्यंजनाक्षरों का उचित संयोग होता है।

संक्षेप में काल एवं परिस्थित के अनुरूप व्याकरण में समुचित बदलाव करना चाहिए। भाषा में परिवर्तन का क्रम चलता रहता है। ऐसे बदलाव व्याकरणकारों को सकारात्मक दृष्टि से देखना चाहिए और उनको स्वीकार करना चाहिए। हर समर्थ कलाकार अपने पेशकार, कायदा आदि संकल्पनाओं का अर्थ निरूपण अलग-अलग हो सकता है तदनुसार प्रस्तुतीकरण भी भिन्न हो सकता है। निष्कर्षत: व्याकरण के नियम भी कलाकारों की क्षमता के अनुसार बदले जा सकते हैं किन्तु इसका यह मतलब नहीं कि व्याकरण के नियमों को भंग किया जाय। शास्त्र का सम्मान करते हुए व्याकरणीय निमन्त्रण आवश्यक है और उसका पालन करना चाहिए।

गद्य

बनारस घराने में पढ़न्त शैली अलग शैली या यह कह सकते हैं कि इस शैली का (वादन क्षेत्र) उद्‌भव इसी घराने से हुआ तभी गद्य के बारे में भली-भाँति जानकारी होना आवश्यम्भावी हो गया। ''पूर्ण अर्थ ज्ञात हो इस उद्‌देश्य से गद्य के जो खण्ड बनते हैं उन्हें हम वाक्य कहते हैं सिर्फ अर्थ की तरफ ध्यान देते हुए जगह-जगह पर कम या ज्यादा विराम लेते हुए हम जिस तरीके से बातें करते हैं इस तरह से बोलने या लिखने को 'गद्य' कहते हैं।'' कोई-कोई कलाकार अपनी बंदिश को बजाते समय या बजाने से पहिले श्रोताओं, दर्शकों को पढ़कर सुनाते हैं फिर तबले पर वादन करते हैं इसलिए गद्य विद्या का सम्यक ज्ञान कलाकार को अवश्य होना चाहिए। स्वर (पढ़न्त) में कहाँ, कैसा उतार-चढ़ाव होना चाहिए आदि की भली-भाँति जानकारी अपेक्षित है।

पद्य

पद्य में जो खंड, पाद या चरण बनते हैं। वे सब नियमित अन्तर के बाद आने वाले विराम स्थल होते हैं। जिस रचना के चरण में आने वाली अक्षर संख्या तथा अक्षरों की लघु गुरु मात्रायें आदि के बारे में नियम निर्धारित होते हैं उसे 'पद्य' कहा जाता है। गद्य की तरह पद्य में भी अर्थ का महत्व होता है, लेकिन अर्थ के साथ ही ध्यान प्रधानत: लय में केन्द्रित रहता है और उसके प्रस्तुतीकरण में निश्चित जगह पर निश्चित काल का विराम लिया जाता है। छन्द शास्त्र पद्य रचना का व्याकरण होता है। 'पद्य' काव्य की आत्मा होता है। इसका प्रमाण बद्ध लयबद्ध और सुन्दर होना अत्यन्त आवश्यक है, लेकिन पद्य की आत्मा उसमें निहित भावार्थ होता है।

पद्य की विशेषताएँ

1. पद्य में अर्थयुक्त शब्दावली का प्रयोग होता जिससे अन्तर्मन एक अलग ही भाव जागृत होता।
2. पद्यरचना चमत्कृतिपूर्ण होती जो एक अलग ही आनन्दानुभूति कराती है।
3. आन्तरिक लय बद्धता के कारण यह रचना बहुत ही आसानी से कंठस्थ हो जाती है और दीर्घकाल तक स्मरण में रहती है।
4. पद्य में प्रयुक्त नादमय शब्दों से नियमित, रमणीय और आवर्तनबद्ध आन्दोलन पैदा होते हैं और उनसे सौन्दर्य निर्माण होकर श्रोताओं को आनन्दानुभूति होती है।
5. पद्य रचना में निहित उचित लयबद्धता भावनाओं को उद्वेलित उत्तेजित एवं उत्प्रेरित करने में सहायक होती है।

यति

तबले की भाषा और मानवी भाषा में बहुत फर्क है। तबले की भाषा मानवी भाषा जैसा अर्थानुभव नहीं करा पाती। तबला में उत्पन्न होने वाली काव्यशक्ति उचितनाद माधुर्य, सुसंवादी शब्द प्रयोग, वादक के हाथ की कलात्मक एवं मिठास युक्त चाँट की नादमयता आदि पर तबले की भाषा का साहित्यिक आधार निर्भर करता है। यहाँ 'यति' की भी भागीदारी अपेक्षित है। ''लय के अनुसार जब हम पद्य को पढ़ते हैं तब वहाँ विशिष्ट जगह पर कम या ज्यादा समय रूकना अनिवार्य होता है। ऐसे विराम से काव्यानन्द बढ़ता है। उक्त विराम को 'यति' कहा जाता है। 'यति' के स्थान पर पद्य पंक्ति का विभाजन हो जाता है।'' तबले में यति निश्चित काल का होना अत्यावश्यक है क्योंकि 'यति' के साथ बजाई गई रचना लयबद्ध रूप में निश्चित मात्रा काल में पूर्ण होनी चाहिए। विस्तारक्षम रचना में खंड के अन्त में विराम लिया जा सकता है। यद्यपि तबले की रचना काव्य का कोई भाषिक अर्थ नहीं होता, किन्तु कलात्मक अर्थ भाव भाषित होता है और यह सब 'यति' पर भी बहुत कुछ निर्भर करता है। 'यति' के कुछ अलग-अलग प्रकार हैं जिनके नाम इस प्रकार हैं जैसे समायति, स्रोतो गता यति, गोपुच्छा यति, मृदंगा यति, पिपीलिका यति आदि।

रस

प्रत्येक संगीतकार का अपनी कला के प्रस्तुतीकरण का उद्देश्य यह होता है कि वह अपने मन का भाव (रस) श्रोताओं तक गहराई तक पहुँचाये नृत्यकार जब तांडव नृत्य प्रस्तुत करता है तब उसकी अपेक्षा यह होती है कि अपनी नृत्यकला के माध्यम से वीर रस और रौद्ररस की अनुभूति कराये। सान्ध्य समय के राग के माध्यम से कलाकार बेचैनी, दया के भाव अथवा कोई गम्भीर वातावरण पैदा करने के लिए प्रयत्नशील रहता है। 'ठुमरी' सुनते समय श्रृंगार जैसे रस की निर्मिति हो यह श्रोताओं की स्वाभाविक अपेक्षा होती है।

ताल का ठेका, ठेका भरी, ताल वाद्यों का चुनाव, वादन शैली, वादन प्रकार आदि का योजनाबद्ध तरीके से उपयोग संगीत में अपेक्षित भावों को प्रभावात्मक ढंग से व्यक्त करने में सहायक होता है।

विभिन्न ताल उनके ठेके, उनमें आये हुए शब्द, अक्षर, विविधप्रकार की लय और अक्षरों को बजाने का निकास आदि के कारण विविध रस निर्मित करने के प्रयोग को सहायता मिलती है। संक्षेप में वादन प्रकृति से रस अभिव्यक्ति को उद्धृत करने का प्रयास किया गया है।

ताल का नाम	**वादन प्रकार की प्रकृति**	**रसों की अभिव्यक्ति**
कहरवा, दादरा, झपताल, दीपचंदी, त्रिताल, रूपक, एकताल, अद्धा आदि।	चपल	श्रृंगार, करुण, भक्ति कहीं-कहीं पर हास्य ओर वात्सल्य रस की अनुभूति होती है।
चौताल, धमार, सूलफाक ताल तीवरा, तिलवाड़ा, झूमरा	गम्भीर	शान्त और करुण रस
रूद्रताल, मत्त ताल	गम्भीर	वीर रस और रौद्र रस

पेशकारा	गम्भीर	शान्त रस
कायदा, रेला, लग्गी-लड़ी	चपल	श्रृंगार रस
गत, टुकड़े, परन	गम्भीर	शान्त, वीर रस
थाप खुला बाज	चपल	वीर, रौद्र, शान्त रस
चाट पर के अक्षर	चपल	श्रृंगार, करुण-रस
धीमी लय	गम्भीर	शान्त रस
द्रुत लय	चपल	श्रृंगार रस
खर्ज के स्वर	गम्भीर	वीर, शान्त रस
तार स्वर	चपल	श्रृंगार रस

तबला वादन एक प्रयोगक्षम कला है। प्रतिभाशाली कल्पक कलाकार नये-नये शब्दों का, नयी शब्द संगति का, नये टुकड़ों का निर्माण करके अपनी प्रतिभा का दिग्दर्शन श्रोताओं के मध्य प्रस्तुत करता है और अपने इन गुणों के परिणामस्वरूप वादन कला में नयेपन का निर्माण कर आनन्दानुभूति कराता है। महान मनोवैज्ञानिक एडवर्ड-डी-बोनों के मत से उपरोक्त बौद्धिक गुणों के प्रति मनुष्य को सतत् प्रयत्नशील रहना चाहिए, यद्यपि यह अत्यन्त कठिन है फिर भी प्रयत्नशील रहना चाहिए क्योंकि अभ्यास ही मनुष्य की सफलता का सूचक है। प्रतिभाशक्ति में अभिवृद्धि, नित नयी रचना कृतियाँ, समृद्ध बोलों, अक्षरों के विकास का चुनाव, अनुप्रास, यमक आदि शब्दालंकारों का यथोचित प्रयोग गणित और हिसाब के विविध रूप रंजक वादन शैली आदि सभी में निखार की प्रक्रिया सतत जारी रहने का फलस्वरूप एक सशक्त और समर्थ कलाकार के साथ-साथ व्यक्तित्व में निखार आता है।

छंद- ध्वनि का कालतत्त्व काव्य में छन्द के रुप में तथा संगीत में ताल के रुप में व्यक्त होता है। छन्द और ताल दोनों ही काल मापक है। छन्द और ताल के लक्षण को बताते हुए डॉ0 गुलशन सक्सेना लिखती है कि ''छन्द' का मूल लक्षण लयबद्धता है। यद्यपि लय के बिना छन्द असंभव है तथापि मात्र लय को ही छन्द नहीं माना जा सकता। एक निरंतर गति से जब काल खण्ड बनाए जाएँ तो वह लय कहलाती है, जब उस लय को ह्रस्व-दीर्घ या लघु-गुरु जैसी निश्चित ईकाइयों के आधार पर विशेष आकार प्रदान किया जाए: वह सामान्य लय छेद रुप में परिणत होती है।''

मनोहर चन्द्र राव मराठे लिखते है कि छन्द, काव्यों में वर्णाक्षरों पर आधारित होता है किन्तु ताल संगीत में सशक्त तथा नि:शब्द क्रिया पर आधारित होता है। तालों का तथा उनके विकास आधार छन्द ही है।ताल में छन्द का स्वरुप मुख्यत: दो प्रकार से दिखता हैं-

1. विभिन्न तालों की रचना में
2. किसी ताल में विभिन्न बोलों की रचना में

ताल और छन्द का मौलिक सम्बन्ध इस प्रकार देख सकते है कि जैसे हरिगीतिका छन्द में 28 मात्रा हैं और 3;2,2 के क्रम में 7 मात्रा के खण्ड बनते है। ताल प्रणाली के रुपक, तीव्रा इत्यादि तालो में भी 3,2,2 के खण्ड होने के कारण हरिगीतिका छन्द से इन तालों का साम्य दिखाई पड़ता है। इसी प्रकार झपताल, सूलताल,

तीनताल आदि तालों के निर्माण में विभिन्न छन्द सहायक हैं।

अत: उपर्युक्त अध्ययन से ज्ञात होता है कि तबले की बंदिशों को यदि शोधपरक दृष्टिकोण से देखा जाय तो वह साहित्यिक तत्वों से भरी पड़ी है। जो तबला वादन में सौंदर्य को प्रस्तुत करती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची-

1. डॉ. चातक, लक्ष्मी नारायण, काव्यांग-पारिजात, (जयपुर, कॉलेज बुक डिपो)।
2. डॉ. चौधरी, सत्यदेव तथा डॉ. शान्ति स्वरुप गुप्त, भारतीय तथा पाश्चात्य काव्यशास्त्र का संक्षिप्त विवेचन, नवीन संस्ककरण (दिल्ली, अशोक प्रकाशन, 1998)।
3. डॉ. मिश्र, भगीरथ, काव्यशास्त्र, पच्चीसवाँ संस्करण (वाराणसी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, 2014)।
4. पं. भाईणकर, सुधीर, तबला वादन में निहित सौन्दर्य (मुम्बई, सरस्वती पब्लिकेशन)।
5. आ. उपाध्याय, बलदेव, वृत्तरत्नाकार, (वाराणसी, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, 2012)।
6. मराठे, मनोहर भालचन्द्र राव, ताल वाद्य शास्त्र, तृतीय संस्करण, (ग्वालियर शर्मा पुस्तक सदन, (म.प्र.))।
7. श्रीवास्तव, गिरीश चन्द्र, ताल परिचय भाग-3, प्रथम संस्करण, (इलाहाबाद, रुबी प्रकाशन, 1999)।
8. डॉ. सक्सेना, गुलशन, संगीत संकल्प, प्रथम संस्करण, (नई दिल्ली, राधा पब्लिकेशन्स, 2013)।
9. डॉ. सेन, अरुण कुमार, भारतीय तालों का शास्त्रीय विवेचन, तृतीय संस्करण, (भोपाल, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी (म.प्र.), 2005)।

नव राग सृष्टि में रागांग की भूमिका

उदिति सरकार

सार-संक्षेप

हिंदुस्तानी संगीत पद्धति में राग का अपना एक वर्चस्व स्थान है। यह इस पद्धति की एक अद्वितीय विशेषता है कि इसके अंतर्गत एक ही स्वरावलि से अनेक राग रूपों की रचना संभव है।

रागों में विभिन्न रागांगों अथवा राग परिचायक विशिष्ट स्वर समुदाय के प्रयोग के आधार पर अनेक रागांग राग अथवा राग भेदों की रचना हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति के अंतर्गत हुई।

रागों के नवनिर्मिति के परिणाम स्वरूप संगीत जगत में समय-समय पर राग वर्गीकरण की विभिन्न पद्धतियाँ प्रचार में आती रही है जिनमें से 'रागांग-राग वर्गीकरण' वर्तमान समय की परोक्ष रूप से व्याप्त राग-वर्गीकरण प्रणाली है।

इस शोध पत्र के संपादन में विभिन्न ग्रंथों, पुस्तकों तथा संगीत जगत के विद्वान पंडित एवं संस्थागत शिक्षा क्षेत्र से जुड़े प्रवक्ता गणों के मतों को समक्ष रखते हुए निष्कर्ष निकाला गया है।

मुख्य बिंदु - *नव राग निर्मिति, रागांगंग, मिश्र राग*

शोध पत्र

भारतीय शास्त्रीय संगीत रागाधारित संगीत है। इसमें रागों की विविधता मुख्य रूप से दृष्टिगोचर होती है। भारतीय संगीतज्ञों ने प्राचीन काल से ही अपनी प्रतिभा के बल पर नित्य नये प्रयोगों द्वारा भारतीय शास्त्रीय संगीत को एक उच्च स्तरीय कला का रूप दिया है। इन प्रयोगों के अंतर्गत नवीन गायन वादन शैलियों का विकास, नवीन रागों का निर्माण होता रहा है। इसमें संगीतज्ञों द्वारा नवीन रागों का निर्माण विशेष रूप से मिश्रण के आधार पर ही किया गया है। दो मूल रागों या दो से अधिक रागों को मिश्रित करके एक नवीन राग की रचना किसी कलाकार द्वारा करना, उसकी प्रखर बुद्धि व गहन कलात्मक चिंतन का परिचायक है। रागों की नवनिर्मिती के फलस्वरूप संगीत जगत में कालांतर में राग-वर्गीकरण की विभिन्न पद्धतियां प्रचार में रही है। जैसे-ग्राम-राग वर्गीकरण, दशविध राग वर्गीकरण पद्धति, राग-रागिनी पद्धति, शुद्ध, छायालग व संकीर्ण राग, मेल पद्धति, रागांग राग वर्गीकरण पद्धति इत्यादि।

नए रागों की परिकल्पना में पुराने रागों का कुछ ना कुछ आधार अवश्य रहता है। प्रचलित दो-तीन रागों के मुख्य अंगों को आपस में मिला कर प्राय: नए रागों का निर्माण होता आया है। इसी को राग-मिश्रण कहा जाता है।

मिश्रण पद्धति की यदि इतिहास की बात करे तो वह भरत की बताई हुई जातियों में दिखता है। जिसमें दो-तीन-चार जातियों के मिश्रण से

पीएच.डी. शोधार्थी, संगीत एवं ललित कला संकाय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

विकृता, संसर्गजा आदि नए जाति-रूप बने जो कि उनके विशिष्ट अंगों के मिश्रण से ही बने है।

रागांग की चर्चा करने हेतु मतंग का नाम विशेष उल्लेखनीय है क्योंकि सर्वप्रथम रागांग शब्द का उल्लेख उनके ही ग्रंथ में सर्वप्रथम प्राप्त होता है। तत्पश्चात् दशविध राग वर्गीकरण के अंतर्गत पं. शारंगदेव ने रागांग, भाषांग, क्रियांग और उपांग का विवेचन किया है।

रागों के इतिहास में मिश्र रागों का इतना वर्चस्व रहा है कि राग वर्गीकरण की पुरानी पद्धतियों में एक पद्धति तो ऐसी है जो शुद्ध, छायालग, संकीर्ण राग वर्गीकरण पद्धति के नाम से प्रसिद्ध हुई।

शुद्ध राग वे है जिनमें शास्त्र के नियमों का पूर्ण रूप से पालन होता है। छायालग राग वे है जिनमें किसी अन्य राग की छाया दिखाई देती है तथा संकीर्ण राग वे हैं जो शुद्ध व छायालग रागों के मिश्रण से बने है।

इस वर्गीकरण पद्धति से यह जान पड़ता है कि उस समय भी विभिन्न स्वर-समुदायों अर्थात् रागों के अंगों के मिश्रण से नवीन राग बनाये जाते थे जिससे यह भी स्पष्ट होता है कि आधुनिक रागांग पद्धति की नींव इसी पद्धति पर आधारित है।

मध्यकाल में सर्वप्रथम भावभट्ट ने रागांग के आधार पर वर्गीकरण किया जिसे भेद-पद्धति कहा गया। उन्होंने 18 मुख्य रागों में 148 रागों को अंगों के आधार पर वर्गीकृत किया। उदाहरणार्थ नाट के 16 भेद, कल्याण के 13 भेद, बिलावल के 16 भेद आदि बताए है।

आधुनिक समय में पं.. भातखंडे, पं. श्री कृष्ण रातंजनकर, पं. विष्णु दिगम्बर पलुस्कर ने भी रागों के वर्गीकरण में रागांग का प्रयोग उचित समझा। वर्तमान में रागांग पद्धति के जनक कहे जाने वाले, पं. नारायण मोरेश्वर खरे का नाम रागांग पद्धति के प्रचार-प्रसार में विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उन्होंने 26 मुख्य राग मानकर उनमें प्रचलित रागों को उनके अंग के आधार पर विभाजित किया। जैसे-

(1) कान्हड़ा - दरबारी, अड़ाना, सुघराई, शहाना, नायकी, गुंजी, कानड़ा मल्हार।

(2) भैरव - भैरव, कलिंगड़ा, जोगिया, गुणक्री, गौरी, शिवमत, रामकली आदि।

"इन रागों के समूहों पर ध्यान देने से ज्ञात होता है कि प्रत्येक समूह के रागों में एक विशिष्ट प्रकार का रागांग है, उसी के कारण उतने राग एक विशिष्ट समूह में आते है और दूसरों से भिन्न दिखाई देते है। इन समूहों में जिस राग के चलन या विस्तार में वादी-सम्वादी, अल्पत्व, बहुत्व और ह्रस्व दीर्घादि नियमों का यथासंभव पालन होता है वही राग स्वतंत्र हैं, अन्य सब अंग भूत राग है। जैसे-भैरव एक स्वतंत्र राग है और उससे संबंध रखने वाले उसी समूह के दूसरे राग उस पर निर्भर है अर्थात् वे उसके अंगभूत राग है। इसलिए उनको रागांग राग कहना चाहिए। रामकली राग भैरवांग प्रधान है यद्यपि उसमें तीव्र मध्यम और कोमल निषाद का उपयोग मर्यादित रूप से किया जाता है तथापि उसमें भैरवांग मुख्य होने से वह रागांग राग है।"[1]

यदि नवीन राग सृष्टि में रागांग पद्धति की भूमिका पर विचार करे तो यही पद्धति अधिक उपयुक्त और उपयोगी सिद्ध होती है। रागों के प्रस्तुतीकरण में स्वर लगाव भी विभिन्न रागांगों का निर्माण करता है। उदाहरण-रे प स्वर संगति मल्हार का परिचायक है और यही स्वर संगति दुर्गा और कामोद में अलग रीति से प्रयोग किया जाता है।

रागांग हिन्दुस्तानी संगीत की एक विलक्षण विशेषता है। समान सुर वाले राग किस तरह

वादी-संवादी, न्यास, चलन आदि के बदल जाने से अलग रूप धारण कर लेते है यह देखकर बड़ा आश्चर्य होता है। जैसे-भूपाली-देशकार, मियां की तोड़ी-गुर्जरी तोड़ी, मारवा-पूरिया-सोहनी, परज-बसंत आदि।

राग मिश्रण की यह प्रक्रिया बड़ी जटिल और वैज्ञानिक है। रासायनिक प्रक्रिया की तरह राग-मिश्रण प्रक्रिया असीम है, उसके रूप अनंत है।

आचार्य बृहस्पति के अनुसार-

"मिश्रण कई प्रकार का होता है। खिचड़ी में दाल चावल मिले होते है, परंतु दाल और चावल के दानें मिले जुले होने पर भी उनका व्यक्तित्व पृथक-पृथक दिखाई देता है। इस प्रकार का मिश्रण 'संसृष्टि' कहलाता है। एक अन्य मिश्रण घुला मिला होता है। दूध और पानी अथवा दूध और शक्कर का मिश्रण 'संकर' कहलाता है। 'संकर' होने पर भी मिश्रित वस्तुएं एक रूप हो जाती है।

यही स्थिति रागों में भी है। 'संकर' उन्हीं रागों में संभव है, जिनमें प्रयोज्य स्वरावलि सदृश जैसे भूपाली-देशकार में समान स्वर लगते है परंतु वादी-संवादी के बदल जाने से दोनों के चलन में बहुत अंतर है। वहीं, बसंत और बहार जैसे विपरीत स्वर रागों में संसृष्टि ही संभव है। इसमें बसंत और बहार का अद्‌भुत मिश्रण दिखाई देता है।"[1] जैसे-

म ध सां रें सां ध सां नि ध प, नि नि प म प ग म

बसंत बहार

म नि ध नि सं,ध सां नि ध प, म प ग म

बहार बसंत बहार

ग म ग म ग रे सा।

बसंत

इसी प्रकार हिंडोल बहार भी एक ऐसा राग है जिसमें षड्‌ज के अतिरिक्त कोई अन्य मेल स्वर उपलब्ध नही होता है किंतु अत्यंत आकर्षक रूप से गाया-बजाया जाता है।

विद्वानों ने मिश्र रागों के उपलब्ध रूपों के आधार पर कुछ नियम खोजने की कोशिश की है। जैसे-मिश्रण ऐसे ही रागों का किया जाना चाहिए जिनके बीच कोई महत्वपूर्ण समानता हो उनका चलन मिलता जुलता हो सकता है जैसे- 'बागेश्री-बहार' मिश्र राग में 'म ध नि सां' और 'सा म' ये स्वर-समूह दोनों में समान रूप से मिलते हैं।

दूसरी विधि में जिन रागों की उठान समान हो, जैसे- मिश्र राग 'जोगी-आसावरी' में जोगिया और आसावरी रागों के एक समान उठान इस प्रकार है- 'सा रे सा, रे म म, म प ध'। तीसरा, पूर्वांग में एक राग और उत्तरांग में दूसरे राग का मिश्रण हो। जैसे- नट भैरव के पूर्वांग में नट अंग दिखता है तथा उत्तरांग में भैरव के स्वर-समूह का प्रयोग किया जाता है।

पटमंजरी, बहादुरी तोड़ी, लाचारी तोड़ी तथा खट जैसे भी ऐसे कुछ आकर्षक रागरूपों के उदाहरण उपलब्ध हैं जिनमें भिन्न-भिन्न चार, पाँच अथवा छह रागांगों का मिश्रण अत्यंत कुशलता पूर्वक किया गया है। अत: निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि हिन्दुस्तानी संगीत के अंतर्गत नव राग निर्मिति में विद्वान संगीतज्ञ की कलात्मक संकल्पना के फलस्वरूप विभिन्न रागांगों का आधार लेते रहे हैं तथा सृजनशील कलाकारों द्वारा विभिन्न रागांगों के मिश्रण से नव राग निर्माण यह प्रक्रिया सतत चलती रहेगी और अनेकानेक आकर्षक नए रागरूपों का सृजन होता रहेगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. भातखंडे संगीत शास्त्र (हिंदी), भाग-1, मूल लेखक-भातखंडे, पं. वी.एन. अनुवादक-भट्ट, श्री विश्वम्भरनाथ संगीत कार्यालय हाथरस, उत्तर प्रदेश, चतुर्थ संस्करण, 1975
2. हिंदुस्तानी संगीत में रागों का सम्मिश्रण, वागीश्वरी, जुलाई-दिसंबर-1987, मुटाटकर प्रो. सुमति द्वारा लेख
3. आचार्य बृहस्पति एक संसृष्ट राग बहार बसंत / बसंत बहार, संगीत, मार्च-1969
4. राग वर्गीकरण की रागांग प्रणाली, संगीत कला विहार, अगस्त-2006, श्री श्याम पडपे द्वारा लेख
5. संगीत रत्नाकर, पं. शारंगदेव, हिंदी अनुवादक-गर्ग, लक्ष्मी नारायण संगीत कार्यालय, हाथरस
6. राग विज्ञान (भाग-6), पटवर्धन, पं. विनायक राव (रागांग पद्धति), लेखक-खरे नारायण मोरेश्वर

फूटनोट

1. राग विज्ञान, भाग-6, पटवर्धन, विनायक राव (रागांग पद्धति) स्वर्गीय नारायण मोरेश्वर खरे द्वारा लेख, पृ.सं.-12, 15
2. आचार्य बृहस्पति एक संसृष्ट राग बहार बसंत / बसंत बहार, मार्च-1969, पृ.सं.-03

जसनाथी सम्प्रदाय के लोक संगीत का स्वरूप

नेहा शर्मा

बीकानेर समाज में लोकसंगीत की प्रवृति पूर्णत: संगीतमय है। यहाँ के लोग मूलत: धार्मिक प्रकृति के होते हैं। यही कारण है कि उनके दैनिक जीवन में धर्म व मेले उत्सव विशेष स्थान रखते है। आज भी यहाँ के नागरिक उत्साह व उमंग से मन्दिरों में वन्दना व अर्चना करते हैं तथा मेले, उत्सव त्यौहारों में भागीदारी देते है। बीकानेर समाज के विभिन्न सम्प्रदायों के जैसे निर्गुण परम्परा, जागरण परम्परा आदि के अन्तर्गत भगवान स्तुति से सम्बन्धित पद एवं गुरू की महिमा सम्बन्धित पद आदि गाए जाते है। ये रागाधारित व तालाधरित होते है। इनमें गायन, वादन व नृत्य की परम्परा सामूहिक रूप में होती है तथा संगीत परम्परा में डिंगल साहित्य का प्रयोग होता है।

जसनाथी सम्प्रदाय जाट जाति का सिद्ध सम्प्रदाय है। जो मुख्यत: भारत (राजस्थान) के बीकानेर में मौजूद है तथा इस सम्प्रदाय के संस्थापक जसनाथ जी (१५३९-१५६३) माने जाते है। इस सम्प्रदाय में मुख्यत: ३६ नियमों का पालन करना आवश्यक माना जाता है। बीकानेर जिले का कतरियासर गाँव इनका मुख्य स्थल है यहाँ जसनाथी सम्प्रदाय के लोगों द्वारा अग्नि नृत्य किया जाता है। वैसे तो जसनाथी सम्प्रदाय में गायन, वादन व नृत्य परम्पराओं का समावेश परिलक्षित होता है।

अग्नि नर्तक महसूस करते है कि कोई शक्ति ही उन्हें अग्नि के जलते अंगारों से ऊपर उठाए रखती है। ये दैविक आत्मविश्वास, अभ्यास तथा गुरु के आर्शीवाद का ही फल मानते है। इसमें गायक का रागालाप तथा नगाड़े की ताल का विशेष ध्यान रखना पड़ता है ताल के छूट जाने (चूकने) पर ही पैर जलना सम्भव होता है। इस परम्परा के लोग सिद्धी प्राप्त अर्थात अपने गुरु के प्रति सम्पूर्ण आस्था भक्ति में लीन होते है। सिद्ध सम्प्रदाय को मानने वाले दो प्रकार के लोग होते है पहला वर्ग सिद्ध तथा दूसरा वर्ग जसनाथी जाट कहलाता है। जसनाथी जाट सम्प्रदाय में साधारण राजस्थानी वेशभूषा ही पहनते हैं इस सम्प्रदाय के लोगों द्वारा सर्गुण उपासना को ही स्वीकार किया जाता है. निर्गुण उपासना को मोक्ष प्राप्ति का साधन माना जाता है।

जसनाथी सम्प्रदाय के मतानुयायी का सांस्कृतिक पक्ष बहुत ही शालीन और सबल है। अब इस सम्प्रदाय की गायकी, वाद्य, वादन, पद्धति तथा 'अग्निनृत्य' अपने आप में मौलिकता लिए हुए है। लोक संगीत प्रत्येक दृष्टि से अति समृद्ध एवं सम्पन्न रहा है। लोक जीवन में रागों को सिद्धी का साधन भी मानते है।सिद्धों के संगीत में ६ राग तथा ३६. रागिनियों की परम्परा प्रचलित है तथा प्रचलित रागों के नाम इस प्रकार है राग

एम. ए. (संगीत), एम. फिल. (संगीत) पी. एच. डी. (संगीत)

बड़ी, राग हंसा, राग मारू, राग रामगिरि, राग जंगला राग गावड़ा, राग सोरठ, राग आसा राग पिण्डतानी आदि।

मुरारी लाल शर्मा जी ने इस सम्प्रदाय की परम्पराओं पर प्रकाश डाला है तथा सूर्यशंकर जी पारीक द्वारा कलानुसंधान पत्रिका में अनेक आलेख इस सम्बन्ध में प्रकाशित किए है। रागों के सम्बन्ध में सिद्ध सम्प्रदाय में प्रचलित सिरलोक (श्लोक) पारीक जी के अनुसार यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं जो इस प्रकार है।

राग सुभ (शुभ)- इस राग के चार भेद माने जाते है। छोटी सुभ, बड़ी सुभ, पाधरी सुभ, बूड सुभ सुश्री सुधा राजहंस ने "चिरमी" पुस्तक में लंगा जाति की गायकी के सन्दर्भ में सूब मांड की चर्चा की गई है।

सुभ राग का सिरलोकः-

सुभ न सफरा बोलिये अफरा बोलो काय।
छंदा जांरा छाईए ज्यां रै बसियै गाँव।।

राग हंसा या हंसावली : ये राग दो प्रकार की मानी जाती है १. पाधरी हंसा और २. आडी हंसा।

सिरलोकः-

रतन तठाई जल भरी हंसा ज बैठा आय।
नाड़ी गरमै नीर नै कोई समै सुस जाय॥

इससे सम्बन्धि वर्तमान में हिन्दुस्तानी संगीत में हंस ध्वनि, हंस किकणी नामक राग प्रचलित है।

राग पिंडताणी :- इस प्रकार की राग का उल्लेख प्राप्त नहीं होता है। परन्तु पारीक जी के अनुसार इस राग के सम्बंध में लिखा है कि इस राग के नाम का प्रयोग यद्यपि सिरलोक में नहीं हुआ है। लेकिन 'सीतपुराव' की कड़ी में देखने को मिलता है।

राग बड़ीः- बड़ी राग को डिंगल साहित्य में बड़ राग के नाम से जाना जाता है। महादेवी पार्वती बेलि छन्द ३१७ में बड़ी राग शब्द आया है। वचनिका राठौड़ रतन सिंह पृष्ठ संख्या ३६ पर बड़ राग में बड़ा दूहा गवाड़ों और नागदमण में "बड़ी राग की धुनि फौजा न बाजै" का प्रयोग हुआ हैं हिन्दुस्तानी संगीत में बड़ हंस नामक राग प्रचलित है।

राग का सिरलोकः-

गुरु जसंवत ने सिंवरंता सिंवरा पालन पीर।
भूखा भोजन सांप जै तिसिया पावण नीर॥

सोरठ :- हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति में राग देश के समप्रकृति रागों में सोरठ का नाम आता है। बीकानेर में अनेक लोकगीत भी सोरठ राग में प्राप्त होते है। सोरठ सौराष्ट्र का अपभ्रंश है अथवा एक प्रेम आख्यान में नायिका का नाम है जिस पर इस राग का नामकरण हुआ है। जसनाथी सम्प्रदाय में इस राग का चित्रण इस प्रकार है।

सोरठ डाली आम री सूवो ज बैठो आय
पांख सुवारे उडण करै रंग में भीनों जाय ॥

राग आसा :- आसा राग भी प्रचलित राग है आसा के साथ दूसरे नाम जोड़कर उपराग बने हैं जैसे राग आसावरी राग आसा माड आदि जसनाथी सम्प्रदाय में आसा राग का चित्रण इस प्रकार है।

आसा अखी अमरधन निरधन क्यूँ जीवंत।
गौरी पिंडा मोकले मिरथो माल चरंत॥
आसा आवै आस कर से क्यूँ जावे निरास।
पाणी ऊपर घर चिणै वै क्यूँ मरै पियास ॥

राग जंगला :- "संगीत रत्नाकर" के अनुसार देश-प्रदेश के नामों पर भी रागों के नाम रखे जाते हैं। जंगला राग जांगल प्रदेश नाम पर ही रखा गया

प्रतीत होता है। यह जंगल प्रदेश बीकानेर क्षेत्र का प्राचीन नाम है। ठाकुर जसवंत सिंह जी ने

"राजस्थान के राजवाड़ी गीत संग्रह" में जंगला राग अनेक स्वरलिपियाँ दी है, परन्तु उनमें कोई भी गीत बीकानेर क्षेत्र का प्रतीत नहीं होता है। जसनाथी परम्परा में जगंला राग का चित्रण इस प्रकार दिया गया है।

जंगल जोगी तापिया जमड़ा दीना टाप।
जंगल में मंगल भया हरि का जपिया जाप ॥

शास्त्रीय गायन में जंगला राग में बंदिशों के प्रचलन का अभाव है परन्तु राग का शास्त्रीय विवरण उपलब्ध होता है। इसके अतिरिक्त सिद्ध सम्प्रदाय में ऐसे अनेक राग है जैसे राग पावस, गवड़ा राग ,राग मल्हार, राग रामगिरि गौड़ी तथा बिलावल आदि।

जसनाथी सम्प्रदाय के ये पद (श्लोक) नगाड़ों और मंजीरों के साथ गाए जाते हैं।जो पद जिस राग पर आधारित होता है।

पहले उस राग का सिरलोक बोला जाता है। बाद में पद आरम्भ किया जाता है। इस नृत्य के साथ हिप्नोटिक कर देने वाला संगीत चलता है। इसकी गायन शैली समागान के बहुत निकट है।

जसनाथी सम्प्रदाय के सिद्ध, विशेष पर्वो पर जागरणों तथा जसनाथी गृहस्थ के शुभ अवसर पर अग्नि नृत्य करते है। ये नृत्य धधकते अंगारों पर किया जाता है। ऐसा कहा जाता है कि इस नृत्य को करने के लिए बीस- तीस मन लकड़ियाँ जलाई जाती है।

नृत्य के साथ गायन, वादन भी चलता है। गायन परम्परा के अन्तर्गत इसमें सर्वप्रथम किसी राग का सिरलोक (श्लोक) का उच्चारण किया जाता है उसके बाद पद गायन होता है जो कि जसनाथी जी एवं रूस्तम जी के होते है तीन सबद गाने के बाद धूणें (अग्नि पुंज) में घी से हवन किया जाता है जिसे ये "जम्मों जागतो करना" कहते है। धूणे के चारों ओर पानी छिड़कर मिट्टी गीली कर ली जाती है। इसके बाद रूस्तम जी का चौथा सबद गाया जाता है ये नाचणिया शब्द कहलाता है। सिद्ध लोग "फतै रे फतै" बोलते हुए नाचने को उठते हैं। थोड़ी देर नगाड़ों के आगे नृत्य करने के पश्चात मंच की अग्नि में प्रवेश कर नृत्य क्रियाएँ आरम्भ करते हैं।

ये सिद्ध पुरुष अंगारों को हाथ में रखना, चिंगारियों को मुहं में डालना, बाहर फूँकना अंगारों को हाथ में लेकर तरबूज फोड़ने जैसा अभिनय करना, सांड की भाँति अंगारे को कुरेदना जैसी क्रियाएं इस नृत्य में करते है। सिद्ध पुरूष द्वारा अपने गुरू से सिद्धी प्राप्त करने के पश्चात ही इन क्रियाओं को कर पाना संभव है।

ऐसा माना जाता है कि जसनाथा जी एवं रूस्तम जी की कृपा से ही इन नर्तकों की अग्नि से रक्षा होती है। इस नृत्य को कोई साधना मानते है तो कोई देवीय सिद्धी समझते है। यह एक प्रकार का चमत्कारी आयोजन है। बीकानेर (कतरियासर) में तीन मेले आश्विन शुक्ला सप्तमी, माघ शुक्ल सप्तमी, और चैत्र शुक्ला सप्तमी को मे आयोजन किया जाता है। इस मेले में बीकानेर का ऊँट उत्सव व कतरियासर गाँव के सिद्ध जाट जाति के लोगों का अग्नि नृत्य का अनूठा उत्सव, जनवरी माह में प्रत्येक वर्ष होता है। उत्सव को बीकानेर के पर्यटन विभाग एवं प्रशासन के सहयोग से तीन दिवसीय समारोह में आयोजित किया जाता है। जिसमें भारी संख्या में देश विदेश से लोग व कलाकार भाग लेते है। सांस्कृतिक कार्यक्रम हेतु अलग अलग जगह से कलाकारों को आमंत्रित किया जाता है। इसका समापन आतिशबाजी के साथ किया जाता है।

जसनाथी सम्प्रदाय के मतानुयायी का सांस्कृतिक पक्ष बहुत ही शालीन और सबल है। लोक संगीत हमारे सम्बन्धों का संगीतमय इतिहास है। इस इतिहास में हमारी पीढ़ियों के मानवीय सम्बन्ध, रीति रिवाज, विश्वास व धारणाएँ जीवन के मार्मिक अनुभव का भावनात्मक प्रतिफल है। इसलिए अनेक बार सामाजिक सम्बधों की मान्यताओं के बदल जाने के बाद भी लोक संगीत में प्राचीन सम्बधी अनेक बार सामाजिक सम्बधों की मान्यताओं के बदल जाने के बाद भी लोक संगीत में प्राचीन सम्बधी के तात्विक अवशेष रह जाते है। इन्हीं अवशेषों के अध्ययन से हमें न केवल प्राचीन जीवन को समझने की क्षमता ही मिलती है। अपितु इसके साथ ही संगीत के विकास के अनेक महत्वपूर्ण चिन्ह् भी मिलते है। अत: जसनाथी सम्प्रदाय के ऐतिहासिक, दार्शनिक, सामाजिक एवं कलात्मक स्वरूप को गहराई से समझने की आवश्यकता है।

श्रीरामचरित मानस में मानवीयता संगीत लपेटे हुये

डॉ॰ सुरेन्द्र कुमार

शोध सार

मानवीयता हम सभी के जीवन की औषधि है। चेतना के स्वर में सुख-दु:ख लय रूपी आभूषण से चमत्कृत होता है। मानवता का प्रांगण "सर्वे भवन्तु सुखिन:" के भाव प्राण से सुसज्जित होता है। जीवन के गलियारे में भाव की अति वृष्टि संगीत को जन्म देती है। रामचरित मानस मानवीयता रूपी शरीर का वह रक्त है जिससे मानवीयता पुष्ट और समृद्ध हुई है। मानस की धरती राम से मर्यादित और हरी-भरी दीखती है। जीवन यानी जी....वन तात्पर्य जीवन की मानवीयता का आकलन वन प्रान्तर में प्रखर और परिमार्जित है। राम की तरुणाई जो जीवन का वह क्षण जहाँ मानवता वैभवशाली होती है। राम अपने मानवीयता का सदुपयोग वन प्रान्तर में साधु, संत, तपस्वी, राक्षसी प्रवृतियों के बली चढ़ रहे थे। राम की मानवीयता परवान चढ़ी और मर्यादा शब्द से अलंकृत हुई। जो मर्यादा पुरुषोत्तम राम तक की यात्रा तय की, यह उनकी मानवीयता ही कही जा सकती है। राम चरित मानस की भावधारा मानवता के हर पहलू को छूती है। रामचरित मानस का 'रामकलेवा" प्रारम्भ का अध्याय गायन विधा की आरजू है।

"ठुमुक चलत राम चन्द्र बाजत पैजनियाँ" !!

संगीत कला का सुमधुर सुगम्य तथा हृदय सुख का आलोढ़न है। वहीं राम वन गमन, लक्ष्मण जो राम के हृदय तत्व हैं का शक्ति बाण से आहत होना, सुख के बाद दु:ख का आगमन तथा सीता हरण का प्रसंग मानव को तोड़ने का अस्त्र रहा...। फिर भी बारह कलाओं के मालिक राम को भी विचलित करने के लिए कमतर नहीं रहा। वृक्षों से, लताओं से, पशु-पक्षियों से, एक विक्षिप्तता की तरह अपनी प्राणप्रिय सीता का पता पूछते नज़र किए गये, जो करुणा के सागर को रुदन रस से आपल्लावित देखा गया।

"हे खाग मृग ! हे मधुकर श्रेणी ! तुमने देखा है मृगनयनी".....!

अथवा

ज्यों जनतेयु वन बन्ध विछोह, पिता बचन मनतेमु नहीं ओहू !
निज जननी के एक कुमारा, तात तासु तुम प्यान अंधारा !
ज्यों अवध कवन भुख लाई, नारी हेतु प्रिय बंधु गवाई !!

उपयुक्त चौपाई का हर पाया करुणा के सागर मे रस परिपाक है, संगीत विधा का चरम भी परम भी। मानवता के मूल्यांकन में परिलक्षित किया जाता है कि सुख तो जीवन का स्वर्ण काल है पर दुख

सहायक आचार्य (गायन) संगीत विभाग, सिक्किम केंद्रीय विश्वविद्यालय, गंगटोक
ईमेल- sursesurendra@gmail.com, फोन- 7742681966

और विरह दशा मानव के चेतना का प्रबल मूल्यांकन है। दूसरे शब्दों में मानवता दुखी की परख में समझ आती हैं। अयोध्या बिन राम का, रसोई बिन सीता की, दशरथ बिन नयन के, सब में प्रेम का परिपाक राम जिनका आविर्भाव मानवता की मर्यादा रही है। पुरुषों में उत्तम की शिखर तक यात्रा की। यह मानवीयता की सच्ची परख है। जो रामचरित मानस का अभिन्न अंग है और वह संगीत लपेटे हुए अनादिकाल से परिलक्षित होता है।

मुख्य शब्द- *श्रीराम, रामचरित मानस, गोस्वामी तुलसीदास, मानवीयता, छंद, चौपाई, संगीत*

रामचरित मानस में संगीतात्मकता-

श्री रामचरित मानस के रचयिता श्री गोस्वामी तुलसी दास जी सम्पूर्ण जगत के विश्वकवि के रूप में विख्यात हैं। इन्होंने अपने द्वारा रचित प्रत्येक रचना में छन्द और संगीतात्मकता का विशेष ध्यान रखा है। मुक्तक काव्य की संगीतात्मकता आत्माभिव्यंजना, भावन्विति, सहज अन्त: प्रेरणा शैलीगत स्वभाविकता भाषा की सुकुमारता आदि तत्वों का समावेश कर तुलसीदास काव्य की आत्मा का उत्कर्ष भी किया है और शरीर का शृंगार भी। रामचरित मानस के संस्कृत श्लोक को छोड़कर शेष संपूर्ण महाकाव्य में दोहा-चौपाई और सोरठा में ही रचना की गई है. यद्यपि भावधारा और प्रसंग के अनुसार लय-गति-ताल का अनुसरण करते हुए हरिगीतिका आटि छंदों के उपयोग के अनेक उदाहरण हमें मिलते हैं। गोस्वामी की अन्य प्रमुख कृतियों में कवितावली और हनुमान बाहुकर के प्रिय छंद कवित्व और सवैया है। "रामाजा प्रश्न" और "दोहावली" दोहा छंद "पार्वती मंगल" और जानकी मंगला सोहर और हरिगीतिका छन्द का उपयोग दिखाई देता है। विनय पत्रिका गीतावली और कृष्ण गीतावली में प्रगीत और मुक्तक के रचनातंत्र का प्रयोग है। पद शैली में रचित ये प्रगति और मुक्तक कल्याण, गौरी, असावरी, भैरवी, केटारी धनाश्री, मल्हार रामकली, होली, मारू, विलावल आदि राग रागनियों में निबद्ध हैं। स्वामी हरिदास की संगीत परम्परा से रस-सिक्त गायन शैली का लाभ उठाते हुए और ब्रजभाषा की मँजी हुई प्रगीतात्मकता का निखार प्रस्तुत करते हुए तुलसीदास ने संगीत के प्रति भी अपनी गहरी अमिरूचि और रागमयता का परिचय दिया है।१

विश्व के समस्त धर्मों का मुख्य उद्देश्य होता है मानव की अपनी मानसिक वृत्तियों में आपसी सम्बन्ध स्थापित करना है। सभी धर्म मानवता के पथ प्रदर्शक होते हैं एवं सम्पूर्ण मानवता के सुख शान्ति की कामना करते हैं। विश्व के सभी प्रमुख धर्मों में समय-समय पर विभिन्न मानवीय मूल्यों को आत्मसात किया जाता रहा है। उन मानवीय मूल्यों में सत्य, अहिंसा, दया, करुणा, प्रेम, मैत्री, सदाचार, दान, परोपकार, शुद्धता, परिग्रह, संयम एवं उदारता प्रमुख हैं। दया मन का वह दु:ख पूर्ण वेग है जो किसी को दूसरे का कष्ट दूर करने की प्रेरणा देता है।२ यह मानव हृदय का स्वाभाविक गुण है। दुर्जन का हृदय इससे रिक्त हो जाय। परन्तु सज्जन का हृदय इससे रिक्त नहीं हो सकता मानवीय मूल्यों में इसका विशिष्ट स्थान है। ईश्वर में से इस महामूल्य की प्रधानता पायी जाती है। ईश्वर की दया का पात्र वही है जो स्वयं दयावान है, दयावान लोगों को ही ईश्वर की अनुकम्पा प्राप्त होती है।३ इस गुण से मानवीय औदार्य का विस्तार होता है और पाशविक निष्ठुरता समाप्त होती है। मनुष्य को आत्मोद्धार के लिए दयालु बनना आवश्यक है। हिन्दू धर्म की मनुस्मृति के अन्तर्गत दस नियमों का उल्लेख किया गया है,

दया इनमें प्रथम है। पराया हो या अपना भाई-बन्धु हो या मित्र, शत्रु हो या बैरी जो भी कोई विपत्ति में पड़ा हो उसे दु:ख में देखकर उसकी रक्षा करने का नाम दया है। दया करने वाला सज्जन या सन्त कहा जाता है।४

श्री रामचरितमानस में दोहे और छंद का सामाजिक भावार्थ-

श्री रामचरितमानस में तुलसीदास ने प्रभु श्रीराम द्वारा सन्तों के जिन गुणों का संगीतमय उल्लेख किया है उनमें दया को अत्यधिक महत्व दिया है। प्रभु कहते हैं कि सन्तों के लिए सभी लोग समान होते हैं। उनके हृदय में किसी के लिए कोई शत्रु नहीं होती है। पराया दु:ख देखकर सज्जन दु:खी हो जाते हैं। दूसरों के कष्ट दूर करने का भाव जिनके मन में नहीं होता ऐसे लोग दुष्ट कहे जाते हैं। ऐसे लोगों से सावधान करते हुए श्रीराम कहते हैं कि असन्तों का संग कभी भूल कर भी नहीं करना चाहिए, उनका साथ सदैव ही दु:ख देने वाला होता है। दूसरों के कष्ट को दूर करने की बजाय उन्हें दु:खी जनों को देखकर प्रसन्नता होती है, इसलिए सज्जन लोगों का साथ करना चाहिए। जिनका हृदय कोमल होता है, जो दीन जनों पर दया करते हैं दूसरों को दु:ख से दूर कर सुख देने वाले हैं वे प्रभु श्रीराम को भी प्रिय होते हैं। तुलसीदास ने दया को धर्म माना है, उनका कहना है, कि दया के समान कोई धर्म नहीं है। दया सबसे बड़ा धर्म है।

"कोमल चित्त दीनन्ह परदाया,
*मन बच क्रम मम भगति अभाया"!*५

"अघ कि पिसुनता सम कहु आना,
*धर्म कि दया सरिस हरिजाना"!!*६

रामचरितमानस में गोस्वामी तुलसीदास ने प्रभु श्रीराम सेवकों को सुख देने वाले शरणागत की रक्षा करने वाले हैं, उन्हें दीन और दु:खी लोग प्रिय हैं। प्रभु श्रीराम सदैव ही दूसरों के कष्टों को दूर करने में तत्पर रहते हैं। देवताओं को रावण तथा अन्य राक्षसों द्वारा सताये जाने पर प्रभु उनके कष्टों को दूर करने के लिए अवतार लेते हैं। चौदह वर्ष का वनवास सहर्ष स्वीकार करने के पीछे भी दया की भावना ही थी। इसलिए समस्त देवता, ऋषि मुनि उनकी स्तुति जन सुखदायक, कृपालु, दीनदयाला, जन सुखदायक, करुणा सुख-सागर, दीन-पिआरे, प्रनतपाल कहकर करते हैं। देवता भी प्रभु को दीनजनों का प्रिय मानते हुए। कहते हैं।

"जेहि दीन पिआरे बेद पुकारे
*द्रवउ सो श्री भगवाना"!*७

प्रभु श्रीराम का हृदय अत्यन्त विशाल है। वे दीन और दु:खी जनों पर तो दया करते ही है, अपने प्रति द्रोह करने वाले के प्रति भी वे अपने मन में द्वेष नहीं रखते। देवराज इन्द्र का पुत्र जयन्त कौए का रूप बदलकर सीता के चरणों में चोंच मारकर भाग जाता है। प्रभु राम उसे मारने के लिए सरकंडे का बाण संधान करते हैं। मंत्र से प्रेरित होकर वह ब्रह्मबाण जयन्त को मारने दौड़ता हैं। कौआ भयभीत होकर सभी देवताओं के द्वार पर जाता है, पर श्रीराम के द्रोही को कोई शरण नहीं देता। नारदजी जयन्त को व्याकुल देखते हैं तो उन्हें दया आ जाती है, क्योंकि सन्तों का हृदय कोमल होता है। नारदजी जयन्त को प्रभु श्रीराम की शरण में जाने को कहते हैं। भयभीत जयन्त प्रभु के चरणों में गिर कर रक्षा की गुहार करने लगता है। उसकी उसने दु:ख प्रभु भरी वाणी सुनकर प्रभु को दया आ जाती है। उसने प्रभु से द्रोह किया था इसलिए उसका वध ही उचित था, पर प्रभु ने दया कर उसे एक आँख का काना

बनाकर ही छोड़ दिया। श्रीराम के समान और कौन कुपालु हो सकता है।

"नारद देखा बिकल जयंता,
लागि दया कोमल चित्त लंता"!८
"कीन्ह मोह बस द्रोह यद्यपि तेहि
कर बध उचित"!!
"प्रभु छोड़ेउ करि छोह को
कृपाल रघुवीर सम"!!!९

श्रीराम के हृदय में ऋषि, मुनि जनों के प्रति अपार श्रद्धा थी। राक्षसों द्वारा उन्हें सताये जाने पर वे महर्षि विश्वामित्र के साथ उनकी रक्षा के लिए वन जाने के लिए सहर्ष तैयार हो जाते हैं। श्रीराम वन में ऋषियों पर दया करके उन्हें राक्षसों के भय से मुक्त कराते हैं, जिससे वे लोग निर्विघ्न होकर यज्ञ व तप कर सके। वनवास के समय दयालु श्रीराम वन-वन जाकर ऋषि महात्माओं को राक्षसों के आतंक से मुक्त कराते हैं। वन में हड्डियों के ढेर को देखकर श्री रघुनाथ जी को बहुत दया आ जाती है, वे मुनियों से पूछते हैं कि यह सब क्या है? मुनि उनसे कहते है कि राक्षसों के दलों ने सब मुनियों को खा डाला है, यह सब उन्हीं के हड्डियों के ढेर है। यह सुनते ही प्रभु के नेत्रों में करुणा से जल भर जाते हैं और वे प्रण करते हैं कि मैं पृथ्वी को राक्षसों से मुक्त कर दूँगा और श्रीराम समस्त मुनियों के आश्रमों में जाकर उनके कष्टों को दूर करते हैं7

"अस्थि समूह देखि रघुराया,
पूछी मुनिन्ह लागि अति दाया" !
"निसिचर निकर सकल मुनि खाए,
सुनि रघुवीर नयन जल छाए"!!
"निसिचर हीन करउँ महि भुज
उठाइ पन कीन्ह"!
"सकल मुनिन्ह के आश्रमन्हि
जाइ जाइ सुख दीन्ह"!!१०

प्रभु श्रीराम अपने सेवकों पर बिना कारण ही दया करते हैं। सीता हरण के पश्चात् दोनों भाई जानकी को खोजते हुए घायल जटायु गिद्ध से मिलते हैं। जटायु प्रभु को बताते हैं कि लंकापति रावण जानकी जी को हरण कर ले गया है और उसी ने मेरी यह दशा की है। जटायु को पीड़ा में देखकर श्री राम जी की आँखों में आँसू भर आते हैं और वे जटायु को प्राण न त्यागने के लिए कहते हैं। गीध के इन्कार करने पर दयानिधान भगवान उसे अखण्ड भक्ति का वरदान देकर अपने धाम भेज देते हैं। अत्यन्त कोमल मन वाले, दीनदयालु और बिना कारण ही दया करने वाले प्रभु श्रीराम ने जटायु को जो पक्षियों में भी अधम था और माँसाहारी था, उसको वह दुर्लभ गति प्रदान की जिसे योगी लोग प्राप्त करना चाहते हैं।

"कोमल चित अति दीनदयाला,
कारन बिनु रघुनाथ कृपाला!
"गीध अधम खग आमिष भोगी,
गति दीन्ही जो जाचत जोगी"!!११

प्रभु श्रीराम के मन में अपने भक्तों के लिए सदैव ही दया रहती है। इसलिए भक्तों के हित की चिन्ता उन्हें हमेशा रहती है। भक्तों के हित की रक्षा के लिए भगवान् कभी-कभी माया की रचना करके उनकी परीक्षा भी लेते हैं। एकबार देवर्षि नारद को यह अहंकार हो गया कि उन्होंने कामदेव पर विजय प्राप्त कर ली। प्रभु नारद के अहंकार को दूर करने के लिए एवं मुनि का हित करने के लिए भगवान् माया की रचना करते हैं। माया के वशीभूत इच्छा पूरी न होने पर नारद क्रोधित होकर प्रभु को भला बुरा कहते हुए शाप दे देते हैं। नारद के शाप देने पर भी प्रभु उनके प्रति द्वेष नहीं करते बल्कि शाप को स्वीकार करते हैं। माया के हटने से नारद जी भयभीत होकर शरणागत हो जाते हैं तथा स्वयं

के श्राप को मिथ्या करना चाहते हैं। पर दीनों पर दया करने वाले भगवान कहते हैं कि यह सब मेरी इच्छा से हुआ है। यद्यपि नारद जी ने भगवान को बहुत अपशब्द कहा था, पर प्रभु उन पर दया ही करते हैं और उन्हें शान्ति प्रदान करने हेतु शंकर जी का जाप करने की सलाह देते हैं। प्रभु श्रीराम के समान ऐसा दयालु कौन होगा, जो शाप देने वाले पर भी द्रवित होकर उसका हित करें।

शरण में आये लोगों के लिए भगवान का हृदय करुणा से भर जाता है। लंका पति रावण द्वारा अपमानित विभीषण प्रभु के पास शरण लेने आते हैं और विभीषण को शरण देने की बात से वानरराज सुग्रीव असहमति व्यक्त करते हैं तो प्रभु श्रीराम उन्हें समझाते हुए कहते हैं कि शरणागत के भय को अवश्य दूर करना चाहिए। शरण में आये हुए की रक्षा न करके जो उनका त्याग करते हैं वे बहुत ही क्षुद्र होते हैं। भगवान् राम का हृदय शरणागत वत्सल और दयालु है जो शत्रु के भाई की रक्षा के लिए तत्पर हो उठता है। प्रभु श्रीराम दया से प्रेरित होकर शरणागतों की रक्षा प्राणों के समान करते हैं।

"सरनागत कहूँ जे तजहिं निज अनहित अनुमानि ते नर पाँवर पापमय तिन्हहि बिलोकत हानि"!१२

शरणागत विभीषण राम भक्त थे और प्रभु श्रीराम के चरणों में उनको प्रीति थी। पर सुग्रीव के भाई बालि ने बहुत अपराध किए था। श्री भगवान् के बाण से घायल वह क्रोधित होकर उन्हें अत्यधिक कठोर वचन कहता है। श्रीराम के मुख से अपने पापकर्मों को सुनकर वह शरणागत हो जाता है। प्रभु को उस पर दया आ जाती है। जिस बालि ने जीवन पर्यन्त पाप कर्म किए थे और जिसने प्रभु श्रीराम को अपशब्द कहा था, उसी पर दया करके भगवान् उसे पुन: जीवन दान देने की बात करते हैं। बालि के सभी अपराधों को तनिक भी न सोचते हुए करुनानिधान भगवान् श्रीराम उसे अपने परम धाम भेज देते हैं7

"अ चल करौं तनु राखहु प्राना"!१३

"राम बालि निज धाम पठाना"!!१४

प्रभु श्रीराम के आचरण की एक विशेषता है कि अपने शत्रुओं के हित के प्रति भी सजग होते हैं। शत्रु के वध या मृत्यु के बाद प्रभु बैर भावना त्यागकर सबको अपने धाम भेज देते हैं। ताड़का, खरदूषण, कुम्भकरण इन का प्रभु ने वध तो किया पर दीन समझकर अपना प परमश दिया। मारीच को पहली बार प्रभु श्रीराम फलरहित बाण से भारते हैं दूसरी बार स्वर्ण मृग के रूप में उसका वध करते है। वध के बाद उसे स्वधाम भेज देते हैं, अपने रावण को भी प्रभु परम धाम भेज देते हैं। प्रभु के इस गुण की चर्चा करते हुए हनुमान जी रावण की समझाकर कहते हैं कि प्रभु श्रीराम शरण में आने वाले के रक्षक और दया के समुद्र है। यदि तुम उनकी शरण में जाते हो तो वो तुम्हारे अपराध भुलाकर कर वो तुम पर भी अवश्य दया करेंगे।

"प्रनत पाल रघुनायक करुना सिन्धु खरारि गए सरन प्रभु राखिहैं तव अपराध बिसारि"!१५

रावण से मिलने जाते समय अंगद को शुत्र के साथ व्यवहार करने के आदेश से भी राम की शत्रु के प्रति दया दिखायी पड़ती है। प्रभु अंगद से कहते हैं कि शत्रु से वही बातचीत करना जिससे हमारा कार्य हो और उसका कल्याण हो। यह आदर्श की पराकाष्ठा है। ऐसा आदर्श विश्व साहित्य में दुलर्भ हीं मिलता है। शत्रु के हित की बात सोचना आश्चर्यजनक है, जिसे तुलसीदास ने अपनी इस महान् कृति में स्वाभाविक और सांगीतिक ढंग से दोहा, चौपाइयाँ, छंदों को ल्यात्मक्ता से चित्रित किया है।

"काजु हमार तासु हित होई,
रिपु सन करेहु बतकही सोई"!१६

दया की भावना से प्रेरित: रावण का कल्याण करने के लिए ही श्रीराम उसका वध करते है। रावण के मरणोपरान्त मन्दोदरी प्रभु की दयालुता का वर्णन करती है। वह यह स्वीकार करती है कि पत्नी हरण करने वाले रावण का वध करके भी प्रभु ने बदला नहीं लिया जो शरीर जन्म से ही दूसरों के द्रोह में तत्पर था, पाप समूह था, उसे भी करुणामय भगवान् ने अपना धाम प्रदान किया है।

"आजन्म ते परद्रोह रत पापौघमय मन धन"
तुम्हहूँ दियो निज धाम राम नमामि ब्रह्म निरामयम्"!१७

युद्ध समाप्ति के बाद सारे राक्षसों को प्रभु मुक्त कर देते है। प्रभु के हाथों मरकर वो भव-बन्धन के कष्ट से पार हो जाते हैं। ऐसा दीनों पर हित करने वाला कौन हो सकता है जिसने सारे निशाचरों को मुक्त कर दिया। दुष्टता एवं पापों के घर रावण को भी वह गति प्राप्त हुई जिसे ऋषि-मुनि पाते हैं।

"राम सरिल को दीन हितकारी,
कहन्हें मुकुट निसाचर झारी"!
"खल मल धाम काम रत रावन,
गति पाई जो मुनिवर पावन"!!१८

गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरितमानस में प्रभु श्रीराम को दया के सागर के रूप में प्रतिष्ठित किया है। भक्तों पर उनकी दया इतनी है कि वो जो भी लीला करते है भक्तों के हित के लिए ही करते हैं। शारणागतों, सेवकों और दीनों पर उनकी विशेष कृपा बनी रहती हैं। जिस पर प्रभु ने एक बार दया कर दी उस पर कभी क्रोध नहीं किया।

"सो केवल भगतन हित लाभी,
परम कृपाल प्रनत अनुरागी"!
"जेहि जन पर ममता अति होहू,
जेहिं करुना करि कीन्ह न कोहू"!!१९

मानस में वे सभी प्रभु श्रीराम की दया के पात्र बनते हैं जो दु:खी है, निरीह हैं या शरणागत हैं। जो भी प्रभु की शरण में आता हैं, सबकी रक्षा प्रभु अत्यन्त प्रसन्नता से करते हैं। "बंदनु सीता राम पद जिन्हहि परमप्रिय खिन्न" मित्र, शत्रु, अपना-पराया सभी पर भगवान की दया रहती है। बिना द्वेष से सबसे हित के लिए प्रभु श्रीराम सदैव तत्पर रहते है। यह गोस्वामी जी के लिए ही सम्भव हुआ है कि उन्होंने दया और मानवता को ऐसा स्वरूप प्रदान किया, जिसमें किसी के वध या हत्या करने पर भी वह द्वेष या बदले से प्रेरित न होकर हित अथवा कल्याण के लिए माना जाता है। तुलसीदास के दृष्टि में दुराचारी, अत्याचारी, द्वेष के पात्र नहीं वह दया और मानवता का पात्र हैं।

निष्कर्ष-

शीर्षक की सार्थकता मानवीयता अपने तृष्टी और समष्टि दोनों को पूर्णता तक ले जाती है तथा महाकवि बाबा तुलसीदास जी को समय के एक-एक पल मे पल्लवित और पुष्पित करती है। तुलसी तब रामचरित मानस के लिए आए थे लेकिन मानवीयता का सच्चा और सजग प्रहरी आज भी तुलसी पौधा के रूप में मानवीयता की रक्षा औषधि बन किया करते हैं। राम चरित मानस की गेयता संगीत का गणित इस तरह हल करता है यथा- जीवन का गणित हल करता हो। उनकी चौपाई, दोहा, सोरठा, छंदावली मानवीयता की गेयता है। शेष, विशेष और धर्मेष रामचरित मानस की मानवता है। पुरुष को महापुरुष बनाने में मानवता संकल्पित है।

"तुलसी ने राम की कथा लिखी!
आरती सबकी उतारी"!
"कथा थी श्री राम की पर!
कथा है हमारी तुम्हारी"!!

कथन की भावभूमि में मानवीय मूल्य का कण-कण परिलक्षित ही नहीं अवगाहित भी होता है। किसी दृश्य को दृष्टिगत किया जाये तो मानवीयता खड़ी दिखती है। धनुष यज्ञ का प्रकरण, वन गमन का प्रकरण, सेतू बंधन या कोई भी ऐसा रामचरित का काण्ड हो उसमें ऐसा दृश्य नहीं जहाँ मानवीय मूल्य चित्रित न होता हो। अन्तत: राम चरितमानस मानवता का दर्पण है और दपर्ण कभी झूठ नहीं बोलता।

संदर्भ सूची-

(१) झा, संगीता; इंटरनेशनल जर्नल ऑफ अपलाएड रिसर्च, इजार-२०१७,ढ्ढस्स्ह्र-२३९४५८६९ पृष्ठ-९५७
(२) वर्मा, रामचन्द्र; (२०१३) संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर, नागरिप्रचारिणी सभा, नई दिल्ली, पृष्ठ-९५७
(३) आत्रेय, भीखन लाल;(१९६४) भारतीय नीति शास्त्र का इतिहास, हिन्दी समिति, लखनऊ, पृष्ठ- ४८९
(४) अत्रि स्मृति, संस्कृत संस्कारण, पृष्ठ-१४१
(५) उत्तर काण्ड, /३७/२
(६) उत्तर काण्ड, /१११/५
(७) बाल काण्ड, /१७५/छंद ४
(८) अयोध्या काण्ड, /१/५
(९) अयोध्या काण्ड, /सो. २
(१०) अयोध्या काण्ड, /८/२,३,४
(११) अयोध्या काण्ड, /३२/१
(१२) सुंदर काण्ड, /दो. ४३
(१३) कि. काण्ड, /१/१
(१४) कि. काण्ड, /१०/१
(१५) सुंदर काण्ड, /दो. २२
(१६) लंका काण्ड, /१६/४
(१७) लंका काण्ड, /१०३/छंद
(१८) लंका काण्ड, /११३/५
(१९) बाल काण्ड, /१२/३

संत कबीर की रचनाओं की समकालीन संदर्भ में प्रासंगिकता

डॉ. रंजना उपाध्याय

सारांश

संत कबीर की वाणी प्रत्येक देश,काल व खंड में समीचीन प्रतीत होती है। उन्हें स्वभाव से संत तथा कर्म से साधक व समाज-सुधारक माना जा सकता है। उनकी प्रत्येक काव्य रचना तत्कालीन सामाजिक जीवन-दर्शन का सटीक चित्रण प्रस्तुत करती है। सामाजिक जीवन-वृत्त में उन्होंने जो भी विषमताएँ देखी उसने उनकी वाणी को और मुखर बना दिया। फलस्वरुप अपनी समस्त कृतियों में उन्होंने समाज में व्याप्त धर्मांधता,सामाजिक भेदभाव,वर्णाश्रम धर्म की विकृतियों पर बड़ी ही निर्भीकता से कुठाराघात किया एवं धार्मिक पाखंड का विरोध कर तत्कालीन समाज को सामाजिक समरसता का सुंदर संदेश दिया।

मुख्य बिन्दुः- *कबीर,समाज,रचनाएँ ,जीवन, धर्म*

संत कबीर निर्गुण मत के साधक कवि के रूप में जाने जाते हैं। अरबी भाषा में 'कबीर' शब्द का अर्थ "महान" है वास्तव में वे एक महान व मानवता के सच्चे उपासक थे। इतिहासकार कबीर को सिकंदर लोदी के समकालीन मानते हैं,वास्तव में यह समय देश में आंतरिक उथल-पुथल का समय था मुसलमानों के आगमन से पूर्व ही भारत में अनेक संप्रदाय अपनी विषम परिस्थितियों में अपने पारस्परिक विरोध को लेकर एक दूसरे को नीचा दिखाने में लीन थे, कबीर के समय तक इन विकृतियों का बोलबाला रहा, इन सब के पीछे उन्होंने अज्ञानता और मूर्खता का आलंबन देखा और कहा-

"आलम दुनी सदै फिरि खोजी,
हरि बिनु सकल अयाना।
छह दरसन छयानवै पाखंड,
आकुल किनहु न जाना।।"

वास्तव में संत कबीर की वाणी अनेकता के विरोध में एक बड़े भारी संघर्ष का प्रतीक है।

जो कलि नाम कबीर न होते
तो लोक बेद और कलिजुग मिलि करि
भगति रसातल देते।
कथता सुरता दोऊ भूले।
दुनिया सबै भुलाई।
कलप बृछे की छाया बैठे।
तो क्यू न कलपना जाई।

'कबीर के ही कारण इस कलयुग में भक्ति बच गई, वरना लोक, वेद और कलियुग तीनों मिलकर उसे रसातल पहुंचा देते; कबीर की बानी ऐसा कल्पवृक्ष है कि उसकी छाया में बैठते ही सारा रोना कलपना दूर हो जाता है। 'यह कृतज्ञ कथन है कबीर के समकालीन और उनके गुरुभाई पीपा का। पीपा गागरोन गढ़ के राजपूत राजा थे; और कबीर थे बनारस के जुलाहे।

सहायक आचार्या, नृत्य विभाग, संगीत एवं मंच कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी-221005, ranjanaupadhyay@bhu.ac.in

पीपा की इस कबीर स्तुति में 'वेद' का मतलब है, ज्ञान कि वह परंपरा जिसका समाज में दबदबा था, हिंदू धर्म और इस्लाम दोनों का संगठित तंत्र, पुरोहितवाद; 'लोक' का अर्थ है जनजीवन में प्रचलित कुरीतियां और अंधविश्वास; और 'कलियुग' का मतलब है जाति- धर्म के नाम पर लोगों से नफरत करने की आदत, समाज में परस्पर संदेह और आक्रामकता का वातावरण।

संत कबीर ने तत्कालीन समाज में प्रचलित इन कुरीतियों का पुरजोर विरोध किया और इन सभी कुरीतियों को दूर करने का विकल्प भी उनके पास था वह विकल्प था। प्रेम बतौर साधक के परमात्मा से प्रेम, बतौर मनुष्य के मनुष्य मात्र से प्रेम। कबीर के वैचारिक संवेदना किसी भी मनुष्य की व्यक्तिसत्ता को महत्वपूर्ण मानती हैं, उसकी धार्मिक,सांस्कृतिक व जातिगत अस्मिता को नहीं।

तत्कालीन समाज के दोनों प्रमुख धर्मों (हिंदू और मुसलमान) में व्याप्त रूढ़ियों व लंबे समय से चली आ रही कुरीतियों व पाखंड का उन्होंने पुरजोर खंडन अपनी वाणी के माध्यम से किया।

"माला पहरै मनमुखी, ताथै कछु न होइ।
मन माला कौ फेरता, जुग उजियारा सोई।।"

-माला फेरते हैं और अनाचार सोचते और करते हैं। ऐसी माला किस काम की ? जिनका मन वासनाओं से घिर गया है उनको माला फेरने की आवश्यकता नहीं है।इस पद में कबीर ने न केवल समाज की वस्तुस्थिति की ही एक झांकी दी है वरन अज्ञान व मूर्खता पर भी कर्कश प्रहार किया है।

इसके अतिरिक्त मूर्ति-पूजा, तीर्थ-व्रत, जप-तप आदि में व्याप्त अंधविश्वास व अहिंसा वृत्ति, मांस-मदिरा सेवन पर भी कबीर ने करारा प्रहार किया है।

"बकरी पाती खात है, ताकी काढ़ी खाल।
जे नर बकरी खात है, तिन का कवन हवाल।।"

कबीर ने समाज में गहरे तक व्याप्त जाति-पाति व ऊंच-नीच पर भी कटाक्ष करते हुए कहा है कि-

"जाति न पूछो साधु की, पूछ लीजिये ज्ञान।
मोल करो तलवार का, पड़ी रहन दो म्यान।।"

सभी धर्मों में समन्वय का भाव पुष्ट हो, यह भावना कबीर के पदों में सर्वत्र पाई जाती है। "बाहयाचार की निरर्थक पूजा और संस्कारों की विचारहीन गुलामी कबीर को पसंद नहीं थी, वे इनसे मुक्त मनुष्यता को ही प्रेम भक्ति का पात्र मानते थे। धर्मगत विशेषताओं के प्रति सहनशीलता और संभ्रम का भाव भी उनके पदों में नहीं मिलता।

सगुण उपासना का तो कबीर सर्वत्र विरोध करते रहे इसका यह अर्थ नहीं है कि उन्हें मूर्ति पूजा या ईश- उपासना से किसी प्रकार का वैमनस्य था अपितु सगुण भक्ति के नाम पर शैव-वैष्णव तथा राम और कृष्ण के श्रद्धालु भक्तों में आपसी वैमनस्य की प्रबल भावना के कारण ही कबीर ने निर्गुण-भावना को विशेष बल प्रदान किया।

कबीरदास जी के समय में तत्कालीन प्रचलित सामाजिक मान्यताओं में स्वतंत्र चिंतन का सर्वथा अभाव देखा जा सकता है। समाज के सभी वर्गों में प्रचलित अंधविश्वास, लोकाचार, भूत-प्रेत, जादू-टोना,स्वप्न, शकुन, किवदन्ती आदि अपने चरम पर थी। देवी-देवताओं, संतो यहां तक कि सुल्तानों में अद्भुत शक्ति एवं चमत्कार को भी लोग मानने लगे थे तथा कर्मकांडो के जंजाल में फंसकर नैतिक मूल्यों का सर्वथा ह्रास हो रहा था। संत कबीर ने इन सभी पारंपरिक व रूढ़िगत मान्यताओं का खंडन न केवल अपने काव्य में

किया है अपितु व्यक्तिगत जीवन में भी उन्होंने उन सभी विचारों व परंपराओं का खंडन किया जिन्हें वे केवल पतन का मार्ग मानते थे।जीवन पर्यंत काशीवास के पश्चात अपने अंत समय वे 'मगहर' चले गए क्योंकि उस समय यह मान्यता थी कि काशी में मृत्यु से स्वर्ग प्राप्ति व मगहर में मृत्यु होने पर नर्क की प्राप्ति होगी।

इस प्रकार यदि कबीर के सर्वसमावेशी व्यक्तित्व की बात करें तो उन्हें हिंदी साहित्य का पुरोधा मान सकते है यों तो उनकी सभी कृतियों में सधुक्कड़ी भाषा का प्रयोग हुआ है, परंतु उनकी वाणी का अनुकरण आज तक नहीं हो सका। वे एक समाज-सुधारक के रूप में, भक्त-कवि के रूप में, सर्वधर्म-समन्वयकारी के रूप में, वेदांत-दार्शनिक के रूप में अपनी कृतियों के साथ सदैव वंदनीय रहेंगे। कबीर की समस्त रचनाओं का सूक्ष्मता से अवलोकन किया जाए तो उनकी समस्त कृतियों का सार जाति या धर्म की संकीर्ण विचारधारा से ऊपर उठ कर मनुष्य का मनुष्य मात्र से प्रेम ही है।

प्रत्येक युग में उनकी काव्य रचनाएं समाज के प्रत्येक धर्म, संप्रदाय व वर्ग को सच्ची मनुष्यता की प्रेरणा देती रहेंगी व अपनी प्रासंगिकता के कारण कबीर एक युगपुरुष के रूप में न केवल भारतीय अपितु वैश्विक जनमानस को श्रेष्ठ धर्म, मानवता का जीवन-दर्शन देते रहेंगे।

संदर्भ ग्रंथ सूची:-

1. कबीर: एक विवेचन, शर्मा, डॉ. सरनाम सिंह हिंदी साहित्य संसार
2. कबीर ग्रंथावली, दास, श्याम सुन्दर इंडियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग
3. कबीर, द्विवेदी, हजारीप्रसाद रामकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
4. कबीर के काव्य पर समसामयिक परिस्थितियों का प्रभाव, सिंह, रामनारायण प्रसाद प्राप्त काशी हिंदू विश्व विद्यालय पुस्तकालय, पुस्तक संख्या 905910
5. कबीर ,साखी और सबद, अग्रवाल, पुरुषोतम राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत

भारतीय संगीत में अनिबद्ध गान (आलप्ति गान)

श्री प्रियांशु घोष

शोध सारांश

भारतीय संगीत में प्राचीन से लेकर अब तक में अनिबद्ध संगीत के स्वरूप में काफी परिवर्तन हुआ है। प्राचीन काल में आलाप गायन के कुछ नियम होते थे जिनका पालन करके आलाप किया जाता था। धीर-धीरे समय के साथ नियम का साथ भी छूटता गया और आलाप की पद्धति भी बदलती गई। प्रस्तुत शोध आलेख के माध्यम से प्रचीन काल के परिप्रेक्ष्य में अनिबद्ध गान एवं उसमे आलाप करने की विधि का वर्णन किया गया है।

सूचक शब्द- *अनिबद्ध, गान, आलाप, स्वर, आलप्ति, संगीत।*

शोध प्रविधि- *इस आलेख में द्वितीयक माध्यमों से सहायता ली गयी है।*

विषय प्रवेश

भारतीय संगीत के अंतर्गत गायन, वादन और नृत्य इन तीनों का समावेश है, इन तीनों में गायन को ही प्रधानता मिली हैं, स्वरों की वह रचना जो मन का रंजन करे गीत कहलाती हैं। प्राचीन काल में गीत दो भागों में विभक्त था गान्धर्व और गान। संगीत भी दो प्रकार का हो सकता है, प्रथम वह जो पहले से निश्चित हो-यानी जो बँधा हुआ हो और दूसरा वह जो गायक या वादक गाते-बजाते समय स्वेच्छानुसार किन्तु नियमों का पालन करते हुए अपना संगीत प्रस्तुत करे। जो पहले से बँधा हुआ नहीं है, यह गीत का प्रकार अनिबद्ध गान के अन्तर्गत आता है। नियमों से बँधा हुआ गीत या गान भी किन्हीं अर्थों में निबद्ध ही कहना चाहिए। अर्थात् जिस राग के जो नियम हैं उनका पालन करते हुए गान करना भी निबद्ध ही कहा जा सकता है। नियत स्वरूप, सतालता, छन्दोबद्धता, पद की सार्थकता, नियमबद्धता और धातु अंग आदि के माध्यम से बँधा हुआ संगीत निबद्ध के अन्तर्गत आता है। जो पद स्वर एवं ताल में बंधा हुआ हो उसे निबद्ध गान की श्रेणी में रखा जाता है। इसके तीन भेद है प्रबंध वस्तु, रूपक।

इसके विपरीत अनिबद्ध में अनियत स्वरूप, अतालता, छन्दहीनता, पद की निरर्थकता, नियमबद्धता का अभाव और बंधन्हीनता का भाव है। आचार्य भरत जी ने 'पद' के प्रसंग में निबद्ध और अनिबद्ध विशेषणों का प्रयोग किया है, और आचार्य मतंग मुनि ने अधिक व्यापक रूप से पूरे गीत-प्रयोग के लिए ये विशेषण दिए हैं। (प्रेम रसायन एवं संगीत मीमांसा पृष्ठ ९४)

शोध छात्र, (गायन विभाग), मंच कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, ईमेल-vocalistpriyanshu@gmail.com, मो. +91-9044408975

संगीत रत्नाकर में निबद्ध ओर अनिबद्ध संगीत को 'गांधर्व' के अन्तर्गत न रखकर 'गान' में रखा गया है।

यक्तु वाग्गेयकारेण रचिंत लक्षणान्वितम्।
देशीरागादिषु प्रोक्तं तद्गानं जनरञ्जनम्।।
तत्र गान्धर्वमुक्त प्रागधुना गानमुच्यते।
निबद्धमनिबद्धं तद् द्वेधा निगदिंत बुधैः।।
बद्धं धातुभिरङ्गैच निबद्धमभिधीयते।
आलप्तिर्बन्धहीनत्वादनिबद्धमितीरिता।।

(संगीत रत्नाकर पृष्ठ संख्या 204)

अर्थात् जो वाग्गेयकार के द्वारा लक्षणों से युक्त देशी राग आदि में बनाया गया और जो लोगों का रञ्जन करने वाला है वह गान कहा गया। गांधर्व पहले कहा जा चुका है गान अब कहेंगे। गान बुद्धिमानों के द्वारा निबद्ध और अनिबद्ध दो प्रकार से कहा गया। धातुओं और अंगो से बँधा हुआ निबद्ध तथा बन्ध रहित होने से आलप्ति अनिबद्ध कही गई है।

शास्त्रीय संगीत में गायन-वादन करते समय विद्वान कलाकार तालबद्ध रचना से पूर्व राग के स्वरूप को प्रस्तुत करने के लिए आलाप करता है जिसमें तालवाद्य नहीं बजता इसलिए इस ताल रहित आलाप को अनिबद्ध गान के क्षेत्र में रखा आएगा। अनिबद्ध के अन्तर्गत आकार या नोम-तोम में आलाप किया जाता है, जबकि बन्दिश के अन्तर्गत आकार, बोल-आलाप, बोल-बाँट, बोल-बनाव, बोल-तान, सरगम, आदि आते हैं। प्राचीन काल में भी यही प्रणाली थी, राग को आरम्भ करते समय जो स्वर विस्तार किया जाता था उसे आलाप (रागालाप और रूपकालाप), आलप्ति या आलपनम् कहा जाता था। ये तीनों शब्द लप् धातु से बने हैं, लप् का अर्थ है कहना। 'आ' उपसर्ग है आलाप में घञ् प्रत्यय है जिससे पुल्लिंग शब्द आलाप बना है। आलप्ति में क्तिन् प्रत्यय है जो स्त्रीलिंग है, आलपनम् नपुंसकलिंग है जो ल्युट् प्रत्यय से बना है। तीनों का अर्थ लगभग समान है। प्रत्यय भेद से भाव में कुछ अन्तर है। आलाप में राग के नियमों पर अधिक बल देकर राग के शुद्ध रूप को दिखाया जाता था। आलप्ति में उसी राग को तिरोभाव यानी छिपाते हुए विस्तारित करते हैं। दोनों प्रकारों का आश्रय लेकर राग को शुद्ध रूप में भी दिखलाना और तिरोभाव भी करना आलापनम् कहलाता है। इस प्रकार राग के विस्तार में जब राग का स्पष्ट स्वरूप व्यक्त होता है तो आविर्भाव होने के कारण आलाप कहा जाता है। जब राग का स्वरूप छिप जाता है तो तिरोभाव के कारण आतप्ति होती है और जब पुनः आविर्भाव प्रकट होता है तो आलपनम् कहा जाता है। काव्य और संगीत में तीसरी स्थिति अत्यन्त आनन्ददायक मानी गई है। आविर्भाव होने के बाद ही स्वरूप के कुछ छिप जाने पर तिरोभाव होता है और तिरोभाव की स्थिति में भी मूल स्वरूप कुछ प्रकट रहता है। इसी प्रकार आलप्ति में भी आलाप और आलपनम् दोनों के धर्म रहते हैं इसलिए पंडित शारंगदेव ने संगीतरत्नाकर में आलप्ति को प्रधान रखकर उसी में आलाप और आलापनम् कह दिया है। संगीतरत्नाकर में रागाध्याय के अन्तर्गत रागालाप और रूपकालाप शब्दों का उल्लेख किया गया है। शारंगदेव ने तीसरे प्रकीर्णक अध्याय में श्लोक सं० 190-202 के मध्य आलप्ति का वर्णन किया है। रागालाप का वर्णन करते हुए पंडित शारंगदेव जी का कथन है-

ग्रहांशमन्द्रताराणां न्यासापन्यासयोस्तथा।
अल्पत्वस्य बहुत्वस्य षाडवौडुवयोरपि।
अभिव्यक्तिर्यत्र दृष्टा स रागालाप उच्यते।।

(संगीत रत्नाकर पृष्ठ संख्या 21)

अर्थात् - जिसमें ग्रह, अंश, मन्द्र, तार, न्यास, अपन्यास, अल्पत्व, बहुत्व तथा षाडव और औडव की भी अभिव्यक्ति दिखाई दे वह रागालाप है। रूपकालाप या रूपकम् का संक्षिप्त वर्णन संगीत रत्नाकर में किया गया है-

रुपकं तद्वदेव स्यात्पृथग्भूनविदारिकम।

अर्थात् - रूपक रागालाप के ही समान किन्तु अलग खण्डों या विदारियों वाला होता है।

रागालाप और रूपकालाप में इतना ही अन्तर है कि रागालाप में खण्ड नहीं होते, एकाकार आलाप होता है लेकिन रूपक में उसी तरह खण्ड बनते हैं जैसे गीत की विदारियों के समान उपन्यास स्वरों पर रुक-रुक कर आलाप करने से रूपक या रूपकालाप होता है और अपन्यासों पर बिना रुके रागालाप होता है। प्राचीन काल में आलप्ति दो प्रकार की मानी जाती थी दी (1 रागालप्ति और (2 रूपकालप्ति।

जो आलाप तान आदि गीत के साथ यानी ताल के साथ किया जाता था उसे रूपकालप्ति कहते थे। बन्दिश के लिए प्राचीन काल में प्रबन्ध, वस्तु, रूपक ये तीन शब्द प्रयुक्त किए जाते थे इसलिए बन्दिश के साथ यानी ताल के साथ गीत के मध्य किया जाने वाला राग-विस्तार रूपकालप्ति कहलाता था।

रागालप्ति या स्वस्थान नियम

प्राचीनकाल में रागालप्ति के लिए पारिभाषिक शब्द 'स्वस्थान नियम' था ताल रहित आलाप को स्वस्थान नियम कहते थे। जैसे ध्रुपद और ख्याल गायन में बन्दिश के पूर्व सितार आदि वाद्यों में गत के पूर्व राग को स्पष्ट करने के लिए आलाप किया जाता है उसी प्रकार प्राचीनकाल में राग आरम्भ करते समय जो भाग राग के स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए किया जाता था उसे रागालप्ति कहते थे। ध्रुपद शैली में नोम-तोम-तानारी आदि बोलों के साथ और सितार, सरोद आदि गत अंग के वाद्यों में आलाप-जोड़-झाले के साथ राग का विस्तृत स्वरूप प्रस्तुत किया जाता है। लगभग उसी प्रकार प्राचीन स्वस्थान नियम में रागालप्ति होती थी।

स्वस्थान नियम के चार प्रमुख भाग हैं- स्थायी स्वर, द्वयर्ध स्वर, अर्धस्थित स्वर एवं द्विगुण स्वर।

स्थायी स्वर- प्राचीन काल में स्थायी स्वर मूर्छना का आरम्भिक स्वर होता था। इसे अंश या वादी भी कहते थे। यह स्थायी स्वर सातों स्वरों में से कोई एक हो सकता था।

द्वयर्ध स्वर- द्वयर्ध का अर्थ है दुगुने से आधा या डेढ़ अर्थात् मध्य सा अथवा तार सां के बीच का स्वर, जो कि पंचम हुआ। परन्तु अधिकांश पुस्तकों में द्वयर्ध के लिए म का प्रयोग हुआ है। वीणा पर स्वरों की स्थापना करते समय मध्य सा और तार सा के बीच शुद्ध मध्यम सभी विद्वानों ने स्वीकार किया है। इस दृष्टिकोण से भी द्वयर्ध स्वर षड्ज से चैथा स्वर मध्यम ही हुआ। स्वयं पंडित शारंगदेव ने भी स्थायी से चीथे स्वर को ही द्वयर्ध स्वर कहा है।

अर्धस्थित स्वर- अर्धस्थित का अर्थ है द्वयर्ध और द्विगुण के बीच का स्वर द्विगुण का अर्थ है दुगुना ऊँचा यानी तार सा। द्वयर्ध का अर्थ है म इस प्रकार दोनों के मध्य का स्वर धैवत अर्धस्थित स्वर हुआ कुछ विद्वानों के अनुसार स्वर की सीमा निषाद तक है।

द्विगुण स्वर- द्विगुण का अर्थ है स्थायी स्वर का दुगुना ऊँचा स्वर यानी तार सां। मध्य सा की 240 और तार सा की 480 आंदोलन संख्या होती है। इनमें दुगुने का सम्बन्ध है। वीणा के तार पर स्वरों की स्थापना करते समय सम्पूर्ण तार पर मध्य सा और उसके ठीक मध्य में तार सा

कहा गया है। जैसे 36 इंच पर सा और 18 इंच पर तार सा है। अत: इस प्रकार द्विगुण का अर्थ हुआ दुगुना ऊँचा स्वर यानी तार सा।

स्वस्थान नियम का प्रथम चरण- मूर्छना प्रणाली में सभी सातों स्वर अलग-अलग मूर्छनाओं में आरम्भिक स्वर हो सकते थे जिन्हें स्थायी स्वर कहा जाता था। वर्तमान में तो सभी रागों में सा ही आरम्भिक स्वर होता है। इस प्रथम चरण में द्वयर्ध स्वर से एक स्वर नीचे अर्थात् प्रथम स्वर यदि सा है तो द्वयर्ध स्वर म हुआ और उससे एक नीचे यानी गांधार तक राग विस्तार करना स्वस्थान नियम का प्रथम चरण है। इसमें मन्द्र सप्तक में कहीं तक भी जाने की छूट थी। षड्ज से गांधार स्वर तक यदि किसी राग का विस्तार किया जाता है तो उसे स्वस्थान नियम का प्रथम चरण कहा जाएगा। इसको मुखचालन भी कहा जाता था। पंडित शारंगदेव के अनुसार-

यत्रोपवेश्यते राग: स्वरे स्थायी स कथ्यते।।
ततश्चतुर्थी द्वयर्ध स्यात् स्वरे तस्मादधस्तने।
चालनं मुखचाल: स्यात् स्वस्थान प्रथमं च तत्।।
(संगीत रत्नाकर पृष्ठ संख्या 193)

दूसरा चरण- स्वस्थान नियम के इस भाग में कहा गया है कि द्वयर्ध स्वर तक का विस्तार इस चरण में किया जाता था। द्वयर्ध का अर्थ है दुगुने का आधा यानी डेढ़ अर्थात चैथे स्वर तक का विस्तार इस नियम में आता था। पंडित शारंगदेव के अनुसार-

द्वयर्धस्वरे चालयित्वा न्यसनं तद् द्वितीयकम।।
(संगीत रत्नाकर पृष्ठ संख्या 193)

तीसरा चरण- इस रागालप्ति के भाग में अर्धस्थित स्वर तक विस्तार करने के लिए कहा गया है कि द्विगुण का अर्थ है तार सा और द्वयर्ध का अर्थ है मध्यम तथा दोनों के बीच का स्वर हुआ धैवत। कुछ विद्वानों के अनुसार तीसरे चरण की सीमा निषाद तक मानी गई है, पर धैवत तक ही तीसरे चरण की सीमा होनी चाहिए। पंडित शारंगदेव के अनुसार रू-

द्वयर्धद्विगुणयोर्मध्ये स्थिता अर्धस्थिता: स्वरा:।
अर्धस्थिते चालयित्वा न्यसनं तु तृतीयकम्।।
(संगीत रत्नाकर पृष्ठ संख्या 193)

चतुर्थ चरण- रागालप्ति या स्वस्थान नियम का चतुर्थ चरण आलापचारी का अन्तिम भाग होता था। इसमें तार सा तक विस्तार किया जाता था। तार सप्तक में भी गायक-वादक जितना चाहे राग विस्तार कर सकते थे क्योंकि वे तो वही स्वर समूह पुनरावृत्त होने वाले हैं जो प्रथम चरण में प्रयोग किए जा चुके हैं, केवल सप्तक (स्थान) भेद का ही अन्तर है।

द्विगुणे चालयित्वा तु स्थयिन्यासाच्चतुर्थकम।
(संगीत रत्नाकर पृष्ठ संख्या 194

रागालप्ति या स्वस्थान नियम के विषय में महत्वपूर्ण तथ्य निम्नलिखित हैं-

1. इनमें बन्दिश के बोलों का प्रयोग नहीं है।
2. आलप्ति चार चरणों में की जाती है। पहले चरण में स्थायी स्वर से तीसरे यानी गांधार तक, दूसरे चरण में चैथे स्वर यानी मध्यम तक, तीसरे चरण में छठवें स्वर यानी धैवत तक और चैथे चरण में आठवें स्वर यानी तार षड्ज तक।
3. यह ताल रहित है इसलिए अनिबद्ध है।
4. जिस प्रकार वर्तमान में आलाप करते समय बार-बार मध्य षड्ज पर आ कर उसके विभिन्न चरणों की समाप्ति की जाती है, उसी प्रकार प्राचीनकाल में भी स्थायी स्वर पर स्वस्थान के चारों चरणों की समाप्ति की जाती थी।

5. सभी स्वस्थानों में राग के नियमानुसार स्थायी से नीचे अर्थात् मन्द्र स्थान में जाने की छूट थी।
6. चौथे चरण में आठवें स्वर से ऊपर यानी तार सप्तक में राग के नियमानुसार विस्तार करने की स्वतन्त्रता थी।
7. चारों चरणों में स्वरों की संख्या गिनते समय वर्जित स्वरों को भी गिना जाता था।

रूपकालप्ति- जिस प्रकार वर्तमान समय में खयाल शैली के अन्तर्गत अधिकांश आलाप तान बन्दिश के बीच में ताल के साथ किए जाते हैं, ये सभी रूपकालप्ति के अन्तर्गत कहे जा सकते हैं। आज भी कुछ गायक आकार में आलाप करते हैं। तो कुछ बन्दिश के बोलों को ही राग के स्वरों में अलग-अलग ढंग से गाते हैं जिसे बोल आलाप कहते हैं। गति बढ़ने पर ये ही बोल-तान का रूप ले लेते हैं। इसी प्रकार प्राचीनकाल में भी रूपक यानी बन्दिश के अन्तर्गत राग विस्तार किया जाता था, पर इसके नियम वर्तमान की अपेक्षा कुछ कड़े थे।

रूपकालप्ति के दो भेद होते थे, प्रतिग्रहणिका और भञ्जनी। प्रतिग्रहणिका दो शब्दों से मिलकर बना है प्रति और ग्रहणिका प्रति का अर्थ है बार-बार तथा ग्रहणिका अर्थ है पकड़ना अर्थात् ग्रहण करना। बन्दिश के साथ आलाप करते समय जैसे ताल को छोड़कर आलाप किया जाता है, तथा ताल की निश्चित मात्रा आने पर बंदिश का मुखड़ा पकड़ते हैं और यही क्रिया बार-बार की जाती है, इसी की पुनरावृत्ति करना प्रतिग्रहणिका है। ग्रन्थों में इस का उदाहरण गेंद के उछालने में दिया गया है। जैसे गेंद को उछाला और जब तक गेंद नीचे वापस आए तब तक और क्रिया करते रहे यानी राग विस्तार करते रहे और गेंद नीचे आने पर उसे ग्रहण करके पुन: उछाल दिया फिर अपना कार्य करने लगे यानी राग विस्तार करते रहे और यदि गेंद हमसे छूट गई तो स्वत: ही पृथ्वी से टकरा कर अपने आप उछल जाएगी. अगली बार उसे ग्रहण कर लिया गया। अर्थात् दूसरे आवर्तन में ताल को ग्रहण कर लिया या पकड़ लिया, इसी प्रकार रूपकालप्ति के ताल को बार-बार पकड़ना ही प्रतिग्रहणिका हुई।

रूपकालप्ति का दूसरा भेद था भंजनी। भंजनी का अर्थ है भञ्जन करना या तोडना, भंजनी के भी दो भेद थे स्थाय भंजनी और रूपक भंजनी।

स्थाय भंजनी- स्थाय का अर्थ है बन्दिश का एक भाग यानी शब्द अर्थात् बन्दिश में प्रयुक्त होने वाले प्रत्येक शब्द को लेकर जिस प्रकार वर्तमान समय में गायक बोल आलाप करते हैं उसी प्रकार भंजनी में भिन्न-भिन्न ढङ्ग से राग के नियमों का पालन करते हुए बोल बनाव को स्थाय भंजनी कहा जाता था। इस में स्वरों के परिवर्तन की तो छूट थी पर कालमान उतना ही रखना आवश्यक होता था जितना बन्दिश में उस शब्द विशेष का या अर्थात् बन्दिश में यदि कोई शब्द चार मात्रा में है तो चार ही मात्राओं के अन्तर्गत दूसरी स्वरावली में प्रस्तुत करना स्थाय भंजनी था।

रूपक भंजनी- इस भाग में पूरी बन्दिश के शब्दों को अलग स्वरों में गाया जाता था। अब भी पुराने गवैये इसे बन्दिश लौटना या पलटना कहते हैं। वैसे प्रचार में यह क्रिया अब धीरे-धीरे घटती जा रही है। पार्श्वदेव ने संगीतसमयसार में आलप्ति को प्रंजला, विषमा, साक्षरा, अनक्षरा, सताला, अताला, शुद्ध और सालग भेद से 16 प्रकार की कही हैं। ग्रन्थकार के ही शब्दों में-

सालप्तिर्द्विविधा ज्ञेया विषमां प्राञ्जलेति सा।
साक्षरानक्षरा चेतिद्विविधापि चतुर्विधा।।
चतुर्विधाप्यष्टविधा सतालातालभेदत:।

सा पुनः षोऽशविधा शुद्धसालगभेदतः।।
क्रमेण लक्षणं वक्ष्ये तासां लक्ष्यानुसारतः।
(सं० समयसार पृ०-33-34)

गीत निबद्ध और अनिबद्ध दो प्रकार का है। आलप्ति अनिबद्ध के दो रागालप्ति और रूपकालप्ति हैं। समस्त गीतों और प्रबन्धों के आरम्भ में आलप्ति आवश्यक है, वह आलप्ति प्रंजला और विषमा इन दो प्रकारों की है।

यह आलप्ति भी साक्षरा और अनाक्षरा के रूप में चार प्रकारों की है और यह चार प्रकारों की सताला और अताला के भेद से आठ प्रकार की है। यह आठ प्रकारों की आलप्ति भी शुद्ध और सालग के भेद से सोलह प्रकार की है।

निष्कर्ष- आलाप स्वरों की सुन्दर, सुरीली तथा ताल व स्वर में बंधी हुई क्रमिक बढ़त होती है। आलाप का अभ्यास करने से स्वर तथा राग पर अधिकार प्राप्त होता है। इससे राग का सूक्ष्म खंडों में विभाजन होता है तथा गमक, खटके, कण, मींड व मुर्की आदि का प्रयोग होने से राग का स्वरूप अभिव्यक्त हो जाता है। वर्तमान समय के आलाप में प्राचीन समय की विशेषता नहीं पाई जाती। अब आलाप की तुलना में तानों के चमत्कार का प्रदर्शन बढ़ रहा है। एक अच्छे कलाकार का यही प्रयत्न होना चाहिए कि आलाप जोकि राग में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है, उसे भावपूर्ण बनाए ताकि राग का सौन्दर्य निखरकर स्पष्ट हो जाए। संक्षेप में आलाप ही वह तत्त्व है, जिसके माध्यम से राग के सम्पूर्ण सौन्दर्य को साकार रूप प्रदान किया जा सकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची-

1- कुम्भा, महाराणा, संगीत मीमांसा पृ० सं० 94
2- पंडित शारंगदेव, संगीत रत्नाकर, पृ० सं० 204
3- वही, पृ० सं० 21
4- वही, पृ० सं० 193
5- वही, पृ० सं० 193
6- पार्श्वदेव, संगीत समयसार, पृ० सं० 33
7- वही पृ० सं० 34
8- टाक, तेजसिंह, संगीत- विज्ञान और गणित पृ० सं० 320
9- यमन, अशोक कुमार, संगीत रत्नावली, पृ० सं० 280

लोकगीतों की विकासात्मक परंपरा

डॉ. रविन्द्र कुमार

शोध आलेख सार

लोकभाषा में लोक द्वारा रचित एवं लिखे गए गीतों को लोकगीत के नाम से जाना जाता है। इसे कोई एक व्यक्ति नहीं बल्कि पूरा लोक समाज (स्थानीय लोग) अपनाता है। लोकगीत हमारे समाज मे प्राचीनकाल से लेकर आज तक निरन्तर चलती आ रहे हैं। इसे होली, दिपावली, जन्म उत्सव, मुण्डन, पूजन, जनेऊ, विवाह, आदि अवसरों पर बड़े ही मधुर राग से गाये जाते हैं। लोकगीत किसी देश की संस्कृति के संवाहक होते हैं। यानी उस देश की संस्कृति कैसी है उसका परिचय लोक साहित्य से प्राप्त हो जाता है। साथ ही यह स्थानीय मिट्टी की गुंजन भी होती है। स्थानीय भाषा में लोक समाज के द्वारा गाये जाने वाले लोकगीतों में विभिन्न किस्म की ज्ञान, धर्म, इतिहास, रीति रिवाज, संस्कार आदि चीजों की झलक मिलती है। जैसे: बारहमासा और कजरी, उत्तर प्रदेश के लोकगीत हैं। कालबेलिया और गोरबन्द, राजस्थान के लोकगीत हैं।

इसकी भाषा क्षेत्र के हिसाब से अलग अलग होती है जो वास्तव में उस क्षेत्र की स्थानीय भाषा (लोक भाषा) होती है जिसे पूरा लोक समाज बोलता है।

मुख्य शब्द : *लोक, गीत, संगीत, संस्कृति, कला, साहित्य।*

लोक गीतों का उद्‌भव सम्भवत: उतना ही प्राचीन है जितना की मानव जीवन आदि युग में जब मानव कन्दराओं, गुफाओं और जंगलों में रहता था तो वह प्राकृतिक आपदाओं से बचने के लिए समूह में रहता था। जब उसमें बुद्धि का विकास हुआ होगा तो सम्भवत: उसने अपनी भावनाओं को लयात्मक ढंग से अभिव्यक्त किया होगा, जिसे दूसरों ने गा-गाकर लोक गीत का रूप दे दिया होगा। वही 'आदि संगीत' लोकगीत कहलाया। आदि मानव प्राकृतिक जीवन यापन करता था। वह प्रकृति के संसर्ग में रहते हुए पूर्णतया प्रकृति पर निर्भर था। वह प्रकृति की गोद में पलने वाला जीव था। इसलिए उसका रहन-सहन, आचार-विचार सरल था। आडम्बर एवं कृत्रिमता से दूर, नितान्त सहजता के कारण ही उसके गीतों में स्वच्छन्दता, एवं स्वाभाविकता का पुट अधिक था। आज भी लोक गीतों में वही सार-लय दृष्टिगोचर होता है। लोकगीतों के उद्‌भव एवं विकास के विषय में विद्वानों में मतवैभिन्य रहा है। लोक गीतों का सृजन कैसे हुआ? इनके रचयिता कौन है? कई ऐसे विवादास्पद प्रश्न हैं, जिनका स्पष्टीकरण अत्यन्त आवश्यक है।

जर्मनी के प्रख्यात लोक साहित्य मर्मज्ञ विलियम ग्रिम ने अपना 'सामूहिक - उत्पत्ति'

पूर्व शोधार्थी (पीएच. डी.), संगीत विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक, मोबाईल 9416455319,
e-mail : ravinder.nagar05@gmail.com

(Communal-Growth) का सिद्धान्त प्रतिपादित करते हुए, यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया था कि लोकगीत सामूहिक - रीति से निर्मित होते है। परन्तु रूसी लोक साहित्य-मर्मज्ञ सोकोलोव, ग्रिम के 'सामूहिक उत्पत्ति के सिद्धांत' का खण्डन करते हुए लिखते हैं कि - "कोई भी कृति ऐसी नहीं है जिसका कोई रचयिता न हो या जो 'सब की रचना' हो।'' वस्तुत: लोकगीत का सृजन बीज रूप में सर्वप्रथम एक व्यक्ति द्वारा होता है और फिर मौखिक परम्परा में रहने के कारण अन्य व्यक्तियों द्वारा समय-समय पर संशोधित होता रहता है। यही कारण है कि एक ही गीत के कई पाठान्तर प्राय: उपलब्ध होते हैं। डॉ. भीमसिंह मलिक के मतानुसार - ''दूर्वादल की भांति लोकगीतों के मूलों तक पहुँचना दु:साध्य कार्य है और जिस प्रकार दूर्वा स्थान-स्थान पर मिट्ठी से सम्पर्क स्थापित कर, अपनी श्रृंखला के नये- नये मूलों का जाल बिछाती चलती है, वैसे ही लोकगीत भी नाना कण्ठों और स्वरों में रमकर विकसित एवं परिष्कृत होता रहता है।'' मानवीय ज्ञान के अनन्त भण्डार, इतिहास के अनेक पृष्ठों की उलट-फेर के पश्चात् भी लोकगीतों सृजन की तिथि को खोजना सम्भव नहीं है क्योंकि लोकगीतों को किसी काल विशेष की सीमा में नहीं बाँधा जा सकता। "मानव-हृदय जब कभी भी सहजानुभूति से प्रेरित सुख-संवेदनाओं से आन्दोलित हुआ होगा, गीतों के अज्ञात स्वर मनुष्य के अधरों पर गूँज उठे होंगे। आनन्द की भावना से मानव जीवन सर्वदा ही पोषित होता रहा है। अत: आनन्द भावना को मानव-जीवन के विकास की प्रमुख प्रवृत्ति ही माना जायेगा। इसकी मूल प्रेरणा है मानव हृदय की रसात्मक अनुभूति। इस अनुभूति का उद्वेलन हृदय की संकुचित सीमा में न समाकर जब वाणी मुखरित होने की स्थिति में पहुँच जाता है। तभी लोकगीतों का स्रोत उमड़ पड़ता है।''

लोकगीतों के उद्गम से सम्बन्धित जिज्ञासा का देवेन्द्र सत्यार्थी द्वारा प्रस्तुत समाधान भावात्मक होते हुए भी यथातथ्य विश्लेषण के अधिक निकट हैं। "कहाँ से आते हैं इतने गीत ? स्मरण- विस्मरण की आँख मिचैली से, कुछ अट्टहास से और कुछ उदास हृदय से। जीवन के खेत में ये उगते हैं। कल्पना भी अपना काम करती है। रागवृत्ति भी, भावना भी और नृत्य का हिलौरा भी। इसी प्रकार हिन्दी के मूर्धन्य आलोचक हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कहा है कि- ''लोकगीत की एक-एक बहू के चित्रण पर रीतिकाल की सौ-सौ मुग्धाएँ, खण्डिताएँ और धाराएँ न्योछावर की जा सकती हैं, क्योंकि ये निरलंकार होने पर भी प्राणमयी है, और वे अलंकारों से लदी हुई होकर भी निष्प्राण हैं। ये अपने जीवन के लिये किसी शास्त्र - विशेष की मुखापेक्षी नहीं है और अपने आप में परिपूर्ण हैं।" लोकगीतों के आलोचक डॉ. चिन्तामणि उपाध्याय लोकगीतों का उद्गम बताते हुए कहते हैं कि - ''सुख-दु:खमयी भावावेश की अवस्था के चित्रण का माध्यम अश्रुपात, दीर्घनिवास, पुलक और मुस्कान आदि आनुभाविक आंगिक चेष्टाओं तक ही सीमित न रहकर हर्ष और वेदना का स्वरूप धारण कर कण्ठ के द्वारा साकार हो उठता है, तभी गीतों के स्वर फूट पड़ते हैं। ये गीत किसी कवि के नहीं, व्यक्ति विशेष के नहीं, अपितु सामान्य जनमानस की अज्ञात सृष्टि हैं।''

लोकगीत का रचयिता प्राय अज्ञात होता है। परन्तु इसका यह तात्पर्य कदापि नहीं है कि गीत का कोई निर्माता ही नहीं या इसकी उत्पत्ति "देव-

योग" से हुई हो। लोकगीत अज्ञात इस कारण है कि लेखकों ने अधिकांशत: नाम लिपिबद्ध नहीं किये और यदि कई स्थितियों में किये भी हैं तो हम उन्हें खोजने में असमर्थ हैं। वे पाण्डित्य से अहंकार से शून्य साधारण, अनपढ़ व्यक्ति थे। उनके पास आधुनिक युग जैसे प्रकाशन एवं टंकण की सुविधा न थी। अपनी रचनाओं का निर्माण उन्होंने कागज तथा स्याही से न करके मौखिकता से किया है।

"आधुनिक युग में तो साहित्य के इतिहास लेखक की कलम भी कई स्थलों पर रुक जाती है, जब उसे 'पृथ्वीराज रासो' जैसे मौलिक, कलात्मक ग्रन्थों की प्रामाणिकता तथा रचनाकाल का ऐतिहासिक विवरण निश्चित करना पड़ता है। लोकगीत न तो कभी लिपिबद्ध हुए थे, न इनके रचयिताओं की ज्ञेयता ही स्पष्ट है, अत: मौखिक परम्परा में अविरत ऐसी कलात्मक रचनाओं का रचनाकाल ढूँढना अथवा इनके मूल रचिएताओं की खोज करना कठिन ही नहीं असम्भव भी है। वस्तुत: जब तक वेदों के रचयिताओं की ज्ञेयता स्पष्ट नहीं होती, तब तक लोकगीतों के रचयिताओं को ढूँढना निरर्थक है।"

लोकगीत मौखिक परम्परा में जीवित रहते हैं। लोक कवि सामान्य एवं साधारण जनसमूह का प्रतिनिधि होता है। गीत का सृजन करते समय वह लेखनी से अधिक अपने कण्ठ तथा जिहवा का उपयुक्त प्रयोग करता है, फलस्वरूप मौखिक प्रक्रिया से ही गीत लोक-प्रिय हो जाता है। ज्यों ही गीत एक या दो पीढ़ियों तक चला आता है, इसके मूल रचयिता का नाम स्वत: मिटता चला जाता है अथवा भूला दिया जाता है। वस्तुत: कालान्तर में गीतकार नितान्त अज्ञात हो जाता है। जहाँ किसी लोकगीत में गायक या लेखक का नाम मिलता भी है, वहाँ भी प्रामाणिक रूप से यह नहीं कहा जा सकता कि वस्तुत: गीत का मूल रचयिता वही है। वस्तुत: किसी भी गायक को लोकगीत का मूल रचिता मान कर, गीत का रचनाकाल इत्यादि निर्धारित करना सर्वथा भ्रामक होगा।

वस्तुत: यह एक विवादास्पद प्रश्न है कि किसी लोकगीत का रचनाकाल क्या है? इसका सृजन कब और कैसे हुआ ? वास्तव में ये ऐसे महत्त्वपूर्ण प्रश्न है, जिनका उतर देना सहज नहीं। जब तक रचनात्मक लिखित-साहित्य की भाँति लोकगीतों अथवा लोक साहित्य का इतिहास नहीं लिखा जाता, तब तक ऐसे प्रश्नों का समाधान असम्भव है।

वस्तुत:: भारत की समग्र बोलियों तथा उपबोलियों में प्रचलित गीतों के अध्ययनोपरान्त कोई ऐसा लक्षण प्राप्त नहीं होता जिसके आधार पर दृढ़तापूर्वक कहा जाए कि यहाँ के लोकगीतों का सृजन 'सामूहिक विधि' से हुआ है। आधुनिक अनुसन्धान ने यह बात स्पष्ट कर दी है कि "लोकगीतों की सृजन-प्रक्रिया में समुदाय नहीं अपितु समुदाय का व्यक्ति ही अधिक सक्रिय रहा है।" और यह प्रक्रिया आज भी जीवित है। आज भी गीत बनते हैं, जिन्हें समुदाय का व्यक्ति बनाता है, विशेषकर स्त्रियाँ इस क्षेत्र में अग्रणीय हैं। अस्तु "लोकगीतों की उत्पति न ही सामुहिक रीति और न ही किसी विशिष्ट जाति द्वारा होती है। लोकगीत लोक मानस की साधारण अभिव्यक्ति है जिसका रचिएता एक व्यक्ति हुआ करता है, अत: जिसे 'लोक कवि' की संज्ञा दी जा सकती है। मौखिक परम्परा में रहने से ये गीत विकृत होते हैं जिसका दायित्व 'लोक गायक' पर ही ठहरता है।"

संदर्भ

1. ...there have never been works which could have been composed by no one and by the whole people.
2. मलिक, डॉ. भीमसिंह हरियाणा के लोकगीत: सांस्कृतिक मूल्यांकन, पृ. 26
3. उपाध्याय, डॉ. चिन्तामणि, लोकायन, पृ. 6
4. सत्यार्थी, देवेन्द्र पृथ्वी गाती है, पृ. 178
5. द्विवेदी, डॉ. हजारी प्रसाद हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृ. 106
6. डॉ. चिन्तामणि उपाध्याय लोकायन, पृ. 7
7. हण्डू, डॉ. जवाहरलाल कश्मीरी और हिन्दी के लोकगीत एक तुलनात्मक अध्ययन, पृ. 24
8. It is not the community as such, but individual with in the community who are active in the process, standard dictionary of Folk Lore] mythology and legend (Vol 2nd), पृ. 1034
9. हण्डू, डॉ. जवाहरलाल कश्मीरी और हिन्दी के लोकगीत: एक तुलनात्मक अध्ययन, पृ. 26

तानपूरे की जवारी के तीन बिन्दु

ओशीन घरे

हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत मूलत: श्रुति प्रधान संगीत हैं। श्रुति कि संख्या पर विभिन्न विद्वानों के विभिन्न मत रहें हैं एवं विभिन्न-विभिन्न काल के संगीतकारों एवं विद्वानों में विभिन्न प्रयोगों से इन श्रुतियों कि संख्या निर्धारित की हैं। श्रुति की इस क्षमता के कारण हमारे संगीत में भिन्न राग हुए एवं आज भी वे राग जीवित हैं एवं नवीन रागों का निर्माण आरंभ है। श्रुतियों के सूक्ष्म लगाव व उन पर सटीक स्वर की बैठक हेतु हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत में तानपूरे में स्वर एवं नाद का सूक्ष्म विश्व समाहित हैं। तानपूरे में जवारी का सही काम सही नाद पैदा करता हैं एवं तानपूरे के अति सूक्ष्म पहलुओं को जन्म देता हैं। तानपूरे के ब्रिज के उपर जवारी में ध्वनि निर्माण, जिसे झन्कार युक्त ध्वनि कहे तो ज्यादा उचित होगा, अत: जवारी के तीन सूक्ष्म व बारीक बिन्दुएं उन बिन्दुओं के तीखीं आवाज निर्माण में या कंठ संस्कार में अपने गहरे महत्व हैं। संगीत ध्वनि का एवं भाव का विषय है एवं ध्वनि किस तरह कि हैं या सुर या नाद का गुण किस तरह का है इसका बहुत महत्व संगीत में हैं एवं कंठ संस्कार (वाइस कल्चरिंग) एवं भाव अभिव्यक्ति की प्रक्रिया में तानपुरे की जवारी के तीन बिन्दुओं का अत्यधिक महत्व हैं।

तानपुरे की जवारी -

तानपुरा स्वर संसार निर्माण करने वाला अत्यंत सूक्ष्म वाद्य हैं एवं स्वर स्थान को इंगित करने वाला सूक्ष्म वाद्य हैं। तानपूरे की जवारी से अर्थ तानपूरे पर स्थित ब्रिज जो कि हाथी के दाँतों या ऊँट की हड्डी या हिरण के सिंग से निर्मित होता है उस पर पाए जाने वाले उन बिन्दुओं से हैं जहाँ ब्रिज पर धागा (सूत) लगकर झन्कार प्राप्त होती हैं, वहु की स्वर क्षेत्र निर्माण करती हैं। तानपुरे में जवारी के काम का बहुत महत्व हैं। यदि कुराल तानपूरा बनाने या जवारी का कार्य जानने वाला हो तो जवारी के तीन सूक्ष्म बिन्दु बनाकर वह जवारी का काम करके देगा। यह तीन बिन्दु अलग-अलग कंठ संसकार के निर्माण में सहयोगी होते हैं।

जवारी के तीन बिन्दु एवं गायन के शारीरिक अंग-

वर्णित हैं कि तानपूरे की जवारी में तीन बिन्दु पाए जाते हैं एवं उनपर जवारी में धागा (सूत) लगा हो, पर हर बिन्दु से झन्कार व गूँज के खुले पडा में भी भेद होता है जिससे कि गायन के वक्त ध्वनी निमार्ण में भेद गुण निर्मित होता हैं एवं एक विशेष गुण तानपुरे का हैं।

गायन के लिए शरीर में पाँच मुख्य एवं उपयोगी अंग माने गए हैं -

1 कंठ

2 हृदय

3 मस्तक

4 नाभि

5 नासिका

ठन उपयोगी अंग से अर्थ है कि ध्वनि का निर्माण तो कंठ से ही होगा परन्तु कंठ की मांसपेशियों के घर्षण से हो रही ध्वनी को बल इन अन्य सहायक अंगों से मिलेगा। कभी भी इनमें से कोई भी एक अंग अकेले मधुर ध्वनि का निर्माण नही कर सकता। कम से कम दो बिन्दुओं का आपस में संबंध होगा या ध्वनि को उनसे बल मिलना आवश्यक हैं तभी वह सहयोगी होकर संगीत उपयोगी ध्वनि का निर्माण कर सकेंगें।

जवारी के तीन बिन्दु एवं गायकी-

स्वभावत: हर मनुष्य अपनी विशिष्ट आवाज धारण किए हुए है जो उसे जन्मजात प्रकृति से प्राप्त हैं। परन्तु संगीत शिक्षा से एवं सही गुरू से संगीत शिक्षा प्राप्त करने से उस आवाज एवं स्वर के गुण में वृद्धि की जा सकती है।

तनपूरे की जवारी के तीन बिन्दुओं का गायन हेतु आवाज की परत खोलने एवं उसे बल देने में एवं विशेष योगदान हैं जो कुछ इस तरह वर्णित है-

प्रथम बिन्दु-

जवारी का प्रथम बिन्दु वह होगा जहाँ तानपूरे की जवारी में धाँगा लगाने पर सबसे प्रथम झन्कार प्राप्त हो। यह झंकार पर धाँगा आगे बढाते या जवारी का बिन्दु खोजते हुए बडी कुशलता से समझ अत्यधिक अभ्यास के बाद आ सकती हैं। यह बिन्दु गायक के "मस्तक एवं नासिका" के भाग को ध्वनि में बल लगाने हेतु सहायता करेगा एवं कंठ से गायन उपयोगी ध्वनि को बल प्रदान करेगा परन्तु ध्वनि गुँजन एवं बल प्रदान करेगा परन्तु ध्वनि गुँजन एवं बल का मुख्य हिस्सा नासिक एवं मस्तक होगा।

द्वितीय या मध्य बिन्दु-

इस बिन्दु को जवारी पर खोजना उतना कठिन नही हैं जितना कि अन्य दो बिन्दुओं पर धागा ठहराना कठिन हैं। यह बिन्दु से उत्पन्न हो रही झन्कार कंठ एवं नासिका अंग को सक्रिय करेगी एवं उस गायकी की आवाज को बल एवं सहयोग नासिक एवं कंठ के बल व गुँजन से प्राप्त है। अधिकांश संगीत साध कइस बिन्दु पर ही जवारी खोलते हैं।

तीसरा बिन्दु-

यह बिन्दु को जवारी पर खोजना कठिन हैं एवं इसके लिए भी अत्यंत अभ्यास की आवश्यकता होती है। यह बिन्दु से उत्पन्न हो रही ध्वनि मूलत: हृदय (छाती) एवं नाभि अंग को सक्रिय करेगी एवं यही से कंठ को बल व सहयोग प्राप्त होगा। यह बिन्दु गहरी रामकदार ध्रुपद अंग की गायकी में अत्यधिक सहायक हैं एवं कई ध्रुपद गायक इसी बिन्दु पर जवारी को खोलते हैं।

निष्कर्ष-

कंठ संस्कार में तानपूरे का अत्यन्त महत्व हैं। यह महत्व अत्यंत सूक्ष्म हो जाता है जब जवारी के तीन बिन्दुओं की समझ रख कर संगीत साधना की जाए। प्रत्येक बिन्दु गायन के लिए उपयोगी पाँच अंगों में से दो-दो अंगों को सक्रिय कर के आवाज में लग रहे शरीर के अंग से बल बढाता हैं एवं उन्हें सहयोग देता हैं। इसका यह अर्थ

बिल्कुल भी नहीं हैं कि जवारी का कोई बिन्दु किन्हीं दो अंगों केा बल व सहयोग देता है तो अन्य शेष तीन बिन्दु असक्रिय हो जातें है। यह बात गलत होगी परन्तु मूल व सही बात यह हैं कि प्रधानता व बल निर्माण हेतु कोई बिन्दु से दो अंग प्रबल रहेंगें परन्तु अन्य बिन्दु सहयोगी रहेंगें। प्रत्येक साधक स तथ्य के आधार पर एवं गुरू के मार्गदर्शन में अपनी आवाज एवं गायकी को समझते हुए इस तथ्य का लाभ उठाकर अपनी गायकी का गुण सुंदर कर प्रगति कर सकता हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची-

1 संगीत विशारद
2 राग परिचय
3 साजिद मिरजकर, पुणे से प्राप्त मार्गदर्शन
4 बालासाहेब मिरजकर एवं मोहशिन मिरजकर, मिरज से प्राप्त मार्गदर्शन
5 स्वयं के अध्ययन एवं अभ्यास से प्राप्त अनुभव।

मध्यप्रदेश के लोक अंचल में प्रचलित कतिपय लोक वाद्य तथा लोक गीत: एक अध्ययन

आनंद कुमार मिश्रा*, डॉ. ज्ञानेश चन्द्र पाण्डेय**

शोध सार

भारतीय लोक जीवन में संगीत का बहुत महत्व है। लोक संगीत जन सामान्य की भावनाओं के सम्प्रेषण के साधन होने के साथ संस्कृति के सम्वाहक भी हैं। जन सामान्य के मन: स्थिति के सम्प्रेषण, संस्कृति के संवहन के साथ ही जनरजं न की आवश्यकताओं को पुष्ट करते हुए लोक संगीत जनजीवन के विविध क्रियाकलापों में अभिन्न रूप से समाहित हैं। मध्य प्रदेश में भी लोक संगीत का विस्तृत प्रसार दृष्टश्रव्य है। मध्य प्रदेश को राजनैतिक रूप से जिलों तथा मंडलों में वर्गीकृत किया गया है किन्तु लोक संगीत के अध्ययन हेतु मध्य प्रदेश का वर्गीकरण सांस्कृतिक दृष्टिकोण से किया जाना अधिक उचित होगा। प्रस्तुत शोध पत्र में मध्य प्रदेश को सांस्कृतिक दृष्टि से वर्गीकृत करने का प्रयास किया गया है। इस वर्गीकरण के पश्चात सम्बन्धित क्षेत्र में प्रचलित लोक गीतों तथा लोक वाद्यों का अध्ययन प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है।

सूचक शब्दः- *प्रचलित, लोक संगीत, लोक जीवन, गायन, संस्कार, लोक वाद्य*

शोध प्रविधि:-

प्रस्तुत शोध पत्र के लेखन हेतु तथ्य सामग्री का संकलन विविध पुस्तकों तथा पत्रिकाओं की मदद से किया गया है स इस शोध पत्र को आंशिक अथवा पूर्ण रूप से न तो कहीं प्रकाशित किया गया है और न ही कहीं प्रकाशन हेतु प्रेषित किया गया है।

शोध उद्देश्य:-

प्रस्तुत शोध पत्र के लेखन का मुख्य उद्देश्य मध्य प्रदेश के विविध अंचलों में प्रचलित लोक गीतों तथा लोक वाद्यों का अध्ययन करना है।

शोध विषय:-

भारतीय जनसामान्य के मध्य प्रचलित संगीत को लोक संगीत कहा जाता है। "'लोक संगीत' शब्द को जन साधारण मुख्यत: ग्रामीण क्षेत्र के निवास करने वाले लोगों के मध्य प्रचलित संगीत के अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है।"[1] भारत में लोक संगीत की विरासत अत्यंत उन्नत है। यहाँ लोक संगीत के माध्यम से जनसामान्य अपने विविध क्रियाकलापों तथा अपने मन के उद्गारों को प्रस्तुत करते हैं। "लोक गीतों के सन्दर्भ में कहा जाता है कि लोकगीतों से जन सामान्य की अभिव्यक्ति होती है। परिणामत: इन गीतों में

*शोधार्थी, गायन विभाग, संगीत एवं मंच कला संकाय, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी

**सहायक आचार्य, गायन विभाग, संगीत एवं मंच कला संकाय, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी

समाज के सुख-दु:ख, आशा-निराशा, राग-बिराग, ईर्ष्या-द्वेष आदि मनोभावों का तथा रीति-रिवाज़, आचार-विचार, रहन-सहन, विश्वास, मान्यताओं एवं परम्पराओं आदि समाज के विविध पहलुओं का सजीव चित्रण देखा जा सकता है।"[2] लोक गीतों में सम्बन्धित स्थान की बोली का प्राचुर्य दृष्टिगत होता है। भारत देश भाषा तथा बोलियों की दृष्टि से भी अत्यंत उन्नत है। यहां कुछ किलोमीटर के अन्तराल पर बोली के स्वरूप में परिवर्तन देखा जा सकता है। बोली के इस बदलाव का सीधा प्रभाव लोक संगीत पर पड़ता है। "लोक संगीत अज्ञात रचनाकारों की शास्त्र विहीन कृति है जिसके माध्यम से जन साधारण के सहज तथा सरल मनोभावों की अभिव्यक्ति होती है।"[3] डॉ. अरविन्द कुमार जी के अनुसार "लोक कवि गीतों का सृजन करते समय अपनी लेखनी से अधिक अपने कंठ और जीभ को प्रयुक्त करते है। फलस्वरूप मौखिक प्रक्रिया से ही गीत लोकप्रिय हो जाते हैं। ज्यों ही यह गीत दो-चार पीढ़ी तक आगे बढ़ते हैं, इसके मूल लेखक का नाम स्वत: ही धूमिल हो जाता है।"[4]

मध्य प्रदेश के विविध अंचलों में प्रचलित लोक संगीत की अपनी विशेषता है। परम्परागत रूप से लोक गीतों की विशिष्ट श्रृंखला लम्बे समय से चली आ रही है। मध्य प्रदेश में निवास करने वाले लोग विविध सांस्कृतिक क्रियाकलापों जैसे - धर्म-कर्म, रीति-रिवाज, आचार-विचार, व्रत-त्यौहार, भजन-पूजन, भक्ति-भाव आदि आदि, से निकट से सम्बद्ध हैं। इस प्रकार वर्ष पर्यन्त किसी न किसी रूप में सांस्कृतिक कलापों के माध्यम से लोक विधाओं से जुड़े ही रहते हैं। मध्य प्रदेश की विविध सांस्कृतिक विरासत के अध्ययन के लिए विविध वर्गों में वर्गीकृत जा सकता है। जो मुख्यत: इस प्रकार हैं - मालवा तथा निमाड़, बुंदेलखंड, बघेलखंड तथा छत्तीसगढ़। मालवा तथा निमाड़ के अंतर्गत उज्जैन, इंदौर, भोपाल, राजगढ़ तथा सीहोर के प्रान्तों के लोक संगीत का अध्ययन किया जा सकता है। बुंदेलखंड के अंतर्गत सागर, होशंगाबाद, जबलपुर, ग्वालियर, रायसेन, विदिशा, चम्बल तथा बैतूल में प्रचलित लोक गीतों का अध्ययन किया जा सकता है। बघेलखंड के अंतर्गत सम्पूर्ण रीवा संभाग के लोक गीतों का अध्ययन किया जा सकता है। छत्तीसगढ़ के अंतर्गत विलासपुर, रायपुर तथा सम्पूर्ण बस्तर सम्भाग के लोक गीत का अध्ययन किया जा सकता है। दृष्य रूप में मध्यप्रदेश को भौगोलिक तथा राजनैतिक आधार पर 45 जिलों तथा 11 संभागों में वर्गीकृत किया गया है। उक्त सभी प्रकार के वर्गों में प्रचलित लोक संगीत का अपना विशिष्ट स्थान है। मध्यप्रदेश में प्रचलित लोक गीतों में सम्बन्धित अंचल के पक्षियों के प्रतीकात्मक गीत प्रस्फुटित हो कर आँगन, गहर, खेत, खलिहान आदि में विस्तारित होता है। विविध सांस्कृतिक अंचलों में जो लोक संगीत विशेष रूप से प्रचलित हैं वे इस प्रकार हैं - छत्तीसगढ़ में सुवा गीत, सुवा नृत्य, नाचा, पंथी नृत्य, गौरा गौरी पर्व, डेढवा लोक नाट्य, चन्दा लोरिक लोक गाथा, टेढ़ा लोकगीत, पंडवानी आदि। बुंदेलखंड में राई, मामुलिया, बम्बुलिया फाग, लंगुरिया, कजरी, सीताम, झूला, भगतें, आल्हा, सैरा आदि। बघेलखंड में कबीर, ढ़ोंढिया, ठढ़गिता, हिंगाला, बिरहा केहरा, बनगिता, जिंदवा, नैनजुगानी, जतवा गीत आदि। मालवा में माच, ढ़ोलामारू, केरवा, रजवाडी, आड़ा, मटकी, तुर्रा केलंगी, गल गीत, फुल पाती, बनोला और छल्ला, मामेरा, संजा आदि। निमाड में गरबा, गण गौर, नरवत के गीत, बांजुली गीत, सांजा फूली के गीत, रेणु बाई के गीत आदि। इस के अतिरिक्त मध्य प्रदेश के विविध लोक अंचलों में कुछ जिलों कि विशेष लोक संगीत का भी प्रचलन है। बस्तर में प्रचलित रेला और काकसार नृत्य, गवर, परब, झालियाना, माड़ी

और रीलो गीत आदि, रायगढ़ में जितिया नृत्य, सरहुल और करम, टुन्टा, डोमकच गीत आदि, बिलासपुर में रहस, राउत और हिरकी नृत्य।

रायपुर में भीमा नृत्य, सैला, सजनी, झरपट, रोझा, करमा ठाढा कहरवा, कमार, रोना, गौरैया सरगुजा का सादरी गीत, चटकोला, कोरबा का करमा नृत्य, मंडला का करमा झूमर आदि। शहडोल में विरहा, कुलदहकी नृत्य, भरियान करमा आदि। रीवा, सीधी का दादर, कलसा नृत्य, पुतरी पूजन के गीत, केमाली, विदिशिया गीत आदि।

मध्यप्रदेश के विविध अंचलों में प्रचलित लोक गीतों को अध्ययन हेतु निम्न वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है -

1. संस्कार गीत:-

सनातन संस्कृति में संस्कारों का बहुत महत्त्व है। शिशु के गर्भ में आने से मृत्यु तक कुल 16 संस्कारों का वर्णन प्राप्त होता है। ये 16 संस्कार हैं- गर्भाधान, पुंसवन, सीमांत, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूड़ाकरण, कर्णवेधन, यज्ञोपवीत, वेदारम्भ, समावर्तन, विवाह, द्विरागमन, मृतक, और्द्धव दैहिक। ये संस्कार समाज की व्यवस्था का वहन करते हैं। इन संस्कारों के माध्यम से समाज का एक सुदृढ़ ढांचा सुरक्षित रहता है। भारत के विविध क्षेत्रों के साथ मध्यप्रदेश के लोक अंचलों में मानव के इन विविध संस्कारों के अवसर पर विविध गीतों का गायन किया जाता है जिन्हें संस्कार गीत अभिहित किया जाता है।

जन्म तथा इसके बाद तक सोहर का गायन किया जाता है। फिर विवाह में तो अनेक प्रकार के गीत होते हैं। वर तथा कन्या पक्ष कि और विविध अवसरों पर गीतों का गायन किया जाता है।

- लागुन गीत का गायन विवाह कि तिथि निश्चित कर के उसका लग्न किसी कागज़ पर लिखा जाता है। इस अवसर पर स्त्रियों द्वारा गीत गाया जाता है। यह विधान कन्या पक्ष के निवास पर सम्पन्न होता है।
- मांगर माटी विवाह का एक महत्वपूर्ण अंग है इस अवसर पर घर कि स्त्रियों द्वारा रात के प्रथम प्रहर में गाँव के बाहर मिटटी खोदने के लिए प्रस्थान किया जाता है। इस अवसर पर मांगर माटी के गीत गाये जाते हैं साथ में विनोद पूर्ण अल्प अश्लीलता परक गारी भी गई जाती है।
- 'हल्दी तेल' की विशेष परम्परा विवाहों में होती है इसके अंतर्गत बरात आने के एक दिन पहले मंडप में हल्दी तेल चढाया जाता है। इस अवसर महिलाओं द्वारा गीत का गायन किया जाता है।

मोरे घर मौरो है आम अटा पै साँह गिरी
अरी ए, अटा पै साँह गिरी, मोरे घर....
मेरे ससुरे से नइयाँ पहचान,
सो माता रानी कौन सै कहें
अरी ए, सो माता रानी कौन से कहें,
मौरे घरे.....
मोरे दादाजी से नइयाँ पहचान,
सो दादी अम्मा कौन से कहैं।
अरी ए, सो दादी अम्मा कौन से कहें,
मोरे घर....
मेरे जेठा से नइयाँ पहचान,
जेठनियाँ रानी कौन से कहें
अरी ए, जेठनिया रानी कौन से कहैं,
मोरे घर....
मोरे देवरा से नइयाँ पहचान,
देवरनियाँ रानी कौन से कहें।
अरी ए. देवरनियाँ रानी कौन से कहैं,
मोरे घर...

मोरे ननदोई से नइयाँ पहचान,
ननदिया रानी कौन से कहें मोरे घर...

विवाह के विविध अवसरों पर विविध भाव से अनेक लोक गीतों का गायन प्रचार में है।

यहाँ कुछ अवसरों तथा एक गीत को उद्घृत किया गया है।

- विवाह के अतिरिक्त पुत्र के जन्म के समय सोहर, बधाई, पालना गीत, आदि का भी प्रचार है।

2. यात्रा गीत:-

जब किसी धार्मिक यात्रा पर जाया जाता है उस दौरान जिन गीतों का गायन किया जाता है उन गीतों को इस वर्ग के अंतर्गत रखा जाता है। मध्य प्रदेश में यात्रा गीतों के 'रमटेरा' भी कहा जाता है। रमटेरा दो शब्दों राम और टेरा से मिल कर बनता है। टेरा अर्थात पुकारना अत: इस शब्द का अर्थ है राम को पुकारना। यात्रा गीत को बम्बुलिया भी काहा जाता है। यह शब्द बमभोला का अपभ्रंश है। इस गीत को टिप्पे भी कहा जाता है। विद्वानों का मत है कि रमटेरा के दो प्रकार हैं। इसके प्रथम प्रकार में पद होते हैं तथा दुसरे प्रकार में दोहे होते हैं। रमटेरा तथा बम्बुलिया के अंतर्गत विविध देवताओं जैसे श्री गणेश जी, राम जी, शिव जी, कृष्ण जी, गंगा जी, जमुना जी आदि का उल्लेख मिलता है। भगवान राम जी से सम्बन्धित एक रमटेरा इस प्रकार है -

राम नाम कहबू करों रे मोरे प्यारे,
जब लो घट में प्रान
कबहुँक दिन दयाल के रे मोरे भईया
झनक परे गी कान।

3. श्रम सम्बन्धी गीत:-

मानव के लिए विविध सन्दर्भ में श्रम एक अतिआवश्यक क्रिया है। भोजन, स्वास्थ्य, निवास, वस्त्र आदि के लिए अत्यंत प्राचीन काल से ही मानव को श्रम करना पड़ता है। श्रम का स्तर कभी कभी बहुत अधिक हो जाता है जिससे मानव मन उकता जाता है अथवा थकान के कारण कार्य करना कठिन हो जाता है। इस समस्या का समाधान लोक मानस द्वारा गीतों के रूप में खोजा गया। गीतों के गायन से कार्य में मन लगता है तथा थकान की ओर ध्यान नहीं जाता है अत: अपेक्षाकृत अधिक कार्य करने कि सम्भावना पनपती है। मध्य प्रदेश के लोक अंचल में ददरिया गीत, करमा गीत, ढेका गीत, चकिया गीत, रोपा गीत, ढाना गीत, पनघट गीत आदि का प्रचलन है। ददरिया गीत के छंद अधोलिखित हैं -

बारी मा डारय गोबर खरसी।
टूरा डारय नजरिया जबरजस्ती।।
गोला रे गोला चाँदी के गोला।
तै तो बने लगथस टूरी बनावे मोला।।

4. ऋतु एवं पर्व संबधी गीत:-

विविध ऋतुओं में तथा अनेक पर्व एवं त्योहारों में गीतों के गायन की परम्परा इस बाद का परिचायक है कि अति प्राचीन काल से ही किसी भी मंगल अवसर को उत्सव का रूप दिया जाता था तथा अत्यंत हर्ष के साथ विविध अवसरों को मनाया जाता था। विविध ऋतुओं के लिए अलग अलग प्रकार के गीतों का विधान संगीत के शास्त्र पक्ष के साथ साथ लोक पक्ष में भी देखने को मिलता है। ऋतु विशेष में गाये जाने वाले लोक गीतों में झूला, सावन, चौमासा, बारहमासा, आल्हा, रसिया, मल्हार आदि हैं इसी प्रकार कुछ गीत ऐसे भी पाए जाते हैं जो पर्व विशेष से जुड़े होते हैं जैसे - फाग, लेद, कजरी, राछरे आदि।

इन गीतों के भी अनके अनेक प्रकार प्रचार में हैं अंचलों के अनुसार प्रत्येक प्रकार के गीत का स्वरूप थोड़ा बदलता रहता है। कार्तिक

स्नान पर्व से सम्बंधित गीत कि कुछ पंक्तियाँ अधोलिखित हैं -

आ जेहौं बड़ी भोर दहीरा लै के,
आ जेहौं बड़ी भोर।
नें मानों मटकी धर राखौ,
सबरे बिरज को मोल।
नें मानों कुड़री धर राखौ,
मुतियाँ जड़े हैं किड़ोर,
आ जैहों बड़ी भोर दहीरा लै के,
आ जेहौं बड़ी भोर।

5. खेल सम्बन्धी गीत:-

इस वर्ग के अंतर्गत बालकों एवं बालिकाओं द्वारा जो खेल खेले जाते हैं उनमें गाये जाने वाले गीतों को रखा जाता है। मध्यप्रदेश के परिप्रेक्ष्य में इन खेल गीतों को तीन वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है। 1- शिशु खेल गीत, 2 - बाल खेल गीत तथा 3- किशोर खेल गीत। मध्यप्रदेश के अंचलों में बालिकाओं के मध्य प्रचलित एक खेल 'चील पटापट घाघर घोली' है। इस में सभी लडकियां चांदनी रात में आँगन में गोल वृत्त बना के बैठती हैं। 'चील पटापट घाघर घोली' कह कर सभी हाथ पर ताली देते हुए अपने बगल की और खिसकती हैं। इनमें जो मुखिया है वह बीच में आ के बोलती है 'फुर्र' । इस स्वर के साथ ही सभी लडकियां आँगन की पिरभिटिया पर चढ़ जाती हैं इस क्रम में जो लड़की पीछे रह जाती है उसे सब लड़कियों को छूना होता है और बाकी सब लडकियां छुपती हैं। जब कोई लड़की छू ली जाती है तो पुन: 'चील पटापट घाघर घोली' के स्वर के साथ खेल शुरू हो जाता है।

संगीत में वाद्यों को विशिष्ट स्थान प्राप्त है। बिना वाद्यों के संगीत के आनंददायक स्वरूप को साकार करना अत्यंत कठिन है। लोक संगीत में तो वाद्य अपनी प्रमुख भूमिका में उपस्थित रहते हैं। मध्यप्रदेश के लोक संगीत में प्रयुक्त विविध लोक वाद्य अपने आकार, प्रकार, बनावट तथा भार आदि से एक दुसरे से भिन्न स्वरूप में प्रचारित हैं। संदर्भित संगीत के कुछ लोक वाद्यों का वर्णन अधोलिखित है -

• मांदल:-

मध्य प्रदेश के लोक संगीत का एक मुख्य वाद्य मांदल है। इस वाद्य का आकार बड़े ढोल के समान होता है। सामन्यत: जनजातीय संगीत में मुख्य वाद्य के रूप में मांदल को उपस्थित किया जाता है। परिस्थिति के अनुसार तथा विविध स्थाओं पर इस वाद्य के आकार में परिवर्तन देखा जाता है।

• सिंग बाजा:-

सिंग बाजा को गुटुम, निशान, अथवा गड़वा बाजा भी सम्बोधित किया जाता है। इस वाद्य का वादन विविध लोक नृत्यों तथा विवाहोत्सव आदि मंगल अवसरों पर किया जाता है। लोहे के कटोरेनुमा आकृति पर चर्म आच्छादित कर के इस वाद्य को आकार दिया जाता है।

• चिकारा:-

चिकारा, तंत्रीय वाद्यों की श्रेणी का वाद्य है। चिकारा बजाने वाले कलाकारों का मानना है कि चिकारा से ही सारंगी की उत्पत्ति हुई है। यह वाद्य मध्य प्रदेश के लोक में स्वान्त: सुखाय के लिए बजाया जाता है। वर्तमान काल में यह वाद्य लुप्त होता जा रहा है। इस वाद्य के चार भाग मगज, छाती, मंधान तथा काढा होते हैं।

• नगाड़ा:-

नगाड़ा एक अति प्राचीन अवनद्ध वाद्य है। मध्य प्रदेश के लोक संगीत में इस वाद्य का प्रयोग दीर्घ काल से होता आ रहा है। इस वाद्य की ध्वनि

अत्यंत गंभीर होती है। पूर्व काल में राजकीय घोषणाओं को प्रजा में प्रसारित करने तथा युद्ध के अवसर पर सैनिकों में जोश का संचार करने हेतु यह वाद्य प्रयुक्त था। ढुलिया जनजाति का मुख्य व्यवसाय नगाड़ा वादन है। मध्य प्रदेश में इस वाद्य को मंगल वाद्य के रूप में बजाया जाता है। मध्य प्रदेश के कुछ क्षेत्रों में नगाड़ा का स्वरूप उसके तीन अंगों से पूर्ण होता है। ये तीन अंग-गद, तारी तथा टिमकी है। तीनों का स्वरूप तो समान होता है किन्तु आकार में अंतर होता है।

• चटकोला:-

लकड़ी तथा बांस के मिश्रण से बने इस वाद्य को घन श्रेणी के अंतर्गत वर्गीकृत किया जा सकता है। इस वाद्य के वादन में चट्ट चट्ट की ध्वनि निश्रित होती है। चटकोला वाद्य के तीन अंग हत्था, कमानी तथा चकरी होते हैं।

• बांसुरी:-

यह एक अत्यंत प्रचलित, प्राचीन तथा लोकप्रिय सुषिर वाद्य है। यह वाद्य नाम तथा स्वरूप में भिन्नता के साथ मध्य प्रदेश के लोक संगीत अलग अलग स्थान पर में प्रचलित है। इस वाद्य से गीत के धुन को बजाया जाता है।

• अलगोजा:-

एक समान दो खड़ी बांसुरियों को एक साथ बजाना अलगोजा बजाना कहा जाता है। इस वाद्य पर गीत के धुन बजाए जाते हैं। दो बांसुरियों के होने से यह एक अनोखे वाद्य का स्वरूप प्राप्त करता है।

• झांझ तथा मंजीरा:-

झांझ तथा मंजीरा घन श्रेणी के वाद्य हैं। इन वाद्यों को लोक संगीत में सह वाद्य के रूप में स्थान दिया जाता है। इन वाद्यों का प्रयोग लय दिखाने के लिए किया जाता है। झांझ पीतल तथा मंजीरा कांसे से निर्मित जोड़े में अपना स्वरूप पूर्ण करने वाले वाद्य हैं। इन वाद्यों के छोटे तथा बड़े अनेक प्रकार पाए जाते हैं।

शोध निष्कर्ष:-

उक्त अध्ययन के पश्चात निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि मध्यप्रदेश एक अत्यंत उन्नत लोक विरासत वाला प्रदेश है। यहाँ लोक गीतों तथा लोक संगीत की एक अत्यंत उच्च कोटि की प्रवाही परम्परा का प्रचार देखा जाता है। मध्य प्रदेश में जनजातीय समुदाय भी रहता है, इस समुदाय के मध्य प्रचलित लोक गीतों का एक बहुत विशाल भण्डार है। विविध ऋतुओं, पर्वों तथा विविध अवसरों पर गाये जाने वाले लोक गीत सम्बन्धित क्षेत्र के जनसामान्य के अंतर्मन के उदगार हैं। इन लोक गीतों के धुन तथा साहित्य तत्काल प्रभाव छोड़ने वाला होता है। मध्य प्रदेश के लोक संगीत में विविध लोक वाद्यों की विविधता तथा उनके स्वरूप एवं आकार में सूक्ष्म अंतर सम्बन्धित परिक्षेत्र के जनसामान्य के संगीत के प्रति सूक्ष्म सोच का परिचायक है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची:-

1 सीमा जौहरी, संगीतायन, राधा पब्लिकेशन नई दिल्ली, 2003 पृ.सं.-7

2 डॉ. निशा फात्मा, घोषी लोकगीत समाज, संस्कृति और साहित्य, कनिष्का पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्युटर्स नई दिल्ली, 2002, पृ.सं. -23

3 शरीफ मोहम्मद तथा डॉ. आशा खरे, मध्य प्रदेश का लोक संगीत, मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी भोपाल, 2018, पृष्ठ 2

4 डॉ. अरविन्द कुमार शर्मा, पंजाब का लोक-संगीत, संजय प्रकाश, नई दिल्ली, 2011, पृ.सं.- 4

समस्तीपुर की संगीत परम्परा में स्वातंत्र्योत्तर संगीतकारों का योगदान

डॉ. चन्द्रनाथ मिश्र, सुमन सौरभ

सारांश

संगीत प्राचीन काल से हम इंसानों के जीवन का एक अहम हिस्सा रहा है। संगीत एक दर्द-निवारक की तरह काम करता है अलबत्ता यह निवारण जेहनी तौर पर होता है. संगीत का विकास एक उन्नत संस्कृति की भी पहचान होती है. अन्य सभी कलाओं की तरह संगीत का भी पल्लवन व विकास एक स्थिर और गंभीर संस्कृति में ही संभव हो पाता है. इसी प्रकार किसी भी क्षेत्र की सांस्कृतिक विरासत या वहां की चेतना, वहां के मानस का निर्माण उसके आसपास के भौगोलिक स्थितियों का भी परिणाम होता है। हम सभी विद्वान इस बात से भिज्ञ हैं कि समस्तीपुर जो एक जिले के रूप में जाना जाता है , वह कभी दरभंगा अनुमंडल के रूप में दर्ज किया जाता था।14 नवम्बर 1972 को स्वतंत्र जिले के रूप में अस्तित्व में आया। सभी विद्वान इस बात से भी भिज्ञ होंगे कि दरभंगा महाराज और उनके परिवार के संरक्षण में वहां की कलाओं का काफी विकास हुआ। संगीत भी उनमें से एक था। अत: हम इसका प्रभाव समस्तीपुर जिले पर भी देख सकते हैं। इस कारण समस्तीपुर जिले में भी संगीत का संपूर्ण विकास हो पाया है। हारमोनियम एक वादय के रूप में प्रचार - प्रसार में विशेषकर उत्तरी बिहार के क्षेत्रों में समस्तीपुर जिले का एक महत्वपूर्ण योगदान है. यह परंपरा आजादी पूर्व से चली आ रही थी। संगीत परम्परा का विकास और पल्लवन आज़ादी प्राप्त होने के बाद भी समस्तीपुर जिले में होता रहा. इस लेख का उद्देश्य उन गायकों, वादकों एवं नृत्यकारों की पड़ताल करना है जिन्होंने समस्तीपुर जिले के संगीत के क्षेत्र में, स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया।

कुंजी शब्द : *संगीत, संगीतकार, समस्तीपुर, वादन, गायन, नृत्य, स्वातंत्र्योत्तर, आज़ादी के बाद*

प्रस्तावना :

संगीत का मानव जीवन में अहम स्थान है। गायन, वादन तथा नृत्य के समावेश को संगीत कहते हैं। संगीत एक यौगिक क्रिया है, जिससे शरीर मन और प्राण तीनों में शुद्धता और चैतन्यता आती है। संगीत मनुष्य पर सकारात्मक प्रभाव डालता है। इसके माध्यम से मनुष्य में एकाग्रता बढ़ती है। संगीत हमारे जीवन शैली का अभिन्न हिस्सा है। हर उम्र के व्यक्ति संगीत पसंद करते हैं, भले ही उनकी पसंद अलग-अलग हो, यह

शोध-निदेशक एवं शोधार्थी, विश्वविद्यालय संगीत एवं नाट्य विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

उनकी उम्र, पृष्ठभूमि तथा प्रकृति पर निर्भर करता है। साहित्य को समाज का जिस तरह प्रतिबिम्ब माना जाता है, उसी प्रकार संगीत भी समाज का अक्स है। संगीत का विकास एक समाज एवं संस्कृति का भी द्योतक होते हैं। किसी देश की सामाजिक, आर्थिक राजनितिक व सांस्कृतिक अवस्थिति का परिचय प्राप्त करना हो तो वहां के कलाओं के विकास पर नज़र दौडाने से यह जानकारी मिल जाती है। एक समाज के लोगों के हृदय में उच्च नैतिक गुणों का समावेश करना, अच्छे संस्कार, अच्छा आचरण करना ये सब नैतिकता के गुण हैं। किसी भी देश की समृद्धि केवल नक्शे पर भौगोलिक रेखों पर ही तय नहीं होती। कलात्मक, नैतिक तथा सांस्कृतिक प्रगति भी समृद्धि का परिचायक होती हैं। कला का एक रूप संगीत है, ऐसे में संगीत का एक सामाजिक समृद्धि के अनुषंग के रूप में महत्त्व बढ़ जाता है, जब यह मनुष्य में अनुशासन, सुरुचि, नैतिकता, करुणा, प्रेम एवं सौहार्द की भावना पैदा करता है।

टालस्टाय ने कहा है- "अपने भावों की क्रिया रेखा, रंग, ध्वनि या शब्द द्वारा इस प्रकार अभिव्यक्ति करना कि उसे देखने या सुनने में भी वही भाव उत्पन्न हो जाए "कला" है।" कला ही है जिसमें मानव मन में संवेदनाएं उभारने, प्रवृत्तियों को ढ़ालने तथा चिंतन को मोड़ने, अभिरुचि को दिशा देने की अद्‌भुत क्षमता है। भिज्ञ है कि कला का एक अभिन्न अंग संगीत रहा है। "प्राचीन काल की शिक्षा में साधनों, विषयों तथा उपविषयों का अभाव था लेकिन संगीत विषय को अनिवार्य रूप से सिखाया जाता रहा।" संगीत के बिना शिक्षा अधूरी है। शिक्षा का अंतिम उद्‌देश्य मानवीय विकास है। गुलजार साहब कहते हैं- "संगीत के लिए हमारे जीवन में एक प्राकृतिक जगह है। सुबह उठ कर पूजा के श्लोक, तकरीबन उसी समय दूध वाला आता है, अपनी ही साइकिल की घंटी और साथ में सीटी बजाने से लेकर एक फकीर के गाने की आवाज से लेकर हमारी मां की खाना पकाते समय की गुनगुनाहट और रात में लोरियों की गर्माहट, संगीत हमारे जीवन की खाली जगह को भर देता है और इसीलिए संगीत सबको पसंद है।"

प्लेटो का मानना है- "संगीत से व्यक्ति में धर्म की प्रवृत्ति आ जाती है, वह व्यक्ति कभी भी अन्याय नहीं कर सकता जो संगीत की मधुर स्वर-लहरियों में बंधा होता है. संगीत चरित्र को ढालता है." एक और जगह प्लेटो कहते हैं- "एक सफल व्यक्ति का संगीतज्ञ भी होना आवश्यक है क्योंकि अन्य सभी विषयों से बढ़कर संगीत ऐसा माध्यम है जो न केवल मानसिकता को प्रशिक्षित करता है, वरन मनोभावों को भी प्रशिक्षित करके उन्हें विशुद्ध स्वरूप प्रदान करता है, जिससे व्यक्तिगत दुर्गुण दूर हो जाते हैं." संगीत के महत्त्व से जुड़े कथनों में प्रसिद्ध सरोदवादक उस्ताद अमजद अली खान के कथन को भी जोड़ा जाना चाहिए- "संगीत ही आदमी को सही इंसान बनाता है, उसे संवेदनशील बना सकता है, दूसरों के लिए दिल में मोहब्बत पैदा कर सकता है, जो सूर से नहीं मिल पाता, डाकू लुटेरा बनता है, संगीत तो बड़े-बड़े संगदिल को, पत्थर से भी कठोर को, रहमदिल बना देता है। संगीत को तो दिमाग का गिजा कहा गया है. मन की भूख मिटाता है। दरअसल हर घर को संगीत की पाठशाला बन जाना चाहिए।"

वर्तमान परिदृश्य में यदि हम संगीत के महत्व का आकलन करें तो इसका महत्त्व कई गुना बढ़ जाता है। दुर्भाग्यवश समाज की संरचना भौतिक संसाधनों के संचयन पर आकर टिक गई है। सफलता के मानक पहले जहाँ आदर्श आचरण, करूणा और सौहार्द का भाव हुआ

करते थे, वहीं उतरोत्तर इन गुणों का लोप या संकुचन होता हुआ दिख रहा है। कुल मिलाकर समाज तनावग्रस्त स्थितियों में रहने को बाध्य हुआ है। कोरोना काल ने ऐसी स्थिति में आग में घी डालने का काम किया। घर में कैद रहने को बाध्य परिवारों के मानसिक तनाव को हम सब ने अनुभव किया। असहय और असहाय स्थिति का ऐसा अनुभव आधुनिक युग में शायद ही मनुष्य जाति ने कभी किया था। शिक्षा प्राप्ति के समानांतर डिजिटल माध्यम ने न केवल छात्र वर्ग विशेष को तनावग्रस्त किया वहीं पालक भी इसे समझने की प्रक्रिया में हलकान रहे। संगीत-शिक्षा को सामान्य शिक्षा का अभिन्न अंग बनाकर ऐसी परिस्थितियों से थोडा-बहुत नियंत्रित जा सकता है। संगीत शिक्षा का समान्य शिक्षा के साथ समावेश करने से पाठ्यक्रम के अन्य विषयों की दुरुहता एवं कष्टसाध्य अध्ययन में मनोवैज्ञानिक रूप से तनाव मुक्त हुआ जा सकता है। चूँकि ऐसे प्रयासों से छात्रों को सुगमता का अनुभव होता है, वे उत्साह और रूचि से भर जाते हैं एवं अन्य विषयों के प्रति रूचि स्वत: बढ़ जाती है। ऐसे प्रयास एवं प्रयोग अनुसन्धान प्रमाणित हैं जिन्हें इंगलैंड के सर्रे विश्वविद्यालय द्वारा किया गया।

संगीत व्यक्ति के मन को सबसे अधिक नियंत्रित रखता है। इस तथ्य से व्यक्तित्व के समुचित विकास में संगीत का महत्व स्पष्ट हो जाता है। संगीत प्राणिमात्र के सुख दु:ख का अनन्य मित्र है। मुशी प्रेमचंद जी के शब्दों को यहाँ प्रस्तुत करने का लोभ संवरण नहीं कर पा रही हूँ- "मनोव्यथा जब असहय और अपार हो जाती है, जब उसे कहीं शरण नहीं मिलता, जब वह रुदन और क्रंदन की गोद में आश्रय नहीं पाती तो यह संगीत के चरणों में आ गिरती है।"

विज्ञान की तरक्की के कारण हम आज संगीत किसी भी समय कहीं भी सुन सकते हैं। यह हमारे व्यस्त जीवन की थकावट और तनाव को दूर करने में मदद करता है। आज के समय में संगीत का बहुत बड़ा व्यापार है। यह केवल शांति और सुकून नहीं पहुंचाता बल्कि भविष्य में एक अच्छा करियर बनाने का भी रास्ता मुहैया करता है। शादी-विवाह,उत्सव, त्योहारों पर संगीत के बिना अधूरा लगता है।

संगीत के क्षेत्र में समस्तीपुर का अप्रतिम स्थान है। यह इसलिए भी संभव हो पाया है क्योंकि यहाँ की संस्कृति बहुत सहज, सुन्दर और धर्मनिरपेक्ष रही है. लोक-काव्य का अपना महत्त्व हम समस्तीपुर में देख सकते हैं. विद्यापतिनगर या विद्यापतिधाम का होना ही इस बात की गवाही है कि विद्यापति जैसा महान लौकिक साहित्यकार ने अपनी अंतिम सांस ऐसे महान भूमि पर ली. इसी प्रकार घर-घर का अनिवार्य हिस्सा बन चुकी पद्मश्री शारदा सिन्हा जी ने भी अपने संगीत के माध्यम से इस क्षेत्र को और समृद्ध किया है। बावजूद इसके जिस प्रशंसा का यह क्षेत्र हकदार है, संभवत: वह पहचान समस्तीपुर को नहीं मिल पाया है।

यह निर्विवादित कथन है कि मिथिला की पावन भूमि अनादि काल से वे वैदुश्य पूर्ण सारस्वत साधकों की पावन साधना भूमि रही है। महाकवि विद्यापति, महान नैयायिक उदयनाचार्य, गुदड़ी के लाल महान समाजवादी नेता कर्पूरी ठाकुर राष्ट्रीय राजनीति के चाणक्य के नाम से चर्चित बाबू सत्यनारायण सिंह समस्तीपुर क्षेत्र से ही है। समस्तीपुर के निवासियों की मूल आजीविका खेती है। यहां की मिट्टी की उर्वरा शक्ति बहुत अधिक है। कृषि के क्षेत्र में अपनी वैज्ञानिक प्रयोगों एवं उन्नत प्रजाति की खोज के लिए प्रख्यात राजेंद्र कृषि विश्वविद्यालय समस्तीपुर जिला के पूसा

में अवस्थित है। समस्तीपुर में साक्षरता दर की बढ़ोतरी का प्रतिशत पुरुषों तथा महिलाओं में देखी जा सकती है। समस्तीपुर जिले में ब्रिटिश काल में अनेक औद्योगिक इकाइयां कार्यरत थी। समस्तीपुर जिले के उत्तर पश्चिम में बूढ़ी गंडक की गोद में बसा हुआ पूसा अपने इतिहास के अनेक परिवर्तनों का साक्षी है। पूसा प्रखंड के अंतर्गत लक्ष्मीनारायणपुर वैनी ग्राम के समस्तीपुर अनुमंडलीय खादी ग्रामोद्योग समिति वर्ष 1965-66 से कार्यरत है। इस संस्था का खादी जगत में गौरवपूर्ण इतिहास रहा है। मसीना बीज निगम उन दिनों मक्का की बीज तैयार करने के लिए पूरे देश में जाना जाता है। समस्तीपुर स्थित पुरातात्विक एवं ऐतिहासिक स्थलों की जानकारी यह बताती है कि यह क्षेत्र ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक रूप से विकसित था। इतिहास बताता है कि बिहार के प्रसिद्ध जाट-जाटिन नृत्य की शुरूआत इसी गांव के जाट और जाटिनों से हुई थी।

अब तक हम यह जान चुके हैं कि मिथिला प्रभाव के चलते की प्रगतिशील परंपरा समस्तीपुर जिले में भी देखने को मिलती है। समस्तीपुर में संगीत की एक सुदीर्घ परंपरा रही है।

समस्तीपुर में संगीत की स्वातंत्र्योत्तर अवस्थिति को जानने-समझने से पहले, यह याद रखना जरूरी होगा कि भारत के पहले प्रधानमंत्री की सांस्कृतिक दृष्टि क्या थी? नेहरू को इसका गहरा अहसास था कि उनकी सांस्कृतिक और ऐतिहासिक ज़िम्मेदारी बंटवारे और औपनिवेशिक शोषण से त्रस्त टूटे-बिखरे भारत को एक आधुनिक राष्ट्र में गठित और गतिशील करने की है। ऐसा कर पाना बिना सजग सांस्कृतिक दृष्टि के संभव नहीं है इसका विवेक उनमें था। ऐसी दृष्टि का पहला कारक तत्व था भारत की सांस्कृतिक बहुलता का स्वीकार और उसका हर तरह से पोषण और प्रक्षेपण. नेहरू समझते थे कि यह विविधता कई धाराओं के संगम से रची गयी थी जो आंतरिक और बाहर से आयी दोनों ही थीं। सभी धर्मों, सम्प्रदायों आदि से इस बहुलता को रचने-पोसने में अपना योगदान दिया है। शास्त्रीय, पारम्परिक, लोक और आदिवासी आदि कलाओं ने मिलकर भारतीय कला परिदृश्य रचा है। भारत एक सभ्यता है जिसमें कई संस्कृतियां हैं जो सक्रिय और समरस रही हैं।

उनका यह मत था कि लोकतांत्रिक गणराज्य में राज्य को, बिना किसी वैचारिक हस्तक्षेप किये, संस्कृति के विविध रूपों को परोसना-बढ़ाना चाहिये और उसके लिए आवश्यक भौतिक ढांचा और अवसर सुलभ कराना राज्य की ज़िम्मेदारी है। वे यह भी चाहते थे कि भारतीय संस्कृति को अपनी सर्जनात्मकता, गतिशीलता और बौद्धिक सघनता से विश्व संस्कृति का महत्वपूर्ण हिस्सा होना चाहिये। उन्होंने नयी सांस्कृतिक सजगता के लिए वैज्ञानिक स्वभाव, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को अनिवार्य माना। नेहरू स्वयं विकास को संस्कृति के लिए आवश्यक मानते थे।

उसी दृष्टि का प्रतिफल था कि तीन राष्ट्रीय अकादेमियों की स्थापना की गयी और साहित्य, ललित कला और संगीत-नृत्य-नाटक को प्रोत्साहित करने के लिए राज्य सरकारों को भी ऐसी संस्थाएं स्थापित करने के लिए प्रेरित किया गया। भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण और भारतीय नृतत्व सर्वेक्षण को सशक्त और विस्तृत किया गया। गणतंत्र दिवस पर राष्ट्रीय लोक नृत्य समारोह का आयोजन शुरू हुआ जिसमें भारत की संस्कृति में लोक कलाओं के योगदान को रेखांकित करना था।

उक्त कथन से स्पष्ट आज़ादी के बाद कला के विकास में हमारे नेताओं ने अभूतपूर्व योगदान दिया। फलत: कलाओं का विकास हुआ। जिसका प्रतिफलन स्वातंत्र्योत्तर संगीत परम्परा के सुदृढ़

परम्परा के रूप में हम देख सकते हैं। समस्तीपुर जिले की संगीत परम्परा भी इसी सुदृढ़ परम्परा का क्षेत्रीय विस्तार है।

ध्रुपद, धमार, खयाल और ठुमरी जिले के सबसे प्रचलित शास्त्रीय संगीत के रूप हैं। इसी प्रकार समस्तीपुर जिले में लोकगीतों की भी एक अविछिन्न परंपरा रही है. स्थानीय लोकगीतों में चैत, कजरी, होली प्रचलित हैं।

उक्त विषय की सरलता हेतु हम इस विषय को तीन भागों में बांट सकते हैं - गायन, वादन और नृत्य के कलाकार। यह विभाजन शास्त्रीय और लोक संगीत परम्परा, दोनों पर लागू होंगे।

शास्त्रीय संगीत की परम्परा :

आइए पहले समस्तीपुर में शास्त्रीय संगीत की स्वातंत्र्योत्तर अवस्थिति का अवलोकन करें : शास्त्रीय संगीत में ताल,लय,मात्रा,रागरागिनी आदि से संबंधित जटिल नियमों का पालन करना होता है! शास्त्रीय संगीत निरंतर अभ्यास की मांग करता है. यह अभ्यास गुरु शिष्य परम्परा के माध्यम से प्रदान की जाती है.

समस्तीपुर जिले में शास्त्रीय संगीत की परम्परा :

समस्तीपुर जिले के शाश्त्रीय संगीत की परम्परा पर जब हम दृष्टिपात करते हैं, ये ज्ञात होता है कि शास्त्रीय संगीत की एक बहुत ही विकसित परम्परा हमें देखने को मिलती है। कई प्रसिद्द घरानों और गुरु-शिष्य परम्परा हमें इस जिले से देखने को मिलती हैं।

शास्त्रीय गायक कलाकार :-

प्रोफेसर राम स्वार्थ ठाकुर" मतवाला" - प्रोफेसर राम स्वार्थ ठाकुर "मतवाला" को लोग आमतौर पर मतवाला जी के नाम से अधिक जानते हैं। मतवाला जी समस्तीपुर की पहचान हैं तथा समस्तीपुर के वरिष्ठ संगीतकारों के भी "सर" हैं। राम स्वार्थ ठाकुर "मतवाला" जी गायन, तबला तथा सितार वादन पर समान अधिकार रखते हैं। संगीत के प्रति उनका लगाव बचपन से ही था। इनके पिता स्वर्गीय ब्रह्मदेव ठाकुर संगीत के ज्ञाता थे तथा जात्रा पाटी चलाते थे। इनका पैतृक गांव विद्यापतिनगर प्रखंड अंतर्गत गढ़ सिसई है। गायन की विधिवत शिक्षा इन्होंने दरभंगा घराना के प्रसिद्ध गायक स्वर्गीय विदुर मल्लिक से प्राप्त किया। स्वर्गीय विदुर मळलिक से मतवाला जी ने ध्रुपद , खयाल, ठुमरी, तराना, सरगम आदि की शिक्षा वर्ष 1960 से लेकर 1980 तक लगातार सीखा। तबला की तालीम अभी मतवाला जी ने पंडित सत्यभूवन पाठक से लिया। तबला के ज्ञान को प्रसिद्ध तबला वादक तथा अनोखेलाल जी के शिष्य पंडित रमेश महाराज जी के सानिध्य से परिपक्व किया। मतवाला जी ने सितार सीखना भी आरंभ कर दिया। शुरुआत में दरभंगा राज के सितार वादक पंडित रामेश्वर पाठक के पुत्र पंडित गोरेलाल पाठक से सितार सीखना आरंभ किया फिर आगे चलकर पटना निवासी पंडित रविशंकर के शिष्य सितारवादक पंडित देवेश मोइत्रा से सितार की शिक्षा आरंभ की तथा अपने साधना के द्वारा सितार वादन को चमकाया। मतवाला जी की प्रसिद्धि धीरे-धीरे बढ़ती गई। मतवाला जी समस्तीपुर महिला महाविद्यालय में संगीत व्याख्याता के पद पर बहाल किए गए। 1973 में समस्तीपुर में एक संगीत समारोह आयोजित कराया था, जिसमें देश के चोटी के गायक, वादक, नर्तक आए थे, जिसमें पंडित जसराज का भी गायन था और मतवाला जी की भी प्रस्तुति हुई थी। अपनी प्रस्तुति के अतिरिक्त मतवाला जी ने पंडित जसराज से गायन के साथ हारमोनियम संगति भी की थी।

अवकाश प्राप्ति के बाद मतवाला जी ने पुन: वकालत ज्वाइन किया तथा शनिवार रविवार को संगीत की कक्षा भी चलाते थे। इनके शिष्यों की संख्या अधिक है।

पंडित उमेश चंद्र झा - पंडित उमेश चंद्र झा समस्तीपुर के साथ आसपास के जिलों में चर्चित कलाकार है। शास्त्रीय गायन की प्रेरणा इन्हें अपने पिता से मिली। इनके नाना दीनानाथ झा, ग्राम ठहरा गोपालपुर के जिन्होंने पंचगछिया परंपरा के गुणियों से संगीत सीखा था। उमेश चंद्र झा के पिता ने अपने ससुर दीनानाथ झा से संगीत सीखा था। पंडित उमेश चंद्र झा ने विधिवत संगीत की शिक्षा 1976 से पूर्णिया के कला भवन में पंडित दुर्गादत्त झा एवं वीरेंद्र घोष से प्राप्त किया तथा श्री वीरेंद्र घोष से उमेश जी ने तबला की शिक्षा पाई पंडित उमेश चंद्र झा ख्याल ठुमरी शुभम विद्यापति संगीत लोक संगीत एवं तबला वादन पर समान अधिकार रखते थे। इनके बहुत शिष्य हुए।

पंडित शिवनंदन मिश्रा - पंडित शिवनंदन मिश्रा समस्तीपुर के वरिष्ठ गायक कलाकार रहे हैं। शिवनंदन मिश्र का गांव पटसा, भाया कुंडल जो रोसड़ा अनुमंडल के अंतर्गत है। इनके पिता का नाम रवि मिश्र था जो सामान्य किसान थे, ब्राह्मण होने के कारण आजीविका भी जातिवृति थी। संगीत के प्रति बचपन से लगाव था, प्रेरित होकर उन्हें उस समय पंचगछिया घराना के वरिष्ठ गायक कलाकार बटुक झा, जिनका असली नाम उनसे संगीत सीखने के लिए भेजा गया।पं. बटुक झा पंचगछिया के महान गायक मांगन जी के प्रमुख शिष्य थे। यहां उन्होंने लंबे समय तक संगीत की शिक्षा प्राप्त की। शिवनंदन जी समस्तीपुर के सम्मानित संगीत गुरु हैं। इनके पास पुरानी बंदिशों का अच्छा संग्रह है। इन्होंने अनेक शहरों में अपनी प्रस्तुति दी है। श्री नंदन जी नीलमणि केदारनाथ इंटर महाविद्यालय बिरहा में संगीत शिक्षक रहे हैं।

शास्त्रीय वादक कलाकार-

पंडित रामाश्रय मिश्रा - पंडित रामाश्रय मिश्रा जी सरकारी से अवकाश के बाद अपने पैतृक घर पचपैका में रहकर बच्चों को गायन और तबला वादन की शिक्षा देते हैं। पंडित रामाश्रय मिश्रा जी ने बताया कि बचपन में संगीत की प्रेरणा उन्हें अपने पिता पंडित घाना गिरी मिश्रा से मिली जो सुरीले भजन गायक थे। ये रामपुर के निवासी श्री राम बालक भारती से तानपुरे पर स्वर साधना का तरीका सिखा। इन्होंने श्री सोनेलाल चौधरी से तबला विधिवत सीखे। पंडित सोनेलाल चौधरी अपने समय के ताल के प्रख्यात विद्वान थे। पंडित रामाश्रय मिश्रा जी ने वर्ष 1955 में "प्रफुल्ल चंद्र चाकी संगीत महाविद्यालय" की स्थापना की। बच्चों को संगीत सिखाने लगे। वर्ष 1955 में ही उन्होंने तबला में "प्रवीण" की प्रयाग संगीत समिति,इलाहाबाद से प्रथम श्रेणी से उत्तीर्ण हुए। पंडित जी ने बच्चों को सुलभ तरीके से संगीत के स्वरों का ज्ञान हो, इसके वास्ते संगीत की पुस्तक भी लिखी जो अभी उपलब्ध है।

पंडित राम नरेश राय-

पंडित रमेश राय जी की गिनती राज्य के एक विद्वान तबला वादक में होती है। एक कुशल तबला वादक के साथ लेखक के रूप में भी जाने जाते हैं। पंडित राम नरेश जी का पैतृक घर समस्तीपुर जिला के रोसरा प्रखंड के अंतर्गत सकरपुरा ग्राम है। बचपन से ही इन्हें तबला में अभिरुचि थी। रामनरेश जी को नन्हकू बाबू ने आरंभिक तबला में विधिवत शिक्षा दी। बेगूसराय

जिला के प्रसिद्ध तबला वादक पंडित सोनेलाल चौधरी से तबला वादन की शिक्षा पाई। महिला महाविद्यालय समस्तीपुर से तबला वादक की सेवा से अवकाश प्राप्ति के बाद अपना ज्यादा समय तबला शिक्षण में ही लगाते हैं। पंडित राम नरेश जी ने" ताल दर्शन मंजरी" के नाम से दो भागों में तबला शिक्षण पुस्तक का लेखन किया है, जिसे इलाहाबाद के पाठक पब्लिकेशन ने छापा है। इनकी पुस्तक तबला के छात्र एवं संगीत प्रेमी के लिए उपयोगी है। इन्होंने कई लोगों को तबला की शिक्षा दी है जो आज अपनी अलग पहचान बनाए हुए हैं।

शास्त्रीय नर्तक कलाकार –

विष्णुदेव भंडारी- श्री विष्णु देव भंडारी कल्याणपुर के मालीनगर गांव के निवासी हैं। इन्होंने संगीत में गायन की शिक्षा इन्हें पं. सीताराम हरि दण्डिकर के पं. चन्द्र कांत झा से मिली थी।शास्त्रीय नृत्य की शिक्षा इन्होंने मुज़फ़्फ़रपुर के प्रसिद्ध नृत्य गुरु श्री रामचन्द्र जी से पायी थी।तबला वादन की शिक्षा इन्होंने बेगूसराय इनावकोठी के गुरु स्व. सोनेलाल चौधरी से पायी थी ।इनका कार्यछेत्र समस्तीपुर, दरभंगा, मुज़फ़्फ़रपुर, सीतामढ़ी रही है।इनके कई महत्वपूर्ण प्रस्तुति हुई था कई लोगों को नृत्य की शिक्षा देने जाते थे।वर्ष 2010 के आसपास भंडारी जी ने "विश्व शांति" के लिए पंद्रह दिनों का तबला यज्ञ का आयोजन ताजपुर में किया था , जिसमें क्रमश: कई तबला वादकों ने भाग लिया था। अर्थाभाव में भी भंडारी जी संगीत के प्रति व्यवसायिक नहीं हैं।

कृष्ण मोहन गिरी- श्री कृष्ण मोहन गिरी दरभंगा, समस्तीपुर, मुज़फ़्फ़रपुर, बेगूसराय, मधुबनी आदि जगहों पर शास्त्रीय नृत्यकार के रूप में प्रतिष्ठित हैं। कृष्ण मोहन जी का पैतृक गांव मुसरीघरारी के निकट रुपौली है। कृष्ण मोहन जी ने आरंभ में मुजफ्फरपुर के श्री रामचंद्र प्रसाद नृत्य आचार्य से शिक्षा पाई आगे चलकर यह कोलकाता जाकर लखनऊ घराने के गुरु से कथक नृत्य की शिक्षा प्राप्त की यह बेगूसराय के एक विद्यालय में संगीत शिक्षक हैं। इन्होंने कई समर्थ नृत्यकार बनाएं जिनमें तिरकिट नामक एक शिष्य, इन दिनों बेगूसराय के एक सरकारी इंटर कॉलेज में संगीत शिक्षक है।

सुगम संगीत की परम्परा :

सुगम संगीत से हमारा तात्पर्य ऐसे संगीत से है जिसे सरलता से सिखा जा सकता है। जिसे अर्जन की प्रक्रिया शास्त्रीय संगीत की तरह बहुत कठीन और कठोर नहीं होती। भाव प्रधान होता है। गायन वादन बहुत सरल होता है। सुगम संगीत शास्त्रीय संगीत और लोकगीतों के बीच कि पुलिया है। लोकप्रिय संगीत, फिल्मी गीत, भजन आदि इसी संगीत के अंतर्गत आते हैं. सुगम संगीत की तीन गेय विधाएँ हैं- गीत, ग़ज़ल और भजन। सुगम संगीत में राग पर जोर न होकर शब्द और भाव प्रधान होते हैं। अतएव संगीतज्ञ अपने हृदय के सूक्ष्म से सूक्ष्म भावों को स्वर व लय के माध्यम से प्रकट करता है। वर्तमान परिदृश्य में सुगम संगीत की प्रसिद्धि अभूतपूर्व है. सुगम संगीत का प्रयोग शिक्षा निष्पादन में अचूक है। तमाम तरह के संगीत संस्थाओं में सुगम संगीत का आधिक्य इसके लोकप्रिय होने को पुष्ट करता है।

समस्तीपुर जिले में सुगम संगीत की परम्परा :

गायन के क्षेत्र में समस्तीपुर में हम संगीत की गौरवशाली परम्परा देख सकते हैं, आइये एक विहंगम अवलोकन करते हैं।

सुगम संगीत के गायक कलाकार :-

सूर्य नारायण पोद्दार- सूर्यनारायण पौदार खाना मिथिलांचल में सुगम संगीत लोक संगीत एवं विद्यापति संगीत गायक के रूप में ख्यात हैं। ये मूल रूप से ग्राम रामपुर बथुआ ,पूसा, समस्तीपुर के निवासी हैं।घर में संगीत का पूर्ण वातावरण था। इनका बचपन से ही संगीत के प्रति लगाव रहा है था। सूर्य नारायण जी को आरंभिक संगीत की शिक्षा अपने चाचा छटटू पोद्दार से मिली, जिसमें मिथिला की पारंपरिक गीतों के साथ ग़ज़ल गीत भक्ति गीत के साथ विद्यापति संगीत एवं अवसर की गीत से इनकी आवाज पल्लेदार एवं सुरीली है। 70 दशक के मध्य में दरभंगा में भारत सरकार के गीत एवं नाटक प्रभाग की स्थापना के समय पोद्दार जी इस विभाग में गायक के रूप में नियुक्त हुए यहां रहकर पोद्दार जी ने एकल एवं सामूहिक संगीत रचनाओं में कार्यक्रम का संयोजन वादियों के उपयोग अधिक ही सीखा। सूर्य नारायण पोद्दार जी आकाशवाणी के भी हाई सैनी के सुगम संगीत कलाकार हैं। गीत- नाटक प्रभाग, दरभंगा इकाई द्वारा तैयार किया गया, प्रसिद्ध नृत्य - नाटक "विद्यापति रामायण "आदि में अपना स्वर दिया। यह दोनों संगीत रचनाएं राष्ट्रीय स्तर पर प्रसिद्ध हुई थी।

कमलेश्वरी सिंह" कमलेश"- कमलेश जी एक सुरीले गायक अभिनेता निर्देशक लेखक गीतकार संगीत रचनाकार सभी गुणों से संपन्न एक अनूठे व्यक्ति थे।अत्यंत ही प्रभावशाली काया के स्वामी थे। कमलेश जी दरमियानी का दौरा बदन कंधे तक लटकती घुंघराले बाल जस्ट पजामा कामदार कुर्ता पहने दूर से ही एक कलाकार दिखते थे। कोई भी व्यक्ति उनकी सामान्य बातचीत से ही प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता था। इस क्षेत्र के वे पृथ्वीराज थे। नाटक से लेकर फिल्मी दुनिया के अपने समय के कई नामी-गिरामी कलाकारों से उनका व्यक्तिगत संबंध था। वे एक सच्चे कलाकार थे। "नटराज नाट्य कला परिषद" के नाम से उनकी एक नाटक कंपनी जो देश में प्रसिद्ध थी, जिसमें देश भर के चुनिंदा अभिनेता गायक वादक रचना कार्य कार्यरत थे। फिल्मी दुनिया के गीतकार माया गोविंद नटराज से ही गए थे। कमलेश जी लिखित एवं अभिनीत कालजई नाटक है "कारण काल किनारा", "कफन", "देवर-भाभी" उस समय के संयुक्त बिहार में नटराज कंपनी ने लगभग 3000 से अधिक प्रस्तुति दी थी। इसके अतिरिक्त कोलकाता मुंबई महानगरों के मंचों पर नटराज के नाट्य प्रस्तुतियों को लोगों ने सराहा था। 90 के दशक के आरंभ में ही नटराज कंपनी बंद हो गई। जीवन के अंतिम समय में कमलेश जी "संस्कार भारती" से जुड़ गए। सन 2000 के आसपास मुंगेर में हृदय गति रुक जाने के कारण कमलेश जी का देहांत हो गया।

जसवंत सिंह - जसवंत सिंह 70 से 90 दशक के बीच के सुगम संगीत के क्षेत्र में प्रसिद्ध गायक कलाकार थे। उस समय उनका कार्यक्रम आकाशवाणी पटना से प्रसारित होता था। दरभंगा में आकाशवाणी की स्थापना के बाद यह दरभंगा से गाने लगे थे। जसवंत जी बी हाई सैनी के आकाशवाणी कलाकार थे। उन दिनों शारदा जी के साथ युगल स्वर में भी एचएमवी ने इनका रिकॉर्ड बनाया था जो बहुत चर्चित रहा था। यह एक सुरेंद्र गायक थे, जिसे सभी लोग पसंद करते थे संगीत की प्रारंभिक शिक्षा जसवंत जी ने अपने पड़ोसी श्री आर एस मतवाला से प्राप्त किया था। जसवंत सिंह के पिता पाकिस्तान से विस्थापित होकर समस्तीपुर के बंगाली टोला में आकर रहने लगे थे। जसवंत जी का जन्म समस्तीपुर में हुआ था। मतवाला जी के अतिरिक्त

जसवंत जी मुजफ्फरपुर चतुर्भुज स्थान के बाबू का ख्याल से भी गायन के तकनीक को सिखा।

लोक संगीत की परम्परा :

लोक संगीत का सबसे महापूर्ण रूप लोकगीत हैं। लोकगीत, लोक के गीत हैं। जिन्हें कोई एक व्यक्ति नहीं बल्कि पूरा लोक समाज अपनाता है। सामान्यत: लोक में प्रचलित, लोक द्वारा रचित एवं लोक के लिए लिखे गए गीतों को लोकगीत कहा जा सकता है। लोकगीतों का रचनाकार अपने व्यक्तित्व को लोक समर्पित कर देता है।) समस्तीपुर में लोक गायन की अविच्छिन्न परम्परा विद्यमान है। लोक गायक परम्परागत गाथाओं, और संस्कारिक गीतों नृत्य गीतों एवं पर्वों से जुड़े गीतों का गायन करते हैं। लोक गीतों का सम्बन्ध बहुत कुछ पुरानी चली आ रही परम्पराओं पर ही आधारित होता है।

समस्तीपुर जिले में लोक संगीत की परम्परा :

जहां तक समस्तीपुर के जिले के लोक गीतों की परम्परा की बात है तो यहां के लोकगीतों को सामुहिक रूप से या व्यक्तिगत रूप से बिना वाद्ययंत्रों की सहायता से भी गाया जा सकता है। यहां के लोकगीतों में बारहमासा का एक अलग स्थान है। बारहमासा में वर्ष के प्रत्येक मास का वर्णन है। समस्तीपुर में विद्यापति के नाम से विद्यापति नगर है, जहां विद्यापति ने अपने जीवन के मूल्यवान समय गुज़ारे। यहां विशेष तौर से विद्यापति के गीत गाने की परंपरा है। स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान अनेक ऐसे लोकगीतों का प्रणयन बिहार में हुआ, जो देश भक्ति, की आवाज को बुलंद करते थे और इनसे स्वतंत्रता सेनानियों का जनसामान्य को काफी प्रेरणा मिलती थी. उन दिनों राजेंद्र कॉलेज, छपरा के प्रिंसिपल मनोरंजन प्रसाद सिन्हा द्वारा रचित 'किरण दिया' गीत इतना लोकप्रिय हुआ कि इस गीत को गाने वालों को तुरंत कैद कर लिया जाता था।

बिहार में भिन्न-भिन्न पर्व त्योहारों के अवसर पर भिन्न-भिन्न प्रकार के मांगलिक गीत गाए जाते हैं, जिसे पर्व गीत कहा जाता है. उदाहरण के तौर पर तीज, छठ, गोधन, रामनवमी, जन्माष्टमी, होली, दीपावली के अवसर पर अनेक प्रकार के गीत गाए जाते हैं। इनसे अधिक बिहार में सांझ, पराती, झूमर, बिरहा, प्रभाती, निर्गुण गीत भी गाए जाते हैं। समस्तीपुर भी बिहार के गीतों की गौरवपूर्ण संस्कृति से अछूता नहीं। मिथिला के प्रख्यात कवि विद्यापति ने नचारी राग के गीतों का सृजन किया है। नचारी में भगवान शिव की स्तुति की जाती है। विद्यापति नृत्य में मिथिला के महान कवि विद्यापति के पदों को गाया जाता है एवं नृत्य किया जाता है। लगनी राग के गीतों की रचना भी महाकवि विद्यापति ने ही की थी। लगनी राग उत्तर बिहार के दरभंगा, मधुबनी, सहरसा, सुपौल, मधेपुरा, पूर्णिया के साथ समस्तीपुर जिले में विवाह के अवसर पर गाए जाते हैं। इस लोक नाट्य में लौंडा-नाच के साथ-साथ आल्हा, बारहमासा, पूरबी, नटवा, ओड़िया आदि का योग होता है। इस नाटक का आरंभ मंगलाचारण से होता है तथा महिला पात्रों की भूमिका पुरुष कलाकारों द्वारा निभाई जाती है। यह नृत्य जन्म आदि के अवसर पर पुरुषों अथवा थर्ड जेंडर द्वारा गाया जाता है। सामा-चकेवा बिहार में प्रति वर्ष कार्तिक मास में शुक्ल पक्ष की सप्तमी से पूर्णमासी तक आयोजित किया जाता है। यह भाई बहन से संबंध लोक नाट्य व पर्व है। किरतनिया समस्तीपुर का एक भक्तिपूर्ण लोकनाट्य है। इस लोक नाट्य के अंतर्गत भगवान श्री कृष्ण की लीलाओं का वर्णन भक्ति गीतों के माध्यम से किया जाता है।

लोक संगीत गायक कलाकार

डॉक्टर शारदा सिन्हा -

पद्मश्री श्रीमती डॉक्टर शारदा सिन्हा वर्तमान समय में इस क्षेत्र में जिन ऊंचाइयों को प्राप्त किया है। वह अपने आप में एक उदाहरण है। शारदा जी का जन्म वर्तमान सुपौल जिला के राघोपुर प्रखंड अंतर्गत विलासराव है। संगीत के प्रति उनका झुकाव बाल्यावस्था से ही था। स्वभाविक रूप से सुरीली आवाज की धनी रही है। स्वाभाविक रूप से हमें पंचगछिया घराने के पंडित रघु झांसी इन्होंने संस्कृत संगीत पुणे पटना मगध महिला महाविद्यालय में कॉलेज शिक्षा के समय भी अपनी संगीत साधना जारी रखा।सरदार जी के संगीत साधना से ख्याति फैलने लगी थी। ब्रजकिशोर बाबू ने भी यही प्रस्तावित किया शारदा जी की नियुक्ति समस्तीपुर महिला महाविद्यालय में संगीत प्राध्यापिका के पद पर हुई। संगीत का परिपक्क ज्ञान रखते हुए भी सरदार जी ने लोक संगीत को अपनाया। उनका यह मानना है कि संगीत का मूल स्वरूप लोक संगीत ही है, इन्हीं लोग रागनियां से शास्त्रीय संगीत के असंख्य रागों की उत्पत्ति हुई है। संगीत में इनकी सेवाओं के लिए भारत सरकार ने इन्हें पद्मश्री अलंकार से सम्मानित किया। आकाशवाणी के सर्वोच्च श्रेणी की कलाकार हैं। इन्होंने उप शास्त्रीय संगीत की विख्यात गायिका श्रीमती पन्ना देवी से ठुमरी, दादरा, टप्पा भी सीखा। इस समय शारदा जी देश के अनेक संस्थाओं से जुड़ी हुई है इन्हें देश विदेश से कई सम्मान प्राप्त हो चुके हैं। इन्होंने अपने गायन में जहां एक और महाकवि विद्यापति के मैथिली पदों को स्थान दिया वही भोजपुरी के अमर रचनाकार भिखारी ठाकुर एवं महेंद्र मिश्र के गीतों को गाया, वहीं सर्वप्रिय गीतकार रहीं लता के पदों को गाकर जन-जन तक पहुंचाया है। सरदार जी के योगदान बिहार की मिली-जुली संस्कृति की पहचान है धार्मिक एवं वैवाहिक समारोह की पहचान बन गई है। शारदा जी के लोक गीत बिहार की मिली-जुली संस्कृति की पहचान है। एक ओर जहां कुछ लोग भाषा के नाम पर क्षेत्रवाद का नारा बुलंद कर रहे हैं। वहीं शारदा जी के गाए गीत पूरे प्रदेश को सांस्कृतिक रूप से एक सूत्र में बांधने का काम किया है। यह संगीत की अभूतपूर्व शक्ति है। शारदा सिन्हा मिसाल हैं।

अरविंद कुमार झा -

अरविंद कुमार झा एक सुरीले तथा भावुक गायक हैं। समस्तीपुर, दरभंगा, मुजफ्फरपुर, सीतामढ़ी, पटना, झारखंड तक इनका प्रसार है। यह मुख्यत: विद्यापति संगीत गाते हैं। इसके अलावा आधुनिक मैथिली गीत तथा लोक संगीत बड़े ही सुरीले अंदाज में गाते हैं। अरविंद जी का पता समस्तीपुर के कईना ग्राम, पोस्ट लिलहौल है। यह ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय दरभंगा से समाजशास्त्र में स्नातक है तथा शास्त्रीय संगीत में प्रभाकर के साथ भास्कर परीक्षा उत्तीर्ण है। आरंभिक शिक्षा परदादा स्वर्गीय श्री कांत झा से मिली। श्रीकांत झा जो आमता गांव के संगीत गुणियों से संगीत का ज्ञान प्राप्त किया था। लगभग 76 वर्ष की आयु में 1991 के आसपास उनका देहांत हो गया। श्रीकांत झा अपने इलाके में रामायण गायन के लिए प्रसिद्ध थे। आकाशवाणी दरभंगा में 6 महीने तक नैमित्तिक उद्घोषक का कार्य कर चुके हैं। उन्हें 1988 से लोक संगीत में आकाशवाणी के बी. हाई श्रेणी के कलाकार हैं। अपनी किशोरावस्था में अरविंद जी प्रसिद्ध नाटक कंपनी " नटराज नाट्य कला परिषद " में अपनी सुरीली आवाज से श्रोताओं का मनोरंजन करते थे। अंतरराष्ट्रीय मैथिली सम्मेलन में चेन्नई,

मुंबई, कोलकाता, तिरुपति, गुवाहाटी में अपनी प्रस्तुति दे चुके हैं।

उपसंहार-

हमने इस लेख के मार्फत यह अनुभव किया कि संगीत की एक सुदृढ़ एवं अविछिन्न परम्परा समस्तीपुर जिले में रही है, स्वतंत्रता से पहले ऐसे कला के साधक रहे, जिन्होंने शास्त्रीय, सुगम एवं लोक संगीत के क्षेत्रों यथा गायन, वादन, नर्तन के प्रचार-प्रसार, विकास में महत्पूर्ण योगदान निभाया। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी इस परम्परा का निर्वहन बदस्तूर जारी रहा। यह जानकारी इस बात पर भी जोर देती है कि पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग, प्रशासन एवं धार्मिक न्याय बोर्ड के साथ-साथ आम नागरिकों को भी इसके संरक्षण हेतु आगे आना पड़ेगा। बिना जड़ के कोई वनस्पति जीवित नहीं रहता। हम भी एक पेड़ की तरह हैं। सांस्कृतिक परम्परा का बचाव खुद को बचाना है। संगीत, सांस्कृतिक परम्परा का ही अभिन्न अंग है।

सन्दर्भ :

1. https://hi.wikipedia.org/wiki/%E0%A4%95%E0%A4%B2%E0%A4%BE
2. https://archive.divyahimachal.com/2016/05/शिक्षा-में-अनिवार्य-हो-सं/amp/
3. https://fizikamind.in/शिक्षा-में-संगीत-का-महत्व
4. गोस्वामी हरीकिशन, भारतीय संगीत की परम्परा (वंशानुक्रम एवं वातावरण), पृ. 97
5. शर्मा डॉ. मनोरमा, (2008), संगीत विविध, अभिषेक पब्लिकेशन्स, चंडीगढ़, पृ. 127
6. शर्मा, डॉ. उमाशंकर (2001), संगीत का योगदान मानव जीवन के विकास में, पृ. 162
7. मिश्रा, डॉ. जया (2012), वर्तमान सामाजिक परिवर्तन में संगीत की भूमिका, पृ. 166
8. मतवाला राम स्वरूप, शास्त्रीय कला भवन आवास पर हुई बातचीत के आधार पर. दिनांक 12.06.2012.
9. झा पं. उमेश चन्द्र, भेंटवार्ता के आधार पर, स्थान : विष्णुपुर, बचुआ, दिनांक 09.04.2012
10. मिश्र पं. शिव नंदन, भेंटवार्ता के आधार पर, स्थान : समस्तीपुर, दिनांक 12.12.2014
11. मिश्र पं. रामाश्रय, बातचीत के आधार पर, स्थान : पचपैका, दलसिंह सराय, दिनांक 05.02.2012
12. राय पं. राम नरेश, साक्षात्कार के आधार पर, स्थान : पांडव जी के निवास स्थान पर, समस्तीपुर , दिनांक 09.08.2014
13. भंडारी विष्णुदेव, साक्षात्कार के आधार पर, स्थान : ताजपुर, दिनांक 03.10.2014
14. गिरी कृष्णमोहन, भेंटवार्ता के आधार पर, स्थान : रुपौली, दिनांक 06.10.2014
15. पोद्दार सूर्य नारायण, साक्षात्कार के आधार पर, स्थान : चूनाभट्टी, दरभंगा, दिनांक 09.04.2012
16. बबलू जी से भेंटवार्ता के आधार पर, स्थान : पितौकिया, दिनांक 03.04.2013
17. मतवाला आर एस एवं जसवंत सिंह जी के पुत्र परमिंदर सिंह 'पम्मी' से प्राप्त जानकारी के आधार पर के आधार पर, दिनांक 03.07.2013.
18. प्रकाश डॉ वेद, मतवाला प्रो मतवाला आर एस, सिंह ऋषिकेश प्रसाद, शर्मा राम कृपाल आदि से कई अवसरों पर प्राप्त जानकारी के आधार पर।
19. झा अरविन्द कुमार, भेंटवार्ता के आधार पर, स्थान : समस्तीपुर, दिनांक 08.06.2014

गोड्डा जिला के माध्यमिक विद्यालयों के नवीं कक्षा के छात्र-छात्राओं के शैक्षणिक तनाव एवं समायोजन का निष्पत्ति पर प्रभाव: एक अध्ययन

जितेंद्र पंडित

शोध सार

छात्रों में शैक्षणिक तनाव एवं विपरीत परिस्थितियों में भी समायोजन करने की क्षमता तथा जीवन में आने वाली समस्याओं का समाधान करने की योग्यता छात्रों में आत्म विश्वास बढ़ाती है। कई अध्ययन में पाया गया है कि अधिकतर आत्मविश्वास से पूर्ण छात्र शैक्षिक क्षेत्र में उपलब्धियाँ प्राप्त करते हैं। प्रस्तुत लेख में शैक्षिक तनाव, समायोजन तथा निष्पत्ति के संबंध का अध्ययन है, इस अध्ययन का उद्देश्य छात्रों के शैक्षिक तनाव, समायोजन का निष्पत्ति पर प्रभाव जानना है। इसके लिए गोड्डा जिला के उच्च माध्यमिक विद्यालय के छात्रों का प्रतिदर्श के रूप में लिया गया है। अध्ययन में पाया गया कि विज्ञान की निष्पत्ति स्तर पर समायोजन सार्थक एवं शैक्षिक तनाव के रूप में प्रभावी नहीं है।

मुख्य शब्द - *समायोजन, शैक्षिक तनाव, निष्पत्ति, माध्यमिक विद्यालय, आत्मविश्वास।*

प्रस्तावना

प्रत्येक व्यक्ति को कुछ न कुछ इच्छाएँ, आवश्यकताएँ तथा आकाक्षाएँ होती है वह इंन्ही को प्राप्त अथवा पूर्ण करने का निरंतर प्रयास करता है, किन्तु यह आवश्यक नहीं है कि वह सदैव ही इन आवश्यकताओं तथा इच्छाओं को पूरा कर ही लें। कुछ व्यक्ति अपनी इन इच्छाओं व आवश्यकताओं के साथ सामंजस्य स्थापित कर लेता है। इस प्रकार वे अपने आप को समायोजित कर लेता है। लेकिन जो व्यक्ति ऐसा नहीं कर पाते इनमें भगनासा, तनाव, द्वन्द, चिन्ता, शंका आदि मनोवेग उत्पन्न हो जाते हैं। जीवन में संतुष्टि और आनंद प्राप्ति का मार्ग समायोजन से होकर गुजरता है। समायोजन का अर्थ होता है कि आवश्यकता और माँगों से अपनी शक्ति और सामर्थ्य के संदर्भ में अनुकूलन कर के चलना। अत: जो इस प्रकार के मनोवैज्ञानिक अनुकूलन में जितना सामर्थ्य है, उतना ही अच्छी तरह अपना जीवन जी सकता है। व्यक्ति का समायोजन क्षेत्र तीन भागों में बँटा है। पहला व्यक्तिगत समायोजन, जो व्यक्तिगत आवश्यकताओं से संबंधित समायोजन है। दूसरा सामाजिक समायोजन जो परिवार, पड़ोस एवं समुदाय से संबंधित समायोजन है। और तीसरा व्यवसायिक समायोजन जो व्यवसाय संबंधित तथा कामकाज के क्षेत्र में समायोजन से संबंधित है। वहीं दूसरी तरफ व्यक्ति अपने जीवन में विभिन्न

सहायक व्याख्याता : मधुस्थली इंस्टीट्यूट ऑफ टीचर्स ट्रेनिंग मधुपुर।

प्रकार के ज्ञान तथा कौशल को अर्जित करता है। इस ज्ञान तथा कौशल में व्यक्ति कितनी दक्षता प्राप्त की है। इसका निर्धारण ज्ञान तथा निष्पत्ति परीक्षण से किया जाता है। विद्यालय में शिक्षा ग्रहण करने के लिए विद्यार्थी आते हैं। समान मानसिक योग्यता से संपन्न होने के कारण वे समय के एक ही अवधी में विभिन्न विषयों और कुशलताओं में विभिन्न सीमाओं तक प्रगति करते हैं उसकी इसी निष्पत्ति का परीक्षण सभी प्रकार की शैक्षिक संस्थाओं में किया जाता है। निष्पत्ति परीक्षणों के द्वारा यह माप किया जाता है कि छात्रों ने कक्षा में पढ़ाई गये विषयों की पाठ्य वस्तु के संबंध में कितना सीखा है। इस प्रकार के परीक्षणों में सम्पूर्ण पाठ्य वस्तु पर प्रश्न पूछे जाते हैं और उत्तरों के लिए अंक देकर उनका योग कर लिया जाता है। जिसे प्राप्तांक कहते हैं। इस प्रकार निष्पत्ति परीक्षण में पाठ्य वस्तु के सीखने को विशेष महत्व दिया जाता है। केलवीन रिचर्ड (2000)ने अमेरिका पब्लिक स्कूल के उच्च सामाजिक, आर्थिक वर्ग की बालक बालिकाओं में शैक्षिक तनाव, समायोजन के अध्ययन में पाया कि बालकों की अपेक्षा बालिकाओं में शैक्षिक तनाव, समायोजन की क्षमता अधिक होती है। वहीं दूसरी तरफ लाठरा (1998) ने माध्यमिक विद्यालयों में विज्ञान की निष्पत्ति पर लिंग विभेद के प्रभावों को ज्ञात करने के लिए अध्ययन किया तो पाया कि माध्यमिक विद्यालय के छात्रों में विज्ञान की निष्पत्ति स्तर पर लिंग भेद का सार्थक प्रभाव पड़ता है। विद्यालय के वातावरण में छात्रों के समयोजन की स्थिति छात्रों के निष्पत्ति को इस प्रकार प्रभावित करती है। इस प्रभाव को जानने के लिए शोधकर्त्ता के द्वारा इस संबंध में अध्ययन करने की जिज्ञासा उत्पन्न हुई।

अध्ययन का उद्देश्य

1. छात्र-छात्राओं का विज्ञान में निष्पत्ति का पता लगाना।
2. छात्र-छात्राओं में समायोजना का पता लगाना।
3. छात्र-छात्राओं का समायोजन एवं विज्ञान में निष्पत्ति में संबंध का पता लगाना।
4. छात्र-छात्राओं के शैक्षिक तनाव का पता लगाना।

परिकल्पनाएँ

1. छात्र-छात्राओं का लिंग के आधार पर विज्ञान की निष्पत्ति में कोई महत्वपूर्ण संबंध सार्थक अंतर नहीं है।
2. छात्र-छात्राओं का लिंग के आधार पर समायोजन में कोई महत्वपूर्ण संबंध सार्थक अंतर नहीं है।
3. छात्र-छात्राओं के समायोजन एवं विज्ञान की निष्पत्ति के स्तर में कोई महत्वपूर्ण संबंध सार्थक अंतर नहीं है।
4. छात्र-छात्राओं के समायोजन शैक्षिक तनाव एवं विज्ञान की निष्पत्ति के स्तर में कोई महत्वपूर्ण संबंध सार्थक अंतर नहीं है।

प्रतिदर्श

गोड्डा जिला के दो सरकारी उच्च विद्यालय के 50-50 छात्र एवं 50-50 छात्राओं का चयन किया गया तथा प्रतिदर्श की कुल संख्या-200 लिया गया है।

तालिका-1

विद्यालय के आधार पर प्रतिदर्श का वितरण

विद्यालय	छात्र-छात्राओं की संख्या
केन्द्रीय विद्यालय गोड्डा, झारखण्ड।	100

+2 उच्च विद्यालय, गोड्डा, झारखण्ड।	100
कुल-02	200

तालिका-2

चरों के आधार पर प्रतिदर्श का विवरण

चर	अनुक्रियाकर्त्ता	प्रतिशत
छात्रों की संख्या	80	40 प्रतिशत
छात्राओं की संख्या	120	60 प्रतिशत
कुल	200	100 प्रतिशत

अध्ययन विधि:

शोधकर्ता ने अध्ययन में सर्वेक्षण विधि से आँकड़ों का संग्रह किया एवं मध्य, मानक विचलन एवं क्रांतिक अनुपात का प्रयोग आँकड़ों के मूल्यांकन के लिए किया है।

परिणाम एवं व्याख्या

तालिका 3

छात्र-छात्राओं में लिंग के आधार पर समायोजन का स्तर

लिंग	संख्या	माध्य	मानक कार्तिक	विचलन अनुपात
छात्र	80	10.92	2.11	0.89
छात्राओं	120	11.18	2.11	

आँकड़ों से स्पष्ट होता है कि लिंग के आधार पर छात्र-छात्राओं के समायोजन एवं शैक्षिक तनाव का कार्तिक अनुपात 0.89 है, जो तालिका मूल्य (सार्थकता का मूल्य 1.97) से कम है अत: लिंग का छात्र-छात्राओं के समायोजन एवं शैछिक तनाव पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

तालिका-4

छात्र-छात्राओं में लिंग के आधार पर निष्पत्ति का स्तर

लिंग	संख्या	माध्य	मानक कार्तिक	विचलन अनुपात
छात्र	80	53.88	11.63	1.53
छात्राओं	120	54.95	11.85	

आँकड़ों से स्पष्ट होता है कि लिंग के आधार पर छात्र-छात्राओं के निष्पत्ति के स्तर का कार्तिक अनुपात 1.53 है जो तालिका मूल्य (सार्थकता का मूल्य 1.97) से कम है। अत: लिंग का छात्र-छात्राओं के निष्पत्ति के स्तर पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता ।

सभी आँकड़ों के विश्लेषण से यह ज्ञात होता है कि समायोजन और निष्पत्ति एक दूसरे पर निर्भर नहीं है। क्योंकि समायोजित व्यक्ति की भी निष्पत्ति निम्न हो सकती है। उच्च निष्पत्ति वाला व्यक्ति जरूरी नहीं कि पूर्णत: समायोजित हो।

निष्कर्ष:

शोधकर्ता ने तनाव एवं समायोजन पर विज्ञान में उपलब्धि का पता लगाने के लिए गोड्डा जिला के विभिन्न उच्च विद्यालयों से आँकड़ो का संग्रह किया। शोधकत्रा यह जानने का प्रयास किया कि छात्र-छात्राओं के माता-पिता की योग्यता, व्यवसाय, परिवारिक आय आदि का प्रभाव शैक्षिक तनाव, समायोजन एवं निष्पत्ति पर पड़ता है या नहीं, साथ ही शैक्षिक तनाव, समायोजन एवं विज्ञान में निष्पत्ति में संबंध स्थापित करने का प्रयास किया है। सरकारी विद्यायल । के छात्र-छात्राओं का परीक्षण किया, जिसमें समायोजन, शैक्षिक तनाव का माध्यम 54.86 व प्रमाणिक विचलन 3.94 प्राप्त हुआ तथा ठ विद्यालय

के अध्ययनरत छात्र-छात्राओं का समायोजन, शैक्षिक तनाव 54.36 व प्रमाणिक विचलन 3.55 पाया गया। दोनों विद्यालयों के छात्र-छात्राओं के समायोजन, शैक्षिक तनाव के मध्य में अंतर है। माध्य के इस अंतर की सार्थकता की गणना करने पर पाया गया कि मूल्य 0.05 है। अत: यह पाया गया कि दोनों विद्यालयों के छात्र-छात्राओं के समायोजन, शैक्षिक तनाव में कोई सार्थक अंतर नहीं है। वहीं दूसरी तरफ सरकारी विद्यालय के छात्र-छात्राओं के विज्ञान में निष्पत्ति के स्तर का माध्य 51.4 व प्रमाणिक विचलन 4.04 प्राप्त हुआ तथा उस विद्यालय के छात्र-छात्राओं के विज्ञान में निष्पत्ति के स्तर का माध्य 54.78 व प्रमाणिक विचलन 2.99 प्राप्त हुआ। अत: सम्पूर्ण आँकड़ों का विश्लेषण करने के बाद पाया गया कि छात्र-छात्राओं के शैक्षिक तनाव के समायोजन का छात्र-छात्राओं विज्ञान में निष्पत्ति पर सार्थक रूप से प्रभाव नहीं पड़ता हैं। शोधकर्त्ता के परामर्श अनुसार प्रत्येक उच्च विद्यालय में परामर्शदाता की नियुक्ति होनी चाहिए जो छात्र-छात्राओं में शैक्षिक तनाव, व्यवसायिक समायोजन के लिए आवश्यक मार्गदर्शन कर सके तथा विज्ञान के प्रति छात्र-छात्राओं में रूचि विकसित करने के लिए समय-समय पर उन्मुखीकरण कार्यक्रम के साथ-साथ संगोष्ठी का आयोजन किया जाना चाहिए।

संदर्भ ग्रन्थ सूची:

1. गुप्ता, एस के, एवं वाजपेयी, सुनील (1996) आदिवासी एवं सामान्य हाई स्कूल के बालकों के व्यक्तिगत प्रतिमानों के संदर्भ में समायोजनात्मक पक्ष का तुलनात्मक अध्ययन भारतीय आधुनिक शिक्षा, एन.सी.ई.आर.टी. नई दिल्ली।
2. चौधरी, कमलेश कुमार (1998) मूकबधिर विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों के समायोजन का अध्ययन भारतीय आधुनिक शिक्षा एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली।
3. बेकस, रोजवेल्ट, जेम्स (1939), जिले के शहरी विद्यालयों के छात्रों में कला के छात्रों पर विज्ञान निष्पत्ति का अध्ययन International Gournal of Psychology, 1990 Vol.- 3।
4. युनिस, जे. एवं रुमोलर, जे (1988)एडोलेशेएण्ट्स रिलेशनस विथ मदरस, फादरस् एण्ड फ्रेण्डस शिकागो यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो प्रेस।
5. पिटरसन ए.सी. एवं क्रोकेट डी0(1995) एडोलेशण्ट् डिपरेशन हो मोर गलर्स ? जनरल ऑफ यूथ एण्ड एडोलेशप्स वाल्यूम-20,पृ.स. 247-248।

लोक संगीत की अविरल धारा: एक विवेचन

डॉ. मधुमिता भट्टाचार्य

सारांश

संगीत तथा मानव जीवन का अविच्छन्न संबंध है। संगीत एक ऐसी कला है जिसमें स्वर तथा लय के माध्यम से मनुष्य अपने अन्तर्निहित भावों को अभिव्यक्त करता है। जिससे मन, चित्र, आत्मा को क्रमशः असीम आनन्द तथा परम् सुख की प्राप्ति होती है। लोक संगीत मानव जीवन की अभिव्यक्ति है। मानव जीवन का दुख, दर्द, हर्ष, विषाद, संघर्षमय जीवन की रहस्यमय गहन अनुभूतियों की अभिव्यक्ति इन लोक गीतों में सहज ही पा सकते हैं। इनकी धुन और लय मानव के थकित एवं श्रम से क्लान्त जीवन को हिलोर देती हैं। हर प्रान्त, हर देश के अपने लोक गीत होते हैं। लोक गीतों की परम्परा बहुत पुरानी परम्परा है। लोक जनमानस में हर एक रहन-सहन, तीज त्योंहारों उत्सवों पाणिग्रहण संस्कार, पुत्र जन्म, पूजा कथा पर मनोहारी लोकगीतों को गाने का प्रचलन वैदिक काल से ही चला आ रहा है। लोक गीत हमारे जीवन विकास की गाथा है। उनमें जीवन के सुख-दुख, मिलन विरह, उतार-चढ़ाव की भावनाएँ व्यक्त हुई है। सामाजिक रीति एवं कुरीतियों के भाव इन लोकगीतों में समाविष्ट होते है। आनन्द उल्लास और विषाद के अतिरेक में जन साधारण स्वर और लय के माध्यम से जब भावों की अभिव्यक्ति करता है, वह लोक संगीत कहलाता है। लोक संगीत की भाषा सरल, जन सहज एवं हृदयग्राही होती है।

कुंजी शब्द - *लोक, संगीत, संस्कार, हर्ष, विषाद, गीत*

प्रस्तावना -

लोक संगीत हमारी संस्कृति और भावनात्मक विचार का अक्षय भंडार है। लोक गीतों में कई विधायें है क्यों कि उनके कई प्रयोजन हैं। उनका मूल प्रयोजन जीवन से जुड़ा है। मांगलिक उत्सव हो, ऋतु पर्व हो, कृषि संबंधी कार्य सभी लोक गीत जीवन से जुड़े है। लोकगीतों की सौंदर्य दृष्टि बहुत ही व्यापक है। जन्म से मृत्यु तक हर संस्कार के अलग गीत हैं। भारतीय संस्कृति की अनूठी धरोहर है लोकगीत। काव्य रस तथा स्वर लय से ओत-प्रोत, हृदय से निकले मनोहारी गीत सहज ही मानस में गूंज उठते हैं। लोक-गीतों में हमारे संस्कारों की आत्मा है। गाँवों के चौपालों में गूंजते गीतों में संवेदना की वह तपिश है। जिसकी आँच हर हृदय को लगती है। लोक गीत सहज संगीतात्मक शब्द योजना है। लोक गीत संवेदनशील प्राणी की रागात्मक प्रवृत्ति है। लोक गीत, संगीत शास्त्र के अनुशासन से परे सहज गति, सहज, छन्द, स्वर, लय और धुन से सजा सँवरा है।

असिस्टेंट प्रोफेसर, संगीत गायन विभाग, संगीत एवं मंच कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी-221005, मो0 नं0 - 8840237697, ईमेल: madhumitavns09@gmil.com

शोध उद्देश्य एवं प्रारुप -

लोक संगीत का मानव जीवन पर विशेष प्रभाव है। हर व्यक्ति लोक से जुड़ा हुआ है। मेरे इस शोध का उद्देश्य और प्रारुप यही है कि लोग गीतों को सभी के समक्ष पहुँचाया जा सके। लोक संगीत की विशिष्टता को सभी समझ सकें।

लोक शब्द की व्युत्पत्ति -

लोक संगीत की भारतीय परम्परा बहुत पुरानी है। लोक जन मानस में हर एक तीज त्यौहारों उत्सवों, पाणिग्रहण संस्कार, पुत्र जन्म इत्यादि पर लोकगीतों को गाने का प्रचलन वैदिक काल से चला आ रहा है। लोक शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत के लोक दर्शने धातु में जन् प्रत्यय लगाने से हुई है। धातु का अर्थ होता है देखना। लट् लकार के अन्य पुरुष एकवचन में इसका रूप होता है लोकते। देखने वाला वह समस्त समुदाय जो इस क्रिया को करता है लोक के अन्तर्गत समविष्ट है। ''डॉ0 कुंज बिहारी दास ने लोक गीतों की परिभाषा देते हुये कहा है लोक संगीत उन लोगों के जीने की अनायास प्रवाहात्यक अभिव्यक्ति है जो सुसंस्कृत तथा सुसभ्य प्रभाव से बाहर कम या अधिक आदिम अवस्था में निवास करते है। यह साहित्य प्राय: मौखिक होता है और परम्परागत रूप से चला आ रहा है।''

स्व. सूर्यकिरण पारिख ने ग्राम गीत शब्द का खंडन करते हुये लिखा है हमारे ख्याल से लोकगीतों को ग्राम की संकुचित सीमा में बाँधना उनके व्यापकरण को कम करना है। ग्राम और नगर के भेद अर्वाचिन काल से बढ़े हैं। गीतों की रचना में नगर का कार्य इतना बढ़ा है जितना कि सर्वसाधारण जनता लोक का।

हिन्दी साहित्य कोश में लोक गीत शब्द के तीन अर्थ किये गये है - 1 लोक में प्रचलित गीत 2 लोक निर्मित गीत 3 लोक विषयक गीत।

किन्तु वास्तव में लोकगीत का तात्पर्य लोक में प्रचलित गीत ही है जिसे दो अर्थ दिये जा सकते है - 1. अवसर विशेष के प्रचलित गीत 2. परम्परा गीत।

लोक द्वारा निर्मित होने पर भी लोकगीत को किसी व्यक्ति विशेष से जोड़ा नहीं जा सकता क्योंकि रचनाकार को उस गीत में समस्त लोक के व्यक्तित्व को उभारना होता है। लोक साहित्य वस्तुत: जनता का वह साहित्य है जो जनता द्वारा जनता के लिये लिखा जाता है। लोक गीत हमारे जीवन विकास की गाथा है। उनमें जीवन के सुख-दुख, मिलन विरह, उतार-चढ़ाव की भावनायें व्यक्त हुई हैं। सामाजिक रीति एवं कुरीतियों के भाव इन लोकगीतों में हैं। इन लोक गीतों की परम्परायें सदियों से चली आ रही हैं। ये हृदय की गहराइयों से जन्में हैं। इन गीतों में सहजता सरलता है। इनमें सुख-दुख, प्रेम और करुणा के विविध रंग हैं।

लोक संगीत का उद्भव -

लोक संगीत की परम्परा भारत में अत्यन्त प्राचीन है। लोकगीतों के बीज हमारे ऋग्वेद में उपलब्ध होता है। प्राचीन साहित्य में जिन गाथाओं का उल्लेख मिलता है। उन्हें लोकगीतों का पूर्व रूप कहा जा सकता है। गीत के अर्थ में गाथा तथा उसे गाने वाले के अर्थ में गाथिन् शब्द का प्रयोग ऋग्वेद के मंत्रों में मिलता है। गृह्ययूत्र में विवाह, यज्ञोपवीत तथा यज्ञापि के अवसर पर गाथाएँ गायी जाती थीं। रामायण काल में भी शुभ अवसर पर स्त्रियों द्वारा मनोरंजन गीत गाने का वर्णन प्राप्त होता है। श्री राम के विवाह के अवसर पर स्त्रियों द्वारा गीत गाने का उल्लेख मिलता है। यथा -

''गाबहिं मंगल मंजुल बानी।
सुनि कलरव कलकंठ लजानी ।।

श्री रामचंद्र के विवाह के अवसर पर गाली गाये जाने का उल्लेख भी गोस्वामी तुलसीदास जी ने किया है -

''नारि वृन्द सुर जेंवत जानी।
लगीं देन गारी मृदु बानी।

राजा शिवसिंह के दरबार में विद्यापति ने पन्द्रहवीं शताब्दी में मधुर गीत लिखकर रस सृष्टि की है। स्पष्ट हैं कि लोकगीतों की परम्परा प्राचीन काल से चली आ रही है।

लोक संगीत आज भी सामूहिक रूप में अपने चौपालों गली गलियारों में विद्यमान है। लोक संगीत सामाजिक परम्पराओं से जुड़ा हुआ है। जीवन से जुड़ी हुई स्थितियाँ जब लोक गीतों के माध्यम से फूट पड़ती है तो वे अनायास ही रस की वर्षा करने लगती है। जन्म से लेकर मृत्यु तक के गीत इतनी स्वच्छन्दतापूर्वक प्रकट होते हैं कि मनुष्य अपने समाज और मिट्टी से अनायास ही जुड़ जाता है।

लोक संगीत में ताल और लय का प्राधान्य है। इसका छन्द यद्यपि संक्षिप्त होता है परन्तु भाव के अनुकूल होने से वह मन पर प्रभाव डालता है। इसके वाद्य लोक मानस की आवश्यकताओं के अनुरूप सीमित प्राकृतिक उपादानों से सहज रूप से निर्मित कर लिये गये जो प्रकृति से साम्य रखते हैं जैसे- बाँस का इकतारा, चिमटा, डमरू, शंख, मंजीरा, ढोलक, नगाड़ा, अलगोजा, थाली, घंटा, मुखचग, कठताल, तुरही तथा बीन इत्यादि।

लोकगीतों के पद स्वरमय एवं भावों से पूर्ण होते है। धुन विभिन्न सप्तकों में गाई जाती है। लोक धुने लयबद्ध होती हैं। लय के अनेक प्रकार लोक धुनों में मिलते है। लोकधुनों के स्वर समय के अनुरूप होते है। लोक धुनों की स्वर रचना प्रसंगानुरुप भी होती है। 'साधारणतया लोक धुनें चार-पाँच स्वरों में निबद्ध होते हैं। इस प्रकार लोकगीत जन साधारण के मनोंरंजन और अंतरिक भावनाओं के प्रतीक हैं। लोकगीतों का अपना माधुर्य होता है जो जनसाधारण को अपनी ओर आकृष्ट करता है।

लोकगीतों के प्रकार -

लोक गीतों के प्रकार निम्न है -

(क) सँस्कारों की दृष्टि से,

(ख) रस की दृष्टि से ,

(ग) ऋतुओं और व्रतों के अनुसार

(घ) जाति के आधार पर

(ड़) श्रम के आधार पर

(क) संस्कार की दृष्टि से - संस्कार भारतीय जीवन की नींव हे। सूरसागर में निम्न सोलह संस्कारों का उल्लेख है। गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्यन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्न प्राशन, चूड़ाकर्म, कर्णवेध, उपनयन, वेदारंभ, समावर्तन, विवाह, गृहस्थ, वानप्रस्थ, एवं सन्यास।

(ख) ऋतुओं एवं व्रतों के गीत - भारत ऋतु प्रधान देश है। यहाँ हर ऋतु का अपना सौंदर्य एवं महत्व है। इन ऋतुओं ने हर काल में कवियों को प्रभावित किया है। इन गीतों में वसन्त ऋतु, ग्रीष्म ऋतु, शरदकालीन गीत, शिशिर, हेमन्त, ऋतु इत्यादि का वर्णन होता है। वसन्त ऋतु में प्रकृति का सौंदर्य खिल उठता है और होली के रंगीले स्वर गूँज उठते है।

''फागुन मस्त महीना हो लाला'

वसन्त गीतों के अन्तर्गत चैती गीतों में प्रेम के विविध रूपों की व्यंजना होती है -

'आचल चैत उतपतिया हो रामा,
नइ भेजे पतिया।

इन गीतों में रंगीन भावनाओं के साथ करुणा का उद्रेक भी है। इन गीतों में हमारें दैनिक क्रिया

कलापों के चित्र हैं। व्रत एवं त्यौहार हमारी संस्कृति के आधार हैं। भारतीय संस्कृति व्रतों के रूप में जीवित है। ''पुत्र की मंगलकामना, अचल सुहाग के लिये तथा वर प्राप्ति के लिये व्रत किये जाते हैं। व्रत एवं त्यौहारों की परम्परा सदियों से चली आ रही है।

जातिपरक गीत -

इस तरह के गीतों में अहीरों का बिरहा अपना एक स्थान रखता है। जब भी कोई व्यक्ति प्रेतबाधा से पीड़ित होता है तो पचरा गाकर देवी का आवाहन किया जाता है। गोंड़ जाति के गीतों को कहरवा और तेलियों के गीतों को कोल्हू के गीत कहते हैं।

श्रमगीत -

कोई काम करते समय थकावट मिटाने के लिये जो गीत गाये जाते हैं उन्हें श्रमगीत कहते है। जिनमें जँतसार, रोपनी, सोहनी, आदि। लोक जीवन में प्रचलित स्त्री के क्रिया कलापों में चक्की पीसना, चरखा काटना, ओखली कूटना, पानी भरना, खेती करना आदि हैं। इन गीतों के माध्यम से स्त्रियों की मानसिक व्यथा की अभिव्यक्ति भी होती है।

निष्कर्ष -

लोक संगीत का सूक्ष्म अध्ययन होना चाहिये। इनसे वास्तविक जीवनचर्चा एवं सामाजिक क्रिया कलापों का विवरण मिलता है। लोक संगीत की परम्परा अत्यंत समृद्ध रही है। लोक संगीत सदियों से परम्परा में गंगा की भाँति प्रवाहित हो रहा है। लोक जीवन के अनुभव विचार, समस्यायें, सुख-दुख सभी मार्मिक ढंग से अभिव्यक्त होते रहे हैं। लोक संगीत जीवन का अभिन्न अंग है। इसे हमारी आने वाली पीढ़ी सीखे समझे और इस अमूल्य निधि को संरक्षित रखे।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. लोक गीतों के संदर्भ और आयाम - जैन डॉ. शांति, पृ.-1
2. राजस्थानी लोकगीत - पारिख श्री सूर्यकिरण, पृ.-1
3. लोकगीतों के संदर्भ और आयाम - जैन डॉ. शांति, पृ. - 1
4. वहीं - जैन डॉ. शांति, पृ. - 1
5. वहीं - जैन डॉ. शांति, पृ. - 5
6. वहीं - जैन डॉ. शांति, पृ. - 5

स्तोत्र गान और संगीत

डॉ॰ नमिता कुमारी

सारांश

भारतीय सभी कलाओं का आरंभ हम धर्म से जोड़ते हैं। भारतीय मनीषियों ने भी लौकिक एवं वैदिक गान को उन्नति एवं मोक्ष का साधन मानकर उसकी आराधना की है। वैदिक आराधना में भगवान को प्रसन्न करने का मार्ग स्तुति अधिक महत्वपूर्ण था। स्तोत्र रंजनगुण से युक्त हुआ करते हैं। ऋषि-मुनियों भक्तों एवं देवताओं द्वारा अपने-अपने आराध्य देवी-देवताओं को रिझाने, प्रसन्न करने के लिए स्तुति की गई है। संगीत को ब्रह्म रूप मानकर भारतीय मनीषी ऋक एवं स्तोत्र के माध्यम से ईश्वर स्तुति को सर्वश्रेष्ठ मानता है।

सूचक शब्द *स्तोत्र, स्तुति, संगीत, ईश्वर, भक्ति, आराधना।*

संगीत एक ऐसी कला है जहाँ मनुष्य अपनी भावनाओं को आसानी से एक-दूसरे तक प्रेषित कर सकता है। हमारे शास्त्रों में भी बताया गया है कि ईश्वर को पाने एवं उनसे प्रत्यक्ष अनुभूति का परम साधन संगीतोपासना है। धर्म प्रधान देश भारत का आधार भी आध्यात्मिक माना गया है।

प्राचीन काल से ही संगीत भगवद्प्राप्ति का, देवताओं को प्रसन्न करने का, परमानंद की प्राप्ति का प्रमुख साधन रहा है। संसारिक भोग- विलासों से वैराग्य तथा हरि चरणों में अनुरक्ति ही स्तुति की आत्मा है। जिन पदों में अभिवंदना के साथ-साथ कुछ याचना भी प्रकट की गई है, वे प्रार्थना या प्रार्थना स्तुति कहलाते है। जिन पदों में अराधक दुखीं स्वरों में भगवान की केवल जय-जयकार करता है, वे आरती भजन कहलाते हैं। जिन पदों में ईश्वर के नाम की ही पुनरूक्ति अभिव्यक्त होती है वे कीर्तन भजन कहलाते हैं।

यह मान्य है कि जहाँ भगवान के नाम का कीर्तन भजन होता है, वहाँ भगवान स्वयं निवास करने लगते हैं-

''नाहं वसामि बैकुंठे यागिनां हृदयों न च।
मदभक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद।''[1]

स्तोत्रों का आरंभ वैदिक काल से ही माना जाता है। ये स्तोत्र प्रारम्भ में देवी-देवताओं की आराधना में स्तोत्रिय ऋचाओं द्वारा प्रकट किए जाते थे। ऋग्वेद में गीत के लिए गीर गातु, गाथा, तथा साम शब्दों का प्रयोग पाया जाता था। अनेक रचनाकारों तथा विद्वानों ने स्तोत्र का अर्थ निम्न रूप में दिया है—

स्तवनाञ्जलि पुस्तक की प्रस्तावना में स्तोत्र शब्द की उत्पति इस प्रकार है-

''स्तूयते अनेन अति स्तोत्रम।''[2]

अर्थात- जिसके द्वारा स्तुति की जाए वह स्तोत्र है।

स्तोत्ररत्नावली के निवेदन में महाकवि

अतिथि शिक्षक, विश्वविद्यालय संगीत एवं नाट्य विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा (बिहार)

कालिदास के द्वारा '' स्तोत्रं कस्य न तुष्टये''3 विश्व में ऐसा कोई प्राणी नहीं है जो स्तुति से आनंदित न हो जाता हो। इसीलिए दण्ड, भेद दान आदि नीतियों में साम या स्तुति प्रशंसा को ही सर्वोतम माना गया है।

उपास्य की स्तुति करना, यह वैदिक आराधना का एक प्रकार है। स्तुति का अर्थ है गुणकीर्तन। जिस पदार्थ में जैसे गुण है उनका उसी प्रकार वर्णन स्तुति कहलाता है। स्तुति का प्रयोग ऋग्वेद के ही समय से चला आ रहा है।

वैदिक काल में संगीत का नेतृत्व सामवेद करता है सामगान विशेषत: यज्ञ के ही अवसरों पर तथा सूर्य, अग्नि वरूण आदि देवताओं के स्तुति रूप में किया जाता था। विधिपूर्वक साम-गान द्वारा प्रमुख देवता की स्तुति करने पर इश्वर प्रसन्न होते थे तथा इच्छा पूर्ति होती थी।

स्तोत्रगान का संगीत से घनिष्ठ सम्बन्ध है। स्तोत्रगान संगीत का अभेद अंग है। जब से स्तोत्रगान की नींव रखी गई तभी से संगीत का विशाल रूप व्यक्त होने लगा। ऋग्वेद में वर्णित मन्त्र से भी कुछ यही विदित होता है कि वैदिक धर्म में अधिक आभा वाले मन की वाणी आत्मा का संस्कार करती है।

स्तोत्र की यही परंपरा लगातार बनी रहीं। सभी भक्त कवियों ने स्तुति पर विश्वास व्यक्त किया है। भगवान की स्तुति उन्हें आनंदित करने, उन्हें हर्षित रखने की उद्देश्य से भी की गई मिलती है।

पौराणिक युग के अत्यन्त प्रसिद्ध ग्रन्थ 'रामायण' एवं 'महाभारत' पर चिंतन करने से ज्ञात होता है कि इस युग में भी स्त्रोत गायन का अत्यन्त प्रचार था। स्वयं रावण विद्वान संगीतज्ञ था। रावण ने भगवान शिव की प्रशंसा में असंख्य स्तोत्रों की रचना की जो शिव स्तोत्र के नाम से जानी जाती है। रावण द्वारा रचित शिव ताण्डव स्तोत्र शिव भक्तों में सर्वाधिक प्रचार में है। अपनी संगीतात्मकता के कारण यह स्तोत्र और भी लोक प्रिय हो उठा है।

जटाटवीगलज्जप्रवाहपावितस्थले
गले ऽ वलम्ब्य लम्बितां भुजघंगतुघगमालिकाम्।
डमड्डमड्डमड्डमन्निनादवड़मन्निनादवड्डमर्वयं
चकार चण्डताण्डवं तनोतु न: शिव: शिवम्।।4

रामायण के 16वें सर्ग में रावण द्वारा भगवान शिव का प्रसंग आता है। जब रावण का हाथ पर्वत के नीचे दब जाता तब रावण ने उमापति महादेव को प्रसन्न करने के लिए प्रणाम करके स्तोत्रों तथा सामवेदोक्त गायन किया।

महर्षि वाल्मीकि के अनुसार रामायण का निर्माण गेय काव्य के रूप में हुआ है। रामायण की अनुष्टुप छंद की रचना ही संगीत मूलक होने के संबंध में महाकाव्य में पाए जाते है।

रामायण की अनुष्टुप छंद की रचना ही संगीत मूलक होने के संबंध में उल्लेख महाकाव्य में पाए जाते है। लौकिक स्तोत्र का दर्शन सर्वप्रथम वाल्मीकि रामायण में 'आदित्यहृदय' स्तोत्र के रूप में देखने को मिलता है। सांगीतिक दृष्टिकोण से भी वाल्मीकि कृत स्तोत्र गेय है। गायन के साथ-साथ भेरी, मृदंग, वीणा आदि वाद्यों का वर्णन भी देखने को मिलता है। आदिकवि वाल्मीकि वैदिक व लौकिक दोनों संगीत में निष्णात थे। उन्होंने लव तथा कुश के माध्यम से सांगीतिक परिचय दिया।

गोस्वामी तुलसी दास भगवान राम के परम भक्त थे। श्रीरामचरितमानस में तुलसीदास जी द्वारा उत्तरकाण्ड में रूद्राष्टक भगवान शिव से संबंधित है। तुलसीदास द्वारा रचित स्तोत्र आज भी श्रद्दा और विश्वास से गाए जाते है-

नमामीशमीशान निर्वाणरूपं
विभुं व्यापकं ब्रह्म वेदस्वरूपम्।

अजं निर्गुणं निर्विकल्पं नीरीहं
चिदाकारमाकाश वासं भजेऽहम्।।

गोस्वामी तुलसीदास जी ने अनेक वाद्यों का उल्लेख किया है जो तुलसीदास कृत स्तोत्र में भी प्रयोग देखने को मिलता है-

घंटा-घंटी पखावज झांझ, वेणु उफ तार।
नूपुर धुनि, मंजीर, मनोहर, कर कंकन झनकार।।
झिल्ली झांझ, झरना उ फनव मृदंग निसान।
भेरि उपंग मृंग ख, ताल कीर कलगान।।6

तुलसीदास कृत रामचरित मानस में चौपाई छन्द, स्तोत्र तथा सोरठा आदि के दर्शन होते है। इन सब का प्राण संगीत ही है। इस तरह गोस्वामी तुलसीदास जी का उद्देश्य साहित्य के साथ-साथ संगीत के जरिए से भक्त को स्तोत्र तथा भक्ति से साराबोर करना है। तुलसीदास जी एक श्रेष्ठ भक्त, श्रेष्ठ संत, श्रेष्ठ कवि, होने के साथ-साथ श्रेष्ठ संगीतज्ञ भी थे।

शंकराचार्य भारत की विरल विभूतियों में श्रेष्ठ है। ये ईश्वर की एक भव्य विभूति थें। शंकराचार्य के नाम से असंख्य स्तोत्र काव्य उपलब्ध हैं। सगुण ब्रह्म की उपासना निर्गुण ब्रह्म तक पहुँचाने के आवश्यक साधन हैं। इसलिए शंकराचार्य जी ने आराध्य ब्रह्म के प्रतिमूर्ति शिव, विष्णु, हनुमान, गणपति आदि देवी-देवताओं की रम्य स्तुतियाँ लिखी हैं। उनमें संगीत की इतनी सुंदरता है कि श्रवणकर्ता का हिय उनकी ओर आकर्षित हो जाता है।

शंकराचार्य जी द्वारा रचित देव्यापराधक्ष-मापनस्तोत्रम् में देवी भगवती से क्षमा याचना करते हैं। ये स्तोत्र आज भी देवी भगवती से क्षमा याचना के लिए गाए जाते है-

जगनमातमार्तस्तव चरणसेवा न रचिता
न वा दत्तं देवि द्रविणमपि भूयस्तव मया।
तथापि त्वं स्नेहं मयि निरूपमं युत्रकुरूषे
कुपुत्रो जायते क्वचिदपि कुमाता न भवति।।7

शंकराचार्य द्वारा रचे असंख्य स्तोत्रों में संगीत का प्रचुर तत्व प्राप्त होते है। जिनके सस्वर गान से मानसिक शान्ति मिलती है।

निष्कर्ष

वैदिक संस्कृति में भक्ति एवं संगीत का घनिष्ठ संबंध रहा है। वैदिक काल की यह उपासना ऋषि मुनियों द्वारा भगवान की स्तुति स्तोत्र द्वारा प्रकट की गई। पुराणों में प्राप्त अनेक स्तोत्र भक्ति संगीत के ही रूप है। शंकराचार्य जी द्वारा अनेक स्तोत्र, रावण द्वारा रचित शिवताण्डव, गोस्वामी तुलसीदास जी द्वारा रचित रूद्राष्टक, विनयपत्रिका व रामचरितमानस महर्षि वाल्मीकि द्वारा रचित आदित्य हृदय स्तोत्र आदि संगीतात्मक हैं। इस प्रकार स्तोत्र गान की यह परम्परा वैदिक काल, से आरम्भ होकर पौराणिक, मध्य तथा आधुनिक युग तक चली आ रही है।

संदर्भ सूची

1. श्रीमद्भागवत् पुराण स्कंध-5
2. पुस्तक स्तवनाजलि पृ॰-3
3. स्तोत्ररत्नावली, गीता प्रेस गोरखपुर प्रथम संस्करण, सं॰ 2060, पृ॰ सं॰-2
4. स्तोत्ररत्नावली रावणकृत पृ॰सं॰- 46
5. स्तोत्ररत्नावली गोस्वामीतुलसीदास कृत पृ॰सं॰52
6. भैरवी संगीत शोध पत्रिका, पृ॰सं॰-117
7. स्तोत्ररत्नावली पृ॰सं॰-67

प्रवर्तमान सोशीयल मीडिया के सापेक्ष ध्वनिलेखागार का महत्व (YouTube के विशेष संदर्भ में)

प्रणव पंडया (शोधार्थी)
डॉ.अश्विनी कुमार सिंह (मार्गदर्शक)

शब्दखोज : *भारतीय शास्त्रीय संगीत, परंपरा, भारतीय संगीत, हिन्दुस्तानी संगीत, घराना, ध्वनिलेखागार, ध्वनिमुद्रण, सोशीयल मीडिया, YouTube (यु-ट्यूब)*

शोध सार

यह प्रबंध प्रवर्तमान समय में YouTube को एक ध्वनिलेखागार (Archives) के रूप में स्वीकार किया जा सकता है की नहीं? इस पर एक अध्ययन है। पूरे विश्व का संगीत मोबाइल और इन्टरनेट के माध्यम से YouTube हर उम्र के लोगों तक पहुंचाता है। यह YouTube उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत के परिप्रेक्ष्य में किस हद तक लाभदायक या हानिकारक है ? और क्या YouTube को एक पूर्ण रूप से ध्वनिलेखागार (Archives) कहना कितना सही कितना गलत है ? इस पर एक अध्ययन इस प्रबंध में सम्मिलित करने का लेखक द्वारा प्रयत्न किया गया है।

प्रस्तावना

प्रवर्तमान समय में मनुष्य ने विज्ञान के माध्यम से मानवीय जगत से जुड़े तमाम क्षेत्रो में आमूल परिवर्तन किए हैं। ऐसी वैज्ञानिक खोजे हुई हैं कि जिसने पूरे विश्व को हाथो की मुठ्ठी मे समा लिया हो और अपनी उँगलियो से जब किसी को भी अपने मन की बात अभिव्यक्त करनी हो वह कर सके ऐसा प्रावाधान दे दिया हैं। एक दूसरे से जुडने के लिए या अपनी भावनाओं को दुनिया के किसी भी व्यक्ति या समुदाय तक पहुंचाने के लिए या अभिव्यक्त करने के लिए सोशीयल मीडिया के रूप में एक खुला मंच सभी को प्राप्त हो गया हैं। एक ऐसा समय था, जब अपने मन की बात या कला प्रस्तुति बड़े जनसमुदाय तक पहुंचाने के लिए जगह जगह घूमना पड़ता था अथवा विविध भौगोलिक क्षेत्रों में जाकर मंच प्रदर्शन करना पड़ता था, तब कहीं जाकर वह कुछ लोगों तक अपनी कलाकृतियाँ या बात रख पाते थे, फिरभी उसमे पूरे विश्व के रसिको को तो समाहित कर ही नहीं सकते थे। किन्तु प्रवर्तमान समय में सोशीयल मीडिया के माध्यम से एक ऐसा मंच तैयार हो चुका हैं कि किसी भी विषय या विचार को एक या अनेक समुदाय के लोगों तक रखना चाहो तो वह बड़ी आसानी से रख

आसिस्टन्ट प्रोफ़ेसर, डिपार्टमेन्ट ऑफ इंडियन क्लासिकल म्यूजिक वोकल, फेकल्टी ऑफ़ परफोर्मिंग आर्ट्स, द महाराजा सयाजीराव यूनिवर्सिटी ऑफ़ बड़ौदा, वडोदरा, गुजरात

सकते हैं। भारतीय संगीत के परिप्रेक्ष्य में भी यह एक वैश्विक प्रचार-प्रसार की उत्तम प्रणाली हैं।

वर्तमान सोशीयल मीडिया और भारतीय संगीत

संगीत के क्षेत्र में यह सोशीयल मीडिया ने वह कार्य किया हैं कि पूरी दुनिया की संस्कृति एक दूसरे से एकरूप हो गई हैं। जिसमें facebook, YouTube, twitter जैसे अनेक एप्लिकेशन के माध्यम से संगीत क्षेत्र से जुड़े विद्यार्थी, कलाकार और संगीत रसिक अपनी कलाकृति दुनिया के एक विशाल समुदाय तक बड़ी आसानी से पहुंचा सकते हैं। YouTube टेक्नोलोजी का ऐसा स्वरूप है, कि छोटे बच्चे से लेकर बूढ़े, अमीर से लेकर गरीब सभी प्रकार के लोग शिक्षण हो या मनोरंजन किसी भी रूप में इस से अवगत और लाभान्वित हैं। पूरा कला जगत ही जैसे YouTube के रूप में हाथों में सिमट कर आ गया हो ऐसा प्रतीत होता है।

फरवरी – 2005 से शुरू हुए इस YouTube को चाड हर्ली, स्टीव चेन और जावेद करीम ने आविष्कृत और नामाभिधान किया। तब से लेकर आजतक विश्वभर के सभी लोगों ने YouTube के प्लेटफॉर्म पर अनेकानेक विडियो देखना, अपलोड करना और शेयर करना शुरू कर दिया।[1] यह विधा इतनी सरल प्रमाणित हुई की बच्चे, बूढ़े सभी एकदम सरलता से तमाम क्षेत्रो से जुड़े वीडियो इस पर अपलोड करने लगे। जिसका परिणाम यह है कि एप्रिल – 2022 के सर्वेक्षण अनुसार, अब तक 2,60,00,00,000 लोग YouTube से जुड़े हुए है।[2] जिसमें संगीत के लिए अलग ही YouTube Music भी शुरू किया गया है।

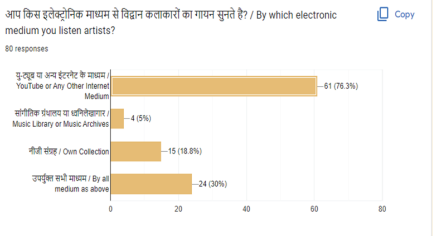
विश्व के सर्व प्रकारेण संगीत का लुफ्त विश्व की जनता इस YouTube के माध्यम से उठा रही है, जिसमें हमारा भारतीय शास्त्रीय संगीत अपने आप में एक अलग ही सुगंध लिए अपनी धरोहर को सँजोये अपना स्थान बना चुका है। जिसका पूर्ण श्रेय भारतीय शास्त्रीय संगीत के उन कलाप्रेमिओं को जो भारतीय संगीत को विश्वभर में फैलाने के लिए और भारतीय शास्त्रीय संगीत की विविध परंपराओ के अनेक गुरुओ, गुनिजनो, विद्वान, रसिक, विवेचक, विद्यार्थियों के ज्ञान एवं परंपराओं को एक अलग पहेचान देने की कोशिश में उनकी रचनाएँ, प्रस्तुति, व्याख्यान मालाएँ YouTube पर अपलोड करते रहते है, उन्हे जाता है। अनेक शैक्षणिक वीडियो द्वारा दूर दराज के लोग वह ज्ञान से लाभान्वित हो सकते है जो सामान्यत: संभव नही था।

जो ज्ञान और परंपराए लोगों तक पहुँचाने में समर्थ न हो, वह भी सरलतम रूप से YouTube की इस विधा से सामान्य जनता तक पहुँच जाती है। जिससे अनेक नामी कलाकारों के साथ गुमनाम कलाकारो को भी एक अलग पहचान मिल जाती है। इनके परिणाम स्वरूप जिन कलारसिक गुनिजनों के पास जो ध्वनिमुद्रण अपने निजानंद या अभ्यासार्थ संग्रहीत था, वह "बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय" मुक्त मन से YouTube के माध्यम से बाँट रहे है।

Invention of electronic media is a boon to Indian Music. From gramophone, rpm records, radio, Compact Disc (CD) to mobiles applications, YouTube, iTunes to electronic and robotic instruments the use of technology is increasing day by day in Indian classical music adding more updated versions with the changing times. Digitization to be defined is the conversion of

analogue information into digital information. Almost everything of entertainment is completely digitized in the present generation. From listening, manufacturing to the marketing of the musical tools, all are trapped in the web of digitization. Digitization has made the cost of distribution and production of recorded music cheaper compared to the traditional means. Internet plays a significant role in marketing and promotion of music. Ability to download individual songs has diminished the need of traditional music product which includes the full length album. Independent artists are able to find audience with the help of social media (Mathew, 2013). The ease with which people can access music, either legally via iTunes and other such platforms, or illegally via file sharing has coincided and perhaps been a prime mover in the drop off physical music sell, much to the chagrin of those in the industry. But on the flip side the accessibility of digital recording equipment and the ability of artist to distribute their material world wide without a record deal have opened up new and exciting opportunity for artists (Gallagher, 2013). Gap between the artist and audience is bridged up by the social media, as mentioned by Dean Shapero- "Current marketing and media have humanized the star to a greater degree than ever before. Therefore, the iconic image of the start is not as relevant as before, but the influence is as greater than ever before due to the high rates of social engagement now available" (Shapero, 2015)[3].

भारत के विविध भौगोलिक क्षेत्र में गुरु-शिष्य परंपरा या यूनिवर्सिटी में संगीत का अभ्यास करते ८० कला साधको पर किया गया सर्वेक्षण यह दर्शाता हैं कि संगीत सुनने के विविध माध्यमों में यू-ट्यूब या अन्य इंटरनेट के माध्यम से संगीत सुनने वालो की संख्या 73.30% हैं। जो यू-ट्यूब की लोकभोग्यता को दर्शाता हैं।



विश्वभर में भारतीय शास्त्रीय संगीत के जितने भी चाहक हैं, उन्होने भारतीय शास्त्रीय संगीत के अनेक प्रसिद्ध और दूर्लभ द्रश्य-श्राव्य ध्वनिमुद्रण को YouTube पर अपलोड करके जैसे एक सांगीतिक ग्रंथालय और ध्वनिलेखागार का एक मिला-जुला रूप सामान्य जनता के लिए उपलब्ध करा दिया हैं। विद्यार्थियों, गुरुओं, कलाकारो और रसिको द्वारा भारतीय शास्त्रीय संगीत के अध्ययन-अध्यापन विषयक, कला प्रस्तुति और दुर्लभ दृश्य-श्राव्य ध्वनिमुद्रण खुले मंच से सांझा किए गए हैं कि जिससे संगीत क्षेत्र से जुड़े सभी लोग लाभान्वित हो रहे हैं।

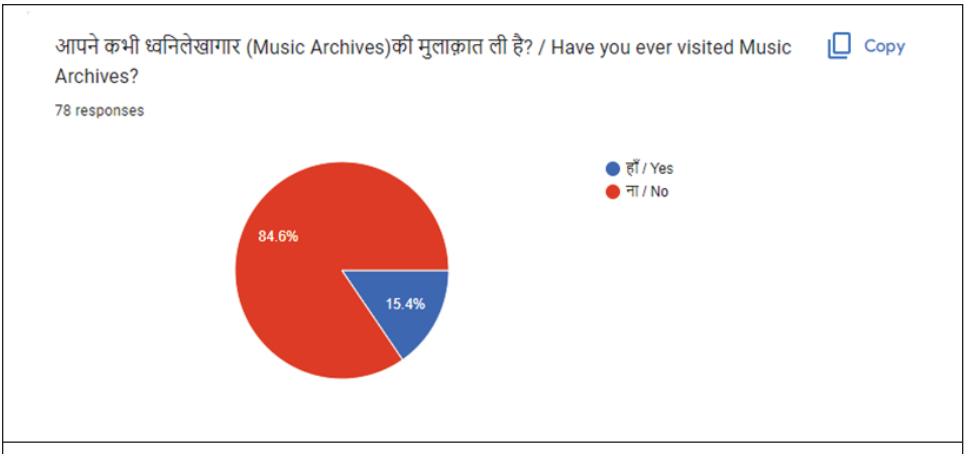
यू-ट्यूब ध्वनिलेखागार के रूप में

प्रवर्तमान समय में यू-ट्यूब आर्काइव्स अस्तित्व में हैं। विश्वभर के संगीत चाहको द्वारा अपलोड किए गए अनेक दृश्य-श्राव्य ध्वनिमुद्रण से स्वत: एक संग्रह बनना सर्व सामान्य वास्तविकता है। यू-ट्यूब द्वारा किसी भी दृश्य-श्राव्य ध्वनिमुद्रण को शोध प्रक्रिया से पाया जा सकता हैं। कुछ मिले-जुले शब्दो के शोध से ही आपके शोध विषयक या उनके समान अन्य तमाम जो यू-ट्यूब में समाहित हैं वह सभी दृश्य-श्राव्य ध्वनिमुद्रण आपके सामने प्रकट हो जाते हैं और आप उनका आनंद ले सकते हैं।

सरलत्तम कार्यप्रणाली एवं निम्नलिखित बाबतों के कारण यू-ट्यूब ध्वनिलेखागार के सापेक्ष उत्तम माध्यम अनुभूत होता हैं।

ध्वनिलेखागार	यू-ट्यूब
ध्वनिलेखागार के ध्वनिमुद्रणों को सुनने के लिए निश्चित स्थान पर जाना पड़ता हैं। (हालाँकि कुछ ध्वनिलेखागार इन्टरनेट के माध्यम से अपनी कलाकृति सामान्य जनता से सांझा करते हैं।)	इन्टरनेट के माध्यम से दुनिया के किसी भी कोने से एक्सेस किया जा सकता हैं।
ध्वनिमुद्रणों की संख्या कम होती हैं।	ध्वनिमुद्रणों की संख्या अधिकतम होती हैं।
ध्वनिलेखागार में ध्वनिमुद्रणों के दाता सीमित होते हैं। सभी दाताओ के ध्वनिमुद्रणों को सरलता से यह मंच और स्थान नहीं मिलता।	यु-ट्यूब में पूरे विश्व से ध्वनिमुद्रणों को एक मंच और स्थान मिलता हैं।
ध्वनिलेखागार में नियत प्रवेश प्रक्रिया पूर्ण किए बिना कोई भी ध्वनिमुद्रण तक सामान्य व्यक्ति पहुँच नहीं सकता।	सामान्य प्रवेश प्रक्रिया के बाद कोई भी ध्वनिमुद्रण तक पहुँच सकता हैं।
ध्वनिमुद्रणों के संदर्भ में श्रोताओं के अभिप्राय कम मिलते हैं।	ध्वनिमुद्रणों के संदर्भ में श्रोताओं के अभिप्राय अधिकतर मिलते हैं।
सामान्य जनता में ध्वनिलेखागार के प्रति जागरूकता बहुत कम दिखाई पड़ती हैं।	यू-ट्यूब सुप्रसिद्ध एवं सरल होने के कारण सामान्य जनता में लोकप्रिय हैं।

भारत के विविध भौगोलिक क्षेत्र में गुरु-शिष्य परंपरा या यूनिवर्सिटी में संगीत का अभ्यास करते ७८ कला साधको पर किया गया सर्वेक्षण यह दर्शाता हैं कि ध्वनिलेखागार की मुलाक़ात लेनेवाले संगीत साधको की संख्या सिर्फ १५.४०% हैं। जो ध्वनिलेखागार के प्रति बहुत कम जागरूकता को दर्शाता हैं।



ध्वनिलेखागार सीमित क्षेत्र के लोगों से संबन्धित होने के कारण दुर्लभ ध्वनिमुद्रणों के विषय में अत्यंत प्राचीन कलाकृतियों के मिलने की संभावना अत्यंत कम होती हैं।	यू-ट्यूब के माध्यम में पूरे विश्व से जुड़ाव होने के कारण कोई ऐसी दुर्लभ कलाकृति मिलते रहने की संभावना अधिकतम होती हैं, जो प्राचीनतम हो।[4]

किन्तु, निम्नलिखित कुछ बाबतों से यू-ट्यूब पूर्णत: ध्वनिलेखागार का रूप लेने में असमर्थ दिखाई पड़ता हैं।

१. ध्वनिलेखागार में संकलित किए गए ध्वनिमुद्रणों को एक विशिष्ट रूप से वर्गीकृत करके और उनकी सम्पूर्ण माहिती की सत्यता को सुनिश्चित करके रक्खा जाता हैं। जिसके लिए उन क्षेत्रों के क्षेत्र विशेषज्ञ का मार्गदर्शन व सेवाए भी ली गई होती हैं। जबकि यू-ट्यूब में अपलोड किए जानेवाले दृश्य-श्राव्य ध्वनिमुद्रण की माहिती स्पष्ट और सत्य ही हो वह निश्चित नहीं कहा जा सकता क्योंकि अपलोड करनेवाला व्यक्ति उन विषय का जानकार हैं ही वह कह नहीं सकते।

२. ध्वनिलेखागार के ध्वनिमुद्रणों के उद्‌भव स्थान से लेकर प्रवर्तमान समय तक मूल स्वरूप को ऐसे ही बिना कोई हानि बरकरार रखा गया होता हैं और उन बाबतों पर बारीकी से कार्य किया गया होता हैं। जबकि यू-ट्यूब में ध्वनिमुद्रण के मूल उद्‌भव स्थान या उनकी मूल अवस्था में आए बदलाव पर बारीकी से ध्यान नहीं दिया जाता। उदाहरण के तौर पर किसी गायक द्वारा गाये हुए राग का ध्वनिमुद्रण एक से अधिक प्रति में उपलब्ध हो तब किसी तकनीकी वजह से या अन्य कारण से किसी ध्वनिमुद्रण में स्केल/पीच में मूल ध्वनिमुद्रण के सापेक्ष बदलाब हुआ हो तब भी वह यू-ट्यूब के माध्यम में संगृहीत होता हैं। यदि अपलोड कर्ता जानकार हैं तो सुधार की संभावना हैं, अन्यथा उन बारीक मुद्‌दो पर कोई ध्यान नहीं देता और त्रुटियुक्त ध्वनिमुद्रण यू-ट्यूब में मिलता हैं जो भ्रमित करता रहता हैं। हालाँकि ध्वनिलेखागार में विशेषज्ञो द्वारा ऐसे ध्वनिमुद्रणों को संग्रह से उन्हे अलग कर दिया जाता हैं।

३. ध्वनिलेखागार में संगृहीत ध्वनिमुद्रण विश्वसनीयता पर खरे उतरते हैं। जो

ध्वनिलेखागार का मूल उद्देश्य हैं। जबकि यू-ट्यूब में समाहित सामग्री की विश्वसनियता पर प्रश्नार्थ उद्भावित हो सकते हैं।

४. ध्वनिलेखागार में संगृहीत माहिती की मात्रा यू-ट्यूब के सापेक्ष सीमित होने से ध्वनिलेखागार के ध्वनिमुद्रणों की वर्गीकृत सूची उपलब्ध हो सकती हैं, जिससे शोध प्रक्रिया सरल हो सकती हैं। जबकि यू-ट्यूब में दृश्य-श्राव्य ध्वनिमुद्रणों की संख्या अधिक होने से वर्गीकृत सूची उपलब्ध नहीं होती इसलिए शोध प्रक्रिया सचोट नहीं हो सकती।

५. ध्वनिलेखागार का मूल उद्देश्य संस्कृति का संरक्षण और संवर्धन हैं जो शोधार्थी को अध्ययन-अध्यापन हेतु एकाग्रता से मार्गदर्शन कराने हेतु अनुरूप माहौल दे सकता हैं। जबकि यू-ट्यूब मूलत: सामान्य जनता के मनोरंजन के हेतु निर्मित हुआ है इसलिए अध्ययन-अध्यापन प्रकिया में मूल विषय से अन्य विषयो में भटका सकता हैं।

६. भारतीय संगीत भारत की सांस्कृतिक विरासत हैं, जिनके योग्य संरक्षण और संवर्धन में भारत का सांस्कृतिक हित छिपा हैं। भारत जितना अपने देश की विरासत को लेकर संवेदनशील हैं, उतना कोई अन्य देश संवेदनशील हो वह जरूरी नहीं। यू-ट्यूब अन्य देश से संचालित होता हो और अपलोड किए गए दृश्य-श्राव्य ध्वनिमुद्रण का योग्य संरक्षण हो वह सुनिश्चित नहीं किया जा सकता। अन्य देशो में लगे प्रतिबंध यह बात प्रस्तुत करती हैं कि भारतीय परंपरा के संरक्षण के लिए यू-ट्यूब संपूर्णत: योग्य माध्यम नहीं माना जा सकता। जबकि भारत के ध्वनिलेखागार भारतीय परंपरा के संरक्षण हेतु विश्वसनीय माध्यम हैं।

७. कुछ ध्वनिलेखागार में विषय निष्णात मार्गदर्शक एवं ध्वनिलेखपाल होते हैं। जबकि यू-ट्यूब में कोई मार्गदर्शक या ध्वनिलेखपाल ही नहीं होता।

८. ध्वनिलेखागार में सामान्यत: कलाकार की अनुमति के बिना उनके ध्वनिमुद्रण नहीं रक्खे जाते। जिससे उनके आहत होने या कॉपीराइट संबन्धित प्रश्न बहुत ही कम उपस्थित होते हैं। हालाँकि अपवादरूप किस्सो में कुछ ध्वनिलेखागार में रक्खे ध्वनिमुद्रणों के प्रति कलाकारों की नाराजगी होती हैं। जबकि प्रवर्तमान समय में यू-ट्यूब आर्थिक उपार्जन का माध्यम बन जाने के कारण लालच में कई लोगों द्वारा कलाकारों की कलाकृति उनकी पूर्व मंजूरी के बिना और गरिमापूर्ण रूप से यु-ट्यूब में रक्खी नहीं जाती और कला और कलाकार का अवमूल्यन होता दिखाई पड़ता हैं जिससे कलाकार काफ़ी आहत अनुभूत करते हैं।

निष्कर्ष

प्रवर्तमान सोशीयल मीडिया के सापेक्ष ध्वनिलेखागार गुणवत्ता और विश्वसनीयता के रूप में ज्यादा कारगर साबित होता दिखाई देता हैं। जबकि सरलतम कार्यप्रणाली, लोकभोग्यता और व्यापकता को ध्यान में रखने पर यू-ट्यूब सामान्य जनता तक संस्कृति का प्रचार-प्रसार करने में ज्यादा कारगत साबित होता हैं। अनेक मुद्दो पर यू-ट्यूब योग्य और सरल होने के बावजूद संस्कृति के जतन, संरक्षण, संवर्धन एवं विद्यार्थी, गुरु और कलाकारो के संबंध में ध्वनिलेखागार की तरह विश्वसनीयता में खरा

नहीं उतर सकता। ध्वनिलेखागार को सामान्य जनता में लोकभोग्य एवं उपयुक्त करने के लिए प्रचार-प्रसार की और यू-ट्यूब की तरह सरल कार्यप्रणाली अमली करने की आवश्यकता हैं।

संदर्भ सूची

1. Norlidah Alias*, Siti Hajar Abd Razak, Ghada elHadad, Nurul Rabihah Mat Noh, Kokila Kunjambu, Parimaladevi Muniandy / A content analysis in the studies of YouTube in selected journals / Department of Curriculum & Instructional Technology, Faculty of Education, University of Malaya (2013)
2. https://en.wikipedia.org/wiki/YouTube
3. Vedabala, Samidha / "Indian Classical Music : Traits and Trends" / published by Research Trend / ISSN No. (Online): 2319–5231 / International Journal on Arts, Management and Humanities 6(2): 167-174(2017) / page 5

साक्षात्कार

4. Das Gupta, Amlan / The founder of the archive, Ex-Director, School of Cultural Texts and Records, November-2022
5. Pradhan, Anish / International Tabla Player, New Delhi, November-2022

हिंदी सिनेमा तथा शास्त्रीय संगीत : एक अध्ययन

डॉ. अमित कुमार दुबे

शोध सार

चित्रपट तथा संगीत का सम्बन्ध बहुत पुराना है। जब चित्रपट अपने पूर्व रूप अर्थात् नाट्य हुआ करता था तब भी संगीत उसके साथ था । नाट्य अथवा चित्रपट की कहानियों के भाव को दर्शकों तक प्रभावी रूप से पहुँचाने में संगीत का विशेष योगदान होता है । वर्तमान काल में चित्रपट के लिए प्रत्यक्ष रूप से नवीन प्रकार का संगीत प्रयोग हो रहा है जिसे फिल्म संगीत के नाम से जाना जाता है । किन्तु आरम्भिक काल में फिल्मों में प्रयुक्त प्रत्यक्ष संगीत का शास्त्रीय संगीत से साम्यता थी । इससे तत्कालिक जनता के सांगीतिक स्वाद तथा शास्त्रीय संगीत के प्रति समझ को अनुमानित किया जा सकता है । जिन फिल्मों ने शास्त्रीय संगीत को आधार बनाया अपेक्षाकृत उनकी लोकप्रियता अधिक प्राप्त हुई, इन फिल्मों के साथ ही सम्बंधित गीत तथा उन गीतों के संगीत निर्देशकों को भी अलग से लोकप्रियता मिलि । प्रस्तुत शोध पत्र में हिंदी सिनेमा में शास्त्रीय संगीत के प्रयोग के सन्दर्भ में चर्चा करने का प्रयास किया गया है ।

सूचक शब्दः- *संगीत निर्देशक, फिल्म संगीत, चित्रपट, संगीतज्ञ, सवाक तथा अवाक, लोकप्रियता*

शोध प्रविधिः-

प्रस्तुत शोध पत्र के लेखन के लिए विविध पत्र-पत्रिकाओं, पुस्तकों एवं सोशल मीडिया का सहयोग लिया गया है।

शोध उद्देश्यः-

प्रस्तुत शोध पत्र के लेखन का मुख्य उद्देश्य हिंदी सिनेमा में शास्त्रीय संगीत के प्रयोग तथा इस सन्दर्भ में तत्कालिक जनरुचि के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करना है।

शोध विषयः-

संगीत, मानव के अंतर्मन में स्पन्दित सूक्ष्म तरंगों से एकाकार होकर उन्हें आनन्द प्रदान करता है। संगीत अपरिमित शक्तियों का भंडारण है। यह शक्ति जीवमात्र को आल्हाद के साथ ही मानसिक शान्ति प्रदान करती है। वर्तमान काल तक संगीत के विविध स्वरूप एवं शाखाओं का विस्तार सम्भाव्य हो सका है। इन विविध प्रकार की शाखाओं का विस्तार संगीत के प्रति मानव के सकारात्मक एवं सृजनात्मक चिन्तन का परिचायक है। मानव के चिन्तन ने संगीत को नाट्य के साथ समायोजित किया तथा एक नवीन प्रकार की कला को मंचस्त किया। इस नवीन प्रकार की कला जिसे नाट्य कहा गया, ने समाज को अपनी ओर तेजी से आकर्षित किया। नाट्य स्वयं समाज से प्रभावित रहा तथा समाज के एक बड़े वर्ग पर अपना प्रभाव भी छोड़ा ।

House No. 2547 wright Twon, Jabalpur, M.P. , Email- amitdubeyaaa@gmail.com, Mo. 9827276352

समाज की समस्या तथा सोच के अनूसार नाट्य की विषयवस्तु का चयन किया जाता था फिर निष्कर्ष के रूप में एक सन्देश को समाज तक पहुंचाया जाता था । नाट्य तथा संगीत का अटूट सम्बंध आचार्य भरत द्वारा अपने ग्रन्थ नाट्य शास्त्र में रेखांकित किया गया । नाट्य के मंचन के लिए संगीत की बड़ी भूमिका होती है। नाट्यशास्त्र के रचनाकार आचार्य भरत ने भी नाट्य में संगीत के समुचित प्रयोग को स्वीकार किया है। नाट्य में संगीत तत्व को आवश्यक बताते हुए आचार्य भरत लिखते हैं -

"यथा वर्णाद्रतेचितं शोभते न निवेशनम्।
एवमेन बिना गानं नाट्यं रागं न गच्छति।।"

अर्थात् जिस प्रकार कोई भवन उचित प्रकार से निर्मित होने पर भी बिना चित्रकारी के शोभा नहीं देता उसी प्रकार नाट्य प्रयोग भी बिना गीतों के प्रेक्षकों का मनोरंजन नहीं कर सकता। डॉ. शरच्चंद परांजपे जी कहते हैं - "बिना रंग प्रयोग के जैसे, चित्र का शोभन नहीं दिखाई देता, वैसे ही बिना संगीत के नाट्य रागात्मिक नहीं बन पाता है।" कालान्तर में नाट्य तथा संगीत में वैज्ञानिक तकनिकी के समावेश ने नाट्य को एक नवीन स्वरूप से विभूषित किया जिसे चित्रपट अभिधान प्राप्त हुआ । 21वीं सदी में चित्रपट तथा इसके संगीत एक नूतन आयाम को स्पर्श कर रहे हैं ।

चित्रपट 20वीं सदी में समाज के लिए एक ऐसा उपहार है जिस में विविध कलाओं जैसे- चित्रकला, काव्य कला, नाट्य कला, संगीत, साहित्य आदि की सम्यक प्रस्तुती करता है । 'राजा हरिश्चंद्र' शीर्षक से दर्शित चित्रपट को भारत में प्रथम चित्रपट के रूप में बहुमत प्राप्त है । यह मूक सिनेमा श्री दुंढ़ीराज गोविन्द फ़ाल्के जिन्हें दादा साहेब फ़ाल्के के नाम से जाना जाता है, के द्वारा बम्बई (अब मुम्बई) में 1913 में प्रदर्शित हुआ था । 1931 में फिल्मों में आवाज के आने के साथ हिंदी सिनेमा में सवाक फिल्मों का काल प्रारम्भ हुआ । श्री आर्देशिर ईरानी जी द्वारा निर्देशित फिल्म 'आलम आरा' को प्रथम सवाक सिनेमा होने का गौरव प्राप्त हुआ ।

चित्रपट के आगमन के साथ ही संगीत, चित्रपट के कथा साहित्य के भावों को दर्शकों तक प्रेषित करने का एक सशक्त माध्यम बना । अपने उद्भव काल में जब सिनेमा मूक अर्थात् अवाक् था तब भी संगीत उसका साथी था और जब सिनेमा सवाक् हुआ तब तो संगीत कहानी के आदि से अंत तक प्रत्यक्ष (गीत के रूप में) तथा परोक्ष (बैकग्राउंड म्यूजिक के रूप में) रूप से उपस्थित रहता ही है । प्रत्यक्ष संगीत के रूप में पाश्र्व गायन का भी आरम्भन हुआ । "फिल्म जगत में पाश्र्व संगीत के अलग अलग प्रकार जैसे हैवी म्यूजिक, लाईट म्यूजिक, कॉमेडी म्यूजिक, ट्रेजडी म्यूजिक, चेज म्यूजिक, टाईटिल म्यूजिक आदि प्रचलित हैं।" आरम्भिक काल में जब थियेटर में सिनेमा का प्रदर्शन होता था तब दर्शकों के आकर्षण के लिए कहानी के मध्यान्ह में गीत, नृत्य आदि की सजीव प्रस्तुती की जाती थी ।

चित्रपट के आगमन के साथ संगीत को एक नया आयाम प्राप्त हुआ । कालान्तर में फिल्म संगीत निर्देशकों की कल्पनाशीलता तथा सृजनशीलता ने एक नवीन प्रकार का संगीत सृजित किया जो वर्तमान में फिल्म संगीत के नाम से प्रसारित है । फिल्म संगीत ने समाज के अंतिम पायदान पर बैठे मानव के अंतर्मन में अपना स्थान बना लिया । इस फिल्म संगीत की स्वीकार्यता सभी से प्रात हुई । जो लोग संगीत को समझते थे उन्हें भी तथा जो लोग संगीत को नहीं समझते थे अर्थात् संगीत को केवल मनोरंजन का माध्यम समझने वाले लोगों को

भी फिल्म संगीत ने आहलादित किया। हालांकि कुछ शास्त्रीय संगीत विद्वानों ने इस संगीत को अस्वीकार अवश्य किया था किन्तु विशाल जनसमुदाय की प्रियता ने इस संगीत के प्रचार को प्रभावित नहीं किया। इस सन्दर्भ में डॉ. विमल जी लिखते हैं - "ठाकुर जयदेव सिंह जी फिल्म संगीत को चलताऊ प्रकार का संगीत कह कर इसकी उपेक्षा की तथा युवा पीढ़ी का इस और तेजी से आकर्षण को दुर्भाग्यपूर्ण माना । सन 1952 में तत्कालीन सूचना एवं प्रसारण मंत्री डॉ. बी. वी. केसरकर जो कि शास्त्रीय संगीत के प्रेमी थे, ने ऑल इंडिया रेडियो के प्रसारण समय में से चित्रपट संगीत के प्रसारण समय की कटौती की घोषणा की । मंत्री जी की इस घोषणा का बहुत विरोध हुआ । बाद में सरकार द्वारा 1957 में बम्बई (अब मुम्बई) तथा मद्रास (अब चेन्नई) में शार्ट वेव स्टेशनों को खोला गया।"

चित्रपटों में संगीत के समावेश के लिए मुख्यत: दो प्रकार प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष हैं। चित्रपट में प्रत्यक्ष प्रकार के संगीत के अंतर्गत दो उपवर्ग हैं प्रथम- जिनमें चित्रपट के गीतों के लिए राग अथवा स्वरावालियों को रखा जाता है तथा दूसरा उपवर्ग - गीत के पंक्तियों के मध्य स्थान को विविध वाद्य यंत्रों की सहायता से भरा जाता है। चित्रपट संगीत के दूसरे प्रकार के रूप में अप्रत्यक्ष संगीत होता है। इस के अंतर्गत बैकग्राउंड म्यूजिक सम्वाद के साथ भावों की प्रस्तुति जैसे मन की चिंता, हर्ष का अवसर, रात्री का सन्नाटा आदि के लिए जिस संगीत का प्रयोग किया जाता है उसे रखा जाता है ।

फिल्म संगीत की स्वर्णिम यात्रा में शास्त्रीय संगीत की भी उल्लेखनीय भूमिका रही है । अनेक चित्रपटों के निर्माण का आधार ही शास्त्रीय संगीत रहा है। 1920 से 1930 का कालखंड ऐसा रहा जब नाट्य में शास्त्रीय संगीत का आधिक्य देखा गया । इसका प्रभाव चित्रपट संगीत पर भी पड़ा तथा 1931 से 1960 के कालखंड में चित्रपट संगीत पूरी तरह से शास्त्रीय संगीत के रंग में रंगा रहा। ख्याल गायन के तत्कालिक प्रचलित घरानों के सुविख्यात गायकों द्वारा चित्रपट में गायन किया गया। इस समय चित्रपट हेतु संगीत निर्देशन के लिए बी. आर. देवधर, सुरेश बाबू माने, केशव राव भाले जैसे उच्च कोटि के संगीतज्ञों का आश्रय लिया गया।

चूँकि चित्रपट में संगीत का प्रकार, तत्कालिक जनता के रूचि के आधार पर निर्धारित किया जाता है । जब चित्रपट में शास्त्रीय संगीत का समावेश था उस समय जन सामान्य के मध्य शास्त्रीय संगीत का बहुत प्रचार था इस वजह से लोग शास्त्रीय संगीत को समझ सकते थे । शास्त्रीय संगीत को आधार बनाते हुए चित्रपट के संगीत में कुछ बदलाव अवश्य किया गया। इन बदलावों का मुख्य उद्देश्य एक नवीनता को प्रस्तुत करना था। इस नवीनता प्रदर्शन के अंतर्गत गीतों के साथ हारमोनियम, हवाईन गिटार, घड़ा, ढ़ोलक, मंजीरा आदि वाद्यों को भी समाहित किया गया । इस प्रयोग से चित्रपट तो लोकप्रियता की सीढियां चढ़ा ही साथ में उसका संगीत, संगीतकार, गायक आदि को भी अलग से लोकप्रियता प्राप्त हुई । दर्शकों द्वारा इन फिल्म संगीतकारों, गायकों को खूब प्यार दिया। शास्त्रीय संगीत के चित्रपट संगीत से समरूपता से शास्त्रीय संगीत से जो वर्ग वंचित था उस तक भी शास्त्रीय संगीत की सुगंध पहुँच सकी। जिन श्रोताओं को रागों का विशेष ज्ञान नहीं था उन्हें भी चित्रपट के किसी विशेष गीत से किसी राग होने की जानकारी तथा राग से सम्बन्धित अनुभूति हुई।

अनेकों चित्रपटों को उनके गीतों का आधार शास्त्रीय संगीत होने के कारण बहुत सराहा गया।

बैजू बावरा, संगीत सम्राट तानसेन, बसंत-बहार, अनुराधा, मेरी सूरत तेरी आँखें, शबाब आदि चित्रपट इस सूची में शीर्षस्त हैं । हिंदी चित्रपट में शास्त्रीय संगीत के रूप में ख्याल और इसमें भी मुख्यत: छोटे ख्याल की विशेष ग्राह्यता रही है । चित्रपटों ने ख्याल के अतिरिक्त शास्त्रीय संगीत की अन्य विधाओं को भी प्रस्तुत किया है किन्तु छोटे ख्याल के प्रति विशेष झुकाव दृष्टश्रव्य होता है । चित्रपटों में इस प्रकार के विशुद्ध शास्त्रीय सांगीतिक विधा के गायन के लिए शास्त्रीय गायकों को ही आमंत्रित किया गया । फिल्म 'बसंत-बहार' संगीतकार शंकर-जयकिशन द्वारा राग बसंत बहार में निबद्ध रचना 'केतकी गुलाब जूही चम्पक बन फूले' जो ख्याल शैली की थी, जिसे द्रुत एक ताल में निबद्ध किया गया था, का गायन सुप्रसिद्ध शास्त्रीय गायक भारत रत्न पंडित भीम सेन जोशी जी तथा पाश्र्व गायक श्री मन्ना डे जी द्वारा किया गया । फिल्म "बैजू-बावरा" में संगीतकार नौशाद अली द्वारा तानसेन भूमिका हेतु गायन के लिए उस्ताद अमीर खां तथा पंडित दत्तात्रेय विष्णु पलुस्कर जी को आमंत्रित किया । इस फिल्म में उस्ताद अमीर खां साहब ने जिन गीतों को स्वर दिया उनमें द्रुत एक ताल की रचना 'तोरी जय जय करतार' जो राग पुरिया धनाश्री में निबद्ध है, सरगम गीत जो कि राग दरबारी में निबद्ध था, राग देसी में निबद्ध विलम्बित एक ताल की रचना 'तेरो ही गुण गाऊं' का नाम आता है । पंडित डी. वी. पलुस्कर जी के साथ आपने युगल रूप से राग 'आज गावत मन मेरो झूम के' का गायन किया। फिल्म 'शबाब' में संगीतकार नौशाद द्वारा शास्त्रीय संगीत के स्थापित कलाकारों जिनमें गायक के रूप में उस्ताद अमीर खां साहब, तबला संगत के लिए पंडित सामता प्रसाद तथा सारंगी के लिए पंडित गोपाल मिश्र जी के नाम हैं, को आमन्त्रित किया । फिल्म 'झनक झनक पायल बाजे' के संगीत निर्देशक श्री वसंत देसाई जी ने राग अड़ाना द्रुत तीनताल में निबद्ध रचना 'झनक झनक पायल बाजे' के गायन हेतु उस्ताद अमीर खां साहब को आमंत्रित किया । ख्याल की नवनिर्मित बंदिशों के साथ साथ पारम्परिक बंदिशों को भी चित्रपट संगीत का अंग बनाया गया । पंडित विष्णु नारायण भातखंडे जी द्वारा रचित 'क्रमिक पुस्तक मल्लिका' में राग गौंड़ मल्हार, तीन ताल में निबद्ध एक पारम्परिक बंदिश को सुमन कल्यानपुर तथा कमल बारोट द्वारा गया गया । चित्रपट संगीत में ख़याल के साथ ही त्रिवट का भी प्रयोग देखा जा सकता है । फिल्म कोहिनूर में राग हमीर में निबद्ध एक रचना 'मधुबन में राधिका नाचे रे' का गायन सुप्रसिद्ध पाश्र्व गायक मुहम्मद रफी जी द्वारा किया गया है इस रचना में मृदंग के कुछ बोल तथा तान सहित तराने का प्रयोग हुआ है । फिल्म 'स्वर्ण सुन्दरी' में सुधा मल्होत्रा तथा लता मंगेशकर जी द्वारा 'जा रे नटखट पिया' के बाद अत्यंत मनमोहक तराना गाया गया है । इसके अतिरिक्त अन्य अनेकों शास्त्रीय बंदिशें तथा विधाओं का यथा रूप चित्रपट संगीत में प्रस्तुत किया गया है। चित्रपटों में शास्त्रीय संगीत के अंश के आने पर सम्बन्धित गीत अथवा चित्रपट को बहुत अधिक लोकप्रियता प्राप्त हुई है ।

शोध निष्कर्ष:-

सिनेमा में संगीत की उल्लेखनीय भूमिका है । चित्रपट की कथा तथा उसके भावों को यथा रूप दर्शकों तक पहुंचाने तथा उन्हें चित्रपट की कहानी के रंग में रंगने हेतु संगीत की विशेष भूमिका है । चित्रपट के अवाक होने के समय कुछ उद्धरण ऐसे मिलते हैं जब दर्शकों को सिनेमाघर में आकर्षित करने तथा उन्हें रोकने

के लिए जीवन्त संगीत का सहारा लिया जाता था । अवाक फिल्म की कहानी के प्रदर्शन में भी संगीत की अप्रत्यक्ष भूमिका (बैकग्राउंड म्यूजिक के रूप में) होती थी । फिल्मों के सवाक होने पर संगीत अपने शास्त्रीय स्वरूप में सिनेमा में उपस्थित हुआ। चित्रपट के गीतों के रूप में ख्यातिलब्ध शास्त्रीय गायकों द्वारा शास्त्रीय गायन किया गया। इस कालखंड में शास्त्रीय संगीत के शिक्षण प्रशिक्षण तथा संगीतज्ञों के जीवन भी चित्रपट की कहानियों के आधार बने । चित्रपटों में शास्त्रीय संगीत की परम्परागत बंदिशों का भी गायन किया गया। सिनेमा के इस प्रयोग से अनुमान किया जा सकता है कि तत्कालिक सामान्य जनता शास्त्रीय संगीत से प्रेम करती थी तथा समाज के अंतिम पायदान के लोगों को भी शास्त्रीय संगीत की समझ थी।

डॉ. गंगूबाई हंगल गुरुकुल : गुरु शिष्य परंपरागत आधुनिक संस्थान

प्रियम चतुर्वेदी,* डॉ. संतोष पाठक**

सारांश

भारतीय संस्कृति में विद्या ग्रहण करने हेतु गुरुकुलों का तथा गुरु शिष्य परंपरा का विशिष्ट महत्व रहा है। शिष्यगण गुरु आदेशानुसार लंबी कालावधि तक शिक्षा प्राप्त करते थे तथा अपने गुरुकुल के नियमों का पालन करते थे। कला के क्षेत्र में गुरु का स्थान सर्वोच्च माना गया है। संगीत शिक्षण हेतु गुरुकुल पद्धति अथवा गुरु शिष्य परंपरा ही सर्वोत्तम है तथा भारतीय शास्त्रीय संगीत को शीर्ष पर स्थापित करने का मुख्य कारक है। भारत के हिंदुस्तानी शास्त्रीय सांगीतिक गुरुकुलों में एकमात्र शासकीय गुरुकुल 'डॉ. गंगूबाई हंगल गुरुकुल' है जो कर्नाटक शासन द्वारा हुबली में संचालित हो रहा है। इस गुरुकुल में शिष्य अपने गुरु के साथ उनकी छत्रछाया एवं मार्गदर्शन में तथा लगातार उनकी निगरानी में रहता है। डॉ. गंगूबाई हंगल गुरुकुल में विद्यार्थियों को निशुल्क शिक्षण के साथ-साथ निशुल्क आवास तथा निशुल्क भोजन भी कर्नाटक सरकार द्वारा व्यवस्थित रूप से प्रदान किया जाता है। डॉ. गंगूबाई हंगल गुरुकुल में अधिकतम छै गुरु के आवास तथा अधिकतम छत्तीस शिक्षार्थियों के आवास की व्यवस्था है। किसी भी समय गुरु अपने शिष्यों को तालीम देने के लिए स्वतंत्र होते हैं। यह पद्धति गुरु और शिष्य के बीच एक अनूठा संवाद तथा गहरा रिश्ता स्थापित कर देती है, जहाँ शिष्य तन-मन से आदर पूर्वक अपने गुरु से शिक्षा ग्रहण करता है। यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि शास्त्रीय संगीत को पल्लवित-पोषित करने में तथा भारतीय संगीत परंपरा के उत्थान में डॉ. गंगूबाई हंगल गुरुकुल का योगदान अतुलनीय एवं सर्वोत्कृष्ट है।

महत्वपूर्ण शब्द– *संगीत, गुरुकुल, पद्म विभूषण, गंगूबाई हंगल, घराना, तालीम, विदुषी, गौरवशाली, गुरु-शिष्य, पद्धति, प्रतिष्ठापूर्ण।*

संगीत विद्या का आदान-प्रदान दो प्रमुख स्रोतों द्वारा माना गया है, जिसमें पहला स्रोत है गुरु शिष्य अर्थात गुरुकुल परंपरा और दूसरा विद्यालयीन शिक्षण परंपरा। अनेकों शोधों से यह तथ्य उभरकर आया है कि विद्यालयीन संगीत शिक्षण की अपेक्षा गुरुकुल संगीत प्रशिक्षण पद्धति अधिक प्रभावशील एवं शिक्षार्थियों के लिए अधिक उपयोगी है क्योंकि लंबी कालावधि तक शिष्य अपने गुरु के सानिध्य में रहकर कठोर संगीत साधना करता है। भारतीय संस्कृति में विद्या

*शोधार्थी, मंच कला विभाग, वनस्थली विद्यापीठ, राजस्थान

**ऐसो. प्रोफेसर, मंच कला विभाग, वनस्थली विद्यापीठ, राजस्थान

ग्रहण करने हेतु गुरुकुलों का तथा गुरु शिष्य परंपरा का विशिष्ट महत्व रहा है। प्राचीन काल में बाल्यावस्था से ही बच्चों को विद्या अर्जित करने हेतु गुरुकुलों में भेजा जाता था, जहाँ वे बिना किसी भेदभाव के एकजुट होकर अपने गुरु के साथ आश्रम में रहकर समान रूप से विद्या ग्रहण करते थे। शिष्यगण गुरु आदेशानुसार लंबी कालावधि तक शिक्षा प्राप्त करते थे तथा अपने गुरुकुल के नियमों का पालन करते थे। उन्हें संस्कारवान बनाने का उत्तरदायित्व उनके गुरु का होता था। जब गुरुकुल से शिक्षा पूर्ण करने के बाद गुरु आदेशानुसार विद्यार्थी सामाजिक जीवन में प्रवेश करता था तो वह समाज को लाभान्वित करने के साथ-साथ प्रतिष्ठापूर्ण जीवन यापन करता था। शारीरिक एवं बौद्धिक विकास के क्षेत्र में गुरुकुल का विद्यार्थी सदैव सबल ही सिद्ध होता था। इस प्रकार की शिक्षण पद्धति को गुरुकुल पद्धति कहा जाता था। जब एक गुरु अपने शिष्यों के साथ रहकर उन्हें विद्या दान देता है उसे हम गुरु-शिष्य परंपरा कहते हैं। जब कुछ गुरु अपने-अपने शिष्यों के साथ मिलकर एक संस्था अथवा आश्रम के अंतर्गत शिक्षा प्रदान करते हैं तो वह आश्रम 'गुरुकुल' कहलाता है, तथापि हम यह कह सकते हैं कि गुरु शिष्य परंपरागत शिक्षण पद्धति और गुरुकुल पद्धति एक दूसरे के पूरक हैं।

भारत की गौरवशाली गुरुकुल शिक्षण परंपरा अति प्राचीन व सर्वोत्तम सिद्ध हुई है। यह सर्वविदित है कि भगवान राम सोलह वर्ष के थे जब वे अपने भाइयों के साथ ऋषि विश्वामित्र के आश्रम गए, जहाँ उन्हें उनके गुरु ने सैन्य कौशल का प्रशिक्षण दिया। इसी प्रकार भगवान कृष्ण ने संदीपनी ऋषि के आश्रम में तथा कौरवों एवं पांडवों ने गुरु द्रोणाचार्य के आश्रम अथवा गुरुकुल में रहकर गुरु शिष्य परंपरा से ही शिक्षा प्राप्त की थी।

कला के क्षेत्र में गुरु का स्थान सर्वोच्च माना गया है। बिना गुरु के कला प्राप्त करना असंभव कार्य है, क्योंकि गुरु द्वारा कला प्रत्यक्ष रूप से शिष्य को हस्तांतरित की जाती है, उसके पश्चात ही शिष्य में पूर्णता अथवा सिद्धि का भाव संभव है। कला के क्षेत्र में इस शिक्षण परंपरा को 'तालीम' भी कहा जाता है। कलाओं के वैसे तो विभिन्न क्षेत्र हो सकते हैं जैसे दृश्य कला, चित्र कला, संगीत कला, नृत्य कला, नाट्य कला, काष्ठ कला, मूर्तिकला, लेखन कला, काव्य कला, वास्तुकला इत्यादि। "कलायें मनुष्य की जन्मजात सहचरी हैं, इसी कारण संगीत समाज सापेक्षता (social relativity) की कला बन गया"। इस प्रकार की विभिन्न कलाओं से भारतीय संस्कृति पुष्पित हो रही है। इन भारतीय ललित कलाओं में संगीत कला को सर्वोच्च स्थान प्राप्त है। संगीत एक ऐसी कला है जिसमें लय-स्वर-ताल के माध्यम से संगीतज्ञ अपने मनोभावों एवं कल्पनाओं का रंग भरता है। "संगीत का आधार है नाद और नाद में कला सौंदर्य की सृष्टि का रहस्य है।" संगीत के इतिहास में किसी भी महान संगीतज्ञ का जीवन परिचय दिया जाए अथवा उनकी सांगीतिक शैली का वर्णन किया जाए तो उनके गुरु का नाम साथ में अवश्य ही लिया जाता है। शास्त्रीय संगीत के क्षेत्र में उस्ताद अलाउद्दीन खाँ, उस्ताद अल्ला रखा, उस्ताद अल्लादिया खाँ, उस्ताद अब्दुल करीम खाँ, पंडित सवाई गंधर्व, पंडित किशन महाराज, उस्ताद बड़े गुलाम अली खाँ, पंडित बसवराज राजगुरू जैसे कुछ महान गुरु हुए हैं जिन्होंने उच्च कोटि के अनेक शिष्य तैयार किए हैं। इन सभी कलाकारों की तालीम गुरु शिष्य परंपरा अथवा सीना-ब-सीना पद्धति से ही हुई है। यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता

है कि संगीत शिक्षण हेतु गुरुकुल पद्धति अथवा गुरु शिष्य परंपरा ही सर्वोत्तम है तथा भारतीय शास्त्रीय संगीत को शीर्ष पर स्थापित करने का मुख्य कारक है।

वर्तमान के इस आधुनिक युग में जहाँ विज्ञान हमारे जीवन में उच्च स्थान प्राप्त कर चुका है और तकनीकी उपकरणों के माध्यम से जीवन सरल एवं सरस प्रतीत होता है वहीं भारतीय शिक्षण संस्कृति में भी परिवर्तन देखने को मिलते हैं। आधुनिक समय के संगीत विषय में पाठ्यक्रम युक्त विद्यालय शिक्षण पद्धति प्रचलित है। विद्यार्थी विद्यालयों से स्नातक तथा स्नातकोत्तर उपाधियाँ प्राप्त कर रहे हैं जिनके माध्यम से वे रोजगार प्राप्त करते हैं। संगीत का विद्यार्थी निश्चित समय तक विद्यालय में संगीत सीखता है और उसका अभ्यास करता है परंतु वह अभ्यास अपने गुरु के समक्ष नहीं कर पाता। कक्षा में विद्यार्थियों की अधिक संख्या के कारण गुरु भी प्रत्येक विद्यार्थी को एक योग्य कलाकार नहीं बना पाते। अत: विशिष्ट संगीत शिक्षा हेतु विद्यार्थियों को गुरुकुल अथवा योग्य गुरुओं की शरण में जाना पड़ता है तब उन्हें उच्च स्तरीय गुणवत्ता युक्त से सांगीतिक ज्ञान प्राप्त होता है।

गुरुकुलों के महत्व को देखते हुए वर्तमान समय में भारत के कई गुरुकुलों में संगीत शिक्षा-दीक्षा तथा कलाकार निर्माण के प्रयास जारी है। शास्त्रीय संगीत के परिवर्धन में इन गुरुकुलों का विशिष्ट स्थान माना जाता है। इन विद्या मंदिरों के कारण ही शास्त्रीय संगीत की घरानेदार पीढ़ी निर्मित हो रही हैं, जहाँ शिष्य अपने गुरु की सांगीतिक शैली के साथ-साथ उनके व्यवहार, गुणों तथा आचरण को भी आत्मसात कर रहे हैं। "डॉ. जयसिंह के मत से घराना, जिसे हम कुटुंब, परिवार अथवा कुल के नाम से जानते हैं। इसमें प्रत्येक घराने का एक मुख्य गुरु, संरक्षक अथवा मार्गदर्शक होता था, जो उस घराने की शिक्षा का आयोजन करता था। सामाजिक परिवेश और जातिगत विशेषताओं के कारण घराने की एक शैली बन जाती थी जो गायन में 'गायकी' और वादन में 'बाज' के नाम से जानी जाती थी 'घराना' इसी को कहते हैं। अभिप्राय है, कि सांगीतिक घराने में संगीत कला का आद्योपान्त पोषण किया जाता था तब कहीं जाकर वह घराना लोगों की दृष्टि से प्रतिष्ठित हो पाता था।" वर्तमान में प्रचलित गुरु शिष्य परंपरागत संस्थान अथवा गुरुकुलों में कर्नाटक के हुबली में स्थित डॉ. गंगूबाई हंगल गुरुकुल तथा कर्नाटक के गदग में स्थित श्री वीरेश्वर पुण्याश्रम, पश्चिम बंगाल के कोलकाता में स्थित आई.टी.सी. संगीत रिसर्च अकादमी तथा श्रुतिनंदन, मध्यप्रदेश के भोपाल में स्थित ध्रुपद संस्थान, महाराष्ट्र के पुणे में स्थित ताल योगी आश्रम, महाराष्ट्र के मुंबई में स्थित वृंदावन गुरुकुल भारत के सुप्रसिद्ध तथा विश्वविख्यात सांगीतिक गुरुकुल हैं। इनमें से कुछ गुरुकुल शासकीय हैं तो कुछ व्यक्तिगत गुरुकुल हैं तथा कुछ ऐसे गुरुकुल भी हैं जो सामाजिक दानदाताओं की मदद से भी संचालित हो रहे हैं परंतु इन सभी संगीत शिक्षा मंदिरों का ध्येय भारतीय शास्त्रीय संगीत का प्रचार प्रसार तथा विद्यार्थियों को उच्च श्रेणी के गुरुओं तथा कलाकारों द्वारा सुलभ सांगीतिक वातावरण में गूढ़तम ज्ञान प्राप्त करवाना ही है। भारतीय संगीत के उत्थान तथा इस विद्या को योग्य शिष्य तक पहुंचाने में इन गुरुकुलों का महत्व सर्वोपरि है।

भारत के हिंदुस्तानी शास्त्रीय सांगीतिक गुरुकुलों में एकमात्र शासकीय गुरुकुल 'डॉ. गंगूबाई हंगल गुरुकुल' है जो कर्नाटक शासन द्वारा हुबली में संचालित हो रहा है। इस गुरुकुल की विशेषता यह है कि यहाँ शिक्षार्थियों से किसी प्रकार का शुल्क नहीं लिया जाता है। कर्नाटक

सरकार के शास्त्रीय कलाकार निर्माण हेतु यह प्रयास प्रशंसनीय तथा सराहनीय इसलिए भी है क्योंकि इस गुरुकुल में शिष्य अपने गुरु के साथ उनकी छत्रछाया एवं मार्गदर्शन में तथा लगातार उनकी निगरानी में रहता है। इसका सबसे बड़ा लाभ है यह है कि गुरु द्वारा बताई गई रचनाओं तथा रागों को अभ्यास करते समय भी वह गुरु आश्रय तथा गुरु के समक्ष ही रहता है। गुरुकुल पद्धति का सर्वोच्च गुण है कि शिष्य को हर समय अपने गुरु का सानिध्य एवं मार्गदर्शन प्राप्त रहता है जिससे वह प्रखर, स्वाबलंबी तथा योग्य कलाकार होकर समाज में उभरता है। डॉ. गंगूबाई हंगल गुरुकुल में विद्यार्थियों को निशुल्क शिक्षण के साथ-साथ निशुल्क आवास तथा निशुल्क भोजन भी कर्नाटक सरकार द्वारा व्यवस्थित रूप से प्रदान किया जाता है। इस गुरुकुल को पूर्णत: निशुल्क रखने का मुख्य उद्देश्य यह है कि विद्यार्थी शुल्क, भोजन तथा आवास की चिंता किये बिना केवल अपनी शिक्षा-दीक्षा अथवा सांगीतिक तालीम पर केंद्रित रहे जिससे वह एकाग्र होकर उच्च स्तरीय संगीत ज्ञान प्राप्त करे एवं कठोर साधना करके एक योग्य कलाकार के रूप में तैयार होकर बाहर निकले।

डॉ. गंगूबाई हंगल गुरुकुल के संचालन हेतु एक प्रशासनिक अधिकारी की नियुक्ति की जाती है जो शासन द्वारा प्रदत्त राशि डॉ. गंगूबाई हंगल गुरुकुल ट्रस्ट के माध्यम से गुरुकुल की आवश्यकता अनुसार उपयोग में लाते हैं। गुरुकुल के मुख्य प्रशासनिक अधिकारी के रूप में जिला अधिकारी (कलेक्टर) सर्वोपरि होता है। शासन गुरुकुल के लिए वाद्य-यंत्र, गुरुकुल प्रांगण में आवश्यक व्यवस्थाओं, गुरुजनों के, तबला संगतकारों एवं अन्य कर्मचारियों के वेतन तथा हर प्रकार की आवश्यक जरूरतें जैसे बिजली एवं पानी आदि की पूर्तियों का निर्वहन गुरुकुल के सुचारू रूप से संचालन हेतु करता है। गंगूबाई हंगल गुरुकुल की शिक्षण पद्धति पर अगर हम दृष्टिपात करें तो हम पाते हैं कि छै शिष्य एक गुरु के साथ रहकर विद्या अर्जित करते हैं। प्रत्येक गुरु अपनी-अपनी विधा और अपने-अपने घराने के उच्च कोटि के कलाकार होते हैं। इस प्रकार यह कहना उचित होगा कि एक गुरुकुल में विभिन्न घरानों के गुरु तथा शिष्यगण एक साथ एक ही प्रांगण में रहकर उनकी गायकी व घरानों के कारण पृथक शैली के कलाकार दिखाई पड़ते हैं।

डॉ. गंगूबाई हंगल गुरुकुल में अधिकतम छै गुरु के आवास तथा अधिकतम छत्तीस शिक्षार्थियों के आवास की व्यवस्था है। गुरुजनों का आवास शिष्यों के आवास के सामने ही स्थित है जिससे शिष्य अपने गुरु के नजदीक रहे एवं उसके रियाज पर गुरु का ध्यान भी बना रहे। यहाँ पाँच हिंदुस्तानी शास्त्रीय गायन के विद्वान गुरु तथा एक वायलिन के गुरु का पद निर्धारित है। गुरु शिष्य परंपरा के अंतर्गत इस गुरुकुल में भी गुरु अपनी शैली अनुसार शिष्यों को तालीम देते हैं जहां पाठ्यक्रम का कोई बंधन नहीं होता है। किसी भी समय गुरु अपने शिष्यों को तालीम देने के लिए स्वतंत्र होते हैं। यह पद्धति गुरु और शिष्य के बीच एक अनूठा संवाद तथा गहरा रिश्ता स्थापित कर देती है, जहाँ शिष्य तन-मन से आदर पूर्वक अपने गुरु से शिक्षा ग्रहण करता है। गुरुकुल में हर शिष्य को प्रतिमाह एक बार मंच प्रदर्शन का अवसर अनिवार्य रूप से दिया जाता है जहाँ वह अपनी शास्त्रीय संगीत की प्रस्तुति सभी विद्यार्थियों एवं सभी गुरुजनों के सम्मुख प्रस्तुत करता है। "भारतीय संगीत की सर्वोपरि विशेषता उसकी मौलिक सृजन की क्षमता में है। परंपरा अथवा संप्रदाय को अक्षुण्ण रखते हुए गान तथा वादन में मौलिकता की अभिव्यक्ति भारतीय संगीत का

वैशिष्ट्य है।" संगीत की विभिन्न संभावनाओं, कल्पनाओं और घरानों की विविधता का ज्ञान विद्यार्थियों को एक दूसरे की प्रस्तुतियों से प्राप्त होता है। प्रस्तुतियों के पश्चात गुरुजनों द्वारा दिए गए अमूल्य मार्गदर्शन से विद्यार्थियों की कला में निखार आता है। गुरुकुल में योग्य तबला संगतकारों की नियुक्ति की जाती है जो तालीम तथा मंच प्रदर्शन के समय विद्यार्थियों को तबला पर संगत प्रदान करते हैं।

डॉ. गंगूबाई हंगल गुरुकुल लगभग दस वर्षों से संचालित हो रहा है। इस छोटी सी कालावधि में अनेकों शिष्य शिक्षाविद होकर देश भर में अपनी कला का प्रदर्शन कर रहे हैं। स्वाभाविक है कि इस सफलता का सारा श्रेय गुरुकुल में पदस्थ गुरुओं को ही जाता है। विभिन्न घरानों के विद्वान गुरुओं की तपस्या एवं विद्या दान देने की भावना के कारण ही आज डॉ. गंगूबाई हंगल गुरुकुल का नाम विश्व भर में बड़े सम्मान से लिया जाता है। गुरुकुल में पदस्थ रह चुके तथा वर्तमान में पदस्थ गुरुजनों के नाम विख्यात कलाकारों के नाम से सर्वविदित हैं। विदुषी एन. राजम (वायलिन), पं. बबनराव हलदणकर (आगरा घराना), पं. मणि प्रसाद (किराना घराना), पं. गणपति भट्ट (ग्वालियर घराना), पं. कैवल्य कुमार गुरव (किराना घराना), विदुषी विजया जाधव गाटलेवार (जयपुर घराना), पं. केदार बोडस (आगरा घराना), उस्ताद फैयाज खान (किराना घराना) और विदुषी अक्कम्मा देवी हीरेमठ (वायलिन) का नाम उल्लेखनीय है। वास्तव में इन गुरुजनों की कर्मठता, त्याग, संकल्प एवं सद्भाव ही भारतीय शास्त्रीय संगीत की विरासत को जीवित रखे हुए है।

पद्मविभूषण डॉ. गंगूबाई हंगल जो स्वयं किराना घराना की प्रख्यात शास्त्रीय गायिका रही हैं, इसके साथ ही आप अपने जीवन काल में विभिन्न मंचों पर शास्त्रीय गायन की प्रस्तुतियां देती रहीं जिनमें अनेकों मंचों पर आपकी सुपुत्री कृष्णा हंगल मंच साझा करते हुए बराबरी से गायन की संगति देती रहीं हैं। "Gangubai's friend N.K. Kulkarni's comment while interviewing her "like the Ganga in your name, you flow from Himalayas, but your daughter like the river Krishna, is the bride of the state." डॉ. गंगूबाई हंगल की परिकल्पना तथा कर्नाटक सरकार द्वारा इस गुरुकुल की संरचना भारतीय शास्त्रीय संगीत के लिए वरदान सिद्ध हुई हैं। देशभर से संगीत जिज्ञासु विद्यार्थी इस गुरुकुल में आकर उच्च कोटि की संगीत शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। यह गुरुकुल आने वाली पीढ़ी के लिए भी शिक्षा प्राप्त करने का अवसर सदैव प्रदान करता रहेगा। अत: यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि शास्त्रीय संगीत को पल्लवित-पोषित करने में तथा भारतीय संगीत परंपरा के उत्थान में डॉ. गंगूबाई हंगल गुरुकुल का योगदान अतुलनीय एवं सर्वोत्कृष्ट है।

संदर्भ सूची-

1. शर्मा, सत्यवती. संगीत का समाजशास्त्र. जयपुर: पंचशील प्रकाशन, 1995. पृष्ठ-1
2. शर्मा, स्वतंत्र. सौंदर्य, रस एवं संगीत. इलाहाबाद: अनुभव पब्लिशिंग हाउस, 2015. पृष्ठ- 53
3. शर्मा, महारानी-जया. संगीत मणि भाग-1, इलाहाबाद: श्री भुवनेश्वरी प्रकाशन, 2018. पृष्ठ- 123
4. परांजपे, शरच्चंद्र श्रीधर. भारतीय संगीत का इतिहास. वाराणसी: चौखम्बा विद्याभवन, 2010. पृ.12
5. Shafi, Afshana. The Legacy of Gangubai Hangal, New Delhi: Horizon Books, 2017. Page no- 91

`सत्य साई भजन' श्री सत्य साई बाबा का अद्वितीय योगदान

कौस्तुभ पारे*, डॉ. संतोष कुमार पाठक**

संगीत हमेशा से एक विशेष उपहार रहा है जो केवल कुछ ही लोगों को प्राप्त हुआ है। संगीतकार पैदा होते हैं या बनते हैं, इस सवाल का कोई निश्चित जवाब नहीं है। बहुत से लोग मानते हैं कि कड़ी मेहनत और निरंतर अभ्यास से आप संगीत में महारत हासिल कर सकते हैं। सही मायनो में समझा जाए तो यह कहना ग़लत नहीं होगा की कौशल और दक्षता के एक निश्चित स्तर तक पहुंचने के लिए संगीत का निरंतर अभ्यास बिल्कुल सही हो सकता है, हालांकि, जो गुरु होते है उनके पास हमेशा कुछ विशेष होता है जो उन्हें बाकी लोगों से अलग करता है और एक अलग पहचान देता है। लेखक मुरली मनोहर श्रीवास्तव अपनी पुस्तक 'शहनाई वादक उस्ताद बिस्मिल्लाह खाँ' में लिखते है कि "संगीत ईश्वर की दी हुई प्रतिभा होती है, परंतु इसे सजाने सवारने के लिए गुरु का होना अति आवश्यक है, ताकि उचित ढंग से सही समय पर, सही साँचे में ढाला जा सकें।"

जब संगीत को एक पेशे के रूप में देखा जाता है, तो व्यक्ति को भा, रा और ता - यानी भाव, राग और ताल का गहन ज्ञान होना चाहिए। हालाँकि, दुनिया के विभिन्न हिस्सों में संगीत की बहुत सी शैलियाँ पायी जाती हैं। उन्ही में से एक है लोक गीत। समस्त विश्व में अनेको लोक गीत हैं, जिसमें से भारत में और भी बहुत सारे है। श्रीमती लीलावती बंसल अपनी पुस्तक 'लोक गीत' में लिखती है कि "लोकगीत परम्परा से प्रचलित होने के कारण प्राचीन वैदिक काल से लेकर वर्तमान संदर्भो तक को अपने में समेटे हुए हैं।"

उन्होंने अपनी पुस्तक में लोक गीतों के प्रकारों को बताया है जो इस प्रकार है -

भक्ति गीत
नृत्य गीत
ऋतु गीत
संस्कार गीत

ये सभी गीत जीवन में की जाने वाली विभिन्न गतिविधियों से जुड़े होते हैं, जहां लोक संगीत पर विचार किया जाता है, वहां संगीत की सूक्ष्म बारीकियों पर कोई विशेष जोर नहीं दिया जाता। इस तरह का संगीत, चाहे वह गायन हो या वाद्य, बहुत से लोगों के लिए आसानी से उपलब्ध है और ज्यादातर छोटे शहरों और गांवों के लोगों द्वारा पसंद किया जाता है। भारत की विशाल संस्कृति में संगीत के कई रूप हैं, जिसमें अनूठी रचनाएं, गीत और अनूठे वाद्ययंत्र भी शामिल हैं। फिर एक और प्रकार का संगीत है जो लोक

* शोध छात्र, वनस्थली विद्यापीठ, राजस्थान
** शोध निर्देशक, वनस्थली विद्यापीठ, राजस्थान

संगीत का भी विस्तार है लेकिन पूरी तरह से एक अलग उद्देश्य के लिए उपयोग किया जाता है। वही आध्यात्मिक संगीत है। यहाँ उत्तर भारत और दक्षिण भारत के संगीत में एक अलग अंतर पाया जाता है। जहाँ उत्तर भारत के संगीत ने ध्वनियों और स्वरों की शुद्धता प्राप्त करने पर ध्यान केंद्रित किया, वहीं दक्षिण भारतीय संगीत काफी हद तक गीतात्मक था। वास्तव में कई उत्तरी भारत की रचनाओं में, गीत बहुत सरल हैं और कभी-कभी, एक ही गीत का उपयोग विभिन्न रागों को व्यक्त करने के लिए किया जाता है। हालाँकि, दक्षिण भारतीय संगीत में, रचनाएँ ज्यादातर भक्तिपूर्ण होती हैं और संगीतकार की भावनाओं और मन की स्थिति को दर्शाते हुए गहरे आध्यात्मिक अर्थ होते हैं। उदाहरण के लिए श्री त्यागराजा स्वामी की सभी कृतियाँ भगवान श्रीराम के प्रति उनकी गहरी भावना और भक्ति का प्रतीक हैं।

भजन-कीर्तन की परंपरा उत्तर भारत में श्री गुरु नानक द्वारा शुरू की गई जहां उन्होंने सामूहिक गायन के विचार को प्रस्तुत किया और बढ़ावा दिया। लेखक महिंदर सिंग प्रभाकर अपनी पुस्तक 'गुरुनानक देव जी व्यक्तित्व एवं क्रतित्व' में लिखते है कि "गुरुनानक कीर्तन (एवं भजन) के रसिया थे और इसे पथभ्रष्ट आत्मा को नियंत्रित करने का साधन मानते थे।"

Nicole Karapanagiotis, अपनी पुस्तक 'Branding Bhakti' में लिखते है कि "Kirtan is a live music meditation, a collective call and response that incorporates these mantras, our voices and variety of instruments."

दक्षिण भारत में, विशेषज्ञ संगीतकारों द्वारा संगीत समारोहों में संगीत की दृष्टि से कठिन कृतियों के अलावा, दिव्यनामा संकीर्तन नामक कुछ सरल रचनाएँ भी आम आदमी को शामिल करने के लिए, आज भी गायी जाती हैं।

भजनों का मुख्य उद्देश्य सभी को उसमें मग्न कर लेना और कुछ समय के लिए दुनिया को भूल जाना और मन को ईश्वर पर केंद्रित करना है। अध्यात्म का अंतिम लक्ष्य मन को शुद्ध करना और उसे सभी विचारों से मुक्त करना है। जब यह किया जाता है, तभी सच्चे आत्म का वास्तविक प्रकाश, प्रत्येक के भीतर एक दिव्य चिंगारी चमकती है। हालांकि, ऐसा करने की कोशिश करने के अन्य सभी तरीके बहुत कठिन हो सकते हैं और इसके लिए कई वर्षों की साधना और अभ्यास की आवश्यकता होती है। वहीं भजनों की शक्ति ऐसी होती है कि वह सभी को (आसान धुन और भगवान के नाम जो गाए जा रहे हैं), अपनी ओर खींच लेती है। मन स्वत: ही ईश्वर पर केंद्रित हो जाता है और शुद्ध हो जाता है।

श्री सत्य साई बाबा कहते है कि भगवान एक है, उनके रूप अनेक है, जैसा कि गुरु नानक देव साहेब ने भी कहा है। लेखक हरेंद्र प्रताप सिंह अपनी पुस्तक 'धर्म-दर्शन की रूप-रेखा' में लिखते है कि "यद्धपि ईश्वर एक है फिर भी इनके रूप अनेक है। गुरु नानक ने कहा है ईश्वर तू एक है परंतु तेरे रूप अनेक है।"

श्री सत्य साई बाबा ने अपना प्रथम भजन 'मानस भज रे गुरु चरणम' १४ साल की उम्र गाय था। जिसके माध्यम से वे मानव जाति को ये संदेश देना चाहते थे कि कलियुग में भजन कीर्तन ही एक मात्र प्रभु प्राप्ति का मार्ग है। और यहीं से साई भजनों का शुभारम्भ हुआ। श्री सत्य साई बाबा स्वरचित भजनों को गा कर सभी लोगों से उन्हें दोहराने का आग्रह करते थे और साथ ही मीरा बाई, सूरदास, त्यागराजा स्वामी जैसे अनेक भारतीय संत महात्माओं के द्वारा रचित

भजनो और कीर्तनो को भी गा कर, लोगों को भजनों का महत्व समझाते थे।

श्री सत्य साईं बाबा के भजनों की विशिष्टता यह है कि उन्होंने आम आदमी और किसी भी भक्त को भगवान पर भजन लिखने और बनाने के लिए प्रोत्साहित किया। वह अक्सर कहते थे कि विभिन्न प्रकार के भजन संगीत होते है जैसे –

भाव संकीर्तन - भजन जिसमें व्यक्ति अपनी मन:स्थिति अनुसार प्रभु को पुकारता है या उनकी आराधना करता है।

गुण संकीर्तन - भजन जिसमें भगवान के गुणो का संकीर्तन किया जाता है। जैसे नीलकंठ, गंगाधारी, भोलेनाथ, नटखट श्याम, गिरिधारी, पवन पुत्र हनुमंत।

नाम संकीर्तन - भजन जिसमें विभिन्न भगवानों का नाम स्मरण किया जाता है। जैसे हरे राम हरे कृष्णा, जय पांडुरंग विट्ठला, दुर्गे जय जय माँ, ओम् नम: शिवाय।

लीला संकीर्तन - भजन जिसमें भगवान की लीलाओं का वर्णन होता है जैसे कालिय मर्दन श्री कृष्णा, असुर निकंदन, रावण सम्हार कोदंड राम, गोवेरधन गिरिधारी, लिंगोद्भव कर, चितचोर, माखन चोर।

उपरोक्त चारों प्रकार के संकीर्तनो का मिश्रण ही साई भजन में पाया जाता है। दुनिया में हजारों की संख्या में ऐसे लोग हैं जो भजनों के कारण सत्य साईं बाबा के पास आए हैं। साथ ही बाबा का आग्रह था कि भजनों में भगवान के सभी रूपों के नाम गाये जाए। सभी धर्मों के पैगम्बरों, सभी प्रकार के देवी-देवताओं का उल्लेख करना चाहिए ताकि सभी लोग उन भजनो से जुड़ सकें। लेखक गणपति चंद्र गुप्ता अपनी पुस्तक में लिखते है कि "प्रशांति निलयम में जो भी भजन या गीत आदि गाए जाते हैं उनमें सभी धर्मों के प्रति सम्मान होता हैं।" इसीलिए वे भजन प्राय: राम, कृष्ण आदि अवतारों तथा ईसा, हज़रत मोहम्मद, नानक आदि दिव्य विभूतियों से सबंधित होते है।

"साई भजनो की प्रमुख विशेषताएँ"

साई भजन बहुत ही सरल और सहज होते है। जिन्हें किसी भी व्यक्ति के द्वारा गाया जा सकता है। श्री सत्य साई बाबा ने प्रति दिन भजन संकीर्तन को अपने आश्रम प्रशांति निलयम की दिनचर्या में शामिल किया। और दूसरे लोगों को भी प्रेरित किया जिस कारण से बहुत से लोगों ने अपनी श्रद्धा और कला से साई भजनों को गाया और उनका निर्माण भी किया। उन भजनों का संकीर्तन स्वयं बाबा भी करते थे और अन्य भक्त भी उन्हें गा कर उसका आनंद लेते थे।

साई भजनो में विभिन्न प्रकार के रस भी शामिल है जैसे वीर रस, श्रिंगार रस, करूण रस, रौद्र रस, शांत रस, वात्सल्य रस, भक्ति रस।

साई भजनो में बहुत सी रागों का आनंद भी मिलता है जिन्हें बहुत से भक्तों द्वारा, जिन्हें संगीत का ज्ञान है, रचा गया हैं।

साई भजनो में विभिन्न प्रकार की तालों का मिश्रण भी देखा जाता है। साई भजन प्राय: धीमी गति में शुरू होते हुए तेज़ गति में गाए जाते है, जिसमें सभी लोग ताली बजाकर स्वयं भी आनंद लेते है। जब हम ताली बजाकर भजनो को गाते है तो यह एक प्रकार से हमारे मन के विकारों को दूर करता है। बाबा भी इसी बात को एक उदाहरण से समझाते है कि "Take for example, there is a tree. It is full of birds. They make a mess all over. How to get rid of these noisy ones? You should clap loudly. Similarly, in this tree of life, there are birds of desire. The heart therefore becomes dirty. In order to cleanse it, do devotional singing (bhajans)."

साई भजन अन्य साम्प्रदायिक भजनों से अलग इस लिए है, क्योंकि इनके गायन में एक विशेष प्रकार का प्रारूप अपनाया जाता है जैसे कि, साई भजनों का आरम्भ तीन ओमकर के उच्चारण से होता है। तदोपरांत किसी एक व्यक्ति के द्वारा भगवान श्री गणेश का भजन गाया जाता है और अन्य भक्त गण उसे उसी राग ताल में दोहराते है। गणेश भजन के बाद अन्य देवी देवताओं एवं सर्वधर्म आधारित भजनो का गान किया जाता है।

साई भजनों की एक और विशेषता यह है की इन्हें नियम अनुसार एक ही समय पर विश्व के सभी साई केंद्रो में शुरू किया जाता है। व्यक्ति, चाहे वह किसी भी पद पर स्थित हो, उसके आने की ना तो प्रतीक्षा की जाती है ना ही उसे कोई विशेष स्थान देने का प्रावधान है।

साई भजन किसी भी धर्म, जाती, अमीरी, ग़रीबी या संगीत कला में निपूर्ण व्यक्ति के द्वारा ही गाया जाए आवश्यक नहीं अपितु यह पूर्ण रूप से ईश्वर भक्ति को सर्वमान्य मानकर किसी के भी द्वारा गाया जा सकता है।

साई भजन को गाते समय किसी भी अन्य प्रकार का शोर, नृत्य, हँसी मज़ाक़, बीच में बात चीत करना मान्य नहीं किया जाता है। भजनों को अनुशासन और शालीनता के साथ भगवान के स्वरूप को ध्यान में रखकर गाया जाता है।

साई भजनों में भक्तों की बैठक भी इसे अन्य भजन केंद्रो से अलग करती है। साई भजन केंद्रो में पुरुष वर्ग एक तरफ़ और महिला वर्ग दूसरी तरफ़ बैठते है।

साई भजनों को गाने के प्रारूप में एक बिंदु और है जिसमें एक भजन पुरुष द्वारा गाया जाता है तो उसके तुरंत बाद महिला वर्ग से भजन शुरू किया जाता है। और सम्पूर्ण भजन सत्र में इसी प्रकार चलता है।

साई भजन केवल भारतीय लोगों या भारत की सीमा में ही गाए नहीं जाते बल्कि विश्व के १८४ देशों में इनका गान किया जाता है। साई भक्त विश्व के कोने कोने में फैले हुए हैं, और श्री सत्य साई बाबा के प्रति उनकी आस्था और उनके दिखाए गए मार्ग पर चल कर वे सभी विश्व में शांति प्रेम अहिंसा जैसे गुणो का पालन कर रहे है। विश्व के कई देशों में सत्य साई केंद उपलब्ध है जहाँ पर श्री सत्य साई बाबा के द्वारा बतायी गयी गतिविधियों का अनुसरण किया जाता है। लेखक प्रकाश नगायच अपनी पुस्तक 'श्री सत्य साई बाबा (एक अलौकिक व्यक्तित्व) में लिखते है कि "अमेरिका के वाशिंगटन नगर में भी श्री सत्य साई केंद्र है जहाँ प्रति सप्ताह सैकड़ों अमेरिकन इकट्ठा होते हैं और कीर्तन, भजन तथा पूजा के कार्यक्रम में बढ़े उत्साह से भाग लेते हैं।"

साई भजनों की एक और महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि भारत के सुप्रसिद्ध गायकों ने साई भजनों के प्रति अपनी रुचि दिखा कर और इन्हें गा कर इसकी प्रभूता में बढ़ावा दिया है। पद्मश्री हरिहरन, पद्मश्री सोनू निगम, सुरेश वाडकर, शान, अनुराधा पौडवाल, ऋचा शर्मा, पद्मश्री उदित नारायण जैसे कई नामी पार्श्व गायक गायिकाओं ने साई भजनों के ऐल्बम्ज़ में अपनी आवाज़ दी है। यहाँ तक की इन में से अधिकतर गायकों ने श्री सत्य साई बाबा के समक्ष अपने संगीत गायन की प्रस्तुति भी दी है। उपरोक्त सभी बातों से यह सिद्ध होता है की श्री सत्य साई बाबा के द्वारा शुरू किए गए साई भजनों की ख्याति और उनका गुणगान भारत देश में ही नहीं अपितु विश्व के कई देशों में किया जा रहा है।

साई भजनों को संगीत जगत में एक महत्वपूर्ण शैली के रूप में अपनाया गया है।

संदर्भ

1. श्रीवास्तव, मुरली मनोहर. (2009). "शहनाई वादक उस्ताद बिस्मिल्लाह खाँ." नई दिल्ली: प्रभात प्रकाशन. पृ. 37.
2. बंसल, लीलावती. (2002). "लोक गीत". नई दिल्ली: डायमंड पब्लिकेशन. पृ. 3.
3. प्रभाकर, महेंद्र सिंग. (2015). "गुरुनानक देव जी व्यक्तित्व एवं क्रतित्व." लुधियाना: विरसा पब्लिकेशन. पृ. 119.
4. Karapanagiotis, Nicole. (2021). "Branding Bhkati." Indiana, United States: Indiana University Press. Page 98.
5. सिंह, हरेंद्र प्रताप. (2008). "धर्म दर्शन की रूप रेखा." नई दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स. पृ. 254.
6. गुप्ता, गणपतीचंद्र. (2008). "श्री सत्य साई बाबा, व्यक्तित्व एवं संदेश." इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन. पृ. 53.
7. Sri Sathya Sai Baba Bhajans. Quotes on devotional singing (bhajans). http://saibaba.ws/bhajans/quotesbhajans.htm.
8. नगायच, प्रकाश. (1999). "श्री सत्य साईबाबा, (एक अलौकिक व्यक्तित्व)," नई दिल्ली: डायमंड पॉकेट बुक्स. पृ. 126.

Love, Sin, Religion, and Suicide in Graham Greene's *The Heart of the Matter:* A Critical Study

Dr. Suraj K. Sawant

Abstract

Major Scobie, the protagonist of ***The Heart of the Matter****, who is a deputy commissioner of police, becomes a Catholic to marry a devout Catholic woman. He is honest, just, and incorruptible. The fact that he is not particularly ambitious makes his wife ignore him as a mediocre man and a failure. Scobie befriends the young widow Helen, who had lost her husband in a shipwreck. In the process of trying, to make her happy and restore her life, he falls in love with her, though she is young enough to be his daughter. His illicit love for her and his Christian sense of morality creates a conflict within him. The conflict is between his ardent love for a young girl and his religion, which prohibits adultery. He tries to confess his sin at church after his wife's return but cannot amend or pay the penalty for his sin since he cannot leave Helen. He is drawn with this dilemma whether to confess and return to his religion or to remain true with Helen. Finally no other way of escaping the dilemma he decides to commit suicide, which is yet another sin in the catholic faith.*

Keywords: *Sin, love, religion, dilemma, corruption, treachery, suicide, etc.*

The Heart of the Matter, published in 1948, is one of Graham Greene's famous novels dealing with several issues in Catholic theological debates. The novel is set in a small British colonial outpost in Sierra Leone during the World War II. *The Heart of the Matter* brings to forefront topics like war, espionage, love, sin, adultery, treachery, and betrayal in the context of orthodox catholic assumption. The novel is centered around a personal dilemma which has broad ethical and theological overtones. This article attempts to highlight this moral dilemma and problematizes the conventional ethics that inform such an aporia. The novel focuses its attention on its hero Henry Scobie who degenerates into the position of a 'sinner' from a graceful colonial administrator owing to his

Assistant Professor of English, C.T. Bora College, Shirur, Dist. Pune 412210 (MS), Mobile: 9860333389

'a tragic mistake'. Scobie's 'cardinal sin' is that he desires another woman when he is already a married man. His commitment to his new love and his desire for 'flesh' gradually leads him to an irresolvable inner conflict when he realizes that his religion (Catholicism) considers it to be a sin having an extra marital relationship. As the novel progresses, the writer reveals how this in a dilemma takes on to several levels of psychological trauma which finally ends in the horrible death of the protagonist.

Major Henry Scobie, the protagonist of novel, originally not a catholic, accepted the catholic faith in order to marry Louise who was a devout catholic. Though a relatively new convert Henry developed great interest in it and gradually became an almost fanatic catholic. He lives in a colony on the west coast of Africa during World War II. He is very responsible officer, as he is the deputy commissioner of police, for security during the wartime. He carried the whole coastline of the colony in his mind's eye: from Kufa Bay to Medley was his beat. The present Commissioner of police told Scobie that he is going to retire after his twenty-two years' service and that after his retirement Scobie is expected to get promoted as Commissioner. Louise however, is not very happy about this proposal since this would mean that they will not be able to leave West coast in the near future. Louise asks Scobie if she can move to settle in South Africa so that she can escape life in the west coast which she hates. Through their fifteen years of married life Louise was never happy, in fact she felt increasingly solitary and unsatisfied as his wife, had no genuine friends and her only interest and solace was poetry. On his part, Scobie was not sure if he really loved his wife but had tremendous sympathy for her. Louise loneliness was intensified by the fact that she had lost her only child Catherine in England a few years ago. She could feel that she was no longer attractive, terribly lonely and fed up of the moron life in the west coast and hence wanted to escape the monotonous rhythm of everyday life by moving to South Africa.

At this point a new inspector named Wilson arrives in the town. He has several idiosyncratic features and as a person he is not sure of he wants. In a strange way he finds Louise interesting and he also comes to know about Louise's intense love for art and poetry and pretends that he has great interest in poetry just to impress her. He supposed that 'she is city intellectual'. However, when asked by a friend he strongly asserts that he has no interest in poetry, thinking that his friend might suspect his interest in Louise. Over a period he develops a very special kind of love relation with Louise. When Wilson asked Louise repeatedly about his

proposal of love, she replied, 'I don't love you; I love Ticki.' (Page, 79) What is merely a casual friendship for Louise is mistaken for passionate love by Wilson. She loves her husband unconditionally. She expected love in exchange for love from Scobie, but he failed to give her the love that she most wanted.

Later Scobie attempts to get loan from bank but fails to obtain it, he wanted to pay the two hundred pound fare for Louise's passage to South Africa. Yusef offers to lend Scobie the money at a rate of four percent per annum. Scobie initially declines, but after an incident where he mistakenly thinks Louise is thinking about suicide because she was crying and welling out from inside the bedroom terrified him, then he accepts the loan and sends Louise to South Africa. At the time of her departure for South Africa, Louise asked her husband, 'Do you love me, Ticki?' He replied, 'I love you, Louise. Of course it's true.' (Page, 101) He expressed such feelings just because Louise wanted to hear them once again from him. In fact, he does not love her but takes care of her as a dutiful husband.

Afterwards, the survivors of a shipwreck arrive after forty days at sea in lifeboats. Helen Rolt, a young girl of nineteen, arrives malnourished and dehydrated, clutching an album of postage stamps. She collected stamps because of not habit but she loves the things. She was married before the ship left port and is now a widow. Scobie felt love for her. He starts a passionate affair with her, all the while aware that he is committing the sin of adultery. While Scobie and Helen were making love, she asked him to leave Louise; Scobie gently declined her demand. She became furious and yelled at him, 'It's a wonderful excuse to be a Catholic! It doesn't stop you sleeping with me; it only stops you marrying me.' (Page, 179)

Eventually, Scobie wrote a letter to Helen: 'My darling, I love you more than myself, more than my wife, more than God, I think. I am trying very hard to tell the truth. I want more than anything in the world to make you happy... I love you. Forgive me'. (Page, 181) After writing the letter to Helen, I thought, 'why did I write that? Why did I write 'more than God?' She would have been satisfied with 'more than Louise.' Even if it's true, why did I write it?' (Page, 181) He whispered as, 'O God, I have deserted you. Do not you desert me.' (Page, 181) Here Scobie committed the mistake of declaring how earnestly he loved Helen, which is not only a crime but also a sin because, as a married person, he promised more love to Helen than his wife and God. On the one side, he promises love and responsibility towards his wife, and on the other hand, he keeps promising his love for Helen devotedly. The sin is that he promised more love to Helen than to his real wife. Then he

folded the letter and pushed it under the door. Helen did not get it, but a letter he wrote to Helen ends up in Yusef's hands, and the Syrian uses it to blackmail Scobie into sending a package of diamonds for him via the departing *Esperança*, thus avoiding the authorities. Thus, the diamond trader has started blackmailing Scobie and has kept continuing his illegal business with his help.

After Louise's unexpectedly returns, Scobie struggles to keep her ignorant of his love affair. He is unable to leave Helen, even in the confessional, where the priest instructs him to think it over. Louise takes Scobie to Mass to receive communion in his state of mortal sin, a violation according to Catholic principle. Scobie's religion causes him to suffer for others and because of others, as do his desires to make others happy-particularly his wife, whom he sends to South Africa, and Helen, whom he loves out of pity. His sin led him to suffer from repentance. He is a Christ figure, except for his sin, but Christ as everybody knows, was sinless and yet suffered for the sin of others. Then Scobie decides to free everyone from himself, including God, and plots his death by faking an Angina pectoris illness and getting a prescription for sleeping pills. Knowing full well that suicide is the ultimate punishment according to Church doctrine, he eventually commits suicide with the overdose of pills. Helen continues her dreary existence. And Louise, who knew about Scobie's affair, is made to realize by her suitor, Wilson, that Scobie's death was a suicide.

Moreover, Scobie is a blind believer in his religion without any possible reason for his belief. His religion is a habit with him, and he derives no joy from it. This makes him morose, dull, and disinterested in life. He is possessed by his religion. Scobie's first taste of true love in Helen's company is a painful pleasure because his religion forbids him from loving Helen, committing adultery, and remaining religious. After his involvement with Helen, he comes to face a psychological dilemma: if he means to be true to Helen, he has to give up religion; if he means to be true to religion, he has to give up Helen; if he gives up Helen, he would find no mind or interest in religion. In this way, he becomes a victim of his religion.

The concluding chapter consists of a short encounter between Louise and her confessional priest, Rank. Louise tries to rationalize Scobie's suicide in relation to his Catholicism, to which the priest advises that no one can know what's in a person's heart or about God's mercy. In Roman Catholic terms, Scobie's problem is that communion is impossible without confession, and confession is impossible without giving up sin, that is, without giving up Helen, whom he had promised to love and to protect.

Father Rank rightly remarks that 'the church knows all the rules. But does not know what goes on in a single human heart.' (Page, 272) This remark makes the religious question in the novel both intense and funny.

In the novel, Greene is preoccupied with Catholicism. He presents what goes on within the mind of a religious man who has committed a sexual sin, is against religion, and has betrayed God. Scobie, in the novel, is obsessed with his guilt, which is the result of his pity for Helen. He is psychologically disturbed since he has committed the sin and faces a terrible dilemma, which renders him incapable of thinking rationally, so much so that he either becomes a neurotic or appears to be in the grip of neurosis.

The most cardinal lessons that Catholicism has taught Scobie are the principles of love, sympathy, and pity. And yet when he honestly attempts to practice these religious principles in his actual personal life he comes to face serious problems. His problem is that when he pities Helen, he falls in love with her, and his love leads him to sin. He is happy in this sin, for he has done his duty. He has kept his promise to protect Helen. As a result, he resembles a man who is most happy in his sin. This is a sin that his religion forbids, which means that his sin has been that he pitied Helen! Had he been pitiless and inhuman, he would have been true to his religion, but he would have been selfish and happy for himself only.

The novel also tackles the issue of suicide which according to Christian religion is a serious sin. In the cases of both the young Pemberto, the District Collector, and Scobie, suicide is offered as the only way to peace. But religion does not save or bless such individuals. Scobie's life is a tragedy because of his devout Catholic faith. Scobie tries hard to reconcile his feelings for two women, his wife and Helen, and at the same time he wants to honor his Catholic belief. If he had been religious only he would not have sent his wife to South Africa by borrowing money from Yusef, and he would not have been involved with Helen. In other words, had he not been a Catholic, he would have had no problems at all, neither religious nor psychological. Scobie's moral and spiritual nature came in the way of his innocence, and hence, his tragedy.

Scobie is dragged to his death because he thought over the guilt of his sin, which destroys the foundations of his morality. He is aware that his sin is a direct injury to God, and he is powerless to prevent it. In his confession before God, he said, 'Make me put my own soul first. Give me trust in your mercy to the one I abandon.' (Page, 220) He is essentially a good man corrupted by the weakness of flesh, to which the atmosphere in which he existed contributed largely. Scobie to God: 'O God', he said,

'if instead I should abandon you, punish me but let the others get some happiness.' (Page, 220) So sympathy and pity for others, and a strong desire to make others happy at the cost of his own happiness and peace and disgrace, are the true Christian virtues that he practiced. The irony of Scobie's fate is that what he practiced (Christian virtues) makes him a sinner in the eyes of religion.

Scobie's tragedy and helplessness led to his suicide because he couldn't prove his love for God because, according to his Catholic faith, God's love has high moral standards. His last words, which he could not complete, "Dear God, I love..." (Page 265), are an indication that he loved God too intensely to be neglected by him. This would lead us to the view that Scobie should have saved his own soul and left the non-Catholic Helen and others to the mercy of God. Once upon a time, both women were in love with Scobie, but after his death, Wilson and Louise and Helen and Bagster got involved in adultery. Ms. Diana Neill calls the novel 'a story of sexual sin and damnation.' Also, W.W. Robson thinks that Greene is the leading figure to represent existentialist-psychological fiction, since the novel deals with Scobie's psychological conflict and his problem of 'existence' itself.

Conclusion

In the novel it appears Greene is making a strong case for Scobie. Scobie's sin must be forgiven because it was an expression of human love that led to adultery. Religion cannot forgive such a sin, and religion cannot be faulted. Greene seems to suggest that Scobie had no alternative but to have sexual relation with Helen. Then, could it be said that Greene's prejudice against Catholic religion crucifies the religion in the novel?

References:

Primary Sources

Greene, Graham, *The Heart of the Matter*, Penguin Books, 1971.

Secondary Sources

Erdinast-Vulcan, Daphna. *Graham Greene*'s *Childless Father*, The Macmillan Press Ltd, London, 1988.

Hynes, Samuel. *Graham Greene*: *A Collection of Critical Essays*, Prentice Hall, New Jersey, 1973.

Sharrock, Roger. *Saints, Sinners And Comedians* (The Novels of Graham Greene), Bums and Oates, Tunbridge Wells, England, 1984.

A Study of Dance from the Historical Texts under of the Mughals

Prerna Rana

Abstract

The period of early 16th century AD to the mid of 19th century AD in the history of India is termed as the Mughal period. It was the largest time period for any empire to rule over the lands of Hindustan. It is believed that these Mughal Rulers brought with them their own culture and beliefs which when interacted with Indian culture and ethics led to the development of a complete new culture called the Indo-Mughal culture. There were numerous literary works and texts written and translated under the imperial patronage of the Mughals. Mughal Emperors also patronized many painters under whom Paintings depicting music and dance were made. This paper is an attempt to write about the dance which was prevalent in the Mughal Courts, following the chronological order from Babar, the first emperor to Bahadur Shah Zafar, the last emperor and their tributary states like Awadh. I have also tried to critically analyse these mentioned dance form from some of the medieval texts and paintings under the Mughals and their possible connection to the present dance form Kathak.

Key Words: *Mughal, Dance, Court, Culture, Kathak, Awadh*

Introduction

It is the art that sustains, travels from one generation or communities to other and at the end rise above everything and brings the people together. Babar, a Central Asian ruler from Fergana valley established the Mughal Empire after defeating Ibrahim Lodhi at the first battle of Panipat in 1526 AD. The glorious Empire started declining after the last major emperor Aurangzeb death and was formerly dissolved by British India company in 1858 by exiling the last Mughal emperor Bahadur Shah Zafar to Rangoon.

India before the event of Mughals was fragmented into numerous regional kingdoms due to the lack of unity. After the mughals arrived, they brought political stability, economical sustainability along with them their own custom culture to India. They were the great reformers but at the

(PhD Research Scholar) Dept. of Dance, Faculty of Performing Arts, Banaras Hindu University, Varanasi, Uttar Pradesh, Email: prernarana411@gmail.com, Contact No. -8193875053

same time also had a strong zeal for pleasure and entertainment.

The history of music and dance during the Mughal period is a result of gradual synthesis of Central Asian and Indian music and dance tradition. The main factors in this process of synthesis can be social political agenda including intermarriage between the Rajputs and the Mughals, religious experience in Hindu due to bhakti movement and Muslims due to Sufi movement, mutual cultural interests in art and culture.

Babar (1526-1530) :

Though Babar like his father had keen interest in all the fine arts including poetry, music, dance but lived a very small period of four years in Hindustan after establishing the Empire.There are some entries in ***Baburnama*** about the musicians travelling from one place to another to earn for a living within their Persian cultural regions. Therefore we can learn that migration of artists to South Asia was common during that period. Since the period of reign was small so there are less mentions of music and dance in the court of Babar. There are only some mentions about celebrations and festivities were music and dance was enjoyed by the royal family and his peers.

Humayun (1530-1556) :

After Babar's death, Humayun ascended the throne in 1530AD. ***Humayun Nama,*** which was written by Humayun's sister Gulbadan Begum contains some references to music and dance. On completion of one year on the throne, celebration is called and referring to this Gulbadan writes, people sat from evening to dawn, and players and singers made continuous music.[1] There is also a miniature painting depicting celebration of circumcision ceremony of the child Akbar (fig 1). It illustrates the celebration where male and female musicians and dancers entertain in front of Humayun and the family. Dancers are dressed in Turki clothing and holding castanets are accompanied by women players of the tambourine (da'ira) and vertical flute(na'i).[2]



Figure 1

Akbar (1556-1605) :

One of the greatest emperor in the history of India was Jalal-ud-Din Muhammed Akbar. He ascended the throne in 1556 AD at a very young age of 13 years. Besides a great ruler he was also a great patron of art and culture. He also had Navratnas or Nine Jewels in his court. They were the group of nine extraordinary people and intellectuals which also included Tansen, the greatest singer in India's history. Akbar's reign was sufficient long and during the period he consistently tried to maintain political and economical stability along with a synthesis of culture of what his father and grandfather brought with them and what he found here in India.

The ***Ain-i-Akbari*** written by Abu'l Fazl mentions 32 of the imperial musicians in his court. Instrumentalists came from Transoxiana and Khurasan in Central Asia, cities in Persia such as Mashhad, Herat and from Kashmir.[3] Though there is a lot of mention of music, singers, musical instruments in Ain-i-Akbari but still Abu'l Fazl has mentioned some name of the communities of dancers in it. Some of the other names of communities mentioned are *Nurkiya, Dhadha Natwa, Bhagtiyaan, Hudkiyaan. Kanchari. Kurtiniyaan. Chaaran.* According to Dr. Maya Taak *Dhadha's* style of dancing is somewhere similar to Kathak. Like Kathak dancer when a Dhadha male dancer enters, he performs *Thaat* (element of Kathak Repertoire) and presents haava-bhaava in bols like, trak dhin,trak dhin,trak dhin dhin etc.[4] Now talking about *Natwa* community, They were a class who were graceful dances and players of pakhawaj, rubab and tala.[5] Related to this Dr Sunil Kothari writes 'The natwas were employed to teach dance to the slave girls. They also exhibited some graceful dancing and introduced various style to which the sang.'[6] An another class mentioned by Fazl was *Kanchanis,* the dancing girls. This name was given by Akbar to the high class dancing style of dancing girls.

Further Abul Fazl also give reference of Akhara, a private entertainment sessions which were held at nights by the nobles. These akhara starts with graceful movement of dancing and singing. For these sessions slave girls or domestic servant girls and taught to sing and dance. The *Natwas* are mainly employed to teach dance to these girls. Their entertainment sessions also included acrobatic dances.Fazl mentions about the community of *Nats* who were rope dancers and did acrobatic stunts on Tala and Duhul.[7]

As already mentioned that music and dance were an integral part of Mughal court and life. So, many dancers outside India were also brought to the court. Figure (1) from

Akbar-Nama c. C.E. 1596-97 or 1604 illustrates Akbar's circumcision ceremony where dancers dance in front of Humayun and his family. By examining the illustration in which dancers' costume is nowhere similar to the Indian traditional costume and resembles to Central Asian clothing. Thus it can be understood that these dancers must have been somewhere from the Central Asian region. Further justifying it by Bonnie C.Wade's quotes, 'In Akbar's court the Turki women dances of central/west Asia shared performance time and space with South Asian dancers.'[8] His quote furthermore also confirms towards the fact that the two different culture came together and continued to go under the process of synthesis during Akbar's period. This amalgamation was parallely witnessed in other art forms like music, painting, architecture etc.

Pundarika Vithala, an eminent writer and scholar also lived in Akbar's Court. One of the most remarkable work on dance is ***Nartananirnaya*** which was written by him for the pleasure of Emperor Akbar. He has made a clear view of describing not only the marg dance of the Natyasastra but also the deshi or regional dances including the dance of the "foreigners", that is to say, the Persians.[9] He has mentioned about ***Jakkadi*** a dance form in his shloka mentioned below. He describes it as dance of foreigners (yavanas).

यद् गीतं जक्कडीसंज्ञं यवनानामतिपप्रियतम्। [10]
Nartananirnaya , 4.914

His quote here proves us the relevance of an argument for tracing the history of kathak dance, which is thought to be somewhere influenced by Persian dancing styles today. He further also mentions about a Lavani dance, in which a dancer bends her waist in ardha-candra. The name of dance as Lavani mentioned by Vithala is further a topic of historical and comparative research with the very famous Maharashtrian folk dance 'Lavani.'

Jahangir(1605-1627) and Shahjahan (1627-1658) :

After the great Akbar, his son Nurud-Din-Jahangir (1605-1627) ascended the throne. He was the son of a Rajput princess and also a great patron of art. Later after Jahangir his son Shah- Jahan(1627 - 1658) became the emperor of this Mughal Empire. Music continued to flourish under both patronage. Dance too was prevalent during that time. There are mentions of four main type of professional dancing girls who came from Persia, namely **Lolonis, Domnis, Horckenis** and **Hentsinis.**[11]

Francisco Pelsaert, a Dutch merchant while his stay at Agra between 1621 - 27 wrote about **Jahangir's India.** He mentioned about the dancing girls as, 'there are many class of dancers, among them Lolonis, who are descended

from courtesans who have come from Persia to India, and sing only in Persian ; and second class, dominis, who sing in Hindustani, and whose songs are considered more beautiful. Other classes are named horckenis and Hentsinis, who have made this styles of singing and dancing.'[12]

There are also some mentions of dance being performed on Shahjahan's forty second birthday. Regarding the *Kanchanis* which was mentioned by Abu'l Fazl in ***Ain-i-Akbari***, Niccolao Manucci, a Venetian writer and traveller wrote a detailed account on Mughals in ***Storia do Mogor or Mogul Ind***ia. He mentions "this class is more extinct then others by reason of their great beauty. When they go to court, to the number of more than five hundred, they all ride in highly embellished vehicles and are clothed in rich raiment. All of them appear and dance in the royal presence."[13] He further writes that,'once the king fell in love with one of them, retained her in his palace and give her the title of concubine.'[14]

By the time Mughal Empire dominated almost the whole Indian subcontinent the wave of the moment among the Hindus who called themselves as Vaishnavite and Sufi movement among the muslims swept the country. Saints and poets like Mirabai, Surdas, Keshavdas who lived during this period wrote braj poetries. Simultaneously the Sufi movement led to the development of trance dance of Sufi dervishes. These dances were not performed in the Mughal courts.

In regarding this art and dance historian Padma Vibhushan Kapila Vatsyayan mentions, 'the story of the spread of Sufism is well known, but it is often not recognized that this particular type of singing and dancing also contributed to the making of a distinct North Indian dance style which is identified today as **Kathak.**'[15]

Figure (2) is an illustration from the Akbarnama, 1590 or earlier. It is a painting by Dharmdas which depicts a court of Akbar. After the defeat of Baz Bahadur of Mandu (Madhya Pradesh), his singers and dancers were taken and brought to the Mughal court. The painting by Dharmdas was painted after the incident. **The style of dance that is visible in the illustration can be little related to the North Indian classical dance Kathak.**



Figure 2

Aurangzeb (1658-1707) and Later Mughals :

Aurangzeb ascended the throne on 1658 AD. He tried to limit the music and dance activities under his patronage. But still there are some mentions of dancing that continued. Manucci in his writings has mentioned some name of female musicians and dancers, they were Kesar Bai and Hirabai.

Later mugals whose reign was for short period where too indulge in art. There is a mention of Jahandar Shah (1712 - 13) marrying a notorious dancer, Lalkunwar. She belonged to a family of Kalawants (musicians). Other famous courtesans name are also mentioned in history. They were Chamani, Chakmak Wamani, Panna, Tanu, Nurbai.[16]

By the end of 18th century, Mughal Empire started declining and giving rise to the autonomous states and tributaries of nawabs and rajas. Delhi once been a centre of these art gradually left alone with its artists musicians poets dancers moving to and finding opportunities in these states like Awadh(later Lucknow), Jaipur, Rohilkhand (Rampur) etc. Jaipur under the patronage of maharaja Sawai Pratap Singh became Centre from music. Awadh became the new centre for music and dance .

Dance in the Courts of Awadh

The nawabs of Awadh state were also great patron of music and dance. Prakash ji, a dancer from Handia (near Prayagraj) became the court dancer of Nawab Asaf-ud-Daula. After years, the last ruler of Awadh, Nawab Wajid Ali Shah ascended the throne. He was himself a prolific writer, musician dancer The dance which we see today as Kathak mainly the Lucknow style flourished and attained its height of glory during his period.Wajid Ali Shah gave dance "a definite form, made it more artistic, and gave to it an aesthetic touch, he enriched it with rasa and bhava, and he added literature to it, lent it sensuality, and furnished it with grandeur and splendor to its presentation"[17], writes Abdul Halim Sharar.

He established a Centre for the training of dancers which he called as' Parikhana'. Today it is a part of building of Bhatkhande Cultural University, Lucknow. He also produced *Rahas* productions which was based on Raslila but were set in a Persian background. Pandit Thakur Prasad was the dance Guru of Wajid Ali Shah and later on his two son Bindadeen and Kalka Prasad became the court dances of Awadh. It was during the period the emergence of Gharanas took place and the Lucknow Gharana came into existence. It evolved and perceived a more individualistic shape under the rule of the last Nawab of Awadh, making it more influential. Due to the Muslim court patronage, which had a significant impact and

an entertaining quality, Lucknow School displays a more secular and enjoyable quality. In 1856 the British East India company annexed Awadh and nawab Wajid Ali Shah was deported to Calcutta. With the death of nawab Wajid Ali Shah the whole period of Mughals starting from 1526 AD till the first war of independence in 1858 AD, came to an end.

Conclusion

It is true that dance prevailed in India before the advent of the Mughals but after entering the mughal patronage this art form when interacted with the another culture of different background evolved gradually to attain a new form which was a result of confluence of indo-mughal culture. After studying the various texts of history of that period we found that the term 'Kathak' was nowhere addressed to the dance performed in the Mughal courts. Analyzing some paintings from the mughal period we can relate that the art form we see today as Kathak must have been product of this amalgamation and it was during or after the Wajid Ali Shah that the dance took its name as 'Kathak.' Also by Abul Fazl and Pundarika Vithala's work we come to know that their were few other dancing styles prevalent during that time like Acrobatic rope dance by Nats, Jakkadi dance of foreigners (Yavanas), Lavni dance which are further a topic of research. After the decline of the whole Mughal period in around 1857AD, dance also went to the chambers of tawaifs or accomplished courtesans and called as 'Nautch.' However after the national awakening in the country its social, political structure also got revolutionized which also included revival of our literature, music and dance forms.

Reference

1. Beveridge,S. ,Humayun Nama (The Histtory of Humayun) by Gul-Badan Begam, Royal Asiatic Society, London, 1902, Pg. 178
2. Zaid, Zeenut, The Magnificient Mughals, Oxford University Press, Pakistan,2002, Pg 240
3. Beveridge,S. ,Humayun Nama (The Histtory of Humayun) by Gul-Badan Begam, Royal Asiatic Society, London, 1902, Pg. 233
4. Taak, Dr. Maya, Aitihaasik Paripekshya me Kathak Nritya, Lanishka Publishers,Distributers, New Delhi ,2006 Pg- 6
5. Jarrett, H.S., The Ain-i-Akbari, Vol 3 by Abu'l Fazl 'Allami', The Asiatic Society of Bengal, Calcutta, 1948, Pg 272
6. Kothari,Sunil, Kathak: Indian Classical Dance Art, Abhinav Publications , New Delhi, 1989, Pg 7
7. Jarrett, H.S., The Ain-i-Akbari, Vol 3 by Abu'l Fazl 'Allami', The Asiatic Society of Bengal, Calcutta, 1948, Pg 258
8. Zaid, Zeenut, The Magnificient Mughals, Oxford University Press, Pakistan,2002, Pg 236

9. Walker, M. E.(2004). Kathak Dance: A Critical History. Pg 57 https://www.academia.edu/33750153/Kathak_Dance_A_Critical_History
10. Bose, Mandakranta, Speaking of Dance: The Indian Critique, DK Print World, 2002, Pg 54
11. Baijnath, "Nautch Girls", Marg Kathak Vol 12, No.4, Pg 19
12. Geyl P., Moreland W.H.,Jahangir's India: The Remonstrantie of Francisco Pelsaert, W. Heffer& Sons Ltd., 1925, Pg 83
13. Manucci, Niccolao, Storia do Mogor or Mogul India 1603-1708, Vol 1, transl. By W. Irvine, John Murray,London, 1907 Pg 96
14. Manucci, Niccolao, Storia do Mogor or Mogul India 1603-1708, Vol 1, transl. By W. Irvine, John Murray,London, 1907 Pg 196
15. Vatsyayan, Kapila, Dance in Indian Painting, Abhinav Publications, New Delhi, 1982, Pg 89
16. Bor, Joep, The Voice of Sarangi, NCPA Quarterly Journal, Vol16& 17, No. 3,4&1, Pg 84
17. Sharar, Abdul Halim, Lucknow: The Last Phase of an Oriental Culture, Oxford University Press , New Delhi, Pg 141-142
18. Figure 1 : Srivastava Ranjana, Kathak,The Tradition: Fusion and Diffusion, D.K. Printworld (P) Ltd. , New Delhi, 2008, Pg 176
19. Figure 2: Srivastava Ranjana , Kathak,The Tradition: Fusion and Diffusion, D.K. Printworld (P) Ltd. , New Delhi, 2008, Pg 174

Food as the Apple of Eye in Jhumpa Lahiri's Writings

Ms.S.Poornima*, Dr.T.Alagarasan**

Abstract

Life is a two sided coin, it has both the sides of happiness and darkness, it is not a bed of roses to live happily, but at the same time life is not a bed of thrones to bleed anytime. Nothing is temporary in this wicked world, not even our troubles, so we all should be bold to face any troubles, to be strong at our miseries, to welcome whole heartedly our happiness even though it is a minor one. Life is beautiful, for those who are celebrating every happiness and sorrows: life is a tragedy for those who are looking for their troubles only in life; everyone must understand the concept that life is to be enjoyed and celebrated. Life without food is like a fish out of water. None can live without food and water. At the same time everyone has some expectations to live a luxurious life, but all could not sail in the same boat, some might have born with silver spoon some may not, but improving themselves and adjusting to miserable situations may lead them to live a happier life. Immigrants are not an exception in this case. They are like chasing rainbows but sometimes that will be the right chance to them to realize the worth of their own tradition and culture by comparing with alien culture. The most celebrated Diaspora writer Jhumpa Lahiri depicts her own experiences through her characters in a perfect manner as well she expresses how food is essential to people, immigrants are not an exception, and how food plays a vital role, it remembers as a cultural segment everywhere.

Key words: *Immigration, Diaspora, Alien life, Nostalgia, Culture.*

Life is a challenging sport. It is interesting when we face both the success and failure in the same mind. Life without food is like a fish without water, so food is an apple of the eye to all. Everyone's life has two sides like a single coin. Prosperity and adversity follow one after the other

*Ph.D Scholar (Part-Time), Government Arts College (Autonomous), Salem-636007, (Affiliated to Periyar University, Salem- 636011)

**(Research Supervisor), Associate Professor of English, Government Arts College (Autonomous), Salem-636007, (Affiliated to Periyar University, Salem- 636011)

naturally just like a day is followed by night and night by day. No man can remain prosperous or continue to experience only hardship till the last day of his earthly life. Life is always a bed of both roses and thorns. All roads leading to prosperity are only through adversity. Anyone who refuses to believe this ceases to be a human being. Since happiness and sorrow come in life one after the other, one should not be over joyous when one is very happy. If one has to go through the life of misery and distress, one should not lose heart.

It is natural that the trees, the flowers, and the earth, which lose their beauty and splendour during the extreme wintry days, once again blossom and become beautiful with the coming of spring and fill the earth with the living colours and odours. When man's adversity makes him cry, he must be hopeful thinking that his patience and perseverance in adversity will bear fruits. Hence, when he "falls on the thorns of life and lies bleeding" (Shelley, WW), he should not desert his optimistic outlook on life. In the Old Testament of the Bible, it is said that man should not feel disheartened at his life of misfortunes because;

He should rejoice in his sufferings, knowing well
that his suffering produces endurance in him, and
his endurance, in turn, produces in him a very good character; his character then brings him the hope that
will never disappoint him because God is his hope (Prov. 20.7).

Life is not worth living without difficulties. Only those who brave misfortunes will realize the truth what Shakespeare has said in his romantic comedy *As You Like It*. According to him, "Sweet are the uses of adversity, … Wears yet a precious jewel in his head (3.3, 31-33)." The poor people of France had experienced the tyranny of the monarchy and the cruelty of the aristocrats for a long time. They had to put up with such untold and endless hardships with the fond hope of complete freedom. Their hope never deserted them, and it was realized in the form of the French Revolution. The Blacks in South Africa had patiently gone through inhuman racial discrimination at the hands of the Whites. They had to live with the hope that one day a spring would bloom in their life, leaving behind the seemingly interminable winter of discontent and distress. As they had hoped, the day dawned with the end of racial discrimination and the beginning of their free, happy and peaceful co-existence with the whites.

Hence, man must realize that joys and sorrows, happiness and suffering, smiles and tears, and rain and sunshine work in hand in hand to decide the course of his earthly life. He should face the one with courage, boldness and guts, and look forward to saluting

the other. He should bear the one with the calmness and prepares himself to face the other cheerfully. Winter does not disappoint man who has self-confidence and positive attitudes and who does not give way to despair and dejection. It is said that the fortune favours the brave and so does the winter. Therefore, every man must be optimistic like Shelley even when he is experiencing the throes of life realizing the fact that 'if winter comes, can spring be far behind?" (70).

Man should not find fault with anyone or God for his misfortunes in his life; neither should he enjoy fortunes forgetting God He fails to be grateful to God for His having blessed him with fortunes. Everything that is happening to man is predestined because whatever is happening is happening according to God's will. Without realizing this fact, man turns to God for help and comfort in his hour of distress. Man always looks forward to the days of prosperity, but nobody realizes the fact that adversity has its blessings too. Bacon in his *Of Adversity* expresses his opinion about the significance of adversity stating:

Prosperity is the blessing of the Old Testament; adversity
is the blessing of the New, which he says, carries greater
blessing and is sure sign of God's favour. . . . Prosperity
is not without many fears and distastes, and adversity
is not without comforts and hopes" (23).

He struggles very hard to find ways and means to escape from the life of adversity. But whenever his attempts end in failure, he looks disappointed and dejected. He also feels that his life of suffering will never have the traces of silver lining. At once, he begins to feel that he is always fighting a losing battle in his life and as such, his life will be without any relief. But Arthur Hugh Clough gives a promise of hope and cheers to such depressed human being saying that he should not think that his struggles are without any relief**.** Hence, he should not give up his fighting spirit in the sufferings of his life because such a life has a meaning and it is worth living too. "It is better to drink of deep grieves than to taste shallow pleasures" (Hazlitt, *Characteristics*, 1823).

This is the world in which both the lamb and the tiger have to coexist to share the same earth and the sky. Similarly, happiness and sadness are indispensable parts to make human life a meaningful and complete one. This is the world which comprises men like Falstaffs and Hamlets. Falstaff stands for optimist whereas Hamlet is for pessimist. An optimist like Falstaff looks up and counts stars, where there are none and he

derives joy out of it. But a pessimist like Hamlet looks down, finds a ghost where none exists, talks philosophy and utters notes of pessimism. For the optimist, even winter has elements of spring whereas for the pessimist, the spring brings shades of winter too. But such men forget God's purpose and fail to realize that both spring and winter are bound to have their innings in the natural course. Moreover, Falstaff cares for nothing but food and wine, he is considered as a glutton.

Prosperity invites the fair-weather friends, but it is only adversity, which not only make the sufferers shun them but also have the better chance of knowing who is good and who is bad among his friends. Prosperity makes a man complacent, ungrateful and forgetful whereas adversity brings the best in him, awakens him and makes him understand the ways of the world. It is only adversity that motivates him to go ahead with alertness and agility. When fortune smiles on man, he forgets himself, even unmindful of God and His blessings. He embraces pride and haughtiness and becomes completely materialistic. It is only when he receives stroke after stroke of misfortunes that he realizes his mistakes and follies, repents and laments and at last, chastens and purifies himself. Then he understands the real meanings and purpose of life.

No human being realizes the truth that adversity is the means through which God fashions him to be good. This is what George Herbert drives home through his poem *The Pulley.* According to him, God has bestowed man with all the riches except 'rest'. God does not want to bless man with the gift 'rest' lest man should forget Him and spend his time only in the enjoyment of His gifts. If man does not think of Him, he will not reach His heavenly abode. If he fails to reach Him in Heaven, he will lose Him. But God's desire is that man should reach Him. If man does not reach Him, God's desire will not be fulfilled. As a result, God will lose him. But God does not want both to be the losers. Hence, He expects man to seek rest only in Him but not elsewhere, and hence, He decides:

Yet let him keep the reset,
But keep them with repining restlessness.
Let him be rich and weary, that at least,
If goodness lead him not,
yet weariness
May toss him to my breast
(16-20).

Most renowned writer Jhumpa Lahiri is the best instance to express her immigrant experiences through her works. The immigrant Ashima in *The Namesake* also feels so many struggles to adopt into new culture. She feels very difficult to adopt into her alien food items. She usually prepares Indian food items at home and serves to the family. Moreover

we all know that Indian tradition, customs and its heritage and culture is a divine one and in addition to this, Indians are really much honored of their inborn cultural heritage. Some may adopt themselves into alien culture like Ashima's husband Ashok, and some may not, and in other hand, even though some people migrate to America, they may follow their traditional customs there. Jhumpa is the great creator for this; she is well versed of moulding minds of immigrants as real pictures, she exposes her highlighted tradition and her inborn Bengali culture through her writings and compares that culture with alien culture through the chronicle of the immigrant character Ashima.

Lahiri pictures the concept of 'Melting Pot' and 'Salad Bowl.' Melting pot refers to most of the immigrants might have melted together. In this case, some immigrants might have abandoned their own cultures for the sake of totally assimilating into American society. This is the reason that US is often called as a 'melting pot.' On the other hand, many countries like UK consider cultural diversity as a positive one and in this concept immigrants have always been encouraged to maintain their traditions and their native culture. This concept is related to 'salad bowl' why because different fruits mixture makes the salad in a bowl, likewise different cultures unite in a single country makes a social harmony. Even though various fruits may be mixed, every single fruit has an individual taste; as well every country has an individual culture of its own. Apart from the rootedness, there is also imbibed with ethnic identity, costume, food, religion and rituals act, language, culture are notable symbols to be interconnected with their native tradition.

Food is essential to everyone, even though anyone can survive anywhere. Food items may differ from region to region, country to country, but the importance of food is common to every human. Therefore food plays a vital role in diaspora writing, Lahiri is not an exception and Mira also. Ashima, the immigrant, always prefer to Indian food like meals, fish, and especially south Indian dishes like idly, vada, dosa etc. Also she used to wear Indian traditional wear sari and salwar as well occasionally sometimes wear modern dresses due to her work. Ashoke adopts himself into the modern way of dressing because of his career but he is also fond of wearing dhoti often. The couple is very particular of traditional based cultural recitals, rituals and spiritual carnivals are offered in the fest of Durga puja, Diwali, etc. These scenes are beautifully depicted by Lahiri in *The Namesake.*

Next focus is on the fully Americanized born child, Gogol. He is an example of western culture, as

is opposite to his parents. Even his sister Sonia may love Indian culture, but he never. He strongly pushed him into American culture and he struggles to involve himself into Ashima's traditional performances. His father named him as his choice, but Gogol feels even that love might be an unwanted behaviour. He lives without any goal; he wants to enjoy his life as an American citizen. Even though he is an American citizen, he likes to eat Indian Tradition food, at the same time he eats western food at outside. Whenever Ashima serves Indian food during their dining, she remembers Indian tradition and expresses her childhood experiences to her son.

In her short story collection *Interpreter of Maladies,* the second story entitled as *When Mr.Pirzada came to dine,* the title itself highlights how Lahiri has given importance to food and dining in her mind. A Pakistani Mr.Pirzada and the young girl Lilia, an American child of Bengali Immigrant parents love Indian tradition food the most. Lilia describes, "From the kitchen my mother brought forth the succession of dishes; lentils with fried onions, green beans with coconut, fish cooked with raisins in a yogurt sauce." (*IM*, p.30) In the story *Mrs.Sen* also, the titular character Mrs. Sen is fond of Indian Tradition food items. She loves cooking Indian food and serves to Eliot, an Americanised child with more love. "She took vegetables between her hands and hacked them apart, cauliflower, cabbage, butternut squash. She split things in half, then quarters, speedily producing florets, cubes, slices and shreds. She could peel a potato in seconds." (*IM,* p.114)

All the immigrant character are fond of cooking and eating Indian traditional food items. Indian Tradition vegetables and other groceries are available all over the world, because Indians exist everywhere. In her another collection *Unaccustomed Earth* also expresses the importance of Indian food items. The titular story protagonist, Ruma is willing to cook traditional food items. She serves with much interest to her family by sharing her beautiful experiences in her native to her child. At first Akash, an Americanised child hates the plate of Indian food, but later he starts to love eating Indian food. Meals plays a major part in the titular story. Akash at first struggles to eat by fingers but later he starts to eat through his observance. In *Hell-Heaven* also Aparna longs for Indian tradition as well as her husband Pranab also remembers with Indian tradition food, music and memeories with him always. They are physically present in abroad but they are living mentally in India. All the immigrant' characters in this collection also exposes the importance of Indian traditional food and culture. Portrayal of Indian Food items is placed with much interest

in the mind of writer as well as the readers.

Wherever we go, wherever we exist, Food is essential to everyone. Without food, no one can live in the world. Food varies as per the tradition and culture. Healthy food items only make human a strong living being. A brain acts smart when we eat healthy foods, at the same time a brain confuses and feels tired of eating heavily. We always remember the quote that too much of anything is good for nothing. So the people may go to abroad is not bad, they can follow Indian tradition in abroad is not bad, but they must adjust themselves in the new culture also. Adjustment is an indispensable quality of every human being. None can deny the fact that food is the most important cultural nutrition in every nation as nutrition is to human.

To put it in a nutshell, Lahiri's characters are the best instances of Salad Bowl concept. They were not abandoned their original culture, they just try to adapt a new culture for the sake of family or education or career. Whenever the immigrants think of their mother culture, they will be real disciples of respecting their own rather than other cultures. Everyone has a mother, but wherever we go, we can find some other woman like mother caring us, supporting us, treating us as her children, but no one can replace the place of a real mother. Likewise in culture also, there will be no replacement. Immigrants can learn the various cultures but never abandon their original culture though it's in everyone's blood. Wherever we live, we can learn the traditional food items through the reading of books. According to Bacon, "Studies serve for delight, for ornament and for ability." (*Of Studies*, p.38)

References

Bacon, Francis. *The Essays of Francis Bacon*. USA: Createspace Independent Pub, 2014. Print.

Das, Nigamananda. *Jhumpa Lahiri: Critical Perspectives*. Pencraft International, 2008. Print.

Lahiri, Jhumpa. The Namesake. New Delhi: Harper Collins, 2004. Print.

--- . *Interpreter of Maladies*. Houghton Mifflin Harcourt, 2010. Print.

---. *Unaccustomed Earth*. India: RHI, 2009. Print.

Peale, Norman Vincent. *Six Attitudes for Winners*. Munbai: Jaico Publishing House, 2010. p.125. Print.

Ratcliffe, Susan. Ed. *Oxford Quotations and Proverbs*. New York: Oxford University Press, 2001. Print.

The Fraternal twins of the Bengali folk music culture: Baul and Bhawaiya

Stavamagna Chakraborty

Abstract

Bengal as a hub of numerous folk cultures, be it art, dance, music, lore, etc. today is significant. The folk music culture of Bengal like others generally comprises rural music that originally was passed down through families and other small social groups in oral forms. Even, there are songs initially confined to specific occupational communities in Bengal for instance, bhadu, tusu, potuar gaan- practiced by potters, barbers, and artists. There are different constituents of Bengali folk music- In North Bengal one gets to hear songs like Bhawaiya, Bhatiali, Gombhira, etc. while in South Bengal we have the famous Baul, Bhadu, tusu, potuar gaan, jhumur, etc. North Bengal generally houses tribal musical cultures and even songs connected to today's Bangladesh (Bhatiyali) whereas, South Bengal holds importance to folk music bringing up stories from specific occupational communities and festivals. In this paper,I would like to present a basic comparison between the two varieties of folk music-Baul and Bhawaiya with a tinge of a challenge to the conventional view of commercialization being an enemy of originality and authenticity.

Keywords : *folk culture, music, commercialization, Baul, Bhawaiya*

The human tendency toward music has been an eternal one since evolution and therefore, even the social feelings of jubilance, sorrow, sympathy, confidence, and whatnot, have acquired a musical representation. The tunes composed of flavors of rural life and nature are categorized as folk music. The ***New Harvard Dictionary of Music*** defines folk music as-

"music in oral tradition, often in a relatively simple style, primarily of rural provenance, normally performed by nonprofessionals, used and understood by broad segments of a

37, Anandlok, August Kranti Marg, Delhi-110049, chakrabortystavamagna@gmail.com, Mo.

population and especially by the lower socioeconomic classes, characteristic of a nation, society, or ethnic groups, and claimed by one of these as its own." (Bruno Nettl)

The oral transmission of folk music is common in all areas; hence, no literary trends for folk music have been located for a considerable time. In terms of notable scholar **Gregory Booth**- ***"the consistent use of oral transmission again an economic (and sometimes technological) compulsion further ensures that each generation will minutely restructure the music to fit its taste and requirement" (Gregory Booth)***. Continuity of time serves verdure to folk music. The music which through time immemorial has continued within people by even changing somewhat of its constituents, proving the eternality of continuity and change is folk music. The ever-changing composition and never-changing way of surviving through people's lives with time bringing out the inner flavors of a place or community is the culture of folk music and Bengal has been a crucial instance in this sphere.

Bengal as a hub of numerous folk cultures, be it art, dance, music, lore, etc. today is significant. The folk music culture of Bengal like others generally comprises rural music that originally was passed down through families and other small social groups in oral forms. Even, there are songs initially confined to specific occupational communities in Bengal for instance, '***bhadu', 'tusu', 'potuar gaan'***- practiced by potters, barbers, and artists[1]. There are different constituents of Bengali folk music- In North Bengal one gets to hear songs like **Bhawaiya, Bhatiali, Gombhira**, etc. while in South Bengal we have the famous '***Baul', 'Bhadu', 'tusu', 'potuar gaan', 'jhumur'***, etc. North Bengal generally houses tribal musical cultures and even songs connected to today's Bangladesh (Bhatiyali) whereas, South Bengal holds importance to folk music bringing up stories from specific occupational communities and festivals. Now, after talking so much on folk music, especially on Bengali folk music, it could be asked, what is the significance of all this? What purpose do they serve? How do people react to this? So, folk music represents the cultural taste of Bengal through the short stories that they brew upon- for instance, the Baul song-

dekhechi rupsagore moner manush kacha sona…[2]

the Bhawaiya song of famous singer **Abbasuddin Ahmed**-

fande poriya boga kande re…[3]

-refers to an incident similar to the Hindi proverb-***"ab aya ut pahar ke neeche"***. Moreover, folk music pass on important information from generation to generation for instance, if the *jhumur* song ***"pindare polasher***

bon"[4] is not continuously improvised, maybe the concept of '*polash bon*' or the forests of polash flowers in Purulia and Bishnupur shall vanish in near future as a result of increased deforestation and pollution in South Bengal areas. Therefore, folk music as a whole significantly serves the problem of identity crisis and keeps up with the originality of a community or a place. In this paper, I would like to present a basic comparison between the two varieties of folk music-Baul and Bhawaiya with a tinge of a challenge to the conventional view of commercialization being an enemy of originality and authenticity.

"Bauls are village singers and holy people in both West Bengal and Bangladesh, who wander from town to town playing musical instruments, dancing, and singing of their religious beliefs and experiences"(June McDaniel). This very simple and concise definition given by June McDaniel scratches the surface of the Baul identity and its many mysterious facets. With a name that seems to have both Sanskrit and Arabic origins and singers who enjoy popularity and face marginalization simultaneously, Bauls has an interesting story to tell. In India, Bauls are mainly based in the southern districts of West Bengal and a few parts of Tripura, Assam, and Meghalaya. Predominant in the rural areas, Bauls belonged to lower castes and economically weaker sections of society. While their exact origins are still a matter of debate, Bauls have had a strong presence in Bengali folk culture as a diverse group drawing influence from both Hinduism and Sufism, projecting strong views against societal injustices and creating their own philosophical views.

Ektara, the iconic single-stringed instrument a Baul singer always carries, is often paired with others such as the manjira, khol, and khartal. These instruments are handcrafted by rural artisans using cheap, easily available materials. This is symbolic of the rural, socio-economic background of Bauls. With an ektara probably made with his own two hands, the Baul would wander the village singing songs and accept alms in the form of "***madhukari"***[5] which was the sole subsistence of Baul singers.

The origin of Baul has been a much-debated topic. The first written evidence of the word itself dates back to the 15th century, but there have been claims of the tradition being much older. According to one theory, the Baul movement originated from the Bhakti Movement between the 14th and 17th centuries. This connection can be made due to the prominent influence of Vaishnavism on the Baul tradition. Another theory links the emergence of the Baul Culture with the Sindh invasion of India by Muhammad Bin Qasim

in the 8th century, which led to the spread of Islam. Additionally, the traditions of the Islamic religion introduced in India by Sufi saints were relatively liberal and accepted by Indian society. The preaching of anti-orthodoxy common to both the Bhakti Movement and Sufism contributed significantly to the emergence of Baul culture in Bengal. A hundred years before the Bhakti Movement, a third theory states, that Bangladesh was a very prominent center of Buddhism. Apart from the impact of the Buddhist movement on the Bhakti Movement itself, the idea of 'universal brotherhood' is also something it has in common with the Baul tradition. Currently, Bangladesh claims Baul to be a major part of its culture. Thus, from Buddhism, Sufism, and the Bhakti movement, a three-way origin or 'triveni' forms the background of Baul culture. Coincidentally, the concept of 'triveni' is significant in the Baul yogic practices. Baul songs, therefore, can be explained to be the anti-conventional mirrors of medieval, and early modern Bengal society for quite some time, influencing the people, their mentality, and their upbringings to be comparatively liberal and unbiased.

The Baul songs had implicit themes of spirituality and mysticism, communicated through non-spiritual themes. A large number of Baul songs are interpretive and ambiguous, but some strongly criticize the caste system and religious orthodoxy. For instance, the famous **'Lalon Geeti'**[6]-

Jat gelo,jat gelo bole,
Eki ajob karkhana?[7]

-explain this fact. While religious imagery and concepts may have been used, they often had deeper, contextual meanings. The struggle with poverty is linked through metaphor with the yearning for emancipation. The fact that such philosophically rich and intellectual themes were incorporated in songs composed by the "lower class" sections of society is quite thought-provoking.

Bauls have had a history of marginalization. The Hindus couldn't accept them because they were against caste, rituals, and idol worship. The Baul fakirs were not taken into the Muslim fold because they did not follow the Quran and Hadith or fast during Ramadan. As the Bauls preached against the mainstream religions, they attracted the enmity of the religious orthodoxy, and, effectively, the political powers. They were not only denied recognition but often found themselves ostracised and banned. At a time when non-conformity was punished with death, making a living as a Baul singer was full of struggle. This is one of the reasons the Baul community was close-knit and very accepting of people and ideas. In the ashrams and Akhdas of the countryside,

philosophical discourse and discussion on social concerns among the Bauls took place. At the grassroots level, Bauls were popular because they understood the daily struggles of the common people. From famine and disease to poetry and spirituality, the Baul philosophy is deeply ingrained in folk culture. The impact of Baul on Bengali culture has always been implicit, in terms of the spiritual consciousness of Bengalis and their social and religious inclusivity. Bauls were an integral part of the village community. However, it was in the colonial period when the Baul tradition came into the limelight.

Bauls are often referred to as 'saints' or 'fakirs' since they follow an ascetic lifestyle. One can become a Baul through initiation into a Baul Gharana, where a '*guru-shishya'* practice is followed. Baul songs were passed down within these communities entirely in oral form until the end of the 19th century. Even now, this Baul tradition is followed by those who pursue Baul music and lifestyle. The Baul philosophy is uniquely humanist. Caste, class, and gender distinctions are absent within the Baul communities. Bauls are passionate about rejecting all forms of social discrimination. The Baul songs preach love that is devotional but not religious. The idea of love and its transcendental ability to liberate humans is emphasized. According to their ardent belief in the philosophy of "*deha-tatta*"[8], divinity resides in each human being. Such mysticism is complex and layered, but when communicated through music, it becomes apparent to the listener.

The Baul culture also inclines toward women's participation- as a part of its liberalist ideals, where women are considered to be indispensable companions in Baul Sadhana. Although most female Bauls come from rural Bengal, a patriarchal hub, there is a strong sense of gender equality within the Baul culture. Men and women are not treated differently at all. Women who, according to mainstream religious traditions, cannot achieve renunciation, can pursue the spiritual path by becoming Bauls. Like their male counterparts, Baul women can become gurus who initiate newcomers, *'seva-dasis'* to Baul men though being free to choose their companion. One of the main reasons Bauls are not acceptable in mainstream society is their complete opposition to gender norms. As an example, the song- ***'Mon Jodi tui'*** by **Guru Shashanka Goswami** can be expressed comprising verses like -

Prakriti hole dhorte pari,
pungshachare nahi pabi[9]

-depicting the unbiased and somewhat matrilineal aspect of Baul. Bauls are also known for their sexual promiscuity and secretive ritual practices where women always take the lead in explaining

the reason behind the Baul women being stigmatized. The inner workings of Baul culture, however, are greatly influenced by Tantric and Shakti traditions, thus valuing women greatly. While the male and female union is seen as the path to renunciation, reproduction is not the aim. Thus, the Bauls can dismantle the patriarchal system by restoring the sexual freedom of women and taking away the burden of childbearing.

Moving to the second genre of Bengali folk music, Bhawaiya, it is crucial to understand the physical and societal terrain that it has been exposed. It is only then that we would probably grasp the inherent similarities as well as philosophical and characteristic diversities between the two genres of Bengali folk music. The Bhawaiya is a popular folk genre of music, originating in North Bengal, especially Rangpur Division in Bangladesh, the Cooch Behar district of West Bengal, India, and the undivided Goalpara district of Assam. While the lighter and more and more socially oriented sub-category of 'chatka'[10] is an integral part of the bhawaiya idiom, the popular image that the term 'bhawaiya' conjures up is a form of plaintive ballad narrating the stories of mortal love and loss-but how did Bhawaiya originate and why? Like all other folk musical cultures, even Bhawaiya had its socio-cultural roots. Talking about the origins of Bhawaiya as per the notable work of **Dr.Sukhbilash Barma –'Bhawaiya Ethnomusical studies'**- ritual roots, community roots, and theatrical roots are significant and it is in this regard, the origin of folk music system, that scholar **Gregory Booth** expresses- the music here is not incidental but it is an extension or a constituent of a non-musical activity, but later gets focused upon as a significant cultural representative- ***"typical with a folk music system, music is tied to a non-musical activity…"(Gregory Booth)***

Bhawaiya had ancestral relationships with ritualistic representations. In North Bengal, there were songs dedicated to Manasha, Shaitol or Kali. People asked for protection from venomous snakes, as a gift from the snake goddess, Manasha, the sister of Vasuki Naag[11]. Shaitol, a variant of the goddess Shasthi, appeared as a resort to childless couples asking for the blessing of fertility. Kali was also a god of fertility. The origin of [bhawaiya] music can be traced in the acts of worship and rituals, where women played the most important part. At least in Bengal, such rituals were always the domain of women, as was the case with Shaitol or Kali. Matriarchal fertility rites could also be projected by the worship of ***Hudumdeo or Hutumdeo[12]***.The ritual goes as-"***At the dead of night, womenfolk of the village would plant a banana tree in the middle of a field,***

become naked and sing and dance around the tree to invoke Hudumdeo [a variant of Lord Varuna, probably Vedic Dyaus] and pray to him for rain"(Soumik Dutta). All these were basically due to long spells of dry weather, leading to droughts-so people invoked different gods and goddesses for land fertility, protection, and prosperity. ***"And for this purpose, their primary offering was music"(Soumik Dutta)***. Apart from that even in the name of 'Sonarai' or tiger, grain, as well as wealth offerings were made, and collected by children when, as per **Dr.Sukhbilas Barma**, they used to sing Bhawaiya songs which ultimately popularised the culture and depicted their customs and rituals integral to their social order.

Bhawaiya, as a song of the *'Rajbangshis'*[13] can also be traced as a song of specific communities like Koch, Rajbangshis, Mech, Rava, etc. Around 1510, when society was a collective of different tribal groups, the Kochs had become the majority community. With Sanskritization and Hinduisation, the dominant tribal group came to be called the Koch people as expressed by **Acharya Suniti Kumar Chattopadhyay**. In 1510, Biswa Singha set up the Koch kingdom of Koch Bihar in Kamrup and gradually the Koch people came to call themselves Rajbanshis. Today, they inhabit the entire North Bengal in addition to western Assam [in what used to be the Goalpara district], Rangpur district in Bangladesh, Dinajpur, Bagura. Indeed, the Kshatriya movement started in Rangpur. So, Rajbanshis live on a wide stretch of Bangladesh—the whole of Rangpur, Dinajpur, and parts of Maimansingha—also the Purnia district in Bihar, Jhapa, and Morang districts in Nepal. Thus, the vastness of the area skilfully explains the utter significance of Bhawaiya as a folk representation of North Bengal. Every cultural aspect of this ethnic community is reflected in bhawaiya songs expressing its origin as a Rajbangshi or Koch song.

Last but not least, the origins of Bhawaiya can also be traced from the theatrical 'pala' forms such as the ***'bishohora, kushan and dotra-pala songs'***[13] and the development of 'solo' bhawaiya songs from 'pala' interludes—'dhuya or khosha' songs. Along with the ritual songs, there evolved another kind of music purely for the sake of entertainment and to celebrate community occasions. These were the theatrical palatiya songs and were commonly organized by the more well-off householders in the village—the jamindars [zamindars] and jotdars [wealthy farmers]. Thus, various plays or pala forms developed—dotora, kushan [based on Ramayana] and bishohori or bishohora [dedicated to the snake goddess Manasha]. Bishohori palas of North Bengal

comprised of bishohori songs-not just a matter of protection from snake bites, but a custom to mark every auspicious occasion. Besides, the most popular form of entertainment was the dotora-palatiya form where a 'gidal' [lead vocalist] would lead a troupe of actor-musicians equipped with other instruments like khol and kartal. Dotora-palas would involve a wide variety of subjects from the Puranas, Mahabharata, fairy tales and myths. In this way, Bhawaiya got popularised in North Bengal and came up as a distinct Bengali folk music, focussing upon the daily social and even petty familial issues of rural North Bengal.

But, how did the term 'Bhawaiya' come into being? There are various explanations of the meaning of Bhawaiya. Low-lying land with shrubs and other vegetables is called *Bhawa*. Buffalo keepers used to sing this song while plowing. Hence the name '*Bhawaiya'* came to exist. According to some other researchers, 'Bhawaiya' is derived from the word '*Bawaiya',* which is subsequently derived from the word '*bao'* (breeze). The derivative of the Bhawaiya is **Bhav>Bhao+Iya = *Bhawaiya*** suggesting to be ***emotionally charged***. According to **Abbas Uddin Ahmed**, a notable singer, and composer of Bhawaiya song, Bhawaiya is like the random and pleasant wind blowing of North Bengal and hence its name. A survey(conducted by the Folk cultural and tribal cultural centre, Government of West Bengal) shows that among the performers of Bhawaiya songs the name is derived from the word *Bhao > Bhav*. These songs carry a deep **"emotion" of *'birah'***[14]. Bhawaiya though remained largely undocumented till the twentieth century, became popular through the pioneering works of **Suren Basunia, Abbasuddin Ahmed and Pratima Baruah**, and today somewhat has entered into the mainstream consciousness. In later years we see **Ayesha Sarkar** from Cooch Behar, and **Ferdousi Rahman** from Bangladesh as staunch pillars of the Bhawaiya realm. Today's artists especially of Bangladesh are brewing upon Bhawaiya providing it with a furnished, sophisticated touch.

Coming to some **unique features** of Bhawaiya as a folk song, in similarity to Baul, it is somewhat **women- centric**[15]. Bhawaiya as a folk music genre is largely written from the perspective of women, keeping in view her ineffable longing and agonies of separation from her man-most probably the protagonist of the plot-**a moishal(buffalo-keeper), gariyal(cart-driver), or mahout(elephant-minder)** -generally, men who being subject to their occupation need to keep out of their house, traveling. For instance, the song-

mor sonar bondhu boideshe gese more chariya…[16]

-explains it. But as scholar, **Soumik Dutta** has expressed- ***"Though not numerous, there are some songs that deal with the moishal or gariyal's own predicament, as in this well-known song by the legendary singer Abbasuddin Ahmed"***:

"Baokumta Batash jemon ghuriya ghuriya more
Oi moton mor garir chaka ponthe ponthe ghore re"[17]

- Basically, they speak of love not socially mandated but arising unbidden between men and women thrown together by the vagaries of marginalized socio-economic existence. The meager lives of these men witnessed the existence of a class of extensively landed, propertied employers who needed to keep large stables of domesticated animals or had use for teams of carts to ferry their goods to distant markets. While society's functioning has changed, bhawaiya songs, telling their tales of love and loss, carry traces of that earlier way of life in these northern plains-the dependencies of the weaker sections on these ever-oppressive middle class.

Moreover, in Bhawaiya there is an ingrained representation of the lush green natural resources of North Bengal. These districts of North Bengal and Assam are washed by the many rivers and streams, such as the Teesta, Torsha, Jaldhaka, Raidak, Kaljani, Korotoa, and Gadadhar, coming down from the Himalayas. They form a distinct terrain of forested but oft-flooded rolling, undulating plains, and this topography has historically determined the living practices, cultures, and livelihoods of the people living there, and has naturally informed their music as well.

Last but not the least, the Bhawaiya songs, though majorly focused on women, have a sense of cordiality and togetherness which acts as a unifying force even today for the people of North Bengal. There are songs providing invitations to the world to visit North Bengal. Even this aspect of Bhawaiya is unique. The song- ***'O boidesha bondhu re, ekbar Uttorbangla ashia jaan, hamar jagata dekhiya jaan, moner kotha suniya jaan re…."*****(translation provided at the end of the paper)**explains this. Therefore, as can be depicted though not as vibrant as Baul due to lack of research and newer improvisations, Bhawaiya continues to be a leading folk music genre in North Bengal.

Folk music in today's world of 'shine-shimmer-glimmer', as a facet of culture continuously needs improvisations or basically 'come back' in newer styles and beats. Therefore, the aspect of representation both in earlier and later days becomes significant since culture can only survive through the universal truth of continuity and change. Looking solely into the

traditional form of folk music and simply comparing them with today's newer versions, would simply put the nascent ones as nothing but destructions of the ethnicity and authenticity of the original, but if gazed into from a different lens- the lens of retention and cultural survival, the improvisations, newer constructions and stylistic representations(modern get-ups of the traditional folk music)seem to be crucial for the continuous flow of the traditional culture but in a changed form with alterations in social perspectives.

Initially, Baul used to be representations of unbiased, unpatronized musical forms of the people of South Bengal and hence, was never dependent on the State for patronage. All financial support came from local people, either through money or grain, which was only enough for the daily sustenance of the Baul singers. They were often familiar with the residents of the villages they frequented and were ensured some charity from them. Bauls also created ashrams and Akhdas where interaction with other Bauls was possible. They were funded through events organized by the community where Bauls would perform to attract local patronage. It was this local support that allowed Bauls to nurture their ideological freedom.

Baul increased in popularity through these Akhdas and Ashrams of different fakirs like The Akhdas of famous Lalon Fakir, especially in the **18th and 19th centuries**. These places became institutionalized and attracted more and more patronage. Baul festivals blew up in size and became seasonal occurrences. This organizational feature and the institutional representations in traditional form were decisive in the long-term survival of Baul in popular culture. It also allowed scholars and researchers to come in contact with Bauls and document their history leading to a slow but steady turn of Baul from being a folk musical genre into a community as well stabilizing its cultural continuity through small but distinct alterations. In the **20th century**, famous **Bengali poets Rabindranath Tagore and Kazi Nazrul Islam** were greatly influenced by Baul philosophy. It was due to Tagore's avid endorsement of Baul folk songs that the elite and upper middle classes of Bengal came to know about it-songs like ***'oi ashon tole'*** and ***'amar mon jokhon jagli na re'*** got popularized. The Baul mysticism, as understood by Tagore and his contemporaries, was agreeable with the ideas emerging in colonial Bengal regarding the upliftment of women, rejection of caste discrimination, and religious freedom. This was a major contributing factor in

the popular acceptance of Baul in the **20th century**, which later enabled the commercialization of Baul songs and its entrance into mainstream popular media. These diverse representations paved the way toward the cultural retention of the Baul originality and ethnicity in newer forms as well. In **2005, UNESCO recognized the Baul tradition in the list of Masterpieces of the Oral and Intangible Heritage of Humanity.** This was the culmination of the growing popularity of Baul songs worldwide since the 1930s. As the Baul songs were written down, recorded, and translated, their cultural significance became evident. The Baul songs had potential not only as oral history but also in philosophical literature and social activism. Baul was the voice of the deviant margins of society. The **21st-century** modernization of Baul through Folk fusion, popularly known as **Baul Rock,** is a recent phenomenon that has facilitated Baul's reach to a younger audience within Bengal rather than internationally. Other experimental forms of Baul, like **Baul rap and hip-hop**, along with new instruments and compositions, are also on the rise as newer representations directly connect the aspect of commercialization and popularisation. Even recently, Bollywood has taken up Baul in some cases, for instance, the trending song of the **2013 film 'Lootera'**- ***'Monta Re'*** sung by **Swanand Kirkire** and **Amitabh Bhattacharyya**, has immensely popularised Baul as a Bengali folk musical genre. Today through these improvisations and commercialization Baul has attained extreme popularity in the world as a leading folk music culture. Many Baul singers have gained fame outside the country as well.

But, it's not that commercialization is always a win-win game. The accelerating modernization of Baul has also brought forward concerns regarding the loss of intellectual roots and the humble past of Baul. Due to commercialization, it has been lamented- ***"Baul culture has been reduced to a mere aesthetic".*** It is indeed concerning that Baul singers who are supposed to be on a spiritual journey are being pushed into the capitalist race, which is effectively erasing the original aim of the Baul ideology. Now, this could be viewed as the consequences of extreme commercialization, very logical proof of the common but true proverb- ***'too much of everything is bad'***. It is this growing anxiety regarding the negative effects of commercialization that has motivated the revival of '**The Baul movement**' to spread the social messages and spiritual philosophy of universal love and tolerance.

On the other hand, the lack of commercialization and improvisation

can be visible in the almost forgotten musical genre of Bhawaiya of North Bengal. It can be understood that commercialization can't be deemed as the only reason behind the waning of Bhawaiya, there are other reasons as well - Baul has a wider background for composition unlike Bhawaiya; secondly, the spiritual and philosophical connection of Baul has been lacking by Bhawaiya which focussed to some extent solely on ritualistic representations; thirdly, the straight-forward approach towards social issues, appealing to the people is lacked by Bhawaiya; the original location also matters a lot in fixing the matters. But be that as it may, commercialization does have a significant influence on popularising musical culture as can be understood from the comparison between Baul and Bhawaiya. The process of commercialization stands significant requiring the urban marketing of the music genre-popularisation through improvisation, realities, urban concerts, etc. which Bhawaiya has seriously lacked-being a significant reason behind Bhawaiya's confinement to North Bengal itself. The representation of Bhawaiya has not at all witnessed an improvised form to date, modern music research has, it can be said, faintly touched Bhawaiya in comparison to Baul, actually blocking this North Bengal confined folk musical genre from culturally getting showcased and hence retained. Here, a question can be put up-is commercialization therefore important for the ultimate survival and retention of culture? If yes, how much? If we compare the journey and eventual success of Baul with Bhawaiya it can be said that, commercialization is significant for the popularisation, improvisation, and hence, ultimate survival of culture. Of course, ethnicity and originality should not be destroyed or scissored off, but the element of improvisation-popularisation-commercialisation is crucial to retaining the flow of culture in a present society always craving for innovation and styles or a ***new 'tadka'*** in every aspect. In the case of Bhawaiya therefore, newer research, newer combined compositions, blended mode of improved Bhawaiya and other music genres, and national platformed music reality shows-basically newer ways of propagating Bhawaiya as a distinct musical genre, should be practiced to keep up with its cultural flow or else like the ancient Indian and Egyptian languages of Sanskrit and hieroglyphics, these musical epitomes of ethnicity and folk culture will be left out just as parts of distant antiquity. Therefore, the propagation and popularisation of the North Bengal confined folk musical genre of Bhawaiya through newer improvisations and commercial promotions or rather advertised marketing i.e; turning it into a pop-musical culture is somewhat a crucial

path to sustain it as a distinct tradition, retaining its originality and ethnicity.

At this backdrop, it can be observed that the aspect of commercialization at least to a moderate extent is important for keeping our folk musical traditions alive. The reason why these popular oral folk songs were documented since the 18th century was for somewhat the same reason as today commercialisation-improvisation-popularisation is deemed significant. With the alterations in the social perspectives, the orientation of culture also changes, but the traditional flow continues with the same originality and ethnicity-continuity and changes being the only permanent entities in the universe. It is, therefore, not commendable that lack of popularisation and practice or, lack of proliferation or encouragement would lead to the destruction of such a lively and once-cherished musical tradition as Bhawaiya.In this regard, the cordial welcome of North Bengal has been versed in a Bhawaiya song-

O boidesh bondhu re,
ekbar Uttorbangla ashia jaan,
hamar jagata dekhiya jaan,
moner kotha suniya jaan re….

-O' my foreign friend,
Please come once to North Bengal,
Visit my land,
Hear the words of my heart and,
Even share yours.
(translated by Stavamagna Chakraborty)

NOTES

1. Specific working communities had predetermined folk cultures and folk music is just a small representation of it.
2. Song by *Nabani Das Baul*- simply talks about a budding love affair apparently, but can also mean a divine intervention or experience
3. *"Boga cries being trapped"*-(used metaphorically) translated by Stavamagna Chakraborty
4. Song composed by *Sunil Mahato*
5. *Madhukari'* (literally means 'honey-collecting') is the term for the Baul subsistence act- collecting alms from different households in smaller quantities- just like the honey-collectors who move to several beehives to collect honey in limited quantities.
6. Songs composed and sung by *Lalon Fakir* are collectively referred to as *'Lalon Geeti'*.
7. Song translated by *Iqbal Sovan Choudhury*- '*Caste has gone, Caste has been cast out. What a queer cry lies'*
8. *Deha-tatta* (*'deha'* means 'human body' and *'tatta'* is 'philosophy') is a Tantric philosophy related to the human body and soul. It projects that every human soul is distantly attached to the ultimate divine and hence is liberated from all the temporary worldly segregations and prejudices. It's somewhat social furtherance of the Upanishadic '*Atman-Brahman'* philosophy itself where '*Atman'* the

individual self is a smaller version of the ultimate supreme divine energy, the '*Brahman'*.

9. Explained by *Purna Das Baul*- '*Being feminine (Prakriti) one can achieve god, but // With male traits (pungsachar) one can't'*.
10. It is a sub-category of Bhawaiya- mostly based on the different puns and friendly banters of the domestic life of people
11. Venomous snakes being a terror in North Bengal, especially in the Dooars- the hub of dense, dangerous jungles
12. *'Hudum'* could be *'udom'* or *naked* (in Bengali)-and '*deo'* is probably '*dev*' or god-so basically it is the allegorical representation of the concept of agriculture-In this case, probably Hudumdeo could be the Vedic sky god Dyaus, the consort of Mother Nature, Goddess Prithvi, or Lord Indra who provides the rain- the seed to the Mother Earth fertilizing her to grant the bright, healthy product of agricultural bounty. Thus, the ritual goes to please Dyaus/ Indra carnally, to request him to 'fertilize' Prithvi through his rain. To symbolically project the fertility trait of Dyaus, the '*udom nritya*' or naked dance with Bhwaiya music takes place as the ritual origination of the folk music genre of Bhawaiya. Basically, it's a ritual to venerate the male fertility/ rain god, Dyaus, a variant of Indra and Varuna- very similar to the 20th-century natural rituals in the Scottish Highlands, especially as seen in the areas around Inverness.

    One can also refer to *Imran Hussein*'s story '*Hutumdeo*' to understand the ritualistic concept of the term.
13. The Rajbanghshis are the original inhabitants of the North Bengal, who came up from the Mongolian lineage- mostly spread over the vast regions of Southern Assam, Coochbehar, Jalpaiguri.
14. '*Bishohora'* is a typical theater popular among the Rajbangshi community of North Bengal, basically involving the mythological narrative of 'The Removal of Poison'- story of snake-goddess Manasa and Chand Sadagar, a merchant who refused to worship her, performed mostly in winter during a marriage ceremony.

    'Kushan' is a North-Bengal-based theatrical performance deriving its namer from Kush, the second son of Lord Rama and hence, mostly the story of Rama as it is said to have been told at the court of Sri Rama in Ayodhya.

    'Dotra' is also a popular theatrical genre of Coochbehar usually depicting popular legends, public scandals and other secular themes.

    All the three of these typical North Bengal theatrical genres mostly use Bhawaiya tunes in their performances which add to the theatrical origin of Bhawaiya as a separate folk musical culture.
15. Bhawaiya has an innate charge of the'*biraha'*- grief of loneliness
16. Like Baul, Bhawaiya also has provided immense space to the women folk of the society,but in a different way- it records the everyday life and affection of an ordinary woman for her man, unlike Baul where women's representation is much more philosophical than being pragmatic.
17. Translated by Stavamagna Chakraborty- '*my beloved friend went away leaving me'*

18. Translation by S*oumik Dutta- 'Like a swirling storm, forced to spiral onto its death//The wheels of my cart have to keep travelling these roads.'*

Citations

Bruno Nettl 1986; June McDaniel 1989; Gregory Booth 1990; Soumik Dutta 2020.

References

1. **Barma, Dr. Sukhbilasa. "***Bhawaiya Ethnomusical Studies***.**" Global Vision Publishing House, New Delhi, 2004.
2. **Bhattacharya, Ashutosh. "***Bangiya Lok-Sangeet Ratnakar***."** Vol 4. A. Mukherjee And Company.Pvt. Ltd, Kolkata, 1960.
3. **Bhowmick, Nirmalendu. "***Prant Uttarbanger Loksangeet***."** Anjali Publishers, Kolkata.
4. **Booth, Gregory. "***Economic and Transmission factors as essential elements in the definition of folk, art and pop music***."** *The Musical Quarterly*, Vol. 74, No. 3, (1990), pp. 411-438 Web. 18 August 2008.
5. **Dutta, Soumik.** *"The Bhawaiya Musical tradition of West Bengal***."** Sahapedia.org. Sahapedia. 24 December 2019(Module). Web. 4 Feb 2020. See https://www.sahapedia.org/bhawaiya-musical-tradition-west-bengal
6. **Dutta, Soumik.** *"The Solitude of Love: Nature, Culture, and Womanhood in Bhawaiya songs***."** Sahapedia.org. Sahapedia. 24 December 2019(Overview). Web. 2 Feb 2020. See https://www.sahapedia.org/solitude-love-nature-culture-and-womanhood-bhawaiya-songs-0
7. **Knight, Lisa. I. "***Contradictory lives: Baul women in India and Bangladesh***."** Oxford University Press, New York, 2011.
8. **McDaniel, June. ch.4- '***Sexual Sadhana and the Love of the Bodily God: Auls, Bauls and Sahajiyas',***"***The Madness of the Saints-Ecstatic Religion in Bengal***."** University of Chicago Press, London, 1989.
9. **Miah, Hanif. "S***tatus of Women in Baul Sadhana: A Social Aspect***."** Academia.edu. 2020. See https://www.academia.edu/19760735/Status_of_Women_in_Baul_Sadhana_A_Social_Aspect
10. **Nettl, Bruno, '***Folk Music',* Don Michael Randal, The New Harvard Dictionary of Music, 1986, Rev.ed. of Willi Apel. 2nd ed. 1969.
11. **Sarma, Simona and Monteiro.** *"Contemporary 'Folk' Dynamics: Shifting Visions and Meanings in the Goalpariya Folk Music of Assam***."** *Folklore* Vol. 130 Issue 4 Web. 19 November 2019.

Contribution of Ramayana as a cultural icon in the Indian Nationalist Discourse

Archna Tanwar (Ph.D Scholar),* Hemalatha K**

Abstrct

The cultures have cultural icons to which every member of that culture relates to. Ramayana is such a cultural icon for Indians. Ramayana is mostly treated and analyzed as a religious text but it is much more than that. It is not only mythology but a way of life. Ramayana has not only defined Indian culture in the time of need in the form of Ramacaritamanasa but also preserved the Indian culture, centuries later. India suffered many invasions but none could shake the roots of its culture. Ramayana has acted as a tool to bring people together and ensured some common cultural elements which have helped both the nation and the government to maintain harmony in the country. This paper attempts to analyze the contribution of Ramayana in the lives of Indians.

Key Words: *Myths, Ramayana, Nation, Culture, Cultural icons*

Most of the current theories on myths primarily relate myths to religious impulses. Western criticism often places mythology and religion together. However, mythology is not just limited to religion; it has many functions beyond that. At first naïve glance, mythology would appear to be rooted in religious discourse, but religion itself is part of the lifestyle. Religion is a belief system within which people are unconsciously enveloped from the time their brains begin accumulating ideas. This belief system then becomes the hidden, unconscious dominating power over people's lifestyles. It dictates everything from how to live to how to think. Sociologist, Emile Durkheim theorized religion as consisting of three fundamental things: beliefs and practices, sacred things, and a moral community of adherents. He also theorized that religion was the most fundamental of all social institutions and was the progenitor of most others. According to Durkheim, the influence of religion on culture was profound. It cannot be denied that this unconscious and invisible envelope of religion covering an entire culture gains its stronghold from myths. It is

*Gurukul Kangri (Deemed to be) University, Haridwar, Uttarakhand

**Prof., Department of English, Kanya Gurukul Campus, Dehradun, Uttarakhand

common knowledge that some or the other medium is required to propagate an ideology, and together these mediums form a discourse. Myths are just a part of this discourse but are nevertheless an important one. In her book *Other Peoples' Myths*, Wendy Doniger writes that myths are stories through which people experience other people's life. These stories usually have shared experiences of all the people. Common emotions like love, hate, anger, kindness, and so on are dealt with in myths to make people connect to them quickly. Myths help people to see what seeds reap what fruit and thus prepare them for further actions in life. Myths are a part of an enormous discourse on particular ideologies.

One discourse cannot work for all times, and although it tries its best to maintain its stronghold on the nation, the acceptability of a particular ideology suffers with the changing times. When Goswami Tulsidas wrote *Ramacaritamanasa* in the year 1631, society was different than what it is today. A different set of ideologies were set and functioning at that time. It was a time when India faced threats from various outside forces and the culture of natives was at risk of being subsided with new cultures coming in. Hinduism needed a strong sentiment to keep all together. *Ramacaritamanasa* was written to give Hindus a common symbol to connect to.

In India, many movements have taken place since the writing of *Ramacaritamanasa*, and each wave of a movement has caused people to look at things differently. The story of *Ramayana* itself has been present in India for almost 2500 years. It is not intended here to club all the Indian cultures under the umbrella term of Indian culture. The term Indian culture is used to mean the culture that all Indians relate to and connect to. If looked subjectively, then the *Ramayana* comes out to be a part of Hindu culture only. India is a land of diversity, and people of several different religions and communities live together in the country. The *Ramayana* is a text to which everyone, regardless of religion, connects to in the country. Such texts, images, stories, or symbols that the whole country relates to, become a part of national culture. Hence the term Indian culture has been used here.

The work of national cultural elements can be understood by the example of the national flag. The national flag is an image that brings the idea of "my" country to any individual instantly. The term national flag invokes the image of the national flag, and similarly, the image of the national flag brings the idea of the national flag to the mind. This way, the national flag becomes a familiar cultural icon for the nation. *Ramayana* is also a cultural icon for Indian culture in the same way. When

Ramayana is mentioned, Indians automatically imagine the images of the characters of *Ramayana* and the story related to it. A. K. Ramanujan interestingly notes that in India no one hears the *Ramayana* for the first time. The story is always there.

The story of *Ramayana* consists of all the primary shared emotions that people feel. The tragic, dramatic element in the narrative could not have been more remarkable as it has everything from festivities to forest-dwelling, from riches to poverty, from harmony to battles, and from love to separation. The story takes us through major dramatic events connecting us to the characters and leaving behind a trail of life lessons to be learned from the life and sufferings of the characters here. The three significant characters of Sita, Ram and Ravana form a connection with the audience. The receptive communities for the narrative of the *Ramayana* vary greatly based on time, demography, and religion.

It is a commonly noticed phenomenon that when a person or system wants someone to do something, they have two ways of getting it done. One effortless and straightforward way is to threaten the person into carrying out your wish. The other crooked but more effective way is to talk the person into believing what he/she is doing is not for this person or system but for his/her good. When someone is successful in making a person carry out their wish without knowing that it is them who are being benefitted out of this, the work is done more efficiently. This way of working has been seen in the recent past in the country's history during colonization. The Englishmen focused on making Indians believe that the British rule was for the good of Indians. Indians were made to believe that what is 'white' is superior to everything that is 'black' or close to black. The mediums used to achieve this change in mass mentality were various but what can be understood from this instance is how people are manipulated into believing what the hierarchical superior wants them to believe.

The process has been described in simplified terms here, but it is much more complex than this. If the process is to be understood in detail, some more readily available examples must be looked into.

In the same line, the theories of culture and hegemony may be analyzed to understand the concept better. Karl Marx said that our ideas are based on our material conditions. Everyone thinks that their ideas are unique to them, but the fact is your idea is yours because you were conditioned to nurture it. Like this one person who nurtures a presumably 'unique' idea, several others living in the same conditions will also find the same idea suitable. In this way, capitalist conditions determine the

ideas of people. Friedrich Engels used the term 'false consciousness' to describe the condition of people who believe that their ideas, choices, and thoughts are their own because they cannot see the enveloping ideology that leads them to their thoughts. This ideology intends to exploit the masses without letting them realize that. So it hides within itself the power relations that cannot be made explicit for fear of failure. Taking this idea further, Antonio Gramsci said that the classes enjoying higher status in the social hierarchy dictate the rules of the social construct for the lower classes, which are then presented as natural and pre-determined constructs aimed at the well-being of the whole society. Gramsci called this phenomenon cultural hegemony, where the mean ends of the ruling class are packaged as confining to the benefit of society. Here the social constructs are not seen as artificially constructed roles but as pre-determined natural class roles which have been the same for ages and should stay the same to maintain peace. Louis Althusser developed this concept to reveal the two ways in which the state dominates society. The state wants its people to follow the ideology of the state at all times. There are two ways to achieve this: Repressive State Apparatus and Ideological State Apparatus. Repressive State Apparatuses are the directly visible forces to keep people in check. They act as legal law enforcers who can punish people if they do not follow the rules set by the state. These include the police and the military. The police can rightfully stop people from doing anything prohibited by law. The military comes in for even larger motives. If people protest against a new law proposed by the state or if people have any issues with the existing laws and come out to express their discontent, the military makes sure to curb people and maintain 'law and peace'. Nevertheless, the state cannot always depend on the Repressive State Apparatus only because too many restrictions will eventually exhaust people's tolerance, and they will protest to overthrow the state authority. This can be confirmed by the fate meted out to various dictatorship states over time. The Ideological State Apparatus comes in to save the day from such problems. The Ideological State Apparatus ensures that people develop the ideology concurrent with the state from childhood. This ideology has a slow trickling effect but stays for a long time. Parents, schools, and religion are some elements to propagate the state ideology. They manipulate the individual mind to believe in the notion of right and wrong. They make people believe that their integrity and sense make them good people. They make people adhere to the ideology that the state wants them to have but without

making it explicit that it is in the state's interest and not the people themselves. This Ideological State Apparatus starts working as soon as a child is born. The ideology that grasped parents now envelopes children. Learning basic ideas of right and wrong, a child moves to school to solidify the same lessons. It percolates through stories, news, rituals, religion, slogans, paintings, and whatnot.

Ramayana's story has existed for so long that we forget to see how it caters to the state as the Ideological State Apparatus. There are many lessons in the *Ramayana*, but at the same time, specific ideas flow so effortlessly from the story to the audience. These ideas leave a permanent mark on the audience, so it becomes essential to analyze them from time to time.

In India, social happiness used to be practiced for a very long time. Even now many people consider social happiness as the supreme goal to achieve. Things like "what will four people say?" or "the society will never accept it." are not unheard of in our culture.

In India, we always say that there is unity in diversity. All kinds of people live together (supposedly in harmony) in this country. Now the question of what harmony is must also be asked. It means a pleasing arrangement of different things but to what extent? Is it possible to achieve harmony in such a diverse society? Harmony can be achieved to a limit because where several people live in one shared space, there are bound to be differences of several kinds. These differences eventually make it difficult for things to stay pleasing forever. So, the people involved reach or try to reach an understanding with which living together becomes more manageable. More significantly, it separates into broad groups based on religion, class, caste, and others. The group that one falls into becomes his / her society. There are several levels of society, and one may be a part of many different societies at one point. The kind of relationship a person has with other members of a society or the way the person feels about any one society at one point in time, may be different. Human beings cannot be utterly harmonious with all the societies that he/she might be in contact with. *Ramayana* teaches us to be in harmony with nature and people most of the time. Sita, Ram, and Lakshman are in harmony with nature when they live in the forest, and with people when they live in society.

India is a democratic country which means that lawfully India gives equal rights to all its citizens. The brilliant law structure of the country ensures that all citizens are treated equally under the law. The thing to be noted here is that the system consists of people and does not function independently. As already discussed, people cannot achieve complete

harmony with society and nature. There is always one or other tension between people, which stops them from viewing other people as equally humane. These tensions might be related to caste, class, creed or gender, or anything else.

Indian culture has always been a collectivist culture. Here people think of others before thinking of themselves. Various examples prove that India has a culture where we look out for others. It can be seen in basic things like cooking in the kitchen. Since immemorial, kitchens in Indian households have not only been known for cooking for family members. It stands as a place that provides for those who are hungry. They may be strangers or animals, but if they are hungry and one has food in their kitchen, they were invited to dine in, or some food was donated to them, but no needful person was turned away. In pre-colonial India, kitchens used to be constructed on the street-facing side of the houses so hungry passers-by could easily approach the house for food. This beautiful, kind setup was criticized and changed with colonialism. The colonials could not understand our nation's '*atithi devo bhava*' culture, and the humble architecture of houses in India changed to those brought down by the colonials.

In another instance, Indian festivals stand for humanitarian ethics and principles, they were celebrated to celebrate humanity, but with colonialism, even festivals got a communal touch. Western culture does not promote or understand the concept of one for all, which has been predominant in Indian culture ever since this culture started. So, these people could not keep communalism out of the festivals, and with effect, festivals came to be owned by certain religious sects in current times. The primary example to help understand cultural differences before and after colonialism can be to look at religious harmony. Before colonialism, Hindus and Muslims had their own separate cultures and respected each other's space. There might have been differences between the two different communities, but there was no sourness or hatred on a magnificent level. With Britishers and their agenda of 'divide and rule,' a deep slit was thrust between the two communities, the brunts of which are still being faced by society and society is not in a position to return to its original state of compassion and understanding for one another.

In this manner, we see that many things changed with the colonization of India. The Indian culture practiced when *Ramayana* came into existence had already been dissolved by various invasions in the country. However, the final and most severe blow was dealt by colonization. This blow, along with globalization, brought about many

changes in the thinking and lifestyle of Indian people.

Caste, class, and religious differences existed earlier, but they did not stop people from empathizing with each other. However, the western influence through education and globalization has made us self-centered. Here it is not meant to criticize western society and its influence. A lot of good things have been imbibed from western influence but at the cost of our inherent goodness. It so happens that in the process of development, much destruction takes place. There is a lot to be learned from *Ramayana* in this reference, and we have done that as a nation. Rama's unquestioning acceptance of an unfair exile teaches us that upholding peace is more important than justice. One must fight the injustice being done to them but also be brave enough to accept undeserved punishment for peace and *Dharma*. As a nation, we have dealt with many unfair circumstances in invasions from foreign powers, but our culture has taught us to absorb the essence of non-violence and non-war mongering. Despite several attempts to usurp and uproot our nation, we have preserved our culture.

Works Cited:

Batra, Dr Jagdish. "Transforming Culture: The Myth-Fiction Interface in the Indian Context." *Paper Proceedings of the Fourth International Conference on Language, Literature & Society 2017*, 2017.

Buck, William. *Ramayana*. University of California Press.

Bulke, Kamil. *Ram Katha*. 2009.

Campbell, Joseph. *Myths to Live By*. Penguin Books, 1993.

Das, Rajorshi. "Nation and Censorship: A Reading of Aubrey Menen's Rama Retold." *Postcolonial Text*, 2018.

Levy-Bruhl, Lucien. *How Natives Think*. Translated by Lilian A. Clare, Martino Fine Books, 2015.

Menen, Aubrey. The New Mystics and the True Indian Tradition. Thames and Hudson, 1974.

O'Flaherty, Wendy Doniger, and Wendy Doniger. *Other Peoples' Myths*. University of Chicago Press, 1995.

Ramanujan, A. K. *The Collected Essays of A. K. Ramanujan*. Oxford University Press, 2004, pp. 131–60.

Tulasīdāsa, Goswami. *Śrī Rāmacaritamānasa*. Gita Press, Gorakhpur , 2016.

Waugh, Patricia. *Literary Theory and Criticism*. Oxford University Press on Demand, 2006.

Dramatizing Shakespearean Characters through Verbal and Visual Context of *Tempest & Hamlet*

Dr. Arvind Kumar*, Jyoti**

Abstract

Drama is an essential medium to show society focuses upon its dark side in conveying the message to the people, means a source of improvement among them through depicting the characters of both forms (i.e. protagonist and villain). In sixteenth century it became popular in Elizabethan society by producing unique creations like Hamlet, Othello, King Lear, and Tempest, etc – all were not only to watch for entertainment but also a platform where one and all acquired unbounded knowledge in making meaningful their lives. Many times we learn something to observe or watch around our surrounding or from theatre, movie and other visual performing of negative and positive concepts. All Shakespearean characters are the same depictions to us in permanent existence for all generation.

Keywords: *Shakespearean characters, Visual and verbal context, Depiction, Drama, Tempest, Hamlet.*

Introduction:

William Shakespeare (1564-1616) was an English dramatist, poet and actor who showed Elizabethan society of contemporary issues through a suitable selection of characters with situation. He has secured unique place in English literature by contributing his works in various literary forms like drama and sonnets, so regarded as the greatest writer of England "Bard of Avon." Many times readers or spectators observe that Shakespeare speaks through the mouth of characters portrayed in plays- many criticize that in spite of less education he expresses knowledge and wisdom found in his works; no doubt all are produced through the experiences of his life. Prospero is an experienced character in *Tempest*, seems many times speaking soul of Shakespeare by using his mouth. For Example:

*Assistant professor, dept of English, GMV Rampur Maniharan Saharanpur Uttar Pradesh, India., Email: arvindkumarsisana91@gamil.com

**Teaching at dept. of English, GMV Rampur Maniharan Saharanpur, Uttar Pradesh, India



Fig. 1.1 Visual Portrayal of Prospero

In above figure Prospero angrily looks upon his daughter who requests him to remain calm as the matter of fact totally unaware about the past but his eyes try to open the secrets which seem unable to disclose by the words of mouth. Struggles and difficulties make him a perfect man in doing something unusual as living on Horror Island and making supernatural elements his servants commanded by extraordinary power. Prospero expresses his emotions in following words as;

"I have done nothing but in care of thee,
Of thee, my dear one, thee, my daughter, who
Art ignorant of what thou art, naught knowing
Of whence I am, nor that I am more better
Than Prospero, master of a full poor cell,
And thy no greater father." (Act 1, Scene 2)



Fig. 1.2 Shipwreck in Tempest

"If by your art, my dearest father, you have
Put the wild waters in this roar, allay them.
The sky, it seems, would pour down stinking pitch,
But that the sea, mounting to th' welkin's cheek,
Dashes the fire out. O, I have suffered
With those that I saw suffer!
A brave vessel, Who had, no doubt, some noble creature in her,
Dashed all to pieces." (Act 1, Scene 2)

Shakespeare has explored other dramatic fantasy and magic in the form of supernatural power by selecting the characters Sycorax, Ariel and Caliban. Prospero commands them by uses magic power to act extraordinary things and to conjure or control danger like a storm and torment. He works as survivor of a shipwreck which includes the King

of Naples and Prospero's treacherous brother, Antonio.

The Tempest is a play of romance between two characters Miranda and Ferdinand in showing extraordinary love not in palace but a place where no sign of human being has. Although the play ends in a name of relation as marriage with smiling faces, thus might be defined as a comedy, whereas there are many tragic tones which diminish the comedic tone. This play justifies Shakespeare as a playwright of love, romance, beauty and charm. Romance is mainly separated that includes or expresses his romantic personality. Romance can be defined by following lines as "Indeed the top of admiration, worth What's dearest to the world! Full many a lady I have eyed with best regard, and many a time The harmony of their tongues hath into bondage Brought my too diligent ear. For several virtues Have I liked several women, never any With so full soul but some defect in her Did quarrel with the noblest grace she owed, And put it to the foil. But you, O you, So perfect and so peerless, are created Of every creature's best." (Act 3, Scene 1). Ferdinand admires Miranda's worth that spreads over the world. His eyes can see her best regard and harmony. As per his opinion virtuous women can be several in the world but a lady like Miranda who has pure soul, always hard in searching. Miranda replies that "I do not know One of my sex, no woman's face remember, Save, from my glass, mine own. Nor have I seen More that I may call men than you, good friend, And my dear father. How features are abroad I am skilless of, but by my modesty, The jewel in my dower, I would not wish Any companion in the world but you, Nor can imagination form a shape Besides yourself to like of. But I prattle something too wildly, and my father's precepts I therein do forget." (Act 1, Scene 1). After tempest Ferdinand is left to die but sought by Miranda on Island and he falls in love with Miranda. Here, Prospero comes to know about him and he reveals his identity (Duke of Milan). All members of the family are reunited by resolving all conflict among them. Shakespeare seems to compromise with situation and decides in returning to his birth place. We can see Shakespeare in following lines;

"And my ending is despair,
Unless I be relieved by prayer,
Which pierces so that it assaults
Mercy itself, and frees all faults."
(Epilogue)

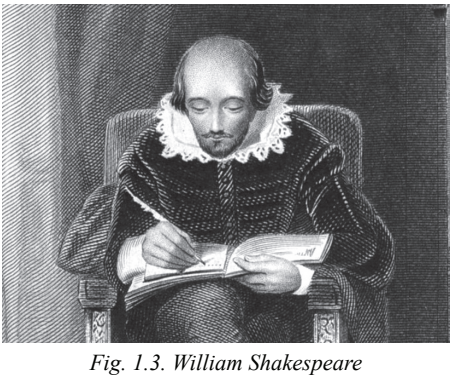


Fig. 1.3. William Shakespeare

The Tragedy of Hamlet, Prince of Denmark, is regarded as the master piece of William Shakespeare and becomes more popular day by day through the practice of literary lovers like critics, readers, professors, academicians, etc. It is set in Denmark, dramatizing various characters from royal and common family. On a dark winter night the play begins with appearance of a ghost that walks on rampart of Elsinore Castle in Denmark. A pair of watchmen discovers it first time then Horatio, As per their observation ghost looks like king. The resemblance appeared serious matter to them in wishing to watch it on every night. After king's death his brother Claudius inherits the throne and marries the queen Gertrude, wife of late king and mother of Hamlet. Horatio and the watchmen inform prince Hamlet who takes it personal and wish to see or hear his father's voice. After many attempts the ghost speaks with them and discloses that Claudius has murdered him. This shock news fills Hamlet's heart with revenge to kill his uncle and hatred against his mother. The new relation as a marriage of Gertrude and Claudius looks so strange by every eye of kingdom. Prince Hamlet makes the strategy to seek avenges his father's killer but due to more contemplative and thoughtful by nature he spends much time and becomes popular by this quote "To be or not To be." King Claudius comes to know about Hamlet's revengeful behavior towards him so he arranges Rosencrantz and Guildenstern watch him. Polonius declares him mad and suggests his daughter Ophelia to break relation from him. We can understand the situation from below figure.

Shakespearean Characters:

SN	Characters	Symbols	Characterization
1	Hamlet	Man of Thought	Gives meaning to "To be or not to be."
2	Horatio	Honesty & Goodness	Presents a good judgment of character.
3	King Claudius	Treacherous	A man who usurps the kingdom.
4	Queen Gertrude	Traitorous	Defines insincerity.
5	Ophelia	Noblewoman	Potential beloved of Hamlet.
6	Polonius	Self-absorbed	Preoccupied with one's own feeling.

Hamlet contemplates that my uncle kills my father and marries my mother- all are not easy to him and finds oneself unable to do anything. He reveals his inner feeling to us as;

"O, that this too too solid flesh would melt
Thaw and resolve itself into a dew!
Or that the Everlasting had not fix'd
His canon 'gainst self-slaughter!
O God! God!

How weary, stale, flat and unprofitable,
Seem to me all the uses of this world!"
(Act 1 Scene 2)

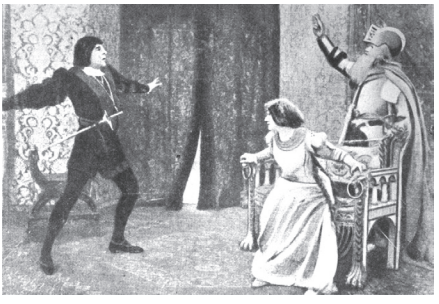


Fig. 1.4. Visual Performance (Hamlet)

Hamlet confronts his mother with some questions, by all feels melt hearted and resolves like dew. It this critical situation he remembers supreme power known as God by putting the world, a flat and unprofitable to him. In aftermath his life becomes not easy to live after conspiracy by his uncle, rude and careless behavior of a mother and plain response of his beloved.

Conclusion

To conclude the paper in the eyes of audiences who have the capacity to gain an absolute and deep understanding of Shakespearean characters of Elizabethan society where one makes the connection to others with an action – an responsibility to do, Hamlet is a character of the play as well as whole story passes around him in complex personality (i.e To be or not to be), quote not only to read but also a subject to the readers in discussing critically that contemplation of someone can be shown instead of action. A writer who writes in the forms, i.e. story writer, dramatist, novelist, poet, essayist, etc observe the society and share own experiences, thoughts, and ideas- displayed them by performing various characters. We summed up the paper by the final lines of *Tempest.*

"Mercy itself, and frees all faults.
As you from crimes would pardoned be,
Let your indulgence set me free"
(Epilogue)

References:

Sen, S. *The Tempest: A Critical Evaluation.* New Delhi: Unique Publisher, 2014.

Lall, Ramji. *Hamlet: A Critical Study.* New Delhi: Rama Brothers, 2021.

Lall, Ramji. *Hamlet: A Critical Study*. New Delhi: Surjeet Publication, Pvt. Ltd, 2006.

Malouf, David. "Relative Freedom: The Tempest Sydney," *The English Association*: (1973)

Howarth, R.G. "Shakespeare's Tempest, Sydney," *Australian English Association*: (1936): p,13.

T. Vaughan and Virginia Mason Vaughan. "Shakespeare's Caliban: A Cultural History" *Cambridge University Press:*1991.

"Shakespeare and the Cannibals in Cannibals, Witches and Divorce", ed. Marjorie Garber Baltimore: *The Johns Hopkins University Press*, (1987): p. 55.

Smith, Hallet. "Twentieth Century Interpretations of The Tempest," USA: *Engle Wood Cliff*, 1969.

Brown, Joseph Russel. "Shakeseare: The Tempest," *Edward Arnold LTD*, 1969.

Frye, Northrop. "Twentieth Century Interpretations of The Tempest," USA: *Engle Wood Cliff*, 1969.

Spencer, Theodore. "Twentieth Century Interpretations of The Tempest," USA: *Engle Wood Cliff*, 1969.

Rickett, Compton. "A History of English Literature," London: Thomas Nelson and Sons. Ltd, 1950.

Bradley, A. C. "Shakespearean Tragedy: Lectures on Hamlet, Othello, King Lear, and Macbeth." Gutenberg. Gutenberg, 30 Oct. 2005. pp. 498. Web. 27 Dec. 2013. .

Carroll, Joseph. "Intentional Meaning in Hamlet: An Evolutionary Perspective." Style 44:1/2 (2010): 230-260, 282,288. MLA. Web. 27 Dec. 2013.

Diamond, Michael J. "Fathers with Sons: Psychoanalytic Perspectives on `Good Enough´ Fathering Throughout the Life Cycle." Gender and Psychoanalysis 3 (1998): 243- 299

Similarities between the Theatre Style of Pt. Lakhmi Chand & William Shakespeare

Dr. Sandhya Sharma,* Dr. SeemaParmar**

Abstract

Both artists have made significant contributions to their respective creative fields. Pt. Lakhmi Chand is a popular figure in local Indian opera and William Shakespeare is a popular figure in European opera. Both types of art come from different backgrounds and their folk traditions are very different. These two artists are known for their unique works in the field of culture, but an interesting fact is that their art forms are very similar and have a lot in common. The main difference between the two actors is that they both used music and theater to tell their stories. Audiences have a deep connection with these musicians. Emotional stories are more effective than words (read or told) or displayed images in conveying people's reactions and emotions. With the help of music, the two actors were mesmerized by their dramatic stories and did their best to make them more engaging and believable.

Keywords: - *Opera, Theatre, William Shakespeare, Pt. Lakhmi Chand, music*

Introduction

Opera literally means " work", both in terms of the work and in terms of the final product. Opera is based on the desire to choose and serve freely. According to the Oxford English Dictionary, the term originally meant "a combination which combines poetry, dance and music". Opera is a performing arts genre in which performers use music to create dramatic works. When music, plot, and scene presented through stage, costume, and stage are combined in an opera, the result is much more than a combination of parts. Of course, it is an audiovisual art. Opera is a musical product that tells a dramatic story. The recitations that feature the story lines and the complex refrain, as well as the couples and the Aryans, are the parts we miss the most.

The word opera is derived from the Latin word opera, which means

*Asstt. Prof. Culture, CCS HAU Hisar

**Asstt. Librarian, CCS HAU Hisar

"to work". He was finally accepted by the Italians. Around 1600 this style appeared in Italy, and was initially impractical and served as exposition for most soloists. In the middle of the 18th century, great stories and beautiful songs were emphasized. Emotions are an important virtue.

The opera is a scene in its own right played to music, with instrumental and orchestral openings and breaks with soundtrack. Some operas consist of continuous music throughout an action, while others consist of single sections or "numbers" that are broken up by recitation (a type of acting that leads into speech) or dialogue vocal. This article focuses on opera in the Western tradition. For an overview of traditions such as Asian opera and opera. The word opera is derived from the Italian term opera in music, which means " hard work in music ". It refers to a theatrical production that includes a theatrical text or liberto ("libretto") that is tuned to the music and presented with visual scenes, costumes, and movement. Aside from a group of solo singers, duets and choirs, and off-stage performers, dancers often perform in the opera from the start. Opera is a complex and often expensive form of musical theatrical entertainment that has attracted both fans and opponents throughout its history and is sometimes harshly criticized. Critics have called it an imaginary, irrational style of art that lacks dramatic realism. Supporters of his case have been working to make the actual transcript of that statement available online.

The role of William Shakespeare in European Opera



If the age of William Shakespeare's horror had not spread to the opera stage in Western theater - this fact could have been explained by the lack of suitable libertarians for Shakespeare, the literary indifference of musicians and the difficulty of creating a pentameter for music. Shakespeare Canon, however, stood out as one of the biggest influencers. 200 operas based on Shakespeare's plays, half of which are rare relics of operatic perfection. This is supported by a long list of oblique references - moments from a past opera which clearly bear a family resemblance to Shakespeare but have no stated relative relationship to their source. Thus, Shakespeare's plays create a "legal" opera child as well as an anonymous opera that documents Shakespeare's documentary history on the opera stage.

This opera is based on Shakespeare.

Opera was born on the day of the birth of a man who had a profound influence on art: William Shakespeare.



Adapting Shakespeare is a risky business because the irrelevant and multifaceted characters in Shakespeare's play must be adapted to the text and arrangement of the Tower of Rams, decorative staging and other tenets of the game. 'opera. In a letter to the poet Samuel Rogers in 1818, Lord Byron condemned Gioachino Rousseau's libertarian Othello for "crucifixion", while the original version of Shakespeare's plays by director David Greck (1816) in the lyrical version of The Tempest (1756) Was...Acting "



Queen Frey (1692) is a work from Porschel's first Shakespearean opera. However, the music is limited to time intervals in a dense midnight night dream. Purcell only had occasion to make music for the legendary tragic woman in Dido and Enias (1689). The only true porcelain opera written for a group of young girls shows the obvious influence of Shakespeare, which can be traced to the 9th-century libertarian, poet and playwright, who dominated Canon. The most famous example of Tate's "improvement" for Shakespeare is the happy ending he added to King Lear King Lear Tate (King Lear Tate in 1681 - in which Cordelia not only lives but marries Edgar) - in makes an English scene. The only known version for the next 150 years). With the exception of two Macbeth-inspired wizarding scenes, which complicate both processes and arouse considerable skepticism about the role of fate in Aenias' decisions, Tate depicts Virgil's loyalty to Dido and Inias. Here Mercury is the only temptation sent by the sorcerer to deceive Aeneas in order to harm Dadu, Mercury is the only temptation sent by the sorcerers to deceive Aeneas, however, this innovation gave the Opera a Shakespearean dimension as a "drama interior". use. Play "In a measurement performance on the London stage in 1700. In the 18th century it was customary to place pieces of music in or after Shakespeare's plays.

In the realm of Shakespeare's theatre, it is interesting to note that

opera began in Florence in 1600, around the same time that Hamlet expressed Shakespeare's views on acting. Similar issues with language and performance were resolved by Shakespeare and the opera theorist. Opera flourished and in 1637 Venice began to open a public opera house. Puritan London closed its theaters in 1642. It was not until the early 18th century that Italian opera came to London, where it quickly became fashionable and polarized the masses. The rendition of "Ugly Mechanical" was a Midsummer Night's Dream at this contest (1716) under the mask of Richard Lorridge's comic pyramid and was ridiculed in the Italian opera These. JF Lamp revived the book 30 years later (1745) as a "Mac opera" complete with Fury Arias and a fictional ending.

The reaction to the Italian opera based on Liberto Shakespeare was even more hostile. Castrato brought in the great Francisco Gasparini.Ambalto (Hamlet) traveled to London in 1712 after performing all over Europe, but soon disappeared. Rosalinda (1744), the Italian priest's adaptation of the book "As You Love ", written for women, and a group of Castrato Sopranos actors did the same. Steven Wolf's tape to Golkousi, the only English pupil of Amadeus Mozart's bison opera, presents a paradoxical case. The only known sequel to Gliquius, The Comedy of Errors, based on Liberto was written by Lorenzo Daponte (with his soul and Mozart – Figaro's marriage) and was hosted at the Vienna Theater (now) in 1786.Hofberg) and throughout Germany. However, it was also considered a "Mozartin" and was never made in London.

The Role of Pandit Lakhmi Chand in Indian Opera



The creation of the world is the beginning of an opera, and its cultural significance expands as the world expands. In Indian culture, popular theater has played an important and dynamic role. The popular theater includes a variety of theatrical performances that fascinate the audience with their brilliant performances. Humor has always been a healthy food of humour, tone and humor in the life of the country.PanditLakhmi Chand is the most famous name in Haryana. He improved Ragni's singing style. He was a successful singer as well as a singer with a deep and beautiful voice. Disguised,lakhmiChand gave the philosophy of life. On the other hand,

it publishes and presents the musical, artistic and philosophical heritage of the world in slang.

Can be attributed to Kishan Lal Bhat, who laid the foundations of modern folk theater. According to a statement, poet and painter Meerut Shankar Das is in charge. The stage was simple and the actors performed from the center of the audience.

The early 20th century was the era of Shakespeare's Harianoi folk opera. Deep Chand was the inventor of that time. The most famous name in Haryana is Deep Chand Brahman from Shri Khanda village in Sonipat. He was semi-educated, he had a spark, a bit of intelligence and people still remember him. He reinforced Ali Bakhsh's technique and breathed new life into this folk art. Deep Chand's style for performances included music, dance, pantomime, poetry, and ballad.

Hardf appeared in disguise after the lamp on the floor. He effectively refined the Chabula Deep Chand technique and made improvements in Haryana. Robust The Savangs are Heramal-Jamal,Darmbir-Rogbir,Hir - Ranja and Bajsworth. Before the injury Chand, Baja Bagat, student of Hardf, was a famous Swang. It cleverly combined two traditions of folk music and as a result acquired a more global appeal. He has made great strides in the field of stage music. He invited on stage the musicians of Sarangi,Zalak,Negar and Harmonium.

After Deep Chand, Pandit Lakshmi Chand is the famous name of Haryana. He improved Ragni's singing style. He was a successful singer as well as a singer with a deep and beautiful voice. WritingPandit Lakshmi Chand was a Hariyanvi Indian poet. He was nicknamed "Pandit". He was also known as Kalidas Haryana. She is known as "Surya Kavi" of Haryana Ragni style and song. He is respectfully called " DadaLakhmiChand" : His work was full of songs that conveyed the message of moral values.



The place of women in the opera

The most popular form of performance is Opera, which is based on the "open stage" style, which continues the ancient tradition. 20 to 30 artists including directors, producers, musicians and actors perform in Indian opera houses. In both works, men played female characters.

Rosalind (as you like) and Cleopatra (in Antony and Cleopatra), Shakespeare's female characters were less developed than their male counterparts. In the 19th century, however, soprano dominance extended



to many other female Shakespearean characters, making her a major character. The first series of operas with a tragic ending, Othello Rossini (1816), the three tanners – Iago (Hilenk), Rodrigo (Rejected Lover) and Othello (Intruder) – are besieged against Desdemona and her father, Brabantio. After Jean-François Dossier's Othello, an 18th-century French "translation", Rossini replaced the shocking bits of women's clothing with a more accepted unanswered letter from Italian comedy.

Similarities in the Style of Theatre Pt. Lakhmi Chand and William Shakespeare.

The ornaments for the opera were William Shakespeare and Pandit Lakhmi Chand. They didn't have access to formal education but they were both great artists. Both can be considered the ancestors of today's popular form of opera-theatre. He created works in local dialects on themes of spirituality, love, humor and strangeness. Writing Chand was first drawn to music as a child after hearing blind artist Man Singh's song "JagtiyonRenkaSapna Re". He practices music and dance with the syringe player Dhalia Khan, who has accompanied him for 20 years.

"Harish Chandra Madnawat", "BhagatPuran Mill", " Heer-Ranja", "MeeraBai", "Padmavat", " ShaiLakdhara", "Chandrakaran", and other PanditLakhmiChand songs is based on old and famous folk tales with tales from Mahabharata. A wonderful presentation of stories thanks to PanditLakhmiChand sees, his singing skills and his musical taste. Their songs are usually about social awareness and sacrifice. The discussion of obscenity in content and expression has been scrutinized by some commentators. Symbolic correction of the rapper in terms of presentation. Pandit Lakhmi Chand's contribution is one of a kind and marks a turning point in the history of Haryana's folk art and culture.

1. Music helps the storytelling process, portrays emotions and moods, and helps us better understand the characters. The musical themes are all concepts designed to entertain the listeners. They appear in the opera and are associated with a particular character, environment, idea, thing or feeling.
2. Opera is performed with the help of an orchestra. The orchestra is a group of string, wind, brass and percussion instruments led by the leader of the group.
3. A choir is a group of people who sing together or together to

provide background music for the best. The lead actor/singer provides both forms of music.

4. A dramatic or comic plot in an opera that includes a main character, adversary and/or hero/hero. Actors playing these roles must be extremely talented in both singing and acting. For each sound category, certain syllables are common.
5. With the development of opera, the movement of people on stage also increases
6. The costumes worn by each actor represent the time and place of the opera as well as the character.
7. Objects that an actor can carry on stage in his hands or that he wears a set of "clothes" (such as furniture or decorative objects).

Conclusion:

Pt. Lakhmi Chand and William Shakespeare both have contributed their best to the creative field of Opera Theatre in their Countries. Both artists have a strong fragrance of folklore in their creations. Both types of art forms, come from different backgrounds and their folk traditions are very entirely different from each other but a strong connection we can see in their art forms, but an interesting fact is that their art forms are very similar and have a lot in common. If we talk about the similarities between these two artists, is that they both used music and theater to tell their stories. Audiences have a deep connection with these musicians. Emotional stories are more effective than words (read or told) or displayed images in conveying people's reactions and emotions. With the help of music, the two actors were mesmerized by their dramatic stories and did their best to make them more engaging and believable.

Reference

Chantal Schütz Shakespeare and Opera

Hillary La Bonte ANALYZING GENDER INEQUALITY IN CONTEMPORARY OPERA

Verma, D.C., Haryana, National Book Trust of India: New Delhi, 1975

Yadav, R.B., Folk Songs of Haryana, Haryana Research Journal, vol. 1, 1966

Malik, Satyawan, Folk ragni, saang as moral educator, The Tribune, Chandigarh, 2 june 2018

Mulk Raj Anand, Homage to Lakhmi Chand Sharma, KrishanChander,

KaviSuryaLakhmi Chand, Haryana Publication Bureau, ed. 2001

Punita,Swang an Indian Folk Opera Theatre

ShashtriSurajBhanu, Guru PanditLakhmi Chand Ghrarana, Interview

Carina Jaramillo, January 13, 2016,William Shakespeare's Impact on Theatre

SAMUEL BOWLES, Shakespeare's Elizabethan Audience

David Ward, Shakespeare and opera: Verdi, Rossini, and other composers inspired by the plays, August 9, 2019

William Shakespeare From Wikipedia, the free encyclopedia.

Michael Dobson,A Cultural History, Shakespeare and Amateur Performance.

Paula Blank, of Renaissance Man, Shakespeare and the Mismeasure

Hugh Grady,1991Shakespeare and Modernity

An exploration of regional songs of politics and political campaigns: A case study of Bihar Legislative Assembly Elections 2020

Dr. Manu Raj Sharma

Abstract

Campaign songs and political anthems during elections provide political parties a social medium to push their political agenda, future development goals, policies for social change and important questions that fail to make stand in parliament. This paper explores and provides a qualitative analysis of content used in regional songs, role of news channels and social media in popularizing them and their influence on sensitization of voters during Bihar Legislative Elections 2020. For the present study campaign songs of both national and regional parties were analysed in terms of their language, content, music, writers-singers and promotion. This paper highlights how independent candidates and political parties use catchy words of Bhojpuri and Maithili language to build their image of competence and use digital space as manifestation of cultural space for communication of political ideas. It also highlights how issues like unemployment, anger of migrants during COVID -19 that led to loss of livelihood, poor education facilities, crime against women, agricultural distress influence lyrics of political parody.

Keywords: *Campaign songs, Elections, Bhojpuri, News channels.*

Introduction

Campaign songs and political songs during elections are instrumental in influencing voters turn-out and managing vote banks by communication of words of development and future agenda (Peterson 2018). These songs are intentionally penned in regional language and composed with folk music to catch attention of voters. They turn popular quickly as they are sung by popular artists (usually son of the soil) with huge subscribers on social media handles. Usually, these songs which often come with videos

Assistant Professor, University Department of Geography, LN Mithila University, Darbhanga
https://orcid.org/0000-0002-9790-3905, *Corresponding Author: fakeersharma@gmail.com

are launched through a premiere on the official web pages of contesting political parties. Before elections these campaign songs serve as political anthems that are widely popularized specially during rallies, party meetings and door to door campaigning (Saikia and Bhattacharyya 2022). The internet and regional news channels also play an important role (often receiving patronage from parties) in popularising these songs (Tambini 2017; Varughese, Saikia & Sattineni 2022).

Bihar, is a backward state of east India where elections are fought more on caste and religious lines than on issues of development (Witsoe 2012). Since Independence, it has faced ill fate of natural disasters like recurrent floods in north Bihar, drought in south Bihar and bad government policies since colonial period. As a result, in search of employment and better living-off conditions, out-migration has become a regular feature of the state (Datta 2018). In year 2000, most of the rich mineral and forest resources and heavy industries of Bihar were transferred to newly carved out state Jharkhand (Corbridge 2002). After this, development in Bihar took a back seat and out-migration continued to outpour heavily in other developed states. Since then, every assembly election in Bihar revolved around issues of development, disaster-relief and out-migration (Bagchi 2018). And political anthems embedded in folk music has become carriers of political promises of development. Bihar Legislative Assembly Elections 2020 was special in the regard that due to COVID-19 lockdown many migrants returned to their native places and were expected to play an important role in formation of government. The inefficiency of the centre and state government to handle COVID cases, lack of medical facilities and heavy toll on human lives, agricultural distress and crime against women were other important factors that affected vote-outs and formation of government. This paper explores content of campaign songs composed during assembly elections and how it has impacted on voters' mind.

Use of folk Music in Political Campaigns

In Bihar, there has been a long tradition where folk music has been used by political parties for organising political rallies and campaigns, and often turning them into cultural events by inviting Bollywood and Bhojpuri cinema actors. Sentiments of people are often embedded in the folk music; political parties are aware of this fact as a result of which such songs are intentionally created in folk music. The emotional individual experience of music is used a carrier to carry political messages (Street 2007). Music not only helps to envision formation of an ideal state fantasies with promises written in form of one-

liners like '*Acche din aane wale hai'* '*mera desh badal raha hai', 'bole Bihar, badle sarkar', 'jan-jan ko milega adhikar'* but also establishes an emotional connect of contesting candidates with the people.

Folk music has great potential to create an image of party and election contenders on minds of voters as someone who could bring cultural development of region with optimistic, futuristic and progressive goals (Sarma 2022). These political songs of victory help them to establish themselves as '*son-of-the-soil*' who could bring development to the region. Folk music mixed with raps and parodies has large number of youngsters listeners studying in colleges and universities who are often ready for their first or second act of voting. Thus, campaign songs are specially penned in popular folk music and language to attract large number of youngsters.

Content of Songs and Influence of Language

Campaign songs often reflect the manifesto of the political party and major issues that grab attention of voters and media channels. They are written in a simple and lucid style with intentional use of catchy phrases relating to recent developments in state, and fallouts such as scams in form of shared posts on social media platforms and as advertisement run by television houses. It is very difficult to ascertain as to what extent the content of songs influences behaviour of voters that make a political impact on the vote judgement of voters' mindset. There are no statistical evidences of impacts of such campaign songs on electoral outcomes. But its influence on voters' mindset can be gauged through a qualitative assessment of these songs available on YouTube and news channels.

The history of campaign songs can be traced back to late seventies and eighties in *Bollywood* (Indian Film Industry) when leading music singers-composers of industry were roped in for creating songs for movies with a political backdrop. Some of the popular songs of that period included phrases like "*Election mein maalik ke ladke khade hai*" in movie 'Aansu Ban Gaye Phool' hinting at nepotism and kinship in Indian politics and '*yeh public hai sab jaanti hai*' in Manmohan Desai's 'Namak Haram". These songs and several others in following decades were composed with a political tinge that stressed about growing awareness of voters' community. During period of Emergency (1975) several other songs were composed but it failed to make any impact. In Bihar, campaigning during elections relied for long on short poems and rhyming phrases that caught attention of general masses. The culture of campaign songs for promotion of political parties is recent and gained status for about two decades only. The music and content of these songs had a regional

flavour to attract local voters. Maithili, Bhojpuri and Hindi are the most preferred languages for mass appeal. Apart from traditional music based on classical and contemporary notes, rap songs (in poetical format) and parodies have also joined the league of campaign songs.

The electoral space of Bihar has always been governed by divisive forces of caste and class. The voters' turnout and result are always influenced by political views of the parties providing patronage. Bihar Legislative Elections 2020 was important in the electoral history of Bihar as it was expected to revolve around real issues surrounding and issues pertaining to unequal distribution of resources, unemployment arising from COVID-19, safety and health of migrants, status of safety of women and ban on sale of liquor. It was in this light that political parties tried to influence their voters with campaign songs revolving around these key issues in backdrop of COVID 19.

During the Bihar Legislative Elections 2020, the campaign songs were composed not only as songs of critical questioning but also as songs of rage. It all started when moviemaker Anubhav Sinha and actor Manoj Bajpai Bihar collaborated for a Bhojpuri rap "*Gaav seher ke bichwa mai, Hum gajbe kanfusiaail bani, do joon je roti khatir, Bambai mai hum aail baani*" (Between village and town of mine, I lie a bit bewildered, to feed two times a day, I have reached Bombay) to portray the hardships faced by Bihari migrant workers in Maharashtra. This satirical parody hinted on the effect of under-development, floods and unemployment in Bihar that forced millions of Biharis to look for opportunities in other developed states like Maharashtra, Karnataka, Gujarat and Punjab. The BJP-Janta Dal led coalition government came up with a similar Bhojpuri rap "*Bihar mein ee baa*" that was considered a befitting reply to Bajpai's song and counted on achievements of then chief minister Nitish Kumar. But it was in no way intended to highlight issues of Biharis migrants. Many nationalist and regional parties kept their composition of campaign songs in Hindi for a wider reach to neighbouring Hindi speaking states. The Indian National Congress (INC) released a campaign song titled "*Bole Bihar, Badle Bihar*' (Bihar asks for a change in government) that focussed on issues of lack of opportunities & jobs for youth, helplessness and accidental deaths of migrants during COVID-19, poor state of education and lawlessness in Bihar. Few others songs like "*Rajtilak ki karo taiyari, aa rahe hai lalten dhaari*" (prepare for the coronation, lanterns are coming) by Bhojpuri actor-vocalist Khesari lal Yadav brings visions development of region with return of party supremo pf Rastriya Janta Dal and thus only boasts and brags about strength of party leaders. The

ruling Janta Dal United (JDU) party too launched their election campaign song in form of rap titled "*parkha hai jisko, chunenge usko*" (one who has passed the test will be chosen) sung by famous Indian rapper Shloka. It highlights how Bihar has moved from of gun culture towards education and beneficiary schemes like providing bicycles for school going girl students. The song also reminds of the seven-development resolution of Bihar (*Bihar ke vikas ke 7 nischay*) which has brought prosperity in state and benefitted millions of citizens especially youth. A few prose versions written by writer Neha Singh surrounding various issues before Bihar Legislative Elections also gained popularity. It was popularized on social media platforms specially Facebook, YouTube and Twitter because of its critical comment on ruling JDU-BJP government on issues of migration, safety, education, employment and industries.

These campaign songs including raps that are mostly written in Bhojpuri and Hindi has been largely composed and addressing issues of development, employment and migration. The songs were carefully penned to bring political benefits by touching emotions of people hurt during COVID-19.

Role of News channels and Social Media Platforms

No elections can be considered complete without campaigning through different digital channels and social media platforms. Often referred to as fourth pillar of democracy, the responsibility of Indian news channels and social media platforms in ethical reporting has increased in recent times. During Bihar legislative elections 20202, mainstream national and regional news channels and popular social media handles appeared with trained journalists and experienced editors who not only predict exit polls but also play an important role in image makeover of contesting candidates. Media houses not only reported about candidates and parties contesting elections but also educated and aware people about importance of electoral process. With the technological development in mass media mass, their role and social responsibility in raising issues related to governance, voters' perception, expectations have increased.

News Channels are the new digital platforms of running campaign songs through exclusive news coverage of rallies and sponsored advertisements. Unlike print media, these digital channels influenced number of votes through continuous process of running campaign songs and advertisement; thus, indirectly persuading voters for a particular party. The responsibility of these channels has increased as many of them often misguide, misinform and confuse voters through exaggerated and prolonged discussion on these campaign songs and lesser on relevant issues of society and

government. Famous stand-up comics, poets, lyricists, actors and filmmakers were often roped in for programs like *Poll Khol* (hosted by actor Shekhar Suman) with large viewership to create parodies and cartoons (*So Sorry* on channel Aajtak) on these campaign songs. These programs specially attract youngsters who get influenced at large with good content and have better access to internet and digital media platforms. They take an extra effort to promote such campaign songs after watching their favourite stars promoting these songs.

Music Industry behind Campaign Songs

As far as development of genre of campaign songs is concerned, it has done no good to local folk songs and folk artists. Unlike neighbouring state West Bengal where skilled artists with inclination towards leftists are hired for music and lyrics composition, political parties in Bihar largely relies on local musical groups without any popular appeal. This doomed industry of such campaign songs fails to do good to local artists. The economics involved in this social platform rivalry has failed to nourish the growth in this local music industry. Most of the vocalists and music composers are raw talents that are hired at meagre wages. So far there has been no promotion of artists that could help other artists to grow or develop studios in Bihar. Despite low voting percentage (between 53-55 percent) in Bihar, Election Commission of India didn't make an effort to promote any awareness song in regional language. For example, in 2022 legislative elections in Himachal Pradesh (HP), an election awareness song in *pahadi* language composed by the HP Police band "Harmony of Pines" was well received, and it impacted on voters turn out in large numbers. Recently in 2023, folk vocalist 'Maithili Thakur' has been declared as Bihar's Election Commission icon who will generate awareness about importance of participation in electoral process.

Summary and Conclusions

Bihar Legislative Elections 2020 was important and different in the view that it was a litmus test of ruling government under shadow of COVID 19 and tragedy struck on migrants during their return to home state Bihar. Dozens of campaigns and political songs reflecting the current mood of the government and agonies in the mind of the voters were composed by popular singers, actors and directors. Issues such as lesser employment opportunities due to lack of industrial development and resultant migration of workers highlighting inefficiency, poor policies and planning of the government echoed in almost every song. Crime against women, poor education and health facilities withdrew everyone's attention in lyrical criticism. A new style of composition in form of rap and parodies was discovered

as popular amongst youth who shared such content heavily on internet. Almost all political parties invested in this genre of music and some campaign songs also caught attention on national mainstream news channels. The mainstream news channels provided great platform for promotion of campaign songs and indirectly affected voters' mind. These compositions have largely disappointed local artists and failed to prosper local music industry. In future, bringing of young artists and youth icons will benefit voters' turnout and promote regional music industry.

Conflicts of Interest

The authors have not declared any conflict of interests.

Selected References and Bibliography

Bagchi, S. 2018. Post-Mandal politics in Bihar: changing electoral patterns. *Commonwealth & Comparative Politics* 56 (4):563–565. https://www.tandfonline.com/doi/full/10.1080/14662043.2018.1516527.

Corbridge, S. 2002. The Continuing Struggle for India's Jharkhand: Democracy, Decentralisation and the Politics of Names and Numbers. *Commonwealth & Comparative Politics* 40 (3):55–71. http://www.tandfonline.com/doi/full/10.1080/713999595.

Datta, A. 2018. Pride and shame in the city: young people's experiences of rural–urban migration in India. *Children's Geographies* 16 (6):654–665. https://www.tandfonline.com/doi/full/10.1080/14733285.2018.1495317.

Peterson, L. 2018. A Rhetorical Analysis of Campaign Songs in Modern Elections. *Theses and Dissertations*. https://scholarsarchive.byu.edu/etd/6718.

Saikia, P., and R. Bhattacharyya. 2022. Campaigning and party strategies in Assam. *South Asian History and Culture* 13 (3):340–360. https://www.tandfonline.com/doi/full/10.1080/19472498.2022.2058173.

Sarma, S. 2022. Analyzing cultural politics through the "dancing body": a study of Assamese item songs in India. *Feminist Media Studies* :1–17. https://www.tandfonline.com/doi/full/10.1080/14680777.2022.2093935.

Street, J. 2007. Breaking the Silence: Music's Role in Political Thought and Action. *Critical Review of International Social and Political Philosophy* 10 (3):321–337. http://www.tandfonline.com/doi/full/10.1080/13698230701400296.

Tambini, D. 2017. Study on the use of internet in electoral campaigns Council of Europe study DGI(2017)11.

Varughese, A. M., P. Saikia, and T. R. Sattineni. 2022. Maximum campaigning in Andhra Pradesh: from padayatra to Facebook and YouTube. *South Asian History and Culture* 13 (3):379–398. https://www.tandfonline.com/doi/full/10.1080/19472498.2021.1956117.

Witsoe, J. 2012. Caste and democratization in postcolonial India: an ethnographic examination of lower caste politics in Bihar. *Democratization* 19 (2):312–333. http://www.tandfonline.com/doi/abs/10.1080/13510347.2011.593327.

Measuring Learning Outcomes of the DIE activity with differently-abled school learners

Niyan J. S. Marchon[1], Libareta Mendonca[2] , Rupal Tanna[3], Sitam Naik[4] , Mahadev Shinde[5]

Abstract

India's New Educational Policy (NEP) 2020 aims to to give opportunities to the learners irrespective of the child's background, caste, birth or greed. The Policy asserts and bridges the gaps in quality education, access, future readiness and particularly the learning outcomes in differently-abled school education.The most basic characteristic of applied theatre is a workshop-like play approach. Play sessions are well planned with clear outcomes for every chalked out task based on the category of differently-abled learners. The session in charge or a teacher-facilitator is always open to quick changes depending on the flexibility of the group of learners, their creativity and abilities. Firstly the focus is on the group formation keeping the different categories and group structure. While in the second phase activities and learning experiments are supervised and set. Facilitator records the feelings, communications, thoughts and experiences of the learners in the group when discussed. In this paper, we promoted the use of Drama in Education (DIE) with the objective of social inclusion of learners with disabilities, with a special emphasis to students with Intellectually Disabled,Cerebral Palsy,Hearing Impairment,Down Syndrome and Autism Spectrum. For each activity the facilitator recorded on observation sheets the learning outcomes of the skit with its expected Learning Outcomes (LO), Bloom's levels and the learner's multiple intelligence. Faculty recorded the challenges experienced using this pedagogy. The teacher also observed if there were any changes in the behavioral pattern of the learners during and after the skit performance.

Keywords*: Learning outcomes, Learners with disabilities, Inclusion, Bloom's Taxonomy, Multiple intelligence, National Education Policy.*

[1] Teaching, Learning and Educational Technology, Goa State Higher Education Council, Goa , India
[2-5] Gujarati Samaj Special School, Goa, India

Introduction

Inclusive and equitable school Education is a significant tool for attaining social justice and equality in our society today. New Educational Policy (NEP) 2020 [1] aims to support the interest and well being of our children's welfare. It certainly should give large opportunities to the learner irrespective of the child's background, caste , birth or greed. The Policy asserts and bridges the gaps in quality education, access, future readiness and particularly the Learning Outcomes (LO) in school education. These objectives will largely meet the needs to further strengthen our educational sector especially the Socio-Economically Disadvantaged Groups (SEDGs).

Among the many SEDGs categories, students attending schooling from the learning disabilities sections and learners from differently abled sections with socio-economic conditions, children from the migrant communities and low income households have declined at various grades especially the girl child. As per the United Information System for Education Plus (UDISE+) 2016-17, the Gross enrollment ratio (GER) data reports,that Scheduled Tribes (ST) students have dropped from 10.6% to 6.8%, and differently-abled children from 1.1% to 0.25%, with even greater declines for female students within each of these categories. However the UDISE status of 2018-19 shows a slight increase in the GER in the recent times [2]. Schools which provide one-to-one and special attention given by teachers with suitable infrastructure and appropriate technology ensures effective and efficient outcomes for children with disabilities. A focused and planned activity based monthly curriculum calender reaps good fruits for quality education is such schools. A well connected parent - teacher association will further improvise attendance and learning outcomes among students.

As per the NEP expectations of learning outcomes in classrooms in school education, our attempt has been made in this work to verify whether the course or learning outcomes have been met for the learners of various categories in the same school environment using activities such as elements of theater and skits.

Research Methodology

Theatre being the primeval forms of art well known to the society and social life has brought about various changes in the society itself in each country. Although in recent times,we have experienced the changes in the styles, forms, scenes, stages and the audience-actor relationships. Bertolt Brecht's theatre, began the start of the applied theatre based art forms [3]. It consists of performing plays generally with "non-theatrical conditions" and the actors being kids, elders, persons

with disabilities among others. The objective is to make the audience apprised of the matters or affairs of public or individual significance. The most basic characteristic of applied theatre is a workshop-like play approach with all the learners [3]. Each play session is well planned with clear outcomes for every chalked out task based on the category of learners with respective to differently abled students. The session in charge or a teacher-facilitator is always open to quick changes depending on the flexibility of the group of learners, their creativity and abilities. Firstly the focus is on the group formation keeping the different categories and group structure. While in the second phase activities and learning experiments are supervised and set. The facilitator records the feelings, communications, thoughts and experiences of the learners in the group when discussed.

There are various forms of applied theatre, such as Socio-drama, Theatre in Development, Playback theatre, Theatre in Education (TIE) and Drama in Education (DIE). Although TIE and DIE are generally equated, they differ in some ways. TIE employs workshops or plays while DIE uses role plays. In DIE, the faculty facilitates the drama within the class of known learners, while in TIE the plays are governed by the theatrical professionals. TIE contributes to making changes in the learners while DIE focuses on expression and development of learner's social skills. Since our target learners were differently-abled, we promoted the use of DIE with the objective of social inclusion of learners with disabilities with a special emphasis to students with Intellectually Disabled (ID),Cerebral Palsy (CP),Hearing Impairment (HI), Down Syndrome (DS) and Autism Spectrum (AS) at the school.

Drama and role plays also aim at having effect on the learners psychophysical development, which can create the conditions for the improvement of the quality of cultural life and lifelong education among students [4]. Schools who support, believe and encourage this methodology of school education must plan and execute the activities according to the learner's age, Multiple Intelligence (MI) [5] (known to the mentor or facilitator in advance), type of differently-able category. The facilitators chalked out four Learning Outcomes common for all the categories. The grouping of learners also took into consideration the ability and chronological age into different levels such as Primary-I, Primary-II, Secondary, Prevocational-I and Prevocational-II based on the promotion procedure chart of National Institute of Mentally Handicapped Secunderbad, Department of Special Education [6].

Implementation of Learning Outcomes

A drama of about two minutes was enacted by five actors for each of the categories. The title of the drama was '*Cap seller and the monkeys*' as narrated in the Annexure I. A stage was set in the school premises with a red circular marked boundary area for enacting the drama. On either sides of the red circle a line using a brown tape marked the entry-exit to the stage. All actors were briefed regarding these stage markings before starting the play for each of the category. All actors adhered to the faculty's instructions and faithfully performed their roles. Capseller was enacted by one and monkeys by four actors.

Following are the categories observed during the sessions: Intellectually Disabled (ID),Cerebral Palsy (CP), Hearing Impairment (HI), Down Syndrome (DS) and Autism Spectrum (AS) and a mixed group with one role player from each of the five categories.The facilitator of each category observed and recorded the following data (i) Facilitator's planning sheet and (ii) the Facilitator's observation sheet. There was one faculty assigned to facilitate each type of category. In the facilitator's planning sheet as seen in Table 1, the following were recorded: Title of the role play, days of rehearsals, act incorporated based on the multiple intelligence of the learners of each category, short gist of the skit with its time duration of enactment, venue of the play held, type of audience and whether the actors used props, music, song or dance sequences. The faculty also chalked down the learning outcomes of the skit with its expected Bloom's levels [7] for each of the LO. Along with other observations, the faculty recorded the challenges experienced using this pedagogy of learning. The teacher observed if there were any changes in the behavioral pattern of the learners and took feedback from the parents of each learner and other teachers from the school. In the facilitator's observation sheet, we recorded the details of each role player from each of the differently-abled category such as: Name of the learner, age, gender, Talent or MI , class level. The participation details of the learner included the title of the play and his/her role. The facilitator recorded the behavior changes or patterns before the skit, during rehearsal,during the actual play performance and after the act. The faculty also observed whether the learner discussed or communicated their performance and experience with family or friends. The actors were asked if given a choice, would she/he in the future like to learn using this technique in class. Finally the teacher mapped if the LOs using this DIE technique met the expected LOs.

Table 1: *Facilitator's Planning sheet*

Differently abled category	**ID**	**CP**	**DS**	**HI**	**AS**	**Mixed group**
Title of the Drama/skit	Capseller and the Monkeys					
Days of rehearsals	10 days					
Venue of the play held	School stage					
Time duration of the skit	2 minutes					
Gender of five actors^{+}	M:2 F:3	M:1 F:4	M:2 F:3	M:3 F:2	M:5 F:0	M:2 F:3
Drama with MI per category	K, M , V , Intra and Inter	V , Intra and Inter	K, V , Intra	K, V , Intra and Inter	K, V , Intra and Inter	K , V , Intra and Inter
Props used for the play	Banana leaves, Caps , basket, paper balls as stones and plastic balls as fruits					
Learning Outcome 1	**Observe** and **understand** the role to be played by the learners in the skit.				Bloom's Level : L2	
Learning Outcome 2	**Communicate** with actors and teachers at rehearsals.				Bloom's Level : L2	
Learning Outcome 3	**Enact** the role given to each learner in the skit.				Bloom's Level : L3	
Learning Outcome 4	**Explain** the moral of the story and build confidence in actors to enact on stage.				Bloom's Level : L3	

+ M : Male ; F: Female ; L2 & L3 : Bloom's Cognitive Levels

K = Kinesthetic , Intra= Intrapersonal, Inter = Interpersonal, M = Musical and V = Visual

Table 2: *Facilitator's observation sheet*

Differently a b l e d category	**Challenges using skit pedagogic.**	**Other observations before, during the skit.**	**Changes in the behavioral pattern seen in learners.**
ID	■ Maintaining discipline at rehearsals ■ Repetitive verbal prompting ■ Explaining the skit repetitively to actors. ■ Uncooperative in the beginning of rehearsals	Initially not serious in the role, later understood the role and followed their peers and enacted.	Actors behaved themselves during rehearsals and enacted their roles with precise timing and correct coordination among actors.
CP	■ Initially uncooperative ■ Repetitive verbal and physical prompting ■ Explaining the skit repetitively to actors.	In the beginning, the actors were confused and afraid. Later their interest level increased and were confident.	Well behaved during rehearsals and enacted their roles with correct coordination among actors.
DS	■ Repetitive verbal and physical prompting ■ Explaining the skit repetitively to actors.	Initially confused and were not ready to act. But later gained confidence.	Initially distracted, but later increased confident and well were behaved.
HI	■ Initially confused about their roles ■ Had to use sign language to explain the skit repetitively to actors.	Lacked confidence and were not ready to act. Later gained confidence and were happy and proud of their achievements.	Confidence improved among actors and they were serious.
AS	■ Major repetitive physical and verbal prompting during rehearsals.	Initially were confused and slightly non-cooperative. Actors followed the prompts well at rehearsals and when on stage.	Confidence improved among actors
Mixed group	■ Repetitive verbal prompting during rehearsals.	Mostly all actors followed physical commands during skit, especially with HI and AS learners.	Initially actors were confused, but later coordinated well with other actors/ members from other categories.

Table 3: *Learning Outcomes matrix*

Differently abled category	**LO1**	**LO2**	**LO3**	**LO4**
ID	2.8	2.8	2.8	2.8
CP	3	3	3	3
DS	3	3	3	3
HI	3	3	2.6	3
AS	3	3	2	1
Mixed group	3	3	2.8	2.8

** for a group of five actors: 1 = slight degree of correlation; 2 = medium degree of correlation; 3 = strong degree of correlation.*

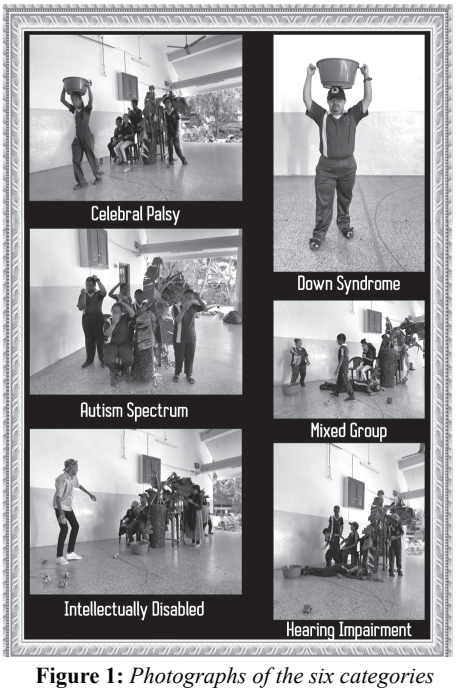


Figure 1: *Photographs of the six categories performing the skit*

Results and Discussion

Among the common challenges faced by teachers (as seen in Table 2) using this pedagogic for all categories are that the facilitate needed to maintain discipline at all rehearsals, most actors required repetitive verbal prompting before and during the acts, most often the facilitators had to explain the skit repetitively to the actors during rehearsals as the learners used to tend to forget their roles, many actors of some category were uncooperative at the beginning of the rehearsals.Particularly for the learners of the hearing impaired were initially confused about their roles and facilitators needed to use sign language to explain the skit. Among other observations from the skit rehearsals and performance,some learners lacked confidence in the beginning and were not ready to act but later gained interest and self-confidence through daily practices and were happy and proud of their achievements at the end of the skit performance. Other behavioral changes observed by the final day of the skit performance, that the learners started behaving themselves during rehearsals and enacted their roles with precise timing and correct

coordination among themselves. In the mixed group category, initially the learners seemed a bit confused to perform their roles, but once they settled among each other, they coordinated well with other actors helping one another to enact their roles.

The four LOs for this experiential activity were to (i) Observe and understand the role to be played by the learners in the skit (ii) Communicate with actors and teachers at the rehearsals (iii) Enact the role given to each learner in the skit and (iv) Explain the moral of the story and build confidence in actors to enact on stage. We used the LO matrix as shown in Table 3 to evaluate the four outcomes of the skit which was performed by the learners. For a group of five actors for each category: slight degree of correlation = 1; medium degree of correlation = 2; strong degree of correlation = 3. For example, for the ID category, each of the five actors were evaluated for the four LOs for the three degrees of correlations. As seen in Table 3, each LO indicates the average of the five actors. As observed from the LO matrix, LO3 and LO4 are lower than the other LOs for most of the categories. Particularly for learners of the Autism Spectrum category, the LO3 and LO4 were the lowest. Most of the actors from this category were not been able to interpret the moral of the story and had difficulty in expressing and communicating the actions on stage.

Most learners from all categories informed about their skit experience and their role to their friends, parents and their peers. It was observed that the learners assisted their facilitators to organize the stage arrangements and help during their skit practices. Mostly actors readily agreed to participate and learn new roles in the future.

Conclusions

Introducing drama in education permits learners to grasp the values of social knowledge, intuitive to the problems in the society, able to ask questions and prospect answers from various angles. In many developing nations, drama in education is becoming an intrinsic part of the curriculum. The teachers especially from the differently-abled schools should be acquainted with the features and advantages of using DIE. This will further enable to the overall development of the quality of teaching and learning in schools.

The facilitator can plan to script the drama or skit based on the MI of the learners from each category. This will enable the MI of all the learners to match the skill based content in the skit and the learning outcomes using this pedagogic will become more fruitful and productive. The skit presented in this case was based mainly on skills like kinesthetic, Visual and Interpersonal.

It was observed that the LO of the learners who possessed MI in kinesthetic, Visual and Interpersonal skills performed much better than the other learners. The techniques used in the skits can further help learners with disabilities. Learners with cerebral paralysis, Hearing Impairment,Down Syndrome and Autism Spectrum depending on their mobility, can more or less take part in most of these technique very effectively. Although learners with ASD often have problems with social communication and interaction, these learners performed the skit with much better concentration but required repetitive prompting which was acceptable. The use of DIE is developing increasingly and therefore it is getting a more important role in the development of the inclusive society among learners in differently-abled schools.

Acknowledgements

Authors would like to acknowledge the Management of Gujarati Samaj Special School and the parents of all the school learners for their support to execute the experiential learning method using drama in the school. We thank all the teachers and the supporting staff members for their assistance during the rehearsals at the school premises.

References

New National Education Policy (NEP) (2020) Ministry of Human Resource Development, Policy draft, Government of India.

Status of School Education in India: Observations based on Recent Data (2022), website : https://educationforallinindia.com/news/udise-report-by-department-of-school-education-literacy-ministry-of-education.

Karic, J et al (2009),The inclusive potential of applied theatre in activities with people with disabilities.

Jackson, T. (Ed.) (1980), Learning through Theatre: Essays and Casebooks on TIE, Manchester: Manchester University Press.

Marenus, Michele. (2020), Gardner's Theory of Multiple Intelligences. Website : https://www.simplypsychology.org/multiple-intelligences.html.

Ruhl , C. (2021), *Bloom's taxonomy of learning*. Simply Psychology. www.simplypsychology.org/blooms-taxonomy.html.

National Institute for the Empowerment of persons with Intellectual disabilities (Divyangjan), (2022) website : https://www.niepid.nic.in/

Annexure I

Skit title : Cap seller and the monkeys

Once upon a time a cap seller was traveling through a dense forest to a village. It was a very warm day and so he chose to lay down under a tree and take a nap for sometime till sunset. As he was extremely tired he fell asleep very quickly. When he was asleep several monkeys descended from the tree and quickly pulled away the caps sellers basket. They peeped inside basket

and found many colorful caps. The monkeys promptly picked up the caps each and climbed up the tree. After a while the cap seller woke up and to his surprise he found his basket empty. He desperately looked around for his caps and was shocked to notice the monkeys on the tree wearing his caps. The cap seller was quite furious and shouted to the glaring monkeys. The monkeys reacted by yelling back at the cap seller. This further annoyed the cap seller and threw stones at the monkeys who were sitting on the branches. In retaliation the monkeys threw the fruits they had in their hands at the cap seller. The cap seller was stunned by the monkey's actions. The cap seller carefully pondered for a while, took off the cap he was wearing and threw it on the ground with all his might. Looking at this, each monkey sitting on the branches swiftly imitated the cap seller and threw their caps on the ground. The cap seller hurriedly collected all the caps from the ground placed them in his basket and went home happily.

Moral thinking : Clever thinking can easily solve a problem.

Music & Sports: An Absolute Chemistry

[1]Suniti Datta, [2]Balaram Pani, [3]Mamta Sharma, [4]Pawan Kumar

Abstract

Music and sports are like two different entities but are made for each other. Music if selected carefully and as per the intensity and taste of the athlete can give very positive results. The improved attention, pain tolerance, long workouts are few key features when combined with music. Most of the modern day trainers, athletes or layman has start using music in their training programs as technique to ease out the tedious and harder workouts. Both sports and music give indispensable skills and supremacy that not only increase the athlete's lifestyle but also complement each other. It has been proven that musical training improves the motor abilities and coordinative abilities and vice versa, that being a sportsperson may also help musicians better their performances and skill abilities. It can be inference that music can build an optimum state of mind for training and exercise and take us to the state of flow.

Keywords: *Attention, Performance, Optimum, Flow*

Introduction

Sports and music are nearly impossible to separate. There are many aspects to the role of music and sports and their relationship. There are many examples of music to celebrate a sporting moment which give a musical story to a sports story. One of the examples is use of Ravel's Bolero by Torvill and Dean in the Olympic winning Ice Skating Routine. The other example is orchestral accolade by Carl Devis to rugby league and Leeds Rhinos which provides a musical representation of body movements and sports physicality. Music can be used as an expression of followership and as method to build up common uniformity.

There are numerous movies about sports with little good music about

1. Department of Music, Aditi Mahavidyalaya, University of Delhi, N. Delhi, India. sunitidatta@gmail.com

2. Department of Chemistry, Bhaskaracharya College of Applied Sciences, University of Delhi, N. Delhi, India. balarampani63@gmail.com

3. Department of Chemistry, Aditi Mahavidyalaya, University of Delhi, N. Delhi, India. mamta610@gmail.com

4. Department of Physical Education & Sports Sciences, PGDAV (M) College, University of Delhi, N. Delhi, India. pawan.dabas@pgdav.du.ac.in (corresponding author)

sports. It might look to many that these two cultural set up have very less in common but nevertheless as the authors contend and this article will further demonstrate these two not only have great deal in common but come together as significant outcome. Both music and sports produce moments of supremacy, association and spiritual vibrations. Both the cultural forms are very essential elements of past, present and for ever changing modern cultural future. Sports and music are almost same type of modern leisure which is designed by artists, arbitrated by critics and loved by fans. Both the forms have the ability to entrain, drool and make the collective identity and shape the individual after being apart from their economic functions.

'Cox' quoted that sports and music have more in common than the things that separate them. Ignoring that fact the interest of authors in this regard is to see coming them together rather than compared when seen apart. Many speakers have quoted that sports and music have an innate relationship. 'Bateman' observed that sports and music are two most favored and culturally prevalent activities by which individual and combined identities are manufactured, remanufactured, arranged and debated.

Sports and Music: The Relationship

Innumerable sportsperson depend on music to help them to attain the optimal mental health for training and participation in completion. Many argue regarding the effect of music on improving the performance of an athlete. Light and slow music make athletes to work longer hours than quick tempo music. The interrelationship between sports and music are not just confined to entertainment but charge political processes and changes in socio-culture. Burton, 1995 played an important role in making cricket as carnival and then extended to many sports. Many research has found that music help sportsperson in delaying fatigue, enhance pain tolerance capacity and also improving mood and motivation. In addition to this athletes listing to the right choice of music drains out the fear or terror and negative thoughts and in many situations, attention is refocused on emotions of achievement.

Modern coaches and trainers have start using music in their training programs as technique to ease out the tedious and harder workouts. Coaches are using the strategy of using inspiring music for high intensity workout sessions and much slower and quieter music during rest periods. It is a must to change the music regularly and the sportsperson should be asked regarding their music preferences. Coaches are being more successful by having each sportsperson make and listen to favorite music playlist for specific

parts of their training and visualize the effect of those songs at those sessions. Both sports and music give indispensable skills and supremacy that not only increase the athlete's lifestyle but also complement each other. It has been proven that musical training improves the motor abilities and coordinative abilities and vice versa, that being a sportsperson may also help musicians better their performances and skill abilities.

There are some captivating findings which give athletes and musicians perception to find way to enhance their performances. Some examples showing how music might enhance sports performance at the time of training and competition:

- Music motivates sportsperson to work harder during training sessions of longer duration.
- Music that stimulates has shown the impact on positive thinking.
- Motivating music has shown boosting distinguished effort, arousal and motivation to the athletes.
- Music has rhythmical properties which provide a strong reaction that can enhance skills and coordination of an athlete.
- Stimulating music helps to increase the hearth rate and slow or sedative music calms the heart rate down.

In general it is advised to all the athletes to include music in their training and completion to enhance their performance.

Psycho-physiological Effect

The psychophysiological results of music on sports have been broadly investigated in sports /exercise and/ or psychology related fields. The effect of sports and exercise on human brain are very well known but lately the effects on music on sports/ exercise has also been investigated. It has been illustrated that music is able to activate behavioral changes of a sports person. It has been seen that there is a key modification in function of brain which increases the participation and bonding towards exercise. Music has also found to delay fatigue and symptoms related to it. It has also found to regulate the emotions and affective arousal. Music plays a very effective and positive role in enhancing the efficacy of the motor system.

According to few researchers, music is a subjective experience and it depends on the choice of sportsperson help to improve mood and energy levels during the exercise. Other researchers have associated the music with the intrinsic and extrinsic factors like rhythm and cultural associations respectively. It has been found that listening to a specific type of music has been found to improve individual experience during low, intermediate or high intensity exercises. Research has also shown that music impact

the action in the autonomic nervous system (ANS) which can even use to control heart rate and blood pressure. The central nervous system (CNS) is very sensitive to music and the reactions from the cues are very wide which involves activation of muscles, thoughts, behavior, attention and other functions.

Attention is another factor associated with music. Listening to music during the physical exercises has been mentioned as isolated cognitive plan that helps to divert attention away from the individual experience of pain and discomfort. With the increase in the intensity of exercise, the body response to discomfort and related sensations also increases which extracting awareness of fatigue related symptoms. On the other hand, when sportsmen are exposed to music cues or videos, there attention is diverted resulting in modifying behavior and discomfort during intensified exercises or other tasks.

There is lots of literature available that shows that music can shift the attention or focus away from the discomfort or fatigue which has been documented through the assessment of ratings of perceived exertion (RPE). It has been specifically found that decreased RPE with music is linked with low to intermediate, but not high intensity exercise. The researchers mentioned that music seems unable to direct attention during exercise that is highly intense with a high degree of discomfort. In spite of all this, it was found that while the RPE remained the same during high intensity exercises with or without music but the sportsmen experienced positive mood while listening to music. The findings of many research showed that the professional or trained sportsmen were very less influenced than that of untrained sportsmen. This may be the result of the practicing athletes take their attention from bodily discomfort in all situations.

Summary

It is an established fact that music combined with exercise, training and any sports related activity improves psychological state which has positive implications to optimize the post and pre competition mindset and enhancing the love of exercise or training. When the music is applied in synchronized manner can boost the physical output and making the monotonous tasks like cycling and running energy efficient. Dr. Karageorghis has put his research of over hundred research articles and two books, Inside Sports Psychology and Applying Music in Exercise and Sports published in 2011 and 2017 respectively reveling that the systematic and organized use of music to enhance the sports and athletic performance and improve the exercise experience. It is not compulsory to be a World Champion

or Olympian to get the benefit of the research rather it seems that music is more useful to low-to-intermediate intensity exercises. His research also reveals that music leads to alteration of physiological and emotional arousal just like a stimulant or sedative given by pharmacological. Music has the capacity to arouse the athletes or even layman people much before entering in the gym or starting any training session.

Music lessens the perception of effort and tricks one's brain into feeling of less tired during a training session and encouraging positive thoughts. Music can decrease the perception of effort by more than ten percent. It can also be said through the various examples given in the article that music distracts an individual from pain, interfering with the signals of brain like fatigue, pain or strain. Listen to the music can enhance stamina and endurance. It can be said that music can build an optimum state of mind for training and exercise and take us to the state of flow. Creating a personalized playlist with variations in tempo, melody and lyrics would utilize a variety of rhythms that will give maximum benefit not only for aerobic exercise but strength and flexibility sessions or any other pursuits. There are evidences to tell that careful selected music can enhance physiological and ergogenic benefits during exercise. The best effects of music can be seen when it accompany own- pace exercise and valid conditions. When the music is selected according to the motivational standards, there is magnificent impact on physiological, psychological and performance.

References

Altenmüller, E., and Schlaug, G. (2012). "Music, brain, and health: exploring biological foundations of music's health effects," in Music, Health & Wellbeing, eds R. A. R. MacDonald, G. Kreutz, and L. Mitchell, (Oxford: Oxford University Press), 12–24

Altenmüller, E., and Schlaug, G. (2013). Neurologic music therapy: the beneficial effects of music making on neurorehabilitation. Acoust. Sci. Technol. 34, 5–12

Bianco, V., Berchicci, M., Perri, R. L., Quinzi, F., and Di Russo, F. (2017). Exercise-related cognitive effects on sensory-motor control in athletes and drummers compared to non-athletes and other musicians. Neuroscience 30, 39–47

Chamari, K., and Padulo, J. (2015). 'Aerobic and Anaerobic' terms used in exercise physiology: a critical terminology reflection. Sports Med. Open 1:9

De Giorgio, A. (2016). From emotional education to collaborative intelligence. Espressivamente. 1, 16–41. ISSN 2239–4044

De Nora, T. (2000). Music in Everyday Life. Cambridge: Cambridge University Press

Di Cagno, A., Iuliano, E., Fiorilli, G., Aquino, G., Giombini, A., Menotti, F., et al. (2016). Effects of rhythmical and extra-rhythmical qualities of music on heart rate during stationary bike

activities. J. Sport Med. Phys. Fit. 56, 1226–1231

Harmon, N. M., and Kravitz, L. (2007). The beat goes on: the effects of music on exercise: a review of the research on the ergogenic and psychophysical impact of music in an exercise program. IDEA Fit. J. 4, 72–77

Hutchinson, J. C., Jones, L., Vitti, S. N., Moore, A., Dalton, P. C., and O'Neil, B. J. (2018). The influence of self-selected music on affect-regulated exercise intensity and re-membered pleasure during treadmill running. Sport Ex. Perf. Psychol. 7, 80–92

Jarraya, M., Chtourou, H., Aloui, A., Hammouda, O., Chamari, K., Chaouachi, A., et al. (2012). The effects of music on high-intensity short-term exercise in well trained athletes. Asian J. Sports Med. 3, 233–238

Jing, L., and Xudong, W. (2008). Evaluation on the effects of relaxing music on the recovery from aerobic exercise-induced fatigue. J. Sports Med.Phys. Fit. 48, 102–106

Karageorghis, C. I., and Priest, D. L. (2012a). Music in the exercise domain: a review and synthesis (part I). Int. Rev. Sport Exerc. Psychol. 5, 44–66

Karageorghis, C. I., and Priest, D. L. (2012b). Music in the exercise domain: a review and synthesis (part II). Int. Rev. Sport Exerc. Psychol. 5, 67–84

Koc, H., and Curtseit, T. (2009). The effects of music on athletic performance. Ovidius University Ann. Series Phys. Educ. Sport Sci. Movement Health 9, 43–47

Mohammad Alipour, Z., Mohammadkhani, S., and Khosrowabadi, R. (2019). Alteration of perceived emotion and brain functional connectivity by changing the musical rhythmic pattern. Exp. Brain Res. 237, 2607–2619

Murrock, C.J., and Higgins, P.A. (2009). The theory of music, mood and movement to improve health outcomes: discussion paper. J. Adv. Nurs. 65, 2249–2257

Schneck, D.J., and Berger, D. S. (2006). The Music Effect: Music Physiology and Clinical Applications. London: Jessica Kingsley

Terry, P. C., Karageorghis, C. I., Mecozzi Saha, A., and D'Auria, S. (2012). Effects of synchronous music on treadmill running among elite triathletes. J. Sci. Med. Sport 15, 52–57

Thaut, M. H. (2005). Rhythm, music, and the brain. London: Routledge

Thaut, M. H., and Abiru, M. (2010). Rhythmic auditory stimulation in rehabilitation of movement disorders: a review of current research. Music Perc. 27, 263–269

Weir, J. P. (2005). Quantifying test-retest reliability using the intra-class correlation coefficient and the SEM. J. Strength Cond. Res. 19, 231–240

Zatorre, R. J., Chen, J. L., and Penhune, V. B. (2007). When the brain plays music: auditory-motor interactions in music perception and production. Nat. Rev. Neur. 8, 547–558

https://blogs.loc.gov/music/2018/10/music-sports-exercise-how-tracks-tunes-can-improve-your-performance

https://www.ncbi.nlm.nih.gov/pmc/articles/PMC3339578/

https://www.frontiersin.org/articles/10.3389/fpsyg.2020.00074/full

https://www.semanticscholar.org/paper/Cricket%2C-carnival-and-street-culture-in-the-Burton

https://kulturehub.com/sports-and-music-the-relationship-and-benefit/

Effect of Music Therapy on Adolescence Suffering from Depression

Purnendu Bains (Research Scholar)

Abstract

The prevalence of depressive symptoms is rising at an alarming rate among adolescents across the Globe, leading to a wide range of issues relating to their mental health, social lives, neurological functions, and behaviours. Traditional treatments, as they are currently offered, have only a limited capacity to alleviate the symptoms of Depression. Over the last few centuries, music therapy has become an effective treatment option for Depression and its associated comorbidities among patients of varying ages and from various demographic backgrounds. Music therapy is an innovative form of clinical and scientific proof treatment that is distinguished by a connection between the music therapist and the patient to address the patient's needs through various methods, including songwriting, listening, and singing. This relationship is characterised by music therapy being an evidence-based treatment. This literature review examines a wide variety of qualitative and qualitative sources studying a variety of collaborators and contextual factors to investigate the effectiveness of music therapy in treating emotional and behavioural problems compared to other conventional treatments. We discovered that most sources concluded that music therapy is much more efficient than standard treatments and can be utilised as an addition to treatments of this type. The use of music therapy can have several beneficial effects on a person's social and emotional well-being, as well as their behaviour and neurological functions, which are certainly relevant for adolescence between the ages of 13 and 18 who are exhibiting signs of Depression. In addition, numerous studies have found that improvements can be made in the comorbidities and associated disorders of Depression. Future research with standardised trials should be conducted with a specific focus on adolescents and music therapy interventions to refine therapeutic uses. In conclusion, we argue that adolescents should have greater access to music therapy as a treatment option and should be made possible through increased funding.

Keywords: *Adolescence, Music therapy, Depression.*

PANJAB UNIVERSITY CHANDIGARH)

INTRODUCTION

It should not be a surprise that medical professionals now consider a person who is mentally unhealthy to be medically incomplete. However, the mental health community has not received the same level of attention as the physical health community.

The most important factors in a country's economic and social success is the state of its mental health, which provides the foundation for citizens to grasp the rational and poignant perspective necessary to identify and fulfil their roles in society and the workplace. In a community, prosperity, unity, and social cohesion are all bolstered when people enjoy good mental health. Poor mental health has far-reaching consequences for individuals and society as a whole.

The majority of people who have mental illness suffer from Depression. Low mood, also known as Depression, is a common human condition. Desire and aversion for certain activities can influence one's health in a purely physical sense. It's still unclear what exactly triggers Depression, but researchers have identified some possibly believed to be multi-factorial, with strong heritable components of Depression. Researchers believe a chemical imbalance in the brain is at the root of Depression. Neurotransmitters play a role in controlling one's disposition, Bad diet, overwhelming stress, etc. Depression can develop if a person's life experiences are too great to bear.

Females are significantly overrepresented in studies of major Depression. Depression affects women at roughly twice the rate it does men due to hormonal factors and reaches its peak during a woman's reproductive years. The major symptoms of Depression include a lack of motivation and interest, impaired ability to having a hard time focusing, trouble sleeping or eating, trouble enjoying oneself, symptoms such as indecision, mental slowdown or fogginess, heightened sadness, Despair characterised by a lack of faith, a sense of futility, preoccupation with one's demise, and a general suicide. When patients with Depression present to primary care, the Depression is frequently misdiagnosed, and when it is, treatment typically centres on other chronic diseases. Depressive disorders are amenable to treatment in primary care or community settings with readily accessible and reasonably priced interventions.

Music therapy has been around for centuries, but it has been shrouded in scientific scepticism and hasn't gotten the mainstream publicity it deserves. Music therapy relies on the brain's associative and cognitive processes to be effective. The ear is sensitive to vibrations, so the sound is produced before it can be heard. Music therapy is useful for those who need help with their social, emotional, and interpersonal communication skills.

The use of music in healthcare, especially in training physicians'

settings, has gained popularity over the past few decades. Since music has such a powerful emotional connection, music therapy can effectively treat Depression. Brainwaves can be synchronised to the rhythm of music; faster beats bring about increased focus and alertness, while slower tempos encourage relaxation. Additionally, music's ability to induce a state of altered brainwave activity can aid in the brain's ability to switch speeds when required spontaneously. The inherent rhythm of our neural activity encourages a positive mindset, which is why music therapy effectively treats Depression. The brain is set up so that focusing on one negative idea brings to mind another, so when one focuses on the music he hears, he does not possess the mental energy to focus on other bad thoughts. When one listens to their favourite songs, their brain releases dopamine, which increases their motivation and encourages them to take action; when one listens to sad songs, they feel like someone else understands how they feel, which can help them feel less alone when they are depressed.

It's common to differentiate between receptive and active types of music therapy. In receptive music therapy, the patient and therapist listen to music together; the music serves as a means toward emotional and behavioural regulation and a springboard for cognitive tasks, personal growth, and introspection. Patients and therapists often engage in musical improvisation as part of active music therapy. The patient doesn't need to have musical talent.

We are now 8 billion strong as a global population.Up to a quarter of the population (25-28%) will be mentally ill at some point in their lives. There are currently 450 million people worldwide who suffer from mental disorders. There are 264+ million depressed people, 26+ million with schizophrenia, 92+ million alcoholics, and 16+ million addicts worldwide. The prevalence of major mental disorders in India is 10 -22% per 1000 people. Statistics show that after 18, approximately 7% of the population will experience Depression at some point in their lives.

Depression can be difficult to diagnose, and many must try multiple medications before settling on the correct one. Some people may even need to take more than one prescription medication at a time to treat illness effectively. However, there are alternative treatments aside from prescription medications to treat Depression, including music therapy.

Understanding the Difference Between Listening to Music and Music Therapy

Provides a soothing space where people can talk about their problems without fear of judgment. Many patients who initially benefited from musical therapy had no musical training. The satisfaction from mastering a previously insurmountable

challenge gives patients a sense of agency in facing their difficulties. They feel empowered to make improvements after realising they have more say in their lives. As a result, those dealing with Depression can benefit from music therapy.

There are two main categories of music therapy: responsive music therapy and engaged music therapy. The patient is responsive to music therapy and pays attention to live, or musical recordings recommended or selected by their therapist to meet their requirements most effectively. It has been demonstrated that receptive music therapy is an effective method for easing anxiety in patients undergoing surgery. Active music therapy is a form of music therapy in which the patients participate in making music. Generally speaking, this is accomplished by teaching the patient how to sing or use an instrument. To facilitate the patient's exploration of their feelings and emotions, mental health professionals frequently encourage their patients to engage in improvised activities. What differentiates all of this from, say, listening to music on an mp3 player or continuing to a native piano teacher is the fact that the music selected during receptive therapy, as well as the music conducted all through active music therapy, is chosen specifically by a mental health professional or psychiatrist who is trained in depression treatment. This is the case whether the music is receptive therapy or active music therapy.

The creation of a single line of tune in Indian music frequently depends on melodic movement, defined as the succession occurrence of tones or musical notes. Indian music is distinguished from Western music in that it is not based on harmony, which utilises several lines of melody in pleasing contrast with each other. This type of music is characterised by an arrangement that serves as the creation itself and is greater than the simple addition of individual notes. The sensation of a musical movement in time is referred to as rhythm, and both share this quality. The music therapy practised in India is highly subjective; it caters to each patient's requirements while emphasising the spiritual dimension. The concept of harmony in the traditional sense is not utilised in pursuing the goal of achieving union with the absolute truth. How it inspires the phrase dedication to the spirit indicates the spiritual foundation that underpins Indian music therapy. Based on the raga, it generates modifications in the body that alleviate anxiety, bring about stress relief, and bring about sleep. However, it also produces mild stimulation and increases one's ability to focus for longer periods. This method of music therapy is personal because it is based on the raga and depends on Swara, which enables the singer to customise the music to the choices and listening habits of the listener. When taken as a whole, this approach to music therapy diverges from western Cultural music

therapy in that its primary focus is on profoundly spiritual emotions.

Several studies point to a potentially beneficial effect of music therapy on Depression; however, these studies do not adhere to rigorous quality standards, which means that additional evidence is required. These findings have been confirmed by research that has not yet been published, and the findings also point to improvements in cognitive and behavioural outcomes and emotional healing. The treatments of schizophrenia, Alzheimer's disease, autism, sleeplessness, and substance misuse, as well as illnesses of speech and synchronisation, and the alleviation of the pain associated with terminal cancer, are some of the other regions inside which Indian music therapy has given some evidence that it is a credible alternative therapy.

The Healing Potential of Music Therapy in India

The following advantages are bestowed upon patients who participate in music therapy, including Indian music therapy.

- Effects are beneficial to mood.
- Increased focus and concentration are desirable.
- Helps with coping as well as relaxing the body and mind.
- Assist in gaining an understanding of the person's inner self as well as their image and personality.
- Increases one's awareness of oneself and surroundings and benefits one's interactions with others.

Research demonstrates that music therapy is an effective method for alleviating the symptoms of Depression, particularly when combined with more traditional treatments such as talk therapy. Endorphins and dopamine, two hormones released when someone listens to music, contribute to the "feel good" emotions that people experience. In addition, it aids in encouraging patients to express themselves, improves their ability to connect with others, and lifts their mood.

Evaluation Of The Effectiveness Of Music Therapy Treatments For Depression:

In terms of the different types of music therapy, active and passive music therapy are fundamentally distinct from one another. Conversely, there is data to back up the claim that they both have similar effects on depression.. It has been shown that active music therapy, particularly improvisational music therapy, may significantly impact clinical Depression in substance abusers. It has been demonstrated that participating in musical activities such as dancing, applauding, or performing an instrument can enhance functional ability, regulation, and self-control. This extra use of music throughout

therapy sessions can help promote emotional regulation, improving the rehabilitation process's overall efficacy.

On the other hand, several researchers have found that active participation in music can result in high levels of initial anxiety. This is likely because participants may feel awkward and embarrassed about participating in music-making methods. Therefore, therapists must offer support and cater to the specific requirements of each individual while engaging in active music therapy. It has also been demonstrated that receptive music therapy, also known as passive music therapy, can alleviate depressive symptoms. The effect may be less powerful than engaged music therapy, although it may generate a better response from the patient.

Impact On Emotion And Behavior

Adolescents who suffer from Depression can benefit from music therapy and music medicine in several ways, including decreasing both depressive and anxious symptoms and increasing quality of life and social interaction. Research has shown that adolescents with a wide range of psychiatric disorders can benefit emotionally from music therapy. More specifically, it demonstrated that music treatments improved adolescents' mood acceptance, regulation, and awareness; this suggests that it can help youngsters recognise their depressed mood state and consciously take steps to alleviate it. Additionally, music therapy helps adolescents with depressive symptoms cultivate positive emotions, which helps them combat the difficult feelings and mood states associated with Depression. In addition, researchers have discovered that music therapy is an effective method for raising one's sense of self-worth, which holds for depressed adolescents and adolescents suffering from general emotional disturbance. Likewise, programs for music therapy can be developed within health facilities to successfully treat depressive symptoms and other comorbidities while attracting adolescents' attention. If these actions were taken, it really would help to develop music therapy as a viable and widely used method to treat the symptoms and the symptoms of Depression. In conclusion, music therapy has the potential to be a successful source of nutrients and an alternative for the treatment of general and adolescent Depression. This treatment option must continue to be researched and put into action.

Conclusion

According to the research results of this detailed study, music therapy appears to have a beneficial effect on the symptoms of Depression experienced by adolescents. It would appear that this pattern holds for a variety of different adolescent populations as well as musical interventions.

Finding the most effective way to utilise music therapy will be a compelling challenge for researchers in the years to come. Some articles relied too heavily on function in providing and group participation, whereas others were more individualised or included passive exposure to specific types of music. Although it is unclear which specific music genres are most useful at relieving depressive symptoms in adolescents, most of the studies included in this review concentrated on instrumental techniques, most of which were performed with percussion instruments. Future trials that can expand improvisational therapy further than rhythmic music to incorporate improvised music making, where a discussion could revolve around the patient unexpectedly creating a personalised tune, would be of value to the field. This would allow the field to build on the current findings and establish adequate sample sizes and study designs. Future trials that can expand improvisational therapy further than rhythmic music to incorporate improvised music production would also be of value to the field. Patients are allowed to discover their routes to recovery through the use of improvisation, which has the effect of producing therapy that is tailored to each individual. Several studies have linked music consumption to measurable shifts in physiological stress markers., such as a downward shift in stress hormones, dominant salivary male, heart rate, and blood pressure, as well as an exponential increase in immunoglobulin, gamma-globulin, and eosinophil cationic protein, and beta-endorphin. In subsequent research, it should be determined how the effects of various music therapy on such biomarkers correlate with a lessening of psychiatric symptoms. Given the high prevalence of anxiety in adolescent populations and its frequent role as a comorbidity with Depression, future research should also evaluate the impact of music therapy on this condition.

References:

Aikman, E., Nolte, A. G., & Dorfling, C. S. (1997). The effect of constant baroque music on premature infants. Curationis,20, 17–20.

Alladi, P. A., Roy, T., Singh, N., & Wadhwa, S. (2005). Prenatal auditory enrichment with species-specific calls and sitar music modulates the expression of Bcl-2 and Bax to alter programmed cell death in developing chick auditory nuclei. International

Journal of Developmental Neuroscience,23, 363–373.

Angelucci, F., Ricci, E., Padua, L., Sabino, A., & Tonali, P. A. (2007). Music expo-sure differentially alters brain-derived neurotrophic factor and nerve growth factor levels in the mouse hypothalamus. Neuroscience Letters,429, 152–155.

Beck, A. T., Ward, C. H., Mendelson, M., Mock, J., & Erbaugh, J. (1961). An inventory for measuring Depression. Archives of General Psychiatry,4, 561–571.

Blood, A. J., & Zatorre, R. J. (2001). Intense pleasure responses to music correlate with activity in brain regions implicated in reward and emotion. Proceedings of the National Academy of Sciences,98, 11818–11823.

Burgdorf, J., & Panksepp, J. (2006). The neurobiology of positive emotions. Neuro-science & Biobehavioral Reviews,30, 173–187.

Chikahisa, S., Sei, H., Morishima, M., Sano, A., Kitaoka, K., Nakaya, Y., et al. (2006).

Exposure to music in the perinatal period enhances learning performance and alters BDNF/TrkB signalling in mice as adults. Behavioural Brain Research,169, 312–319.

Edwards, J. (2006). Music therapy in the treatment and management of mental disorders. Irish Journal of Psychological Medicine,23, 33–35.

Ferguson, D., Doucette, S., Glass, K. C., Shapiro, S., Healy, D., Hebert, P., et al. (2005). Association between suicide attempts and selective serotonin reuptake inhibitors: Systematic review of randomised controlled trials. British Medical Journal,330, 1–7.

Field, T., Martinez, A., Nawrocki, T., Pickens, J., Fox, N., & Schanberg, S. (1998). Music shifts frontal EEG in depressed adolescents. Adolescence,34, 529–534.

Fountoulakis, K. N., Grunze, H., Panagiotis, P., & Kaprinis, G. (2008). Treatment of

Depression: An update. Journal of Affective Disorders,109, 21–34.

Fukui, H., & Toyoshima, K. (2008). Music facilitates the neurogenesis, regeneration and repair of neurons. Medical Hypotheses,71, 765–769.

Gotlib, I. H., Joorman, J., Minor, K. L., & Hallmayer, J. (2008). HPA axis reactivity: A mechanism underlying the association among 5-HTTLPR, stress, and Depression.

Biological Psychiatry,63, 847–851.

Hankin, B. L. (2006). Adolescent Depression: Description, causes and interventions.

Epilepsy & Behavior,8, 102–114.

Hsu, W., & Lai, H. (2004). Effects of music on major Depression in psychiatric patients.

Archives of Psychiatric Nursing,18, 193–199.

Jauˇsovec, N., Jauˇsovec, K., & Gerlic, I. (2006). The influence of Mozart's music on brain activity in the process of learning. Clinical Neurophysiology,117, 2703–2714.

Kelley, A. E., & Bridge, K. C. (2002). The neuroscience of natural rewards: Relevance to addictive drugs. The Journal of Neuroscience,22, 3306–3311.

Koch, M. E., Kain, Z. N., Ayoub, C., & Rosenbaum, S. H. (1998). The sedative and analgesic sparing effects of music. Anesthesiology,89, 300–306.

Manji, H. K., Drevets, W. C., & Charney, D. S. (2001). The cellular neurobiology of

Depression. Nature Medicine,7, 541–547

Demonstration based on the effect of music on blood pressure regulation. Brain Research,1016, 255–262.

Williamon, A., & Valentine, E. (2002). The role of retrieval structures in memorising music. Cognitive Psychology,44, 1–32.

Williams, J. B. (1988). A structured interview guide for the Hamilton Depression

Rating Scale. Archives of General Psychiatry,45, 742–747.

Zimmerman, L., Pozehi, B., Duncan, K., & Schmitz, R. (1989). Effects of music in patients who had chronic cancer pain. Western Journal of Nursing Research, 11, 298–309

Ramkrishnabua Vaze's gayaki: Multiplicity in Khyal vocalism

Dr. Ranjani Ramachandran

Abstract

Ramkrishnabua Vaze was a trailblazing vocalist who, though trained in the Gwalior idiom, created an individual gayaki and influenced many practitioners of Hindustani art music. This article explores the different ways in which Vazebua interpreted his talim and created a unique language through his practice. The primary focus of the article is to understand his gayaki through an objective process of analysis of his recorded music. The introductory section gives an overview of the multifaceted-ness of Vaze as a practitioner followed by the methodology devised for analyzing the khyal recordings of Vaze. The discussion section includes details about Vaze's musical lineage and his training from different experts. That Vaze himself documented about this phase of his musical journey, is a testimony to the fact that he could look way ahead of his times and could perceive the importance of archiving. The concluding section of the article includes detailed observations on Vaze's gayaki and a comparative note on the features of the Gwalior gharana, taken as the primary parameters for analysis, with the corresponding treatment of the same by Vaze.

Keywords: *Hindustani Music, Khyal, Vazebua, Gwalior Gharana, Music analysis*

Introduction

The notion of stylistic diversity within Khyal vocalism in Hindustani music, has been represented and perpetuated through different gharanas focusing on specific ideology along with the individual interpretation of practitioners. Ramkrishnabua Vaze was one such musician, who was a product of eclectic tutelage with training in Dhrupad and khyal gayaki of the Gwalior gharana and he established a unique niche through his individual interpretation. He had an impact on vocalists not only from his gharana but also other gharanas as well like Hirabai Barodekar, Gururao Deshpande and Vasantrao Deshpande. Kumar Gandharva, one of the most prominent and multi

Assistant Professor, Department of Hindustani Classical Music, Sangit Bhavana, Visva Bharati, Santiniketan 731235, Email: ranjani.ramachandran@visva-bharati.ac.in, Tel. 8972595745

layered musicians of the 20th century looked upon Vazebua as a role model, to him and to many young vocalists in his youth. Vaze's endeavour to travel from Maharashtra to Gwalior in search of talim, his engagement with Marathi natya sangeet in later years and his work as an author of a text with notated compositions and his role as a raconteur of his experiences as a musician, have been contributing factors to the multiplicity that his music represented. This article focuses on studying the gayaki of Vaze through a process of objective analysis of his recorded music.

Research Methodology

Vaze was one of the earliest Hindustani music vocalists to be recorded and his 78 rpm recordings dating back to the 1930s are a valuable source of reference to study his gayaki. Research focusing on critical analysis is the primary methodology adopted to understand the gayaki of Vaze. While the focus is on objective analysis, conversations with his disciple and music practitioner Mohan Karve provide further insights into his gayaki. The parameters to analyse the audio material, drawn from the salient features of the Gwalior idiom are, vocal projection and swar lagaav, auchar as a precursor to the bandish and treatment of the composition, techniques of elaboration (stages in the unfolding of the raga and bandish). Additionally other details such as genre, raga, laya and lyrics of the bandish were also noted for each recording sample1. Selected audio recordings have been analysed based on the above-mentioned parameters and a comparative study with the corresponding features of Gwalior gharana vocalism, has been conducted. Observations have also been drawn from the available literature on Vaze's music.

Study Area

Ramkrishnabua Vaze was a vocalist from the Gwalior gharana but his music was marked by a unique individual quality which was often referred to as Vazebua gayaki. He authored and published Sangeet Kala Prakash (part 1 and part 2) which includes notated compositions of his repertoire and an autobiographical section mapping his journey as a musician and his training from different gurus. Every notated composition is further accompanied with details such as the vidwan from whom he learnt the raga, the treatment of raga by different musicians, use of varied phrases in the raga and the myriad ways in which the raga can be sung. He provides brief descriptions of the music and expertise of many contemporary musicians that he encountered during his travels. Vaze was not just notating the compositions but was also providing a documentation of the performance practice, contemporary to

his times. This text and other literature available on Vaze such as Gwalior ki Sangeet Parampara by Bangre, Thor Sangeetkaar by Deodhar, Hindustani Musicians They lit the way and Music and musicians of Hindoostan by Ashok Da Ranade have been used as important references for this article. A review of Vaze's 78 rpm recordings includes 17 sound clips with khyals in 15 ragas, one thumri and one bhajan. The following recordings have been used for the purposes of analysis and study: Tilakkamod (teeratha ko; madhyalaya bandish in Jhaptaal), Miyan Malhar (Karima naam tero, vilambit khayal set to ektala and bola re papeehara, madhyalaya teentala), Todi (masiata punchaniya; teentala), Nat-bihag (damaru dama dama baaje; teentala), Bhairav Bahar (daara daara paatana para koyaliya , drut ektala), Jaunpuri (hardam maula re, madhyalaya teentala)[2].

Discussion

Ramkrishnabua Vaze was born in Ozare situated in the Sawantwadi sansthan in Maharashtra in the year 1871. With due encouragement from his mother, he was initiated in Hindustani music training from a young age. He briefly learnt from a court musician of Kagal named Balwantrao Pohare for two years followed by Vithoba Anna Hadap in Malvan, who was a disciple of Balkrushnabuwa Icchalkaranjikar. He was one of the earliest musicians to have travelled in search of musical tutelage. While seeking a guru in Gwalior, he was influenced and picked up nuances from several practitioners along the way. His musical language was built up on the edifice of multiple influences3. He heard dhrupadiyas Vazir Khan and Yusaf Khan (nephews of the Gwalior gharana exponent Bade Muhammad Khan), in Nagpur and learnt 30 khyals from them4 he observed the influence of tappa anga when he learnt from rabab player Inayat Hussain Khan, a descendent of Haddu Khan in Gwalior; Vaze also learnt briefly from Sadaq Ali, a thumri exponent who belonged to the Qawwal Bacche gharana. Vaze is understood to have learnt tabla from pakhawaj exponents Nanasaheb Panse, Kudao Singh and Balwant Bhaiyya. He eventually got an opportunity to have talim under the Gwalior gharana vocalist Nissar Hussain Khan after much persuasion. His quest for knowledge led him to acquire myriad influences from practitioners of different gharanas. He observed the layadaar aspect of Natthan Khan and Ghulam Abbas Khan, exponents of the Agra gharana; in Calcutta, he learnt a few compositions from Daulat Khan who was a relative of Alladiya Khan from the Jaipur Atrauli gharana and adept at singing rare ragas.

His book Sangeet Kala Prakash documents details about the

practitioners and exponents that he encountered. Such a publication emphasizes Vaze's multi-pronged approach and interest in varied aspects of music making which included performance, teaching, archiving, documentation, and writing. During one of his extensive tours, he even met Swami Vivekananda. The large repertoire of dohras he has to his credit was his precious acquisition from Swamiji. He had a very successful foray in theatre music (Natya Sangeet). He was a well-known music director and a member of many prestigious music mandalis like the Lalit Kala Adarsh and Balwant Sangeet Mandali (Bangre 2011:374) and contributed to the popularisation of Hindustani music by composing several Natyasangeet compositions based on khyal bandishes. He had several serious practitioners as his disciples like Shivrambua Vaze (his son), Haribhau Ghangrekar, Bapurao Pendharkar, Keshavrao Bhonsle and Dinanath Mangeshkar (both of whom attained fame as natya-sangeet exponents), Mohan Karve and Gajananbua Joshi (who was already an established Gwalior gharana exponent during the time he went to learn). The forthcoming section will give detailed observations which are primarily based on selected audio archive of Vaze's music.

Results and Conclusion

Like in the Gwalior vocalism, Vaze's voice was open throated, had a natural volume and an ability to sing in any pitch at any point of time5. His choice of pitch in the range of F (safed 4) to F# (kali 3) was higher than the norm in Gwalior gayaki6. The vocalization was aggressive. His recordings also confirm to this fairly high pitch. The reason for this choice could be extra musical as the peak performing years of Vaze preceded the microphone age. The need to be heard by everyone in the auditorium was the primary concern. A high pitch and loud volume while singing, could ensure this[7].

The significance of a prelude alaap in Gwalior gayaki is to give a jist of the raga being presented. Vaze largely confirms to this notion as he also gives brief chalan of the ragas that he has documented in his text Sangeet Kala Prakash. A review of the recorded music of Vaze reveals a short ascending phrase in raga todi taken up before rendering the bandish.

Vaze had a vast repertoire of bandishes like his guru Nissar Hussain Khan, and was often referred to as kothiwaale gavaiyye. Moreover, the lyrics of the bandish are an important part of his music making process. He believed that a musician should be well versed in bhasha-shastra (literature), tala-shastra and raga shastra because these skills augment one's command over pronunciation and intonation. His bandishes were

often interspersed with appropriate pauses so as to enhance the aesthetic quality of his presentation.

Vaze preferred compositions set to Jhaptala and teentala (for drut khayal-s) and also adachautala to some extent, instead of the more common tala-s of the Gwalior gayaki such as Tilwada and Jhoomra for vilambit khayal-s. The distribution of beats in Jhaptala (2,3,2,3) is such that it is naturally a non-expansive tala and this also had implications in his music making process in his choice of developing a bandish through short phrases and arriving at the sam forcefully. Vaze's choice of tala also conveys the astute minded musician he was during his era because according to a few accounts Vaze chose to sing in Jhaptala and adachoutala because his contemporaries were mostly singing in teentala and ektala. He was thus able to carve out a niche for himself as a vocalist.

The Gwalior gharana gayaki emphasizes on phrase-based development instead of relying on note-by-note elaboration. From his recordings it is clear that Vaze confirmed to this notion. His melodic development was particularly noteworthy due to his reliance on small clusters of notes and the ability to extract patterns out of permutations and combinations of a set of notes. The melodic development however was progressive and systematic as noticed in the improvisation in the vilmabit khayal in raga Miyan malhar. The melodic development of the raga is also interspersed with fast passages akin to tappa anga phrases. The principle of contrast or sawal jawab within a melodic statement is also commonly employed. The most common melodic expressions that appear frequently in Vaze's music are meend and ghaseet. The fact that his teachers included beenkar-s, tantakar-s and dhrupadiya-s only meant an assimilation of certain stylistic features prominent in his teachers in his gayaki. Pause was an important feature of his gayaki. Since the alaap was built around short phrases, as mentioned earlier, pause between these phrases assumed a greater significance.

The sapat (straight) tana-s, arohi and avarohi tana-s and the ladiguthava tana-s which are all part of the Gwalior vocalism, find a place in Vaze's gayaki as well. A patterning in tana-s that vaze often resorted was to initiate a short phrase followed by repeatedly singing the phrase a number of times and rounding it off by a tapered (shorter) version of the same phrase. His tana-s were not particularly known for speed but as Ranade (2011:54) points out, this aspect was significantly made up by the bewildering patterning of note clusters that gave an illusion of faster speed in his tanas.

The large number of guru-s that Vaze trained under, enabled him to acquire a wide repertoire of ragas which included rare variants of many ragas. For instance, he has published a bandish in madhyalaya ektala in Jayant kanada which he describes as a combination of Jaijaivanti and Kanada. He also lists many variants of kanada that he had heard like Raajshaahi Kanada, Nauhari Kanada, Jasodi Kanada, Sohani Kanada8. These compositions are published in his book Sangeet Kala Prakash hence it can safely be conjectured that they were part of his performing repertoire. Additionally, within a raga also he had a significant collection of compositions. This enhanced his perspective on unfolding and exploring a raga as different bandishes portray varied nuances of the same raga. While the Gwalior gharana gayaki is known for dealing extensively with well-known ragas, Vaze expanded this repertoire by including many rare ragas as well. His recorded music reveals this wide repertoire width and his book Sangeet Kala Prakash documents rare ragas like tiraban, pata-manjiri.

In conclusion, Ramkrishnabua Vaze represented multiplicity in khyal vocalism. He was an astute musician and had an eclectic approach towards music making. While adhering to many facets of his parent gharana, Vaze chose to interpret his talim with a personalised statement. Stylistic diversity within a gharana is not something exclusive to the Gwalior gharana. The existence of such a diversity, represented by different gharanas in khyal vocalism, is vital to the propagation of a musical ideology. The fresh inputs by individual practitioners in succeeding generations add new dimensions to an already established musical style or gayaki resulting in progressive refinement and enrichment of the gharana. This study enables in understating the music of practitioners like Ramkrishnabua Vaze, more so for the current generation of musicians and students. Vaze was a khyal practitioner, published his music almost 100 years back, wrote brief biographical notes of several contemporary old masters, had an active foray in theatre music Natyasangeet, contributed towards propagating his music as a dedicated guru and in short, he was engaging with the tools of modernity that impacted the future discourse on Hindustani music. This study of his gayaki is a vital step towards understanding Vaze's multi-pronged approach as a music practitioner.

Notes

1 For more detailed reading of this research methodology see Ramachandran (2013: 6-10)

2 For a detailed analysis of the recording samples see Ramachandran (2013: 69-81)

3 In his book Sangeet Kala Prakash, Vaze has provided brief descriptions of practitioners with whom he interacted and learnt which included khayaliyas, dhrupadiyas, thumri exponents, Tabla and Pakhawaj players. For a complete account of these interactions see Vaze (1938: 157-167)

4 Vaze, Sangeet Kala prakash Part 1 , p.158

5 Vaze, Lecture in Pune, May 20, 2012. Ramkrishnabua Vaze's grand-daughter conducted a programme titled "Pt. Ramkrishnabua Vaze: Gayaki va Parampara" in Pune and spoke in length about his gayaki and influences

6 Vaze's direct disciple informed this researcher about Vaze's preferred pitch being safed 4. (Karve, personal communication, April 1, 2012)

7 For a more detailed account of the observations based on all parameters, See Ramachandran (2013:82-87)

8 See Vaze, Sangeet Kala Prakash-Part1, 59

References

Deodhar, B. R. (2007). Thor Sangeetkaar. Mumbai: Popular Prakashan. [Marathi]

Bangre, Arun. (2011). Gwalior Ki sangeet Parampara (2nd ed.). New Delhi: Kanishka Publishers, Distributers. (Original work published 1995)

Nadkarni, Mohan. (2005). The Great Masters: Profiles in Hindustani Classical Vocal Music. New Delhi: Rupa & Co. Ramachandran, Ranjani. (2013). Stylistic diversity within the Gwalior gharana: an analytical study of the gayaki of some Gwalior gharana vocalists from the 20th century[Doctoral Thesis, Savitribai Pule Pune University]. Shodhganga@ INFLIBNET. http://hdl.handle.net/10603/250317

Ranade, Ashok Da. (1984). On Music and Musicians of Hindoostan. New Delhi: Promilla & Co. Publishers.

-. (2006). Music Contexts A Concise Dictionary of Hindustani Music. New Delhi: Promilla & Co. Publishers.

-. (2011). Some Hindustani Musicians They Lit the Way!. New Delhi: Promilla & Co. Publishers.

Vaze, Ramkrishnabuwa. (1938). Sangeet Kala Prakash Part 1. Poona: Gayanacharya Ramkrishna Narahar Vaze

Interviews/ Personal Communication

Karve, Mohan. (2012, April 1). Interview. Pune.

Audio Recoridng References

Vaze, Ramkrishnabua. Raga Miyan Malhar. All India Radio Archives.

Vaze, Ramkrishnabua. (1939). Raga Miyan ki Todi. Bombay: Columbia.

Vaze, Ramkrishnabua. (1932). Raga Tilak-kamod. Bombay: Columbia.

Changing facets of Indian Music

Dr. Monali Masih

Change is the law of nature. Nothing has remained untouched from the changes that come spontaneously or in consonance with changing times. So is the case with Music. It is true that Classical Music does not accept changes all of a sudden. Whatever changes have taken place in classical music, they have been very slow and gradual other art forms adopt changes conveniently moving forward pacing with time. But the Classical Music initially stands to defy all the upcoming changes in the course of changing times. The reason may be the unchallenging impact or influence of the long existing tradition or the undaunted faith in their permanent and everlasting quality. The conspienous and effective changes in Indian Classical Music began to take place mostly after independence. The reason or circumstances were obvious. Science and freedom, coincidently brought about tremendous changes in the way of life, of people, their choices, their likings. Inventions changed the whole life style Cinema, Gramaphone, Radio, Tape recorder, TV Computer internet created a great source of treasure of knowledge, all kinds of information and most of all entertainment. People got immense opportunity for great cultural, social, art, literary, medical all kinds of exchanges through these means and also this means of transportation- Railways, Aeroplanes fast means of travelling. Impact of foreign culture social life materialist philosophy of life began to change Indian attitude towards life. Industrialization and fast means of travelling made life mechanical and unimaginably fast. All this led people to become more and more indifferent towards classical traditional arts specially music.

Before independence Indian Classical Music survived and flow shed under the shelter of kings and Emperors. Musicians performed to the expectation and satisfaction of the kings and the contemporary audience. It was the tradition those days that a musicians went on rendering one raga for hours together, showing variety

Dayanand Arya Kanya Mahavidyalaya, Jaripatka, Nagpur.

of skills mesmerizing the audience and pleasing the kings (Can the musicians have such long duration of performance today, Not possible / feasible).

Then there were different gharanas having their respective identity and individuality which was asserted through competitions for the superiority or supremacy of one gharana over another. So these gharanas would try to maintain their identity by strictly adhering to their long last traditions shunning any kind of change. (In the face of so much exposure in music, can any individual artist manage to avoid the influences affecting his style or way of singing or playing.

In the past music was not only the medium of devotion, it was a means of entertainment. Means of entertainment as we find today were not there, there was little exposure and hence there was no scope for any change or innovation except creation resulting from human imagination.

With new scientific advancement, new inventions and modern education system introduced by the britishers music came out from the confinements of kings and aristocrats and reached the commoners. Science gave many new equipments of communication like radio, cinema, gramophone, T.V. Tape Recorder, Computer etc which because the most powerful sources of communication and entertainment international exchange of art, music and all kinds of knowledge, cultural adoptions, change in life style, fast and mechanical living due to modern means of transportation Railways, buses, two wheelers, four wheelers industrialization etc all these factors posed great challenges to Indian Classical Music for its popularity and survival. The wave of modern inventors and foreign specially Europeon influences was so strong like psunami that Indian Classical Music too had to make some alterations on order to make at suitable to the ears of modern audience and at the same time not allowing it (Music) to lose it identity.

In the past, grammar of music, technicalities had a very important role in any musical performance. But today the picture is different. Expression of feelings, human emotion found prominence in musical compositions and expositions. Ustad Wahid Khan Sahab and Abdul Karim Khan Sahab laid the foundation of rendering deep and sensitive (emotional) musical compositions. Great Maestro Pandit Onkarnath Thakur was not only a singer but also a great thinker. He also evolved a way or style how one could create “Rasa” in music and stir the feelings of the audience. He paved a way for many upcoming musicians who followed it and became known for their heart touching music. Who does not know the names of Kumar Gondharva, Pandit Bhimsen Joshi, Kishor

Amonkar, Dr. Prabha Atre, Manik Verma and perhaps many others. This has been a great welcoming change felt in todays classical music.

Secondly, musicians felt much freedom to be more innovative to here forms of rendering Music – a kind of "Gayaki" leading the performer and the audience to "Trance". Emphasis on melodious expression of deep feelings through "Swaras" doing away with the compultion of observing time sense while singing or playing a Raga, singing or playing vilambit khayal with slower speed (laya), using variety of Tanas, creative use of notations – all these new phenomena elevated Indian Classical Music to high attitudes of its strength force beauty and melody.

Gharana in North Indian Classical Music has a very important place Artists assert their identity by their belonging to a particular gharana. They feel proud of being members of a particular gharana – kirana gharana or Gwaliar gharana, or Agra gharana and so on. This sense of belonging to a particular gharana was natural and justifiable in the past since a learner could learn music only from a guru. There was no other way.

It has been a coincidence that independence and scientific advancement in the country gave vent to so many sources of music on all its richness and variety that a learner could learn and develop his musical talent to a large extent. Radio, Gramaphone, Tape recorder, T.V. C.D.S. organizing live programes, democratization, decentralization, free access to music performances of all kinds have given free scope to a learner of music to learn and gain knowledge, of course even today in spite of the above mentioned facts, inevitability of a Guru and gharana cannot be denied. Yet, the question arises whether a teacher can hold himself away from the influences of all kinds of music surrounding him! An artist may label himself as belonging to a particular gharana, but can be stop the imperceptive influences stealthily forming his style of singing, giving new form or shape to his music ? It would not be so easy to escape the influences and maintain the purity of a particular gharana or gayaki. This apart, an artist also wishes to have his own individuality and identity and therefore he tries to assimilate in his music all appealing elements he finds in each and every gharana and to develop a new style of Gayaki of his own.

A very powerful and effective and revolutionary change in the world of Indian Classical music is introduction of music as one of teaching. Learning subjects in schools and colleges. The education of music has become available to all irrespective of their social position or status, unlike the situation in the past in which only music gurus gave music lessons to the disciples of their choice

on their Ashrams. In this respect the contribution of Pandit Vishnu Narayan Bhatkhande and Pandit Vishnu Digamber Paluskar cannot be left unremembered. These two musicians evolved the notation system of recording music tunes (ragas) on paper. They moved round the country and collected noting down the music they got from the musicians directly or indirectly. It was on Herculean task to listen to musicians and write down the music on the paper, using the notations sa-re-ga-ma,pa……. Then a great born to music learning lovers – that is. Music is included in University curriculum. Now any student with the talent of music and ambition to learn music can offer music to learn and acquire degrees – B.A., M.A., M.Phil. Ph.D. etc. of course, the fact to be admitted is that students are not fully prepared to be considered well versed in music. But it is very clear that universities and colleges have paved the way for them to develop their talents in order to reach the states of an artist. U.G.C. has provided enough scope for research and advanced studies in music.

In order to encourage the upcoming artists. Government of India has founded Central Music Drama Academy, started various institutions providing music education to all interested to learn. Government also provides scholarship of a students wishes to learn music following Guru-Shishya tradition.

Music is not a common talent. All cannot learn or develop it Secondly modern trends in the field of art have posted many challenges before Indian Classical Music. But it is the indomitable Strength of Indian Classical Music that in the face of most powerful Remix and fusion Music forms Indian Classical Music has safeguarded its basic and cardinal features.

Reference

1. Facets of Indian Music – R.K. Das
2. Internet – https://books.google.com
3. Facets of Indian Culture – Academia. edu. by Nishant Singh

Pandemic-19 Rethinking Tourism Destination Behavior: A Holistic Perspective

Tahmeed Ahmad Badam

Abstract

The COVID-19 pandemic crisis is one of the more significant human experiences of century that humankind experienced ever before. The natural resources from local to global scales have witnessed apparent positive impacts due to minimal human mobility. Global lockdowns have drastically altered the patterns of energy demand and have caused an economic downturn but at the same time, have provided an upside-cleaner global environment. Observing the revitalization of natural resources may help to advance our understanding of guest-host behavior during pro-post crisis in relation to eco-centric tourism practices. Overall carbon emissions have dropped, and the COVID-19 lockdown has led to an improvement in air quality and immaculate beaches/hill stations, water bodies around the globe. Such immense unintended advantages offer opportunities for our natural resources that can lead to viable paths for the conservation and perpetuation of the recovered tourism environment. The notion that the planet can heal itself in the absence of human interference has clearly reverberated and begot an ease to millions of people. Now destination managers' prime challenge is to design for pro-post covid-19 tourism practices as per the lessons learnt from such event crisis by harnessing and channeling environmental hope in a way that truly does heal the natural resources. While we may not reach utopia, a better version of the tourism industry we currently know is surely not beyond our clutch if we work collectively being one. Hence, in this association the article proposed to; [1] To comprehend the rethinking behavior incorporated by tourism destinations amidst the global pandemic-19. As a result, the study would help tourism stakeholders to well notify the prospective challenges and urgently develop pertinent strategies towards sustainability of environment.

Key Words: *Covid-19, Destination, Tourism, Lockdown, Behavior, Environment*

tahmeed.scholar@kashmiruniversity.net

1. Introduction

The first cases of unknown lung disease were reported in the Wuhan (Hubei province) region of China in December 2019, initially appeared in a market where live animals were traded. A new form of the coronavirus was identified as the causative agent and discovered in numerous patients with pneumonia (Ugur and Akbiyik , 2020,p.1). Its global spread is keeping the whole world in suspense. The novel coronavirus (CoV) is now called SARS-CoV-2, the infection Covid-19. “COVID” stands for “Corona Virus Disease” and 19 for the year of discovery. Epidemiologists have predicted that a disease pandemic Covid-19 would eventually happen, although nobody really knew exactly how it might develop and evolve. Now it has happened and it is changing the planet. It is changing the people on the planet and is changing how the cultures on the planet will evolve moving forward, possibly redefining travel and tourism to align it more with the goals of global consciousness. The COVID-19 pandemic provides substantial challenges to different socio-ecological systems, with clear impacts on many aspects of the environment. Pushing humankind into an ongoing global crisis, which is unique in the recent history at least by its spatial extent, rapid onset and its complexity of consequences. Most countries responded by social distancing measures and severely diminished economic and other activities. Consequently, with the increasing wave, the COVID-19 pandemic has led to numerous environmental impacts, both positive such as enhanced air and water quality in urban areas, and negative, such as shoreline pollution due to the disposal of sanitary consumables. The current pandemic, the subsequent lockdown, and the post-lockdown flurry to return to normalcy will have vital positive consequences for biodiversity conservation. The rapid and visible changes in environmental variables within a few weeks of the lockdown were surprising even for experts, which should create an optimistic attitude toward biodiversity conservation (Bang,and Khaddakar ,2020,p.997). And yet, amid all of this calamity, a glimpse of something positive has appeared. In a series of viral social media posts, images from Italy - the epicenter of the crisis at the time of writing - have showed Venice’s canals running clear and undisturbed, shoals of fish visible in the turquoise shallows, swans gliding by and dolphins re-entering the city. ‘Nature just hit the reset button on us’ (Daly , 2020, cited in Crossley, 2020,p.537). Although the waters of Venice’s canals were indeed clearer, due to reduced boat activity, we were informed that swans are in fact common visitors to the canals of Burano in the Venetian Lagoon and

that the dolphins had been filmed off the coast of Sardinia, hundreds of kilometres away. Seraphin , et al., 2020, p.374), from a city besieged by tourists and labeled as an 'over-tourism icon' to a tranquil, utopian haven for wildlife, the transformation of Venice seems incredible and has provided much needed hope that the pandemic might at least bring welcome relief to our pressured ecosystems. In other parts of the world, animals have been documented returning to urban areas not out of curiosity but necessity. Animal populations artificially sustained through tourism have been forced to search elsewhere for food as the tourists they depend on have disappeared (Bisby , 2020; Davidson, 2020; Roth, 2020; Singh, 2020). Herds of Sika deer in Nara, Japan have left the confines of the park where tourists usually feed them 'deer crackers', roaming the city streets supposedly in search of food. The notion that nature has been able to 'hit the reset button on us' imparts a comforting reassurance that our planet's resilience is greater than the damage we have done to it and carries hope for a fresh start. This motif expresses desire for environmental reparation and, from a psychodynamic perspective, 'reparation – the desire to repair, make right, restore – arises out of experiences of guilt, loss and ambivalence' (Lertzman , 2013, p.127).

That modern human consumption practices create a large environmental footprint, resulting in carbon emissions, habitat degradation, biotic homogenization, eventually causing a decline in biodiversity, needs to be realized, curtailed, and levied. Our failure to arrive at standard, agreeable solutions in the face of impending disasters is less a reflection of our abilities to devise and implement stringent solutions and more a reflection of our priorities. The pandemic has shown us that seemingly extreme solutions and their implementation, such as a mandatory lockdown of human activities for a specific duration every year, may restore the planetary environment, even if temporarily. Bartik et al., (2020,p.4), due to the Covid-19 pandemic, the world's economy was shut down almost overnight. The pandemic has confronted the tourism industry with an unprecedented challenge. Strategies to flatten the Covid-19 curve such as community lockdowns, social distancing, stay-at-home orders, travel and mobility restrictions have resulted in temporary closure of many hospitality businesses and significantly decreased the demand for businesses that were allowed to continue to operate. Ugur and Akbiyik , (2020,p.2), the fear of Covid-19 led to significant uncertainty and chaotic conditions in many industries. The tourism industry has experienced sharply

falling revenues and is an economic sector among those most severely affected by the pandemic. The shock affects both the demand side (restrictions on freedom of movement, border closings, and guests' fear of infection) and the supply-side (closure of accommodation and catering establishments as well as leisure facilities used for tourism). The Covid-19 spread every nook and corner of the globe and ruthlessly affected every aspect of life, i.e., socio-political, economic, environmental etc. The article tries to assess the rethinking behaviour incorporated by tourism destinations during the global pandemic-19.has also been discussed therein.

2. Literature Review

Galvani, and Lew , et al. (2020, p.571), a calamity of inconceivable proportions is evident before our eyes. In the outbreak of the Covid-19 pandemic, the global tourism industry has all put ground to a halt, as have many other aspects of everyday life as the populations of whole countries go into lockdown to contain and resist the spread of the virus. There is a need to revert these challenges to practical means to sustain activities for survival by making adjustments to combat the pandemic through identifying practical strategies to renovate their functions. Haedrich , Kaspar, et al. (2020), tourism as an open system being characterized by its high degree of networking with the environment. The numerous interactions with the various dimensions of the outside world not only influence the tourism system itself but also influence the environment. The environment as a whole can be divided into technological, socio-cultural, political, economic, and ecological dimensions. Due to the many interrelationships, tourism, with all its components, is very susceptible to changes in all dimensions of the environment. There are also a variety of external influences that can have a significant impact on traveler mobility. These potential external factors can be summarized in two main categories; the natural offer of the destination and the potential risk of crises based on the different environmental dimensions. The recent pandemic, COVID-19 figures out a pessimistic scenario for all industries but especially the tourism industry in terms of very low or no mobility. Because the virus is spreading rapidly outside of China, the economic impact will not only result from the decline in Chinese demand but also directly in the countries concerned. In the pessimistic scenario of the OECD, global GDP growth and global trade volume will decrease drastically. Hoque , Shikha, et al., (2020, p.5), Tourism-related activities also have been negatively affected due to internal processes. The recent spread of the virus (with or without state quarantine measures) leads to a

noticeable decline in so-called "social consumption". The restrictions include restaurant visits, domestic tourism, visits to cultural events, trade fairs. Several prominent events have already been postponed or even canceled in many countries. Given the high number of cancellations, the airline industry has reduced the flight plans by almost half.

International, regional and local travel restrictions immediately affected national economies, including tourism systems, i.e. international travel, domestic tourism, day visits and segments as diverse as air transport, cruises, public transport, accommodation, cafes and restaurants, conventions, festivals, meetings, or sports events. With international air travel rapidly slowdown as a result of the crisis, and many countries imposing travel bans, closing borders, or introducing quarantine periods, international and domestic tourism declined precipitously over a period of weeks. Countries scrambled to return travelers home, which in the case of important outbound markets involved hundreds of thousands of citizens in all parts of the world. As an example, on 23 March, the British Foreign Secretary urged British tourists to return home, "advising against all but essential international travel", and highlighting that" international travel is becoming more difficult with the closure of borders, airlines suspending flights, airports closing, exit bans and further restrictions being introduced daily" (FCO , 2020). Cruise ships soon became the worst-case scenario for anyone stuck in the global tourism system. Starting with the Diamond Princess on 1 February 2020, at least 25 cruise ships had confirmed Covid-19 infections by 26 March 2020 (Mallapaty , 2020) and at the end of March ten ships remained at sea unable to find a port that would allow them to dock. Idealized safe environments at sea turned into traps, with thousands of passengers held in cabin quarantine and facing the challenge of returning home for the passage of time.

Under the nationwide lockdown, all such activities were suspended with exceptions for essential services. Educational institutions, industrial establishments and hospitality services were also suspended. As a result, air quality improvement has been noted in many towns and cities across the world. Due to moratorium of industries, industrial waste effluent has decreased to a huge extent. Vehicular momentum has been halted on the roads resulting in almost zero emission of green-house gases and toxic tiny suspended particles like, carbon monoxide (CO), nitrogen oxide (NOx), lead (Pb), particulate matter (PM), hydrocarbon (HC), oxides of sulphur (SO2), etc. to the environment. Due to lesser demand of power in industries, use of conventional energy sources or

fossil fuels have been minimized considerably. Ecosystems are being recovered at the significant level. In many vast cities, the inhabitants are experiencing a cerulean sky for the first time in their lives. The pollution level in tourist spots such as mountainous areas, wild woods, sea beaches, desert regions etc. is also shrinking tremendously. Ozone layer (stratosphere) has been found to have recuperated to some extent. The pandemic-19 has displayed its contrasting consequence on human civilization, in the sense that, on one hand, it has caused global mayhem situation, but created incredibly positive impact on the entire environment on the other. Kumar , Malla, et al., (2020, p.4), nature seems to have hit the reset button, reclaiming the spaces to heal itself as the anthropogenic activities have slowed down. Amidst all the gloom and doom that the Covid-19 pandemic is giving, there seems to be a proverbial silver lining and some positive consequences as well.

3. Objective Formulated

1. To appraise the rethinking behavior incorporated by tourism destinations during the global pandemic-19.

4. Methodology

The secondary sources has been taken into application and executed to form conceptual perspective of rethinking tourism destination behavior. So the data were gathered from material published by various mediums like, governmental organizations, private boards, universities, institutions in the form of reports, research papers, manuals, articles, newspapers, internet blogs, etc. The published literature was extensively reviewed henceforth relevant data has been executed to phrase-out the outcome of the problem. Further the discussions with research experts, and teachers were initiated to make the study significant and purposive.

The pandemic has reset the button of environmental resilience and retrieving the nature from grief to its hope. This havoc has inadvertently transform the civic sense, business culture, ideology, social behavior, consumption practices of the humankind and resulted positive impacts to natural environment.

5. COVID-19: Rethink Tourism Destinations Behavior

The global catastrophe COVID-19 which has influenced almost every aspect of humankind whether social, political, environmental or economical, in one or the other way and left an indelible mark in the psyche of common man. The pandemic is the first and foremost a global health emergency with severe consequences on health and economy, but it has also brought positive environmental effects that may serve as an example and inspiration

for future behavioral changes that would help us to bring positive changes in environment. The current global pandemic has forced us to introspect and imagine a different world. This tells us that clean energy, sustainability oriented programs has to be adopted as the corona outbreak ends. Without changing behavioral attitude, developing civic consciousness, various acute factors like, pollution, the waste products from consumption, agriculture, mining, manufacturing, heating, transportation and other anthropogenic activities, will spoil the natural resources. In this connection the significant rethinking behavior of tourism destinations' have been intended here as;

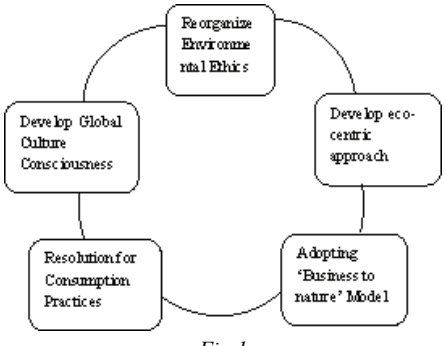


Fig.1

a. Reorganize Environmental Ethics

An ecosystem requires three kinds of diversity horizons namely biological, genetic and functional. Human beings ought to realize the levels and values of biodiversity for the better interest of green planet. Anthropogenic activities and unsustainable agricultural practices have multiple effects and perturb the ecological balance. The ecological balance is an indispensable necessitate for human survival. Without conserving the natural environment resources and minimizing the anthropogenic activities, it is just about impossible to get comprehensive and sustainable development. The sustainable development is directly related with environmental ethics and sometimes it seems to rethink and redefine the environmental ethics in modern context (Verma , 2017d, p.8). Nature always favors and promotes the diversity and coexistence among all the organisms by providing suitable environment to all. Human is since highly evolved product of evolution hence tried always to control the environment and its own society in order to get conducive ambience. But due to overexploitation of natural resources, increased anthropogenic activities and human centric environmental approach, we are facing global warming and COVID-19 like unprecedented threats.

As per the reports since last couple of decade vast patches of forest lands has been cleared for the construction of residential building, hotels, huts, agricultural lands that consequences the environmental fragility. The unethical utilization of natural resources rendered the

ecological grief in green planet across the globe in the form of incessant and uneven rainfall, intense heat waves, genetic erosion, migration of animal species, and extinction of floral diversity at large scale. The sudden outbreak of covid-19 catastrophe evoked the inadvertent schema of damage control towards bio-physical diversity and insinuated the humanity to rethink upon ethical concerns of nature. However, during the course of lockdown the human consumption, anthropogenic activities inadvertently have been limited; this result the resilience of the natural resources at significant level.

b. Develop Eco-centric Approach

In the present-day period, the World is a 'global village' due to the exploit of Information and Communication Technology and we are breathing there and deriving all the benefits from nature earth. When we are getting the opportunities and rest privileges, we must have to bear some responsibilities. We are obliged to develop environment centric approach to operate and consume the environmental resources in such a way so that we can attain the inclusive and sustainable development with coexistence of entire organism-species of the globe. The lockdown therefore provided us an opportunity to shift our ideology from anthropocentric or human centric worldview to eco-centric worldview.

The former worldview puts the human beings in the centre giving them the highest status, considers man to be the most capable for managing the planet earth, realizes that man is the planet's most important species and is the in-charge of the rest of nature. The later worldview states that the earth resources are limited and belong to all the species that exist in nature. Though humans have right to draw their requirements from the environment but certainly not the extent that degrades the environment and harms other species and living beings. This eco-centric worldview is therefore based on earth-wisdom and urges us to live on this earth as a part of it, like any other creature of nature and live sustainably. Though there has been a positive impact on the environment due to the lockdown, there is fear that once people start travelling again or go back to doing what they have been doing, all the positive impact will also disappear. Bang and Khaddakar, (2020, p.997), once the pandemic-induced restrictions are lifted, the world may undertake the path of least resistance, reverting to earlier energy and economic demands, as has happened in the follow-up periods of past global crisis, such as the surge in carbon emissions following the 2008–2009 global financial crisis , which needs to be proactively sidelined. Indeed, this inference that pertinent attention must be paid to

develop efficient strategies to boost global nature. Open issues must be revised, analyzed, and managed by governments to adopt the suitable approaches for nature recovery as well as maintaining the sustainable development.

c. Adopting 'Business for Nature' Model

Managing and development authorities, conservationists, corporations can come together on "business for nature" models of development rather than the conventional "nature for business" models. For example, increased investments by stakeholders like hoteliers, tourism organizations, agro-industries, medicine and pharmaceuticals likely dependent on natural resources such as seafood, agro-produce, herbal medicine, and forest products in the well being of these ecosystems will result in absolute resilience of the natural resources with higher returns. Strengthening of conservation taskforces, support for alternative technologies (e.g., Virtual tourism, virtual conferences,), stringency in national environmental regulation policies, the inclusion of indigenous and poor people in conservation agenda linking conservation with livelihood generation, are some of the solutions to be fostered.

The over utilization of nature for the business operation would lead the erosion of genetic species, biodiversity diminution, landscape erosion; is the sign of ecological imbalance. The diversity of a particular region can be magnificent attraction for the tourism business provided it is properly maintained, protected from misappropriation. The natural flora and fauna has vast diversity across the green planet, most often the bio-physical diversity urges the tourists to visit for their distinct purposes to diverse places to experience the natural environment. It is obvious that most of the tourist attracted countries like, France, Spain, United States, China, Italy, Turkey, Mexico, Germany etc has rich biodiversity which possess tremendous unique selling proposition (USP) for the regions. These countries let the huge investments for the further succession of biodiversity and trying to preserve their nature which in turn significant revenue to their economies. Due to the implementation of covid-19 lockdown and the restrictions over anthropogenic activities in nature various species come to be seen growing with pace and roaming in human habitations. This can be rightly said the harbinger of positive impact of pandemic on nature. There is an urgent need to endeavor the efforts for the regeneration of nature and bio-physical diversity through adopting the business for nature model.

d. Resolution for Consumption Practices

The rapid and explicit changes in environmental variables during temporary lockdown were surprising even for experts, which should create an optimistic attitude toward biodiversity conservation. That modern human consumption practices create a large environmental footprint, resulting in carbon emissions, chlorofluorocarbons (CFCs), jet propellants, habitat degradation, hydro fluorocarbons (HFCs) biotic homogenization, eventually causing a decline in natural biodiversity, needs to be realized and curbed particularly. Our failure to arrive at pertinent, agreeable resolutions in the face of impending emergencies is less a reflection of our abilities to devise and implement adequate solutions and more a reflection of our priorities. The pandemic has expressed us that seemingly standard solutions and their implementation on the meanwhile, such as a mandatory lockdown of human activities for a specific interval every year, may reinstate the natural resources and biodiversity, even if temporarily. If nothing else, such temporary solutions will delay the tipping points of future environmental catastrophes.

The routine based human consumption practices have lowered the speed up to the utmost level after the outbreak of covid-19 crisis worldwide. Likely, the use of food stuffs, beverages, nylon embedded products, polythene articles, excessive use of automobiles, consumption of oil, gasoline, release contrails by jets, all together decreased at the significant scale. The natural itself started reset the button recovery from the fragile environment. The humankind geared back to the conventional practices of consumption, and usages of life. For example, people start to traverse by means of cycles on eve of transport closure; long-haul travel was abandoned abruptly. People come to use portable waters being distilled at their homes instead of bislery and beverages embedded with plastic bottles bought from market places. Now most of the edibles prepared at domestic kitchens because people were restricted to home quarantine and hotels industry has been locked. This pandemic acknowledge the humankind the preciousness of nature after being realizing the amicable improvement in the quality of natural resources and oblige the general public to adopt the future resolution about environmental friendly consumption practices.

The stakeholders community especially, tourism-hospitality industry, will need to lead from the front, in creating solutions and in steering the sociopolitical will required to implement these solutions for a more long-lasting process of natural resource conservation. In

the absence of such realization, the environment and biodiversity conservation may acquire an even further backseat in national and international schema in the pro-post Covid19 humankind.

e. Develop Global Culture Consciousness

To bring a new global culture into reality, the world needs destination managers, and other stakeholders, with an enhanced global consciousness who can address issues that are global in scale, such as climate change, wetland pollution, wastage and effluent release, as well as the COVID-19 pandemic. The admittedly utopian assumption here is that people who have an expanded global consciousness would behave, make decisions, and contribute better to debates with the whole planet in mind, rather than their narrower personal or national interests (Galvani , Lew, et al., 2020, p.570). This would indeed bring about a new global culture that possibly may, naturally and without any legal requirements, be ingrained with values and behaviors that are more along the lines of nature-friendly development.

The emergence of global consciousness culture is the significant determinant that would probably incline the behavior of entrepreneurs, hoteliers, estates, and other stakeholders towards the national interest. In the contemporary period of time the societies worldwide has been struck with pandemic crisis and ingrained the indelible mark of threat, panic and chaos in their minds. No doubt this created the damage to the human life in one hand to large extent but from another perspective the calamity acknowledge humanity the positive impacts upon bio-physical diversity. The excessive and unplanned anthropogenic activities in pre-covid19 times has adverse consequences over the environment and ecology while as implementation of temporary pandemic lockdown has restricted all human practices all together and recovered the nature from fragility to sturdy. This unintended reset of button by the 'nature itself' has retrieved the environment on the track of resilience. The pro-pandemic lockdown scenario modified the behavioral activities of humankind from 'excessive consumers' to 'least consumers'. Therefore the need of the hour is to develop the global consciousness culture among the stakeholders in particular and public in general to contribute the best decision making keeping in mind the sustainability of green planet.

The planet is, obviously, far from such a global culture at the present time, although some places are more respectful of the natural environment and others are more sensitive to income and power inequalities than others. Thus, we propose that post Covid19 travel and tourism has the

potential to significantly enhance the expansion global consciousness, if that were made a clear and specific intention. Without such an intention, whether through tourism or elsewhere, the necessary change in global culture could be a very long process.

6. Discussions and Implications

The pandemic has reset the button of environmental resilience and retrieving the nature from grief to its hope. This havoc has inadvertently transform the civic sense, business culture, ideology, social behavior, consumption practices of the humankind and resulted positive impacts to natural environment.

Notwithstanding,Covid-19 has demonstrated the fragility of survival, but the same understanding has yet to be applied to acknowledge the prospective lessons for the stakeholders of tourism industry which is significant for the revitalization of natural resources to sustain human life. The objective of this paper was to identify the outcome of covid-19 on nature tourism and rethink the way-outs tourism destinations incorporate during the pandemic. Five observed lesson can be made about to deal with pro-post crisis event of global calamity. First, the destination mangers/stakeholders must identify and adopt the strategic lesson like 'rethinking of environmental ethics' to deal with a crisis event. Without conserving the natural resources and minimizing the anthropogenic activities, like excessive mining, marine oil digging, cruise spillage, forest encroachment etc. it is almost impossible to get the inclusive and sustainable development. It is obvious from the research studies that during pandemic-19 there was a tremendous improvement in physical characteristics of natural environment due to unintended gross abandonment of human activities. Second, 'develop eco-centric approach' is an important lesson for stakeholder in determining the pro-post covid-19 response. Stakeholders need to acquaint the fact that the earth resources are limited and belong to all the species that exist in nature. This eco-centric worldview is therefore based on earth-wisdom and urges us to live on this earth as a part of it, like any other creature of nature and live without compromising the opportunities of rest species.

Third, the recent catastrophe taught us the concept of 'business for nature model' to respond the post-crisis event and would emerge key lesson for tourism destination managers at different levels. Through this model the investments ought to be rendered by stakeholders like hoteliers, agro-industries, and pharmaceuticals likely dependent on natural resources such as seafood, agro-produce, herbal medicine, and forest products in the well being of these ecosystems will result in absolute resilience of the natural resources with higher returns.

Fourth, the covid-19 came learnt stakeholders transform from pre-covid-19 consumption practices and observing new slogans like 'adopting resolution for consumption practices'. That modern pre-pandemic (13 march, 19) human consumption practices create a large environmental footprint, resulting in carbon emissions, habitat degradation, eventually causing a decline in biodiversity, needs to be realized, curtailed, and levied. Fifth, it is lessons 'develop global culture consciousness' among the tourism destination managers; with progressive global consciousness they can address issues that are universal in scale, such as, wetland pollution, COVID-19 pandemic, wastage and effluent release. The expanded global consciousness would intend the stakeholders to make decisions, and contribute healthier to debates with egalitarian outlook, rather than their personal or national interests. Hence, the coronavirus-19 made stakeholders of tourism industry acknowledge about its various impacts and ingrained different pro-post pandemic lessons in their minds to long-run the industry in sustainable manner.

Conclusion

The COVID-19 pandemic crisis is one of the more significant human experiences of century that humankind experienced ever before. Nonetheless in this piece of study, we have observed intersections between the COVID-19 crisis and natural resources. Building on available tourism research literature we have exhibited how positive impacts of global pandemic can be an expression of hope and serendipitous lessons for the stakeholders of tourism industry. Observing the revitalization of natural resources may help to advance our understanding of guest-host behavior during pro-post crisis in relation to eco-centric tourism practices. Widely shared web 2.0 (social media) clips and stories of wildlife, aquatic life reclaiming different spaces emptied by the lockdowns, including famous tourist destinations (beaches, wetlands etc.), form a sign of environmental hope that symbolizes life, regeneration and resilience. The notion that the planet can heal itself in the absence of human interference has clearly reverberated and begot an ease to millions of people. Now destination managers' prime challenge is to design for pro-post covid-19 tourism practices as per the lessons learnt from such event crisis by harnessing and channeling environmental hope in a way that truly does heal the natural resources. While we may not reach utopia, a better version of the tourism industry we currently know is surely not beyond our clutch if we work collectively being one.

References

1. Ugur, N.G., and Abiyik, A. (2020). Impacts of Covid-19 on global tourism industry: A cross-regional comparison.

Tourism Management Perspectives. Vol.36.pp.1-13
2. A. Bang, A., and Khaddakar, S. (2020). Biodiversity Conservation during a Global Crisis: Consequences and the Way Forward. PNAS. Vol.117 (48), pp. 995-99
3. Crossley, E. (2020). Ecological grief generates desire for environmental healing in tourism after COVID-19. Tourism Geographies. Vol. 22, No. 3, pp.536–546
4. Seraphin, H., Sheeran, P., & Pilato, M. (2020). Over-tourism and the fall of Venice as a destination. Journal of Destination Marketing & Management. Vol. 9, pp. 374–376.
5. Davidson, J. (2020, Mar, 26). How Covid-19 shutdowns have affected the animal kingdom. CBC News. https://www.cbc.ca/news/technology/what-on-earth-newsletter-covid-19-animalkingdom- accessed on 15.02-2021
6. Lertzman, R. (2013). The myth of apathy. In S. Weintrobe (Ed.) Engaging with climate change: Psychoanalytic and interdisciplinary perspectives. Routledge. pp. 117–133
7. Bartik, A. W., Bertrand, M., et al. (2020). How are small businesses adjusting to Covid-19? Early evidence from a survey. National Bureau of Economic Research. No.2, p.4
8. Ugur, N.G., and Abiyik, A. (2020). Impacts of Covid-19 on global tourism industry: A cross-regional comparison. Tourism Management Perspectives. Vol.36.pp.1-13
9. Galvani, A., and Lew, A., et al. (2020). COVID-19 is expanding global consciousness and the sustainability of travel and tourism. Tourism Geographies. Vol. 22, No. 3, pp. 567–576
10. Centeno, R. S., & Marquez, J. P. (2020). How much did the tourism industry lost? Estimating earning loss of tourism in the Philippines. https://arxiv.org/abs/2004.09952. accessed on 14.02-2021
11. Hoque, A., Shikha, F. A., et al. (2020). The effect of coronavirus (Covid-19) in the tourism industry in China. Asian Journal of Multidisciplinary Studies, Vol.3(1), p.5
12. FCO (The Foreign & Commonwealth Office). (2020). Foreign Secretary advises all British travelers to return to the UK now. Retrieved March 31, 2020, from https://www.gov.uk/government/news/foreign-secretary-advises-all-british-travellers-to-return-to-the-uk-now . accessed on 12.03-2021
13. Mallapaty, S. (2020). What the cruise-ship outbreaks reveal about Covid-19. Nature. https://www.nature.com/articles/d41586-020-00885-w . accessed on 15.04-2021
14. Kumar, A., Malla, M.A., et al. (2020). With Corona outbreak: Nature started hitting the Reset Button Globally. Frontiers in Public Health. Vol.8.pp.1-10
15. Verma, A.K. (2017d,). Environmental Ethics: Need to Rethink. International Journal on Environmental Sciences. 8(1), pp. 7-9
16. Bang, A., and Khaddakar, S. (2020). Biodiversity Conservation during a Global Crisis: Consequences and the Way Forward. PNAS. Vol.117 (48), pp. 995-99
17. Galvani, A., Lew, A.A., et al. (2020). Covid-19 is expanding global consciousness and the sustainability of travel and tourism. Tourism Geographies. Vol. 22, No. 3, pp.567–576